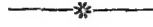
* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाः षोडशपुष्पम्

लिंग-पुराणम्



श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

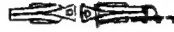
श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्)
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

वैक्रमाब्दः	प्रथमं संस्करणम्	खैस्ताब्दः
२०१७	३०००	१९६०

Gurumandal Series No. XVI

LINGA PURANAM



BY

Shrimanmaharsi Krishna Dwaipayan Vedavyas.

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram era	First Edition	Christian era
2017	3000	1960

अवधकिशोरसिंह द्वारा
गोपाल प्रिण्टिङ्गवर्क्स
८७।ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता–६ में मुद्रित।

लिङ्ग पुराणम्



परमपूज्य

प्रत्यक्षवेदान्तमूर्त्ति ब्रह्मानन्दस्वरूप परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री १०८ स्वामी गङ्गेश्वरानन्दतीर्थजी महाराज

वेदमन्दिर, कांकरियारोड,

अहमदाबाद

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

सादरं समर्पणम्

श्रीमतां तत्रभवतां त्यागतपोनिष्ठानां ज्ञानेन वयसा च प्रगल्भवृद्धानां
स्वशिष्येभ्यो भक्तेभ्यश्चाऽनुदिन वेदवेदाङ्गसच्छास्त्रज्ञान-
साधनार्थं सोत्साहं प्रेरकाणां प्रज्ञाचक्षुष्मतां साक्षाद्-
वेदान्तमूर्तीनां ब्रह्मानन्दस्वरूपाणां परमहंस-
परिव्राजकाचार्याणां

श्री १०८ स्वामीगङ्गेश्वरानन्दतीर्थपादानां करकमलयोः

सादरमिदं समर्प्यते

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाःषोडशपुष्पम्

लिङ्गपुराणमिति

श्रीमत्स्वामिपादभक्तिविलम्बितान्तःकरणो

मनसुखरायमोरः
५, क्लाइव रो,
कलिकाता १

वैशाख शुक्ला ११,
२०१७ विक्रमाब्दः

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

लिङ्गपुराण-भूमिका

——:*:——

श्रीभूतभावन देवाधिदेव परमाराध्य भगवान् शङ्करकी असीम अनुकम्पा से विद्वत्समुदाय एवं भारतीय साहित्यके अनुरागी महानुभावोंकी सेवामें गुरु-मण्डल ग्रन्थमालाके सोलहवें पुष्परूपसे यह लिङ्गपुराण उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इस पुराणकी गरिमा प्रशस्तिको इस छोटेसे लेखमें प्रस्तुत करना असम्भव है फिर भी पाठकोंकी सेवामें इसमहापुराणके विषयमें दो शब्द निवेदन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

पुराण परिचयके नम्र निवेदनमें पुराणोंकी आम्नायता एवं सर्वप्रथम ब्रह्मा द्वारा स्मरण होनेके रूपमें उनकी अपौरुषेयताका वेदोपवृंहित अर्थकी स्पष्टतामें पुराण सृष्टिके प्राण हैं, यह ब्रह्मपुराणकी भूमिकामें बताया जा चुका है। प्रस्तुत लिङ्गपुराण परात्पर अनादि भूतभावन जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारी अविनश्वर परतत्त्वत्रिमूर्त्ति में सकृत् अनुस्यूत प्रसिद्ध संहारक महादेवाधिदेव भगवान् शङ्करके ज्योतिर्लिङ्गके उद्भवका जिसमें ईशानकल्पका वृत्तान्त सम्पूर्ण सर्ग, विसर्ग, आदि दश लक्षणोंसे युक्त महादेवजीके प्रशंसापरक महापुराण है। पुराणोंकी अनुक्रमणिकामें नारद-पुराणके अनुसार यह ग्यारहवां महापुराण है।

नारदपुराणकी १०२ अध्यायमें लिङ्गमहापुराणकी विषयानुक्रमणिका दी गई है इससे इसके प्रधान विषयोंका एवं श्लोकसंख्याका पता लगता है।

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामिपुराणंलिङ्गसञ्ज्ञितम् । पठतांश्शृण्वताञ्चैवभुक्तिमुक्तिप्रदायकम्

यच्च लिङ्गाभिधे तिष्ठन् वह्निलिङ्गे हरोऽभ्यधात् ।

मह्यं धर्मादिसिद्ध्यर्थं अग्निकल्पकथाश्रयम् ॥

तदेवव्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम् । पुराणं लिङ्गमुदितं बह्वाख्यानविचित्रितम् ॥

तदेकादशसाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम् । परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये ॥

पुराणोपक्रमे प्रश्नः सृष्टिः संक्षेपतः पुरा ॥

तत्र पूर्वभागे—

योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम् ।

लिङ्गोद्भवस्तदर्चा च कीर्त्तिता हि ततः परम् ॥

सनत्कुमारशैलादिसम्वादश्चाऽथ पावनः । ततो दधीचिचरितं युगधर्मनिरूपणम्

ततोभुवनकोषाख्या सूर्यसोमान्वयस्ततः । ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकस्तथा

लिङ्गप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् । शिवव्रतानि च तथा समाचारनिरूपणम्

प्रायश्चित्तान्यरिष्टानिकाशीश्रीशैलवर्णनम् ।

अन्धकाख्यानकम्पश्चात् वाराहचरितंपुनः ॥

नृसिंहचरितं पश्चाज्जलन्धरवधस्ततः । शैवं सहस्रनामाऽथ दक्षयज्ञविनाशनम् ॥

कामस्यदहनम्पश्चाद्गिरिजायाःकरग्रहः । ततोविनायकाख्यानंनृत्याख्यानंशिवस्यच

उपमन्युकथा चाऽपि पूर्वभागईरितः ।

उत्तर भागे

विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीषकथा ततः । सनत्कुमारनन्दीशसम्वादश्च पुनर्मुने !॥

शिवमाहात्म्यसंयुक्तस्नानयोगादिकं ततः । सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा

दानानिबहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणन्ततः । प्रतिष्ठातन्त्रगदिताततोऽघोरस्य कीर्त्तनम्

वज्रेश्वरी महाविद्या गायत्रीमहिमा ततः । त्र्यम्बकस्यचमाहात्म्यंपुराणश्रवणस्य च

एतस्योपरिभागस्ते लैङ्गस्यकथितोमया । व्यासेनहि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः

लिखित्वैतत्पुराणन्तु तिलधेनुसमान्वितम् ।
फाल्गुन्यां पूर्णिमायां यो दद्याद्भक्त्या द्विजातये ॥
यःपठेच्छृणुयाद्वाऽपिलैङ्गंपापापहंनरः । स भुक्तभोगो लोकेऽस्मिन्नन्तेशिवपुरम्व्रजेत्
लिङ्गानुक्रमणीमेतां पठेद्यःश्रृणुयात्तथा । तावुभौ शिवभक्तौतु लोकद्वितयभोगिनौ
जायेतां गिरिजाभर्तुः प्रसादान्नाऽत्र संशयः ।

ब्रह्मा बोले हे पुत्र लिङ्गनामकपुराणके विषयमें कहता हूँ सुनो यह पढने और सुननेवालोंको भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है। इसे ईशान (अग्नि,) कल्पकी कथाको ज्योतिर्लिङ्गमें स्थित महादेवने मुझे धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, पुरुषार्थ, चतुष्टयकी सिद्धिके लिये कहा उसे ही व्यासदेवने दो भागोंमें वर्णन किया। यह लिङ्ग पुराण बहुत आख्यानोंसे चित्र विचित्र सुन्दर वर्णनोंसे युक्त है। भगवान् शङ्करके माहात्म्यको बताने वाले इसमें ११००० ग्यारह हजार श्लोक हैं यह सब पुराणोंमें पर (उत्कृष्ट) है। पुराणके उपक्रमके प्रश्नके साथ संक्षेपसे आदि सर्गका वर्णन किया गया है फिर योगका आख्यान एवं कल्पका आख्यान है। लिङ्गका उद्भव (प्रादुर्भाव) तथा उसकी पूजा कही गई है, सनत्कुमार और शैलादिके बीच पवित्र सम्वादका कथन है। फिर दधीचि का चरित तथा युगधर्मका निरूपण है भुवनकोषके वर्णनके बाद सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंका वर्णन है, तब आदिसर्गका विस्तार पूर्वक प्रतिपादन और त्रिपुरका आख्यान है। लिङ्ग-प्रतिष्ठा, पशुपाशविमोचन, विश्वव्रत, सदाचारका निरूपण, प्रायश्चित्त, अरिष्ट, काशी एवं श्रीशैलका वर्णन, अन्धकासुरकी कथा, वाराहचरित, नृसिंह-चरित, जलन्धरका वध, शिवजीके हजारनामोंका विवरण, कामका दहन, पार्वती का पाणिग्रहण, विनायकाख्यान, भगवान् शिवका ताण्डव नृत्य वर्णन और और उपमन्युकी कथा पूर्व भागमें है।

उत्तर भागमें- -

विष्णु माहात्म्य, अम्बरीष कथा, सनत्कुमार एवं नन्दीशके बीच सम्वाद

शिवमाहात्म्यके साथ स्नान यागादिका निरूपण, सूर्यपूजाकी विधि, शिवपूजा जो मुक्तिदायिनीहै उसका वर्णन, दानके विविध प्रकार, श्राद्ध, भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और अघोर के गुण, प्रभाव एवं नामोंका कीर्त्तन, वज्रेश्वरी महाविद्या और गायत्रीकी महिमा, त्र्यम्बक माहात्म्य तथा पुराण श्रवणका माहात्म्य लिङ्गपुराणके उत्तर भागमें यहसब वर्णित है। मैंने रुद्र माहात्म्यको बताने वाले व्यासजीके द्वारा निबद्ध लिङ्गकी अनुक्रमणिकाका वर्णन किया। इस पुराणको फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिल धेनुके साथ पुराणपाठी योग्य द्विजातिको दे और स्वयं श्रवण करे तो वह भुक्तिमुक्ति प्राप्त कर शिवलोकका अधिकारी होता है। जो लिङ्गपुराणकी अनुक्रमणिकाको पढे और सुने तो दोनोंका श्रीशङ्करकी कृपासे उद्धार एवं कल्याण होता है। यहां विषय लिङ्गपुराणकी द्वितीय अनुक्रमणिका अध्यायमें भगवान शङ्करके मुखसे प्राधानिकसर्ग प्राकृत और वैकृत तथा अण्डकी उत्पत्ति आदि वर्णित है, पूर्णतः प्रतिपादित है।

इनकी जो प्रशस्ति है वह त्रिदेवोंके आध्यारोपित एकत्वमें सर्वदेव प्रशस्ति है, फिरभी प्रसङ्गतः उपात्त भगवान् पशुपतीश्वर शिवके विषयमें निवेदन आवश्यक है।

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्त्तिनः॥
तेषाम्पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
मलमायादिभिः १पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः॥
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः॥ (शिवधर्म)

ब्रह्मादिसे स्थावरान्त सभी स्थावर जङ्गम प्राणी पशु हैं भगवान् त्रिशूलपाणि शङ्करके वशवर्त्ती हैं, उनके पति होनेसे देवेश शिव पशुपति हैं वह सर्वेश्वर मल माया, घृणा लज्जा, भय, शोक, जुगुप्सा, कुलशील और जाति आदि आठ

१घृणा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पञ्चमम्।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्त्तिताः॥ १॥

पाशोंसे इन पशुओंको जन्म, मृत्यु, जरा व्याधिके आवर्त्तमें बांधते हैं और भक्ति पूर्वक उपासित होकर वही उनका छुटकारा करते हैं।

*श्वेताश्वतरोपनिषत्में इन्हें सम्पूर्ण देवगणके प्रभव (आदि मूल) और उद्भव बताकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका अधिपति महर्षि बताया है जिसने हिरण्यगर्भ को सर्वप्रथम उत्पन्न किया वह हमें शुभबुद्धिसे संयुक्त करे ऐसा प्रतिपादित किया गया गया है।

अथर्व शिरस्में इन *भगवान् रुद्रको ही भगवान् भूर्भुवः स्वर्लोक और ब्रह्मा तथा विष्णु सर्वात्मक बताया है।

"यो वै रुद्रः स भगवान्भूर्भुवः स्वर्यश्च ब्रह्मा यश्च विष्णुः"।

"शिव एकोध्येयः शिवङ्करोऽन्यत्सर्वम्परित्यज्य" इतिश्रुतिः।

भगवान् शङ्कर ही इस प्रकार सृष्टिको अपनी संहारशक्ति द्वारा अपनेमें लीन करते है। इस तत्त्वको विस्तृत समझानेके लिएही इस ईशान कल्पके प्रभाव, गुण, चमत्कारपूर्ण माहात्म्यको लिङ्गपुराणमें वर्णित किया है। लिङ्गको आधुनिक समाजमें कुछ दूसरे अर्थमें प्रयोग करनेकी अशिष्टतापूर्ण प्रथा चल पड़ी है, यह भगवान् शङ्करके जो स्वयं आदि पुरुष हैं उनकी ज्योतिः स्वरूपा चिन्मय शक्तिका प्रतीक है। इसके उद्भवके विषयमें महान् ज्योतिर्लिङ्ग द्वारा सृष्टिके कल्याणार्थ प्रादुर्भूत होकर ब्रह्मा एवं विष्णु जैसे अनादि तत्त्वोंको भी

पाशबद्धः पशुर्ज्ञेयः पाशमुक्तो महेश्वरः।
पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तो भवेच्छिवः॥ २॥

*यो देवानाम्प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो यो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।
(श्वेतश्वतरोपनिषत्)

*ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णाम्भग इतीरिणा॥

आश्चर्य चकित करनेका दृष्टान्त इस पुराणमें वर्णित है। देखिये:—

प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः। (लिङ्गपुराण—१७-५)

विषयोंकी गहराईको लेकर तो जितना निवेदन कियाजाय उतना ही कम है, फिरभी इसकी २२वीं और ७०की अध्यायमें जो तत्व प्रतिपादित किया गया है और जिसका सम्पूर्ण आशय मूलमें प्रतिपादित हैं उनसे मेरी विचारधाराको एक नया मोड़ मिला। अपनी मान्यताके अनुसार मैंने अपने जीवनके कुछेक वर्ष इन शास्त्रों की सेवामें भगवत्प्रीत्यर्थ उसी पराम्बाकी कृपासे अर्पण किये। उसभगवत्कृपा से जो थोड़ा मेरी तुच्छ बुद्धिमें मथन सृष्टिस्थितिके विषयमें एवं लयके विषयमें हुआ उसका संक्षेप इस प्रकार है:—

सम्पूर्ण विश्वमें प्रलयके समय जल ही जल हो जाता है अर्थात् जहाँ तक स्थूल वायु चलती है जितनी ऊँचाई तक बादलोंकी स्थिति है वहाँ तक जल ही जल दिखलाई पड़ता है, उस समय सम्पूर्ण ग्रह, उपग्रह, सूर्य, चन्द्र और तारोंका प्रकाश उसी सूक्ष्म वायुमें सिमट जाता है, केवल सूक्ष्म वायु ही विद्यमान रहता है वही प्राणचेतन, सर्वगत है उसे सर्व नियन्ता, अनादि निधन, जो नाम दीजिये सम्पूर्ण भूमण्डल पर उसीका विलास है।

प्रलयकालीन अवस्थाके बाद सृष्टिका आरम्भकाल होता है इसे ही "ईश्वरस्य सिसृक्षावशात्परमाणुणुप्रक्रिया जायते" तब द्व्यणुक, त्र्यणुक, त्रसरेणु एवं महत्तत्व पृथ्वीका अणुओंके योगसे उद्भव होना कहा है। मेरा इस विषयमें निवेदन है कि सूक्ष्म वायुके प्रभावसे उस समय जलमें क्रमशः गति आरम्भ हो जाती है वह कालक्रमसे स्थूल वायुको धीरे धीरे स्थान देने लगता है इससे जलमें काई पैदा होती है और उसपर निर्भर रहने वाले जलके प्राणी मछली सर्प आदि विषैले जन्तु उत्पन्न होते हैं। चेतना और गर्मीके लिये विषके जन्तुओंका प्रकृतिसे उत्पन्न होना जलमें गर्मी ला देता है। गर्मीके कारण जलीय अंश सूखने लगता है और जलीय स्थानके केन्द्र समुद्र आदि यथास्थान अपना काम

मर्यादित रूपमें करने लगते हैं। इसी समय सूर्य, चन्द्रमा और तारागणमें प्रकाश व्याप्त होने लगता है और स्थूल वायुकी क्रिया चालू हो जाती है। मिट्टीका भाग स्वतः ही ऊपरकी ओर निकल आता है। उसपर मिट्टीके जीव-जन्तु कीड़े-मकोड़े आदि पैदा होने लगते हैं। इसके बाद घास उगती है। तब उसके खाने-वाले पशु, मृग, हाथी, गाय और बैल उत्पन्न होते हैं।

अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे भूतञ्च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् (शुक्ल यजुर्वेद १८ अ० १७ कण्डिका)।

अग्निः पृथिवीस्थो वह्निः। आपोऽन्तरिक्षस्थानि जलानि। वीरुधः गुल्माः ओषधयः फलपाकान्ताः कृष्टे पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः राजसूय-सूर्येत्यादिना (पाणिनि अष्टाध्यायी ३,१,११४) क्यबन्तो निपातः भूमिकर्षण बीजवापादि कर्मनिष्पाद्या ओषधयः। तद्विपरीता अकृष्टपच्या स्वयमेवोत्पद्यमाना नीवारगवेधुकादयः ग्राम्याः ग्रामेभवाः पशवः गोऽश्वमहिषाजाविगर्दभोष्ट्रादयः आरण्याः अरण्ये भवाः पशवः हस्तिसिंहशरभमृगगवयमर्कटादयः। वित्तं पूर्वलब्धं वित्तिः भाविलाभः भूतं जातपुत्रादिकम्। भूतिरैश्वर्यं स्वार्जितम्। एतानि यज्ञेन मम सम्पद्यन्ताम्।

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान्
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणंमुदमाप देवः॥

(भा० स्क० ११ अ० ९)

अब ज्यों ज्यों वनस्पतियोंकी अन्नमयी शक्ति बढने लगी और अकृष्टपच्य अन्नकी शक्ति व्यापक हुई तो उसपर आश्रित रहने वाले ज्ञानके पुतले मानवकी सृष्टि हुई। वही सबका विधायक, पालक और पोषक बना इसके साथ२ तीनों गुणोंका भी विश्लेषण आवश्यक है।

सत्त्व, रजस् और तामस गुणोंकी समष्टिको साम्यावस्था प्राप्त होनेपर

प्रकृति नाम दिया गया है वही मूल प्रकृति है और उसका नियन्ता पुरुष है।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणत्रयमुदाहृतम् ॥
साम्यावस्थितिमेतेषामवस्थाम्प्रकृतिम्विदुः ॥
सैव मूल प्रकृतिः स्यात्प्रधानम्पुरुषोऽपि च ॥

सत्त्व, रजस् और तमोगुणोंका अधिष्ठान जब परमा शक्ति बनती है तो उसकी प्रकृति सञ्ज्ञा और सदाशिव प्रधान पुरुषके रूपमें अभिव्यक्त होते है। उन्हीं की इच्छानुसार त्रिगुणात्मिका सृष्टिका क्रम बराबर चलता रहता है।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयम्प्रिये! ।
यदा सा परमाशक्तिर्गुणाधिष्ठानमाचरेत् ॥
प्रकृतित्वं भवेत्तस्याः पुरुषः स्यात्सदाशिवः ।

इस पुराणके पठन और मननसे सर्वान्तर्यामी भगवान्की एकरूपता सम्पूर्ण सचराचरमें उसकी अनुस्यूत व्यापकता और सर्वतः उपरि उनके लोकोत्तर-चरित्र, गुण-प्रभाव और सृष्टिके सञ्चालनकी क्षमता द्वारा लोक कल्याणकी भावना अधिकाधिक जागरूक होकर मनुष्य परमार्थ लाभका अधिकारी हो सकता है, यह स्पष्ट है।

इस पुराणमें वर्णित मन्त्र रहस्य, सृष्टि प्रक्रियामें रुद्रतत्त्वकी अतिशय आवश्यकता और उससे लोकहितका क्रिया-कलाप किस प्रकार शक्य है इन सबकी ओर पुराण प्रेमी पाठकोंका ध्यान आकर्षित कर अपनी सङ्कीर्ण दृष्टि-मानव सुलभ त्रुटियोंसे पूर्ण वैयक्तिक जीवन-साधना और उसीके फलस्वरूप अपनी अपूर्णताओंके लिये सभी विद्वद्वृन्दसे कर-बद्ध क्षमा प्रार्थना है।

इस पुराणके सम्पादन कार्यको हमारे प्राच्यशोध संस्थानके अन्यतम पण्डित-द्वय आचार्य श्रीब्रह्मदत्त त्रिवेदी एम० ए० (लक्ष्मणगढ-सीकर) और शास्त्री रामनाथ दाधीच पुराण-सांख्यस्मृति तीर्थ (नवलगढ-जयपुर) ने शीघ्रतामें किया है।

भविष्यमें आप सद्विचारशील अस्मिताशाली विद्वज्जनएवं सहृदय पुराण

प्रेमी कृपालु पाठक महानुभावोंके शुभाशीर्वाद एवं सत्कामनाकी सदा अभिलाषा करता हुआ अपने नम्र-निवेदनका उपसंहार कर क्षमा याचना करता हूँ ।

अपने परिवारको निमित्त बना प्रस्तुत की गई भगवत्कृपाकी यह भेंट कृपालु पाठक वृन्दका कुछ भी सन्तोष कर सके तो इस परिश्रमको सफल समझ आगे देवीभागवत और स्कन्द आदि पुराणोंका प्रकाशन कर कृतार्थ होऊँगा। आशा है, सभी महानुभाव इस ग्रन्थ रत्नके प्रतिपादित सिद्धान्तोंको हृदयङ्गम कर विश्वके प्राणी मात्रका हित सम्पादन करनेमें ज्ञान द्वारा तन, मन, धनसे सहायक हो मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

"कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"।

—:o:—

भवदीय
मनसुखरायमोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता—१

शुभमिति वैशाख शुक्ला १५, बुधवार
२०१७ विक्रम सम्वत्।



सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

---:※:---

* श्रीगणेशायनमः *

लिङ्गपुराणस्यपूर्वार्द्धस्य

विषयानुक्रमणिका

प्रारभ्यते

—०:*:०—

अध्यायाः	विषयनामनिर्देः	पृष्ठाङ्काः
१	तत्रादौ मङ्गलाचरणम्	१
२	अनुक्रमणिकाध्यायवर्णनम्	२
३	प्राकृतप्राथमिकसर्गवर्णनम्	५
४	सृष्टिप्रारम्भवर्णनम्	७
,,	युगसङ्ख्यावर्णनम्	६
५	सृष्टौ प्रथमोत्पत्तिवर्णनम्	११
,,	देवोत्पत्तिवर्णनम्	१३
६	अमृतपादीनांवर्णनसहितं शङ्करमाहात्म्यम्	१४
७	समनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यप्रतिपादनंशङ्कररहस्यकथनम्	१७
८	शिवतत्त्वसाक्षात्कारायययोगस्थानवर्णनम्	१६
,,	प्राणायामवर्णनम्	२१
,,	ध्यानसमभ्यसनवर्णनम	२३
६	सयोगान्तरायं नानोपसर्गाणांविवरणम्	२५
,,	अभ्यासेन विज्ञानविशुद्धिस्थैर्यवर्णनम्	२७

उत्तरार्द्धस्य विषयानुक्रमणिका

समाप्ताचेयं लिङ्गपुराणस्यपूर्वार्द्धोत्तरार्द्धभागयोर्विषयानुक्रमणिका ।

इतिविद्वज्जनकृपाभिलाषिणौलक्ष्मणदुर्गाभिजन (लक्ष्मणगढ-सीकरनिवासि)

ब्रह्मदत्तत्रिवेदि-नवलदुर्गवास्तव्य(नवलगढ-जयपुरनिवासि)रामनाथमिश्रदाधीचौ

शुभमस्तु सताम् ॥

—०:*:०—

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमन्महामुनिवेदव्यासविरचितम्

लिङ्गपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

श्रीपुराणपुरुषोत्तमायनमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम्

नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने । प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ १ ॥
नारदोऽभ्यर्च्य शैलेशे शङ्करं सङ्गमेश्वरे । हिरण्यगर्भे स्वर्लीने ह्यविमुक्ते महालये ॥ २
रौद्रे गोप्रेक्षके चैव श्रेष्ठे पाशुपते तथा । विघ्नेश्वरे च केदारे तथा गोमायुकेश्वरे ॥
हिरण्यगर्भे चन्द्रेशे ईशान्ये च त्रिविष्टपे । शुक्रेश्वरे यथान्यायं नैमिषं प्रययौ मुनिः
नैमिषेयास्तदा दृष्ट्वानारदंहृष्टमानसाः । समभ्यर्च्यासनंतस्मैतद्योग्यंसमकल्पयन् ॥५॥
सोऽपि हृष्टो मुनिवरैर्दत्तं भेजे तदासनम् । सम्पूज्यमानो मुनिभिःसुखासीनोवरासने
चक्रे कथां विचित्रार्थां लिङ्गमाहात्म्यमाश्रिताम् ।
एतस्मिन्नेवकालेतुसूतःपौराणिकःस्वयम् ॥ ७ ॥
जगाम नैमिषं धीमान् प्रणामार्थंतपस्विनाम् । तस्मैसामचपूजाञ्चयथावच्चक्रिरे तदा
नैमिषेयास्तु शिष्याय कृष्ण द्वैपायनस्य तु । अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत॥
दृष्ट्वातमतिविश्वस्तंविद्वांसंरोमहर्षणम् । अपृच्छंश्च ततः सूतमृषिं सर्वे तपोधनाः ॥
पुराणसंहितां पुण्यां लिङ्गमाहात्म्यसंयुताम् ।

नैमिषेया ऊचुः

त्वया सूत ! महाबुद्धे ! कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ ११ ॥
उपासितःपुराणार्थंलब्धातस्माच्चसंहिता । तस्माद्भवन्तंपृच्छामःसूत! पौराणिकोत्तम
पुराणसंहितां दिव्यांलिङ्गमाहात्म्यसंयुताम् । नारदोऽप्यस्यदेवस्यरुद्रस्यपरमात्मनः
क्षेत्राण्यासाद्य चाभ्यर्च्यलिङ्गानिमुनिपुङ्गवः । इहसन्निहितःश्रीमान्नारदोब्रह्मणःसुतः
भवभक्तो भवांश्चैव वयं वै नारदस्तथा । अस्याऽग्रतो मुनेः पुण्यं पुराणं वक्तुमर्हसि
सफलं साधितं सर्वं भवता विदितंभवेत् । एवमुक्तः स हृष्टात्मासूतःपौराणिकोत्तमः
अभिवाद्याग्रतो धीमान्नारदं ब्रह्मणःसुतम् । नैमिषेयांश्च पुण्यात्मा पुराणंव्याजहारसः

सूत उवाच

नमस्कृत्य महादेवं ब्रह्माणञ्चजनार्दनम् । मुनीश्वरं तथा व्यासं वक्तुं लिङ्गं स्मराम्यहम्
शब्द ब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम् । वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम्
अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम् । ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं समजिह्वासमन्वितम्
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम् । प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ॥ २१ ॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् । सत्वेनसर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वेमहेश्वरम्
प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाऽष्टितं क्रमात् । पुनः षोड़शधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम्
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिङ्गरूपिणम् । प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्येलिङ्गोद्भवं शुभम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

अनुक्रमणिकाध्यायवर्णनम्

सूत उवाच

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्यमहात्मना । ब्रह्मणाकल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम् ॥१॥
ग्रन्थकोटिप्रमाणन्तु शतकोटिप्रविस्तरे । चतुर्लक्षेण संक्षिप्ते व्यासैः सर्वान्तरेषु वै

व्यस्तेष्टादशधाचैवब्रह्मादौ द्वापरादिषु । लिङ्गमेकादशंप्रोक्तंमयाव्यासाच्छ्रुतञ्चतत् ॥
अस्यैकादश साहस्रं ग्रन्थमानमिहद्विजाः । तस्मात् संक्षेपतोवक्ष्येनश्रुतंविस्तरेण यत्
चतुर्लक्षेण संक्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु । अत्रैकादशसाहस्रैः कथितो लिङ्गसम्भवः॥५॥
सर्गःप्राधानिकःपश्चात्प्राकृतोवैकृतानिव । अण्डस्यास्यचसम्भूतिरण्डस्यावरणाष्टकम्
अण्डोद्भवत्वं शर्वस्य रजोगुणसमाश्रयात् । विष्णुत्वंकालरुद्रत्वंशयनं चाप्सु तस्यच
प्रजापतीनां सर्गश्च पृथिव्युद्धरणंतथा । ब्रह्मणश्च दिवारात्रमायुषो गणनं पुनः ॥८॥
सवनं ब्रह्मणश्चैव युगकल्पश्च तस्य तु । दिव्यञ्च मानुषंवर्षमार्षंवैध्रौव्यमेव च ॥ ९ ॥
पित्र्यं पितॄणां सम्भूतिर्धर्मश्चाश्रमिणां तथा । अवृद्धिर्जगतो भूयोदेव्याः शक्त्युद्भवस्तथा
स्त्रीपुम्भावो विरिञ्चस्य सर्गो मिथुनसम्भवः । आख्याष्टकंहि रुद्रस्यकथितंरोदनान्तरे
ब्रह्मविष्णुविवादश्च पुनर्लिङ्गस्य सम्भवः । शिलादस्य तपश्चैव वृत्रारेर्दर्शनं तथा ॥
प्रार्थनायोनिजस्याऽथ दुर्लभत्वं सुतस्य तु । शिलादशक्रसम्वादः पद्मयोनित्वमेव च

भवस्य दर्शनञ्चैव तिष्येष्वाचार्यशिष्ययोः ।
व्यासावताराश्च तथा कल्पमन्वन्तराणि च ॥ १४ ॥

कल्पत्वञ्चैव कल्पानामाख्याभेदेष्वनुक्रमात् । कल्पेषुकल्पे वाराहे वाराहत्वंहरेस्तथा
मेघवाहनकल्पस्य वृत्तान्तं रुद्रगौरवम् । पुनर्लिङ्गोद्भवश्चैव ऋषिमध्ये पिनाकिनः॥१६

लिङ्गस्याऽऽराधनं स्नानविधानं शौचलक्षणम् ।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम् ॥ १७॥

भुविरुद्रालयानान्तुसंख्याविष्णोर्गृहस्यच । अन्तरिक्षेतथाऽण्डेऽस्मिन्नेवायतनवर्णनम्
दक्षस्य पतनं भूमौ पुनः स्वारोचिषेऽन्तरे । दक्षशापश्च दक्षस्य शापमोक्षस्तथैव च॥
कैलासवर्णनञ्चैव योगः पाशुपतस्तथा । चतुर्युगप्रमाणञ्च युगधर्मः सुविस्तरः॥२०॥
सन्ध्यांशकप्रमाणञ्च सन्ध्यावृत्तं भवस्य च । श्मशाननिलयश्चैव चन्द्ररेखासमुद्भवः
उद्वाहः शङ्करस्याऽथ पुत्रोत्पादनमेव च । मैथुनातिप्रसङ्गेन विनाशो जगतां भयम् ॥
शापः सत्याकृतोदेवान पुरा विष्णुश्चपालितम् । शुक्रोत्सर्गस्तुरुद्रस्यगाङ्गेयोद्भवएव च
ग्रहणादिषु कालेषु स्नाप्यलिङ्गंफलंतथा । क्षुब्दधी च विवादश्च दधीचोपेन्द्रयोस्तथा

उत्पत्तिर्नन्दिनाम्नातु देवदेवस्य शूलिनः । पतिव्रतायाश्चाख्यानंपशुपाशविचारणा ॥
प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं निवृत्त्यधिकृता तथा । वसिष्ठतनयोत्पत्तिर्वासिष्ठानांमहात्मनाम्
मुनीनां वंशविस्तारो राज्ञां शक्तेर्विनाशनम् ।
दौरात्म्यं कौशिकस्याऽथ सुरभेर्बन्धनं तथा ॥ २७ ॥
सुतशोको वसिष्ठस्य अरुन्धत्याःप्रलापनम् । स्नुषाया प्रेषणञ्चैवगर्भस्थस्यवचस्तथा
पराशरस्याऽवतारो व्यासस्यच शुकस्य च । विनाशोराक्षसानाञ्चकृतोवैशक्तिसूनुना
देवता परमार्थन्तु विज्ञानञ्च प्रसादतः । पुराणकारणञ्चैव पुलस्त्यस्याऽऽज्ञया गुरोः
भुवनानांप्रमाणञ्च ग्रहाणांज्योतिषांगतिः । जीवच्छ्राद्धविधानञ्चश्राद्धार्हाःश्राद्धमेवच॥
नान्दीश्राद्धविधानञ्च तथाऽध्ययनलक्षणम् । पञ्चयज्ञप्रभावश्च पञ्चयज्ञविधिस्तथा ॥
रजस्वलानां वृत्तिश्ववृत्त्या पुत्रविशिष्टता । मैथुनस्य विधिश्चैव प्रतिवर्णमनुक्रमात्
भोज्याभोज्यविधानञ्चसर्वेषामेववर्णिनाम् । प्रायश्चित्तमशेषस्यप्रत्येकञ्चैवविस्तरात्
नरकाणां स्वरूपञ्च दण्डः कर्मानुरूपतः । स्वर्गिनारकिणां पुंसां चिह्नं जन्मान्तरेषुच
नानाविधानि दानानि प्रेतराजपुरं तथा । कल्पं पञ्चाक्षरस्याऽथ रुद्रमाहात्म्यमेव च
वृत्रेन्द्रयोर्महायुद्धं विश्वरूपविमर्दनम् । श्वेतस्यमृत्योःसंवादःश्वेतार्थेकालनाशनम् ॥
देवदारुवने शम्भोः प्रवेशः शङ्करस्यतु । सुदर्शनस्य चाऽऽख्यानं क्रमसन्न्यासलक्षणम्
श्रद्धासाध्योऽथ रुद्रस्तु कथितं ब्रह्मणा तदा ।
मधुना कैटभेनैव पुराहृतगतेर्विभोः ॥ ३६ ॥
ब्रह्मणः परमं ज्ञानमादातुं मीनता हरेः । सर्वावस्थासु विष्णोश्च जननं लीलयैव तु
रुद्रप्रसादाद्विष्णोश्च जिष्णोश्चैव तु सम्भवः । मन्थानधारणार्थाय हरेः कूर्मत्वमेव च
सङ्कर्षणस्य चोत्पत्तिः कौशिक्याश्च पुनर्भवः । यदूनाञ्चैवसम्भूतिर्यादवत्वंहरेःस्वयम्
भोजराजस्य दौरात्म्यं मातुलस्य हरेर्विभोः । बालभावे हरेःक्रीडापुत्रार्थंशङ्करार्चनम्
नारस्य च तथोत्पत्तिः कपाले वैष्णवाद्धरात् । भूभारनिग्रहार्थे तु रुद्रस्याराधनंहरेः
वैन्येन पृथुना भूमेः पुरा दोहप्रवर्तनम् । देवासुरे पुरा लब्धो भृगुशापश्च विष्णुना ॥
कृष्णत्वे द्वारकायान्तु निलयो माधवस्य तु ।

लब्धो हिताय शापस्तु दुर्वासस्याननाद्धरेः ॥ ४६ ॥
वृष्ण्यन्धकविनाशाय शापः पिण्डारवासिनाम् ।
एरकस्य तथोत्पत्तिस्तोमरस्योद्भवस्तथा ॥ ४७ ॥

एरकालाभतोऽन्योन्यं विवादेवृष्णिविग्रहः । लीलयाचैवकृष्णेनस्वकुलस्यचसंहृतिः ॥
एरकास्त्रबलेनैव गमनं स्वेच्छयैव तु । ब्रह्मणश्चैव मोक्षस्य विज्ञानन्तु सुविस्तरम् ॥
पुरान्धकाग्निदक्षाणांशक्रेभमृगरूपिणाम् । मदनस्याऽऽदिदेवस्यब्रह्मणश्चामरारिणाम्
हलाहलस्य दैत्यस्य कृतावज्ञा पिनाकिना । जालन्धरवधश्चैव सुदर्शनसमुद्भवः ॥५१॥
विष्णोर्वरायुधावाप्तिस्तथा रुद्रस्य चेष्टितम् । तथान्यानिचरुद्रस्यचरितानिसहस्रशः
हरेः पितामहस्याऽथ शक्रस्य च महात्मनः । प्रभावानुभवश्चैव शिवलोकस्य वर्णनम्
भूमौ रुद्रस्य लोकश्च पाताले हाटकेश्वरम् । तपसां लक्षणञ्चैव द्विजानां वैभवं तथा
आधिक्यं सर्वमूर्त्तीनां लिङ्गमूर्तेर्विशेषतः । लिङ्गेऽस्मिन्नानुपूर्व्येण विस्तरेणानुकीर्त्यते
एतज्ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्त्तयेत्तु यः । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकंस गच्छति

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अनुक्रमणिका नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

प्राकृतप्राथमिकसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

अलिङ्गो लिङ्गमूलन्तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते । अलिङ्गःशिवइत्युक्तोलिङ्गंशैवमितिस्मृतम्
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुर्लिङ्गमुत्तमम् । गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम् ॥२॥
अगुणं ध्रुवमक्षय्यम् अलिङ्गं शिवलक्षणम् । गन्धवर्णरसैर्युक्तं शब्दस्पर्शादिलक्षणम्
जगद्योनि महाभूतं स्थूलं सूक्ष्मंद्विजोत्तमाः । विग्रहोजगतांलिङ्गमलिङ्गादभवत्स्वयम्

सप्तधा चाऽष्टधाचैव तथैकादशधा पुनः । लिङ्गान्यलिङ्गस्य तथा मायया विततानितु

तेभ्यः प्रधानदेवानां त्रयमासीच्छिवात्मकम् ।

एकस्मात् त्रिष्वभूद्विश्वमेकेन परिरक्षितम् ॥ ६ ॥

एकेनैव हृतं विश्वं व्याप्तन्त्वेवं शिवेन तु । अलिङ्गञ्चैवलिङ्गञ्चलिङ्गालिङ्गानिमूर्त्तयः यथावत् कथिताश्चैवतस्माद्ब्रह्म स्वयं जगत् । अलिङ्गीभगवान्बीजीसएवपरमेश्वरः बीजं योनिश्च निर्बीजं निर्बीजो बीजमुच्यते । बीजयोनिप्रधानानात्माख्यावर्त्ततेत्विह परमात्मा मुनिर्ब्रह्मा नित्यबुद्धस्वभावतः । विशुद्धोऽयं तथा रुद्रः पुराणे शिवउच्यते शिवेन दृष्टाप्रकृतिःशैवीसमभवद्द्विजाः ! । सर्गादौसागुणैर्युक्तापुराव्यक्ता स्वभावतः

अव्यक्तादिविशेषान्तं विश्वं तस्याः समुच्छ्रितम् ।

विश्वधात्री त्वजाख्या च शैवी सा प्रकृतिः स्मृता ॥ १२ ॥

तामजां लोहितांशुक्लांकृष्णामेकांबहुप्रजाम् । जनित्रीमनुशेतेस्मजुषमाणःस्वरूपिणीम् तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगांजहाति च । अजाजनित्रीजगतांसाऽजेनसमधिष्ठिता प्रादुर्बभूव स महान् पुरुषाधिष्ठितस्य च । अजाज्ञया प्रधानस्य सर्गकालेगुणैस्त्रिभिः॥ सिसृक्षयाचोद्यमानःप्रविश्याऽव्यक्तमव्ययम्।व्यक्तसृष्टिंविकुरुतेचात्मनाधिष्ठितोमहान् महतस्तु तथा वृत्तिः सङ्कल्पाध्यवसायिका । महतस्त्रिगुणस्तस्मादहङ्कारोरजोऽधिकः तेनैव चाऽवृतः सम्यगहङ्कारस्तमोऽधिकः । महतो भूततन्मात्रं सर्गकृद्वै बभूव च ॥ अहङ्काराच्छब्दमात्रंतस्मादाकाशमव्ययम् । सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशंशब्दकारणम् तन्मात्राद्भूतसर्गश्चद्विजास्त्वेवंप्रकीर्त्तितः । स्पर्शमात्रंतथाकाशात्तस्माद्वायुर्महामुने ! तस्माच्च रूपमात्रन्तु ततोऽग्निश्च रसस्ततः । रसादापःशुभास्ताभ्योगन्धमात्रंधराततः आवृणोद्धितथाकाशंस्पर्शमात्रंद्विजोत्तमाः! । आवृणोद्रूपमात्रन्तुवायुर्वातिक्रियात्मकः

आवृणोद्रसमात्रं वै देवः साक्षात्(द्)विभावसुः ।

आवृण्वाना गन्धमात्रमापः सर्वरसात्मिकाः ॥ २३ ॥

क्ष्मासापञ्चगुणातस्मादेकोनारससम्भवाः । त्रिगुणोभगवान्वह्निर्द्विगुणःस्पर्शसम्भवः अवकाशस्ततो देव ! एकमात्रस्तु निष्कलः । तन्मात्राद्भूतसर्गश्च विज्ञेयश्चपरस्परम्

वैकारिकः सात्त्विको वै युगपत्सम्प्रवर्त्तते । सर्गस्तथाप्यहङ्कारादेवमत्र प्रकीर्त्तितः ॥
पञ्चबुद्धीन्द्रियाण्यस्यपञ्चकर्मेन्द्रियाणि तु । शब्दादीनामवाप्त्यर्थंमनश्चैवोभयात्मकम्
महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति च । जलबुद्बुदवत्तस्मादवतीर्णः पितामहः ॥
स एवभगवान् रुद्रोविष्णुर्विश्वगतःप्रभुः । तस्मिन्नण्डेत्विमेलोकाअन्तर्विश्वमिदंजगत्
अण्डं दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः । आपो दशगुणेनैव तद्बाह्यस्तेजसावृतः ॥
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनावृतम् । वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसावृतः ॥ ३१॥
आकाशेनावृतो वायुरहङ्कारेण शब्दजः । महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम् ॥

सप्ताण्डावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासनः ।
कोटिकोटियुतान्यत्र चाऽण्डानि कथितानि तु ॥ ३३ ॥

तत्र तत्र चतुर्वक्त्राब्रह्माणोहरयोभवाः । सृष्टाःप्रधानेनतदालब्ध्वाशम्भोस्तुसन्निधिम्
लयश्चैवतथान्योऽन्यमाद्यन्तमितिकीर्त्तितम् । सर्गस्यप्रतिसर्गस्यस्थितेःकर्त्तामहेश्वरः
सर्गे च रजसा युक्तः सत्त्वस्थःप्रतिपालने । प्रतिसर्गेतमोद्रिक्तः सएवत्रिविधःक्रमात्
आदिकर्त्ता च भूतानांसंहर्त्तापरिपालकः । तस्मान्महेश्वरोदेवोब्रह्मणोऽधिपतिःशिवः
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वात्मको यतः । एतदण्डेतथालोका इमेकर्त्तापितामहः
प्राकृतः कथितस्त्वेष पुरुषाधिष्ठितो मया । सर्गश्चाबुद्धिपूर्वस्तु द्विजाःप्राथमिकःशुभः

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे प्राकृतप्राथमिकसर्गकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

सृष्टिप्रारम्भवर्णनम्

सूत उवाच

अथ प्राथमिकस्येह यः कालस्तदहः स्मृतम् । सर्गस्यतादृशीरात्रिःप्राकृतस्यसमासतः
दिवासृष्टिं विकुरुते रजन्यां प्रलयं विभुः । औपचारिकमस्मै तदहोरात्रं न विद्यते ॥

दिवा विकृतयः सर्वे विकारा विश्वदेवताः । प्रजानां पतयः सर्वे तिष्ठन्त्यन्ये महर्षयः

रात्रौ सर्वे प्रलीयन्ते निशान्ते सम्भवन्ति च ।

अहस्तु तस्य वैकल्पो रात्रिस्तादृग्विधा स्मृता ॥ ४ ॥

चतुर्युगसहस्रान्ते मनवस्तु चतुर्दश । चत्वारि तु सहस्राणि वत्सराणां कृतं द्विजाः

तावच्छती च वै सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु ।

त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात् ॥ ६ ॥

अंशकःषट्शतंतस्मात् कृतसन्ध्यांशकंविना । त्रिद्वयेकसाहस्रमितोविनासन्ध्यांशकेनतु

त्रेताद्वापरतिष्याणां कृतस्य कथयामि वः । निमेषपञ्चदशकाकाष्ठास्वस्थस्यसुव्रताः !

मर्त्यस्य चाक्ष्णोस्तस्याश्च ततस्त्रिंशतिका कला ।

कला त्रिंशतिको विप्रा ! मुहूर्त्त इति कल्पितः ॥ ६ ॥

मुहूर्त्त पञ्चदशिका रजनी तादृशन्त्वहः । पित्र्येरात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषांशुक्लःस्वप्नायशर्वरी । त्रिंशद्येमानुषामासाःपित्र्योमासस्तुसस्मृतः

शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्याचाप्यधिकानि वै ।

पित्र्यः सम्वत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥ १२ ॥

मानुषेणैव मानेन वर्षाणांयच्छतंभवेत् । पितॄणां त्रीणिवर्षाणिसङ्ख्यातानीह तानिवै

दश वै द्व्यधिका मासाः पितृसङ्ख्येह संस्मृता ।

लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥ १४ ॥

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति लैङ्गे च पठ्यते । दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् । एते रात्र्यहनीदिव्ये प्रसङ्ख्याते विशेषतः

त्रिंशद्यानितुवर्षाणिदिव्योमासस्तुसस्मृतः । मानुषन्तुशतंविप्रा!दिव्यमासास्त्रयस्तुते

दश चैव तथाहानि दिव्योह्येषविधिःस्मृतः । त्रीणिवर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणियानि तु

दिव्यः सम्वत्सरोह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः । त्रीणिवर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः

त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः । नव यानिसहस्राणिवर्षाणां मानुषाणि तु

अन्यानिनवतीश्चैवध्रु(ध्रौ)वःसम्वत्सरस्तुसः । षट्त्रिंशत्तुसहस्राणिवर्षाणांमानुषाणितु

वर्षाणांतच्छतं ज्ञेयं दिव्योह्येषविधिःस्मृतः । त्रीण्येवनियुतान्याहुर्वर्षाणांमानुषाणितु
षष्टिश्चैव सहस्राणि सङ्ख्यातानितुसङ्ख्यया । दिव्यंवर्षसहस्रन्तुप्राहुःसङ्ख्याविदोजनाः
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसङ्ख्याप्रकल्पनम् । पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ॥
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि सुव्रताः ! अथ सम्वत्सराद्दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ॥

कृतस्याऽऽद्यस्य विप्रेन्द्र ! दिव्यमानेन कीर्त्तितम् ।
सहस्राणां शतान्यासंश्चतुर्दश च सङ्ख्यया ॥ २६ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानिकृतंयुगम् । तथा दशसहस्राणांवर्षाणांशतसङ्ख्यया
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्यच । सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणांमानुषाणि तु
विंशतिश्च सहस्राणि कालस्तुद्वापरस्यच । तथाशतसहस्राणिवर्षाणांत्रीणिसङ्ख्यया
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्यतु । एवं चतुर्युगःकालऋतेसन्ध्यांशकात्स्मृतः
नियुतान्येव षट्त्रिंशन्निरंशानितु तानिवै । चत्वारिंशत्तथात्रीणिनियुतानीहसङ्ख्यया
विंशतिश्च सहस्राणि सन्ध्यांशश्चचतुर्युगः । एवं चतुर्युगाख्यानांसाधिकाह्येकसप्ततिः
कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरन्तरमुच्यते । मन्वन्तरस्य सङ्ख्याचवर्षाग्रेण प्रकीर्त्तिता ॥
त्रिंशत्कोट्यस्तुवर्षाणांमानुषेणद्विजोत्तमाः। सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतान्यधिकानितु

विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा लैङ्गेऽस्मिन्कीर्त्तिता द्विजाः ! ॥ ३५ ॥

चतुर्युगस्यचतथा वर्षसङ्ख्या प्रकीर्त्तिता । चतुर्युगसहस्रंवै कल्पश्चैको द्विजोत्तमाः !
निशान्ते सृजतेलोकान्पश्यन्तेनिशिजन्तवः । तत्र वैमानिकानान्तु अष्टाविंशतिकोटयः
मन्वन्तरेषुवैसङ्ख्यासान्तरेषुयथातथा। त्रीणिकोटिशतान्यासन्कोट्योद्विनवतिस्तथा
कल्पेऽतीते तु वै विप्राः! सहस्राणान्तु सप्ततिः । पुनस्तथाष्टसाहस्रंसर्वगैव समासतः
कल्पावसानिकांस्त्यक्त्वा प्रलये समुपस्थिते । महर्लोकात्प्रयान्त्येतेजनलोकंजनास्ततः
कोटीनां द्वे सहस्रेतु अष्टौ कोटिशतानितु । द्विषष्टिश्चतथाकोट्योनियुतानिच सप्ततिः
कल्पार्द्धसंख्या दिव्यावै कल्पमेवन्तु कल्पयेत् । कल्पानांवैसहस्रन्तु वर्षमेकमजस्य तु
वर्षाणामष्टसाहस्रं ब्राह्मं वै ब्रह्मणोयुगम् । सवनं युगसाहस्रं सर्वदेवोद्भवस्य तु ॥४३॥

सवनानां सहस्रन्तु त्रिविधं त्रिगुणं तथा ।
ब्रह्मणस्तु तथा प्रोक्तः कालः कालात्मनः प्रभोः ॥ ४४ ॥
भवोद्भवस्तपश्चैव भव्यो रम्भः क्रतुः पुनः । ऋतुर्वह्निर्हव्यवाहः सावित्रः शुद्ध एव च ॥
उशिकः कुशिकश्चैव गान्धारोमुनिसत्तमाः !। ऋषभश्चतथाषड्जोमज्ञालीयश्चमध्यमः
वैराजो वै निपादश्च मुख्यो वै मेघवाहनः । पञ्चमश्चित्रकश्चैव आकूतिर्ज्ञान एव च ॥
मनः सुदर्शो बृंहश्च तथा वै श्वेतलोहितः । रक्तश्च पीतवासाश्च असितः सर्वरूपकः
एवं कल्पास्तु संख्याता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कोटिकोटिसहस्राणि कल्पानां मुनिसत्तमाः ! ॥ ४६ ॥
गतानितावच्छेषाणिअहर्निश्यानि वै पुनः । परान्तेवैविकाराणिविकारंयान्तिविश्वतः
विकारस्यशिवस्याज्ञावशेनैव तु संहृतिः । संहृते तु विकारे च प्रधानेचात्मनिस्थिते
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ । गुणानाञ्चैववैषम्येविप्राः ! सृष्टिरितिस्मृता
साम्ये लयो गुणानान्तु तयोर्हेतुर्महेश्वरः । लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाःकृताः
असंख्याताश्च संक्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात् ।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसंख्याताः पितामहाः ॥ ५४ ॥
हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः । प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु
गुणात्मिका च तद्वृत्तिस्तस्य देवस्य वै त्रिधा ।
अप्राकृतस्य तस्यादिर्मध्यान्तन्नास्ति चात्मनः ॥ ५६ ॥
पितामहस्याऽथपरः परार्धद्वयसम्मितः । दिवासृष्टन्तुयत्सर्वं नश्यतेनिशि चाऽस्यतत्
भूर्भुवः स्वर्महस्तत्र नश्यते चोर्ध्वतो न च । रात्रौ चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजङ्गमे
सुष्वापाऽम्भसियस्तस्मान्नारायण इति स्मृतः । शर्वर्य्यन्तेप्रबुद्धोवैदृष्ट्वाशून्यंचराचरम्
स्रष्टुं तदा मतिश्चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । उदकैराप्लुतां क्ष्मान्तां समादायसनातनः
पूर्ववत् स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः । नदी नदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाऽकरोत्प्रभुः॥
कृत्वा धरां प्रयत्नेन निम्नोन्नतिविवर्जिताम् ।
धरायां सोऽचिनोत् सर्वान् गिरीन् दग्धान् पुराऽग्निना ॥ ६२ ॥

भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् । स्रष्टुश्चभगवान्वक्रेतदास्रष्टापुनर्मतिम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सृष्टिप्रारम्भो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

सृष्टौप्रथमोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

यदा स्रष्टुं मतिश्चक्रेमोहश्चासीन्महात्मनः । द्विजाश्चाबुद्धिपूर्वन्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
तमो मोहोमहामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः । अविद्यापञ्चधा ह्येषा प्रादुर्भूतास्वयम्भुवः
अविद्यया मुनेर्ग्रस्तःसर्गोमुख्यइति स्मृतः । असाधकइतिस्मृत्वासर्गोमुख्यःप्रजापतिः
अभ्यमन्यत सोऽन्यं वै नगा मुख्योद्भवाः स्मृताः ।
त्रिधा कण्ठो मुनेस्तस्य ध्यायतो वै ह्यवर्त्तत ॥ ४ ॥

प्रथमंतस्यवैजज्ञेतिर्य्यक्स्रोतोमहात्मनः । ऊर्ध्वस्रोतःपरस्तस्यसात्त्विकःसइतिस्मृतः
अर्वाक्स्रोतोऽनुग्रहश्चतथाभूतादिकःपुनः । ब्रह्मणोमहतस्त्वाद्योद्वितीयोभौतिकस्तथा
सर्गस्तृतीयश्चैन्द्रियस्तुरीयो मुख्य उच्यते । तिर्य्यग्योन्यः पञ्चमस्तुषष्ठोदैविकउच्यते
सप्तमो मानुषोविप्रा ! अष्टमोऽनुग्रहः स्मृतः । नवमश्चैवकौमारःप्राकृतावैकृतास्त्विमे
पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा । सनातनं मुनिश्रेष्ठा ! नैष्कर्म्येण गताःपरम् ॥
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । दक्षमत्रिं वशिष्ठञ्चसोऽसृजद्योगविद्यया
नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्मज्ञा ब्राह्मणोत्तमाः । ब्रह्मवादिन एवैते ब्रह्मणः सदृशाः स्मृताः
सङ्कल्पश्चैव धर्मश्च अधर्मो धर्मसन्निधिः । द्वादशैवप्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
ऋभुं सनत्कुमारञ्चससर्जाऽऽदौसनातनः । तावूर्ध्वरेतसौदिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ
कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौसर्वभाविनौ । वक्ष्येभार्य्याकुलंतेषांमुनीनामग्रजन्मनाम्
समासतो मुनिश्रेष्ठाः ! प्रजासम्भूतिमेव च । शतरूपान्तु वैराज्ञीं विराजमसृजत्प्रभुः

स्वायम्भुवास्तु वै राज्ञी शतरूपा त्वयोनिजा । लेभे पुत्रद्वयं पुण्या तथाकन्याद्वयञ्चसा

उत्तानपादो ह्यवरो धीमान् ज्येष्ठः प्रियव्रतः ।

ज्येष्ठा वरिष्ठा त्वाकूतिः प्रसूतिश्चाऽनुजा स्मृता ॥ १७ ॥

उपयेमे तदाकूतिं रुचिर्नामप्रजापतिः । प्रसूतिं भगवान् दक्षो लोकधात्रीञ्च योगिनीम्

दक्षिणासहितं यज्ञमाकूतिः सुषुवे तथा । दक्षिणाजनयामासदिव्यान्द्वादशपुत्रिकान्

प्रसूतिः सुषुवे दक्षाच्चतुर्विंशतिचद्विजाः ! । श्रद्धां लक्ष्मीं धृतिपुष्टितुष्टिमेधांक्रियांतथा

बुद्धिं लज्जां वपुः शान्तिं सिद्धिं कीर्त्तिं महातपाः ।

ख्यातिं शान्तिं च सम्भूतिं स्मृतिं प्रीतिं क्षमां तथा ॥ २१ ॥

सन्नतिञ्चानुसूयाञ्चऊर्जांस्वाहांसुराराणिम् । स्वधाञ्चैव महाभागांप्रददौचयथाक्रमम्

श्रद्धाद्याश्चैव कीर्त्यन्तास्त्रयोदश सुदारिकाः । धर्मं प्रजापतिं जग्मुः पतिं परमदुर्लभाः

उपयेमेभृगुर्धीमान्ख्यातिंतांभार्गवारणिम् ।सम्भूतिञ्चमरीचिस्तुस्मृतिंचैवाङ्गिरामुनिः

प्रीतिं पुलस्त्यः पुण्यात्मा क्षमां तां पुलहो मुनिः ।

क्रतुश्च सन्नतिं धीमान् अत्रिस्ताञ्चानुसूयकाम् ॥ २५ ॥

ऊर्जां वसिष्ठो भगवान् वरिष्ठो वारिजेक्षणाम् ।

विभावसुस्तथा स्वाहां स्वधां वै पितरस्तथा ॥ २६ ॥

पुत्रीकृता सती या सा मानसीशिवसम्भवा । दक्षेणजगतांधात्रीरुद्रमेवास्थितापतिम्

अर्द्धनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौकनकाण्डजः । विभजस्वेतिचाहादौयदा जातातदाऽभवत्

तस्याश्चैवांशजाः सर्वास्त्रियस्त्रिभुवनेतथा । एकादशविधारुद्रास्तस्यचांशोद्भवास्तथा

स्त्रीलिङ्गमखिलंसावैपुंलिङ्गंनीललोहितः । तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मादक्षमालोक्यसुव्रताम्

भजस्वधात्रींजगतांममापि च तवापि च । पुन्नाम्नोनरकात्त्रातिइतिपुत्रीत्विहोक्तितः

प्रशस्तातवकान्तेयंस्यात्पुत्रीविश्वमातृका । तस्मात्पुत्रीसतीनाम्नातवैषाचभविष्यति

एवमुक्तस्तदादक्षोनियोगाद्ब्रह्मणोमुनिः । लब्ध्वापुत्रींददौसाक्षात्सतींरुद्रायसादरम्

धर्मस्य पत्न्यः श्रद्धाद्याः कीर्तिता वै त्रयोदश । तासु धर्मप्रजांवक्ष्येयथाक्रममनुत्तमम्

कामो दर्पोऽथ नियमःसन्तोषोलोभएव च । श्रुतस्तुदण्डःसमयोबोधश्चैवमहाद्युतिः

अप्रमादश्च विनयो व्यवसायो द्विजोत्तमाः ! । क्षेमं सुखं यशश्चैव धर्म्मपुत्राश्चतासुवै
धर्म्मस्य वै क्रियायान्तु दण्डःसमय एवच । अप्रमादस्तथा बोधोबुद्धिर्धर्मस्यतौसुतौ
तस्मात् पञ्चदशैवेते तासु धर्मात्मजास्त्विह ।
भृगुपत्नी च सुषुवे ख्यातिर्विष्णोः प्रियां श्रियम् ॥ ३८ ॥
धातारञ्च विधातारं मेरोर्जामातरौ सुतौ । प्रभूतिर्नाम या पत्नी मरीचेःसुषुवेसुतौ॥
पूर्णमासन्तुमारीचंततःकन्याचतुष्टयम् । तुष्टिर्ज्येष्ठा च वै दृष्टिःकृषिश्चापचितिस्तथा
क्षमाचसुषुवेपुत्रान् पुत्रींचपुलहाच्छुभाम् । कर्दमञ्चवरीयांसंसहिष्णुं मुनिसत्तमाः !
तथा कनकपीतां स पीवरींपृथिवीसमाम् । प्रीत्यांपुलस्त्यश्चतथाजनयामासवैसुतान्
दत्तोर्णवे दबाहुञ्च पुत्रीञ्चान्यां दृषद्वतीम् । पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्नतिःसुषुवेशुभा
क्रतोस्तु भार्य्या सर्वे ते बालखिल्या इति श्रुताः ।
सिनीवालीङ्कुहूञ्चैव राकां चानुमतिं तथा ॥ ४४ ॥
स्मृतिश्चसुषुवेपत्नीमुनेश्चाङ्गिरसस्तथा । लब्धानुभावमग्निञ्चकीर्त्तिमन्तञ्चसुव्रताः!
अत्रेर्भार्य्यानुसूयावैसुषुवेषट्प्रजास्तुयाः । तास्वेकाकन्यकानाम्नाश्रुतिःसासूनुपञ्चकम्
सत्यनेत्रो मुनिर्भव्यो मूर्त्तिरापः शनैश्चरः । सोमश्च वै श्रुतिःषष्ठी पञ्चात्रेयास्तु सूनवः
ऊर्जावशिष्ठाद्वैलेभेसुतांश्चसुतवत्सला । ज्यायसीपुण्डरीकाक्षानवासिष्ठान्वरलोचना
रजः सुहोत्रो बाहुश्च सवनश्चानघस्तथा । सुतपाः शुक्रइत्येते मुनेर्वै सप्त सूनवः॥४६॥
यश्चाऽभिमानी भगवान् भवात्मा पैतामहो वह्निरसुः प्रजानाम् ।
स्वाहा च तस्मात् सुषुवे सुतानां त्रयं त्रयाणां जगतां हिताय ॥ ५० ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे उत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

अमृतपादीनांवर्णनसहितं शङ्करमाहात्म्यम्

सूत उवाच

पवमानः पावकश्च शुचिरग्निश्च ते स्मृताः। निर्मथ्यः पवमानस्तु वैद्यतःपावकःस्मृतः
शुचिः सौरस्तु विज्ञेयः स्वाहा पुत्रास्त्रयस्तु ते।
पुत्रैः पौत्रैस्त्विहैतेषां सङ्ख्या संक्षेपतः स्मृता॥ २॥
विसृज्य सप्तकञ्चादौ चत्वारिंशन्नवैव च। इत्येते वह्नयः प्रोक्ताःप्रणीयन्तेऽध्वरेषुच॥
सर्वे तपस्विनस्त्वेते सर्वे व्रतभृतःस्मृताः। प्रजानांपतयःसर्वे सर्वे रुद्रात्मकाः स्मृताः
अयज्वानश्च यज्वानःपितरःप्रीतिमानसाः। अग्निष्वात्ताश्च यज्वानःशेषाबर्हिषदःस्मृताः
मेनान्तु मानसीन्तेषांजनयामासवैस्वधा। अग्निष्वात्तात्मजामेनामानसीलोकविश्रुता
असूतमेना मैनाकं क्रौचन्तस्यानुजामुमाम्। गङ्गां हैमवतीं जज्ञे भवाङ्गाश्लेषपावनीम्
धरणीं जनयामास मानसीं यज्ञयाजिनीम्। स्वधा सा मेरुराजस्य पत्नीपद्मसमानना
पितरोऽमृतपाःप्रोक्तास्तेषाञ्चैवेहविस्तरः। ऋषीणाञ्चकुलंसर्वंशृणुध्वंतत्सुविस्तरम्
वदामि पृथगध्यायसंस्थितं वस्तदूर्ध्वतः। दाक्षायणी सता याता पार्श्वंरुद्रस्यपार्वती
पश्चाद्दक्षं विनिन्द्यषा पतिं लेभे भवं तथा। तां ध्यात्वाह्यसृजद्रुद्रानेकान्नीललोहितः
आत्मनस्तु समान् सर्वान् सर्वलोकनमस्कृतान्।
याचितो मुनिशार्दूला! ब्रह्मणा प्रहसन् क्षणात्॥ १२॥
तैस्तुसंच्छादितंसर्वंचतुर्दशविधंजगत्। तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान्
जरामरणनिर्मुक्तान् प्राहरुद्रान्पितामहः। नमोऽस्तु वो महादेवास्त्रिनेत्रानीललोहिताः
सर्वज्ञाः सर्वगा दीर्घाह्रस्ववामनकाःशुभाः। हिरण्यकेशादृष्टिघ्नानित्याबुद्धाश्चनिर्मलाः
निर्द्वन्द्वा वीतरागाश्च विश्वात्मानो भवात्मजाः।
एवं स्तुत्वा तदा रुद्रान् रुद्रश्चाऽऽह भवं शिवम्॥

प्रदक्षिणीकृत्य तदा भगवान् कनकाण्डजः ॥ १६ ॥

नमोऽस्तुतेमहादेव ! प्रजानार्हसिशङ्कर ! । मृत्युहीनाविभोःस्रष्टुंमृत्युयुक्ताःसृजप्रभो
ततस्तमाह भगवान्नहिमेताद्दृशीस्थितिः । सत्त्वंसृजयथाकाममृत्युयुक्ताःप्रजाःप्रभो !
लब्ध्वा ससर्ज सकलं शङ्कराच्चतुराननः । जरामरणसंयुक्तं जगदेतच्चराचरम् ॥ १६ ॥
शङ्करोऽपि तदारुद्रैर्निवृतात्मा ह्यधिष्ठितः । स्थाणुत्वंतस्य वै विप्राःशङ्करस्यमहात्मनः
निष्कलस्यात्मनःशम्भोःस्वेच्छाधृतशरीरिणः । शं रुद्रः सर्वभूतानांकरोतिघृणयायतः
शङ्करश्चाऽप्रयत्नेन तदात्मा योगविद्यया । वैराग्यस्थं विरक्तस्य विमुक्तिर्यच्छमुच्यते
अणोस्तु विषयत्यागः संसारभयतः क्रमात् । वैराग्याज्जायते पुंसोविरागोदर्शनान्तरे

विमुख्यो विगुणत्यागो विज्ञानस्याऽविचारतः ।
तस्य चास्य च सन्धानं प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ २४ ॥

धर्मो ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं शङ्करादिह । स एव शङ्करःसाक्षात् पिनाकीनीललोहितः
ये शङ्कराश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः । न गच्छन्त्येवनरकंपापिष्ठाअपिदारुणम्

आश्रिताः शङ्करं तस्मात् प्राप्नुवन्ति च शाश्वतम् ।

ऋषय ऊचुः

मायान्ताश्चैव घोराद्या ह्यष्टाविंशतिरेव च ॥ २७ ॥

कोटयो नरकाणान्तु पच्यन्ते तासुपापिनः । अनाश्रिताः शिवंरुद्रंशङ्करंनीललोहितम्
आश्रयं सर्वभूतानामव्ययं जगतां पतिम् । पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥२६॥
तमसाकालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् । सत्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वेमहेश्वरम्
केन गच्छन्ति नरकं नराः केन महामते !। कर्मणाकर्मणा वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शङ्करमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

समनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यप्रतिपादनं शङ्कररहस्यकथनम्

सूत उवाच

रहस्यं वः प्रवक्ष्यामिभवस्याऽमिततेजसः । प्रभावंशङ्करस्याद्यं सङ्क्षेपात्सर्वदर्शिनः
योगिनःसर्वतत्त्वज्ञाःपरंवैराग्यमास्थिताः । प्राणायामादिभिश्चाष्टसाधनैःसहचारिणः
करुणादिगुणोपेताःकृत्वाऽपिविविधानि ते । कर्माणिनरकंस्वर्गंगच्छन्त्येवस्वकर्मणा
प्रसादाज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते । योगेन जायते मुक्तिः प्रसादादखिलंततः

ऋषय ऊचुः

प्रसादाद् यदि विज्ञानं स्वरूपं वक्तुमर्हसि । दिव्यंमाहेश्वरञ्चैव योगंयोगविदाम्वर !
कथं करोतिभगवान्चिन्तयारहितःशिवः । प्रसादंयोगमार्गेणकस्मिन्कालेनृणांविभुः

रोमहर्षण उवाच

देवानाञ्च ऋषीणाञ्च पितॄणां सन्निधौ पुरा । शैलादिना तु कथितं शृण्वन्तुब्रह्मसूनवे
व्यासावताराणि तथा द्वापरान्ते च सुव्रताः ! ।
योगाचार्य्यावताराणि तथा तिष्ये तु शूलिनः ॥ ८ ॥

तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः शमभाजनाः । प्रशिष्याबहवस्तेषांप्रसीदत्येवमीश्वरः
एवं क्रमागतं ज्ञानं मुखादेव नृणां विभोः । वैश्यान्तं ब्राह्मणाद्यंहि घृणयाचाऽनुरूपतः

ऋषय ऊचुः

द्वापरे द्वापरेव्यासाःके वै कुत्रान्तरेषुवै । कल्पेषु कस्मिन्कल्पे नो वक्तुमर्हसिचात्रतान्

सूत उवाच

शृण्वन्तु कल्पेवाराहेद्विजा ! वैवस्वतान्तरे । व्यासांश्चसाम्प्रतंरुद्रांस्तथासर्वान्तरेषुवै
वेदानाञ्च पुराणानां तथा ज्ञानप्रदर्शकान् । यथाक्रमं प्रवक्ष्यामिसर्वावर्त्तेषुसाम्प्रतम् ॥
क्रतुः सत्यो भार्गवश्च अङ्गिराः सविता द्विजाः ! ।

मृत्यु शतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥ १४ ॥

सारस्वतस्त्रिधात्मा च त्रिवृतो मुनिपुङ्गवः । शततेजाः स्वयं धर्मो नारायणइतिश्रुतः
तरक्षुश्चारुणिर्धीमांस्तथा देवः कृतञ्जयः । ऋतञ्जयो भरद्वाजो गौतमः कविसत्तमः ॥
वाचश्रवा मुनिःसाक्षात्तथाशुष्मायणिःशुचिः । तृणबिन्दुर्मुनीरूक्षःशक्तिःशाक्तेयउत्तरः

जातूकर्ण्यो हरिः साक्षात् कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।

व्यासास्त्वेते च शृण्वन्तु कलौ योगेश्वरान् क्रमात् ॥ १८ ॥

असंख्याताहिकल्पेषुविभोःसर्वान्तरेषुच । कलौरुद्रावताराणांव्यासानांकिलगौरवात्
वैवस्वतान्तरे कल्पे वाराहे ये च तान् पुनः । अवतारान् प्रवक्ष्यामितथा सर्वान्तरेषुवै

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि वाराहे वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् । तथैवचोर्ध्वकल्पेषुसिद्धान वैवस्वतान्तरे

रोमहर्षण उवाच

मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यस्ततः स्वारोचिषो द्विजाः ! ।

उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ २२ ॥

वैवस्वतश्च सावर्णिर्धर्मः सावर्णिकः पुनः । पिशङ्गश्चापिशङ्गाभःशवलो वर्णकस्तथा
औकारान्ताअकाराद्यामनवःपरिकीर्तिताःश्वेतःपाण्डुस्तथारक्तस्ताम्रःपीतश्चकापिलः
कृष्णःश्यामस्तथाधूम्रःसुधूम्रश्चद्विजोत्तमाः ! । अपिशङ्गःपिशङ्गश्चत्रिवर्णःशवलस्तथा
कालन्धुरस्तु कथिता वर्णतो मनवः शुभाः । नामतो वर्णतश्चैव वर्णतः पुनरेव च ॥
स्वरात्मानः समाख्याताश्चान्तरेशाःसमासतः । वैवस्वतऋकारस्तुमनुःकृष्ण.सुरेश्वरः
सप्तमस्तस्य वक्ष्यामि युगावर्त्तेषु योगिनः । समतीतेषु कल्पेषु तथा चानागतेषु वै॥
वाराहःसाम्प्रतंज्ञेय सप्तमान्तरतःक्रमात् । योगावतारांश्चविभोःशिष्याणांसन्ततिंतथा
सम्प्रेक्ष्य सर्वकालेषु तथावर्त्तेषु योगिनाम् । आद्येश्वेतःकलौरुद्रःसुतारोमदनस्तथा
सुहोत्रः कङ्कणश्चैव लोकाक्षिर्मुनिसत्तमाः ! । जैगीषव्योमहातेजाभगवान् दधिवाहनः

ऋषभश्चमुनिर्धीमानुग्रश्चाऽत्रिः सुबालकः ।

गौतमश्चाऽथ भगवान् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ३२ ॥

वेदशीर्षश्चगोकर्णोगुहावासीशिखण्डभृत् । जटामाल्यट्टहासश्चदारुकोलाङ्गलीतथा॥
महाकायमुनिःशूलीदण्डीमुण्डीश्वरःस्वयम् । सहिष्णुःसोमशर्माचलकुलीशोजगद्गुरुः
वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक्प्रोक्ताहिपरमात्मनः । योगाचार्य्यावतारा ये सर्वावर्त्तेषुसुव्रताः
व्यासाश्चैवंमुनिश्रेष्ठा! द्वापरेद्वापरेत्विमे । योगेश्वराणांचत्वारःशिष्याःप्रत्येकमव्ययाः
श्वेतःश्वेतशिखण्डीचश्वेताश्वःश्वेतलोहितः । दुन्दुभिःशतरूपश्चऋचीकःकेतुमांस्तथा
विशोकश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः । सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः॥
सनकश्च सनन्दश्च प्रभुर्यश्च सनातनः । ऋभुः सनत्कुमारश्च सुधामा विरजास्तथा
शङ्खपाद्वैरजश्चैव मेघः सारस्वतस्तथा । सुवाहनोमुनिश्रेष्ठो मेघवाहो महाद्युतिः ॥४०
कपिलश्चासुरिश्चैवतथा पञ्चशिखोमुनिः । वाल्कलश्च महायोगीधर्मात्मानोमहौजसः
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा । बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः ॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः । सर्वज्ञःसमबुद्धिश्चसाध्यःसर्वस्तथैव च
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा । अत्रिर्देवसदश्चैवश्रवणोऽथश्रविष्ठकः
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥ ४४ ॥
कश्यपोऽप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ वृहस्पतिः । उतथ्योवामदेवश्चमहायोगीमहाबलः
वाचश्रवाः सुधीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः ।
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोगाक्षिः कुथुमिस्तथा ॥ ४६ ॥
सुमन्तुर्बर्बरी विद्वान्कबन्धःकुशिकन्धरः । प्लक्षोदाल्भ्यायणिश्चैवकेतुमान्गोपनस्तथा
भल्लावी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोनिधिः । उशिको वृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः । छगलःकुण्डकर्णश्चकुम्भश्चैव प्रवाहकः
उलूको विद्युतश्चैव मण्डूकोह्याश्वलायनः । अक्षपादः कुमारश्च उलूकोवत्स एव च
कुशिकश्चैव गर्भश्च मित्रः कौरुष्य एव च ।
शिष्यास्त्वेते महात्मानः सर्वावर्त्तेषु योगिनाम् ॥ ५१ ॥
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः । एतेपाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः
शिष्याःप्रशिष्याश्चैतेषांशतशोऽथसहस्रशः । प्राप्यपाशुपतंयोगंरुद्रलोकायसंस्थिताः

देवादयः पिशाचान्ताःपशवः परिकीर्तिताः । तेषांपतित्वात्सर्वेशोभवःपशुपतिःस्मृतः
तेनप्रणीतो रुद्रेण पशूनां पतिना द्विजाः ! । योगः पाशुपतो ज्ञेयः परावरविभूतये ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

शिवतत्त्वसाक्षात्काराययोगस्थानवर्णनम्

सूत उवाच

संक्षेपतः प्रवक्ष्यामियोगस्थानानिसाम्प्रतम् । कल्पितानिशिवेनैवहितायजगतांद्विजाः
गलादधोवितस्त्यायन्नाभेरुपरि चोत्तमम् । योगस्थानमधो नाभेरावर्तं मध्यमं भ्रुवोः
सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते । एकाग्रता भवेच्चैव सर्वदा तत्प्रसादतः ॥
प्रसादस्य स्वरूपंयत्स्वसम्वेद्यं द्विजोत्तमाः !। वक्तुंनशक्यंब्रह्माद्यैःक्रमशोजायतेनृणाम्
योगशब्देन निर्माणं माहेशं पदमुच्यते । तस्यहेतुर्ऋषेर्ज्ञानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः ॥५॥
ज्ञानेन निर्दहेत्पापं निरुद्ध्यविषयान्सदा । निरुद्धेन्द्रियवृत्तेस्तुयोगसिद्धिर्भविष्यति॥
योगोनिरोधोवृत्तेस्तुचित्तस्यद्विजसत्तमाः! ।साधनान्यष्टधाचास्यकथितानीहसिद्धये
यमस्तु प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नियमस्तथा । तृतीयमासनं प्रोक्तंप्राणायामस्ततःपरम्
प्रत्याहारः पञ्चमो वै धारणा च ततः परा ।
ध्यानं सप्तममित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः ॥ ६ ॥
तपस्युपरमश्चैव यम इत्यभिधीयते । अहिंसा प्रथमो हेतुर्यमस्य यमिनां वराः ! ॥
सत्यमस्तेयमपरं ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहौ । नियमस्याऽपिवै मूलं यम एव न संशयः॥११॥
आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्तनम् । अहिंसैषा समाख्यातायाचात्मज्ञानसिद्धिदा
दृष्टं श्रुतं चाऽनुमितं स्वानुभूतं यथार्थतः । कथनं सत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम्
नाश्लीलं कीर्त्तयेदेवं ब्राह्मणानामिति श्रुतिः । परदोषान्परिज्ञाय न वदेदिति चापरम्

अनादानं परस्वानामापद्यपि विचारतः । मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेयं समासतः ॥
मैथुनस्याऽप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा । ब्रह्मचर्य्यमिति प्रोक्तंयतीनां ब्रह्मचारिणाम्
इह वैखानसानां च विदाराणां विशेषतः । सदाराणां गृहस्थानां तथैवच वदामि वः
स्वदारेविधिवत्कृत्वानिवृत्तिश्चान्यतःसदा । मनसाकर्मणावाचाब्रह्मचर्य्यमितिस्मृतम्
मेध्यास्वनारीसम्भोगं कृत्वा स्नानंसमाचरेत् । एवंगृहस्थोयुक्तात्माब्रह्मचारीनसंशयः

अहिंसाऽप्येवमेवैषा द्विजगुर्वग्निपूजने ।

विधिना यादृशी हिंसा सा त्वहिंसा इति स्मृता ॥ २०॥

स्त्रियः सदापरित्याज्याःसङ्गं नैव च कारयेत् । कुणपेषुयथाचित्तंतथाकुर्य्याद्विचक्षणः
विण्मूत्रोत्सर्गकालेषुबहिर्भूमौयथामतिः । तथाकार्य्यारतोवापिस्वदारेचान्यतःकुतः॥
अङ्गारसदृशी नारी घृतकुम्भसमः पुमान् । तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत् ॥
भोगेन तृप्तिर्नैवाऽस्तिविषयाणांविचारतः । तस्माद्विरागःकर्तव्योमनसा कर्मणागिरा
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते
तस्मात्त्यागःसदाकार्य्यस्त्वमृतत्वाययोगिना । अविरक्तोयतोमर्त्योनानायोनिषुवर्तते
त्यागेनैवाऽमृतत्वंहि श्रुतिस्मृतिविदाम्वराः॥ कर्मणाप्रजयानास्तिद्रव्येणद्विजसत्तमाः
तस्माद्विरागः कर्तव्योमनोवाक्कायकर्मणा । ऋतौऋतेनिवृत्तिस्तुब्रह्मचर्य्यमितिस्मृतम्

यमाः संक्षेपतः प्रोक्ता नियमांश्च वदामि वः ।

शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ॥ २६ ॥

व्रतोपवासमौनं च स्नानञ्च नियमा दश । नियमः स्यादनीहाचशौचं तुष्टिस्तपस्तथा
जपःशिवप्रणीधानं पद्मकाद्यं तथासनम् । बाह्यमाभ्यन्तरम्प्रोक्तं शौचमाभ्यन्तरं वरम्
बाह्यशौचेन युक्तः संस्तथा चाभ्यन्तरं चरेत् । आग्नेयंवारुणंब्राह्मंकर्तव्यं शिवपूजकैः
स्नानं विधानतः सम्यक्पश्चादाभ्यन्तरंचरेत् । आदेहान्तंमृदालिप्य तीर्थतोयेषुसर्वदा

अवगाह्याऽपि मलिनो ह्यन्तः शौचविवर्जितः ।

शैवला झषका मत्स्याः सत्वा मत्स्योपजीविनः ॥ ३४ ॥

सदावगाह्यसलिलेविशुद्धाःकिंद्विजोत्तमाः॥ तस्मादाभ्यन्तरंशौचंसदाकार्य्यंविधानतः

आत्मज्ञानाम्भसिस्नात्वासकृदालिप्यभावतः । सुवैराग्यमृदाशुद्धःशौचमेवंप्रकीर्तितम्
शुद्धस्य सिद्धयोदृष्टा नैवाऽशुद्धस्यसिद्धयः । न्यायेनागतयावृत्त्यासन्तुष्टोयस्तुसुव्रतः
सन्तोषस्तस्यसततमतीतार्थस्यचास्मृतिः । चान्द्रायणादिनिपुणस्तपांसिसुशुभानिच

स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवस्य त्रिधा स्मृतः ।
वाचिकश्चाऽधमो मुख्य उपांशुश्चोत्तमोत्तमः ॥ ३१ ॥

मानसो विस्तरेणैव कल्पे पञ्चाक्षरे स्मृतः । तथा शिवप्रणीधानं मनोवाक्कायकर्मणा
शिवज्ञानं गुरोर्भक्तिरचला सुप्रतिष्ठिता । निग्रहो ह्यपहृत्याऽऽशु प्रसक्तानीन्द्रियाणिच
विषयेषु समासेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः । चित्तस्यधारणाप्रोक्तास्थानबन्धःसमासतः

तस्याः स्वास्थ्येन ध्यानञ्च समाधिश्च विचारतः ।
तत्रैकचित्तता ध्यानं प्रत्ययान्तरवर्जितम् ॥ ४३ ॥

चिद्भासमर्थमात्रस्य देहशून्यमिवस्थितम् । समाधिःसर्वहेतुश्चप्राणायामइतिस्मृतः ॥
प्राणःस्वदेहजोवायुर्यमस्तस्यनिरोधनम् । त्रिधाद्विजैर्यमःप्रोक्तोमन्दोमध्योत्तमस्तथा
प्राणापाननिरोधस्तुप्राणायामःप्रकीर्तितः । प्राणायामस्यमानन्तुमात्राद्वादशकंस्मृतम्
नीचोद्वादशमात्रस्तु उद्घाती द्वादशः स्मृतः । मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रकः
मुख्यस्तु यस्त्रिरुद्घातःषट्त्रिंशन्मात्रउच्यते । प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकश्चयथाक्रमम् ॥
आनन्दोद्भवयोगार्थं निद्राघूर्णिस्तथैवच । रोमाञ्चध्वनिसम्विद्धस्वाङ्गमोटनकम्पनम्
भ्रमणंस्वदेहेजंन्यासासम्विन्मूर्च्छाभवेद्यदा । तदोत्तमोत्तमःप्रोक्तःप्राणायामःसुशोभनः
सगर्भो गर्भ इत्युक्तः स जपो विजपःक्रमात् । इभो वा शरभोवापिदुराधर्षोऽथकेशरी
गृहीतोदम्यमानस्तुयथास्वस्थस्तुजायते। तथासमीरणो(?)स्वस्थोदुराधर्षश्चयोगिनाम्

न्यायतः सेव्यमानस्तु स एवं स्वस्थतां व्रजेत् ।
यथैव मृगराट् नागः शरभो वापि दुर्मदः ॥ ५३ ॥

कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परमादरात् । तथा परिचयास्वास्थ्यंसमत्वञ्चाधिगच्छति
योगादभ्यस्यते यस्तु व्यसनं नैव जायते । एवमभ्यस्यमानस्तु मुनेः प्राणोविनिर्दहेत्
मनोवाक्कायजान्दोषान्कर्त्तुर्देहञ्च रक्षति । संयुक्तस्य तथा सम्यक्प्राणायामेन धीमतः

दोषास्तस्माच्च नश्यन्ति निश्वासस्तेन जीर्यते।
प्राणायामेन सिद्ध्यन्ति दिव्याः शान्त्यादयः क्रमात् ॥ ५७ ॥
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च तथाक्रमात्।
आदौ चतुष्टयस्येह प्रोक्ता शान्तिरिह द्विजाः ! ॥ ५८ ॥
सहजागन्तुकानाञ्च पापानां शान्तिरुच्यते।
प्रशान्तिः संयमः सम्यग्वचसामिति संस्मृता ॥ ५९ ॥

प्रकाशो दीप्तिरित्युक्ता सर्वतः सर्वदा द्विजाः ! । सर्वेन्द्रियप्रसादस्तुबुद्धेर्वैमरुतामपि प्रसाद इतिसम्प्रोक्तः स्वान्ते त्विह चतुष्टये। प्राणोऽपानःसमानश्चउदानोव्यानएवच नागः कूर्मस्तु कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः। एतेषां यः प्रसादस्तु मरुतामिति संस्मृतः प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इतिस्मृतः। अपानयत्यपानस्तुआहारादीन्क्रमेणच व्यानोव्यानामयत्यङ्गं व्याधादीनांप्रकोपकः। उद्वेजयतिमर्माणिउदानोऽयंप्रकीर्तितः समं नयति गात्राणि समानः पञ्चवायवः। उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मउन्मीलने तुसः कृकरः क्षुतकायैव देवदत्तो विजृम्भणे। धनञ्जयो महाघोषः सर्वगः स मृतेऽपि हि॥ इति यो दश वायूनां प्राणायामेनसिद्ध्यति। प्रसादोऽस्यतुरीयातुसंज्ञाविप्राश्चतुष्टये

विस्वरस्तु महान्प्रज्ञा मनो ब्रह्मा चितिः स्मृतिः।
ख्यातिः संवित्ततः पश्चादीश्वरो मतिरेव च ॥ ६८ ॥

बुद्धेरेताःद्विजाःसंज्ञाःमहतःपरिकीर्तिताः। अस्याबुद्धेःप्रसादस्तुप्राणायामेनसिद्ध्यति विस्वरोविस्वरीभावोद्वन्द्वानांमुनिसत्तमाः ! । अग्रजःसर्वतत्वानांमहान्यःपरिमाणतः यत्प्रमाणगुहा प्रज्ञा मनस्तु मनुते यतः। बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वराः!॥ सर्वकर्माणि भोगार्थंयच्चिनोतिचितिःस्मृता। स्मरतेयत्स्मृतिःसर्वंसम्विद्वैविन्दतेयतः ख्यायते यत्त्विति ख्यातिर्ज्ञानादिभिरनेकश। सर्वतत्त्वाधिपःसर्वंविजानाति यदीश्वरः मनुते मन्यते यस्मान्मतिर्मतिमतां वराः। अर्थं बोधयते यच्च बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते !॥ अस्याबुद्धेःप्रसादस्तुप्राणयामेनसिद्ध्यति। दोषान्विनिर्दहेत्सर्वान्प्राणायामादसौयमी

पातकं धारणाभिस्तु प्रत्याहारेण निर्दहेत्।

विषयान्विषवद्ध्यात्वा ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ७६ ॥

समाधिनायतिश्रेष्ठाः!प्रज्ञावृद्धिविवर्धयेत् । स्थानंलब्ध्वैवकुर्वीतयोगाष्टाङ्गानिवैक्रमात्
लब्ध्वासनानि विभिद्योगसिद्ध्यर्थमात्मवित् । अदेशकाले योगस्य दर्शनंहिनविद्यते
अग्न्यभ्यासे जले वाऽपि शुष्कपर्णचयेतथा । जन्तुव्याप्तेश्मशानेचजीर्णगोष्ठेचतुष्पथे
सशब्दे सभये वाऽपि चैत्यवल्मीकसञ्चये । अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते ॥
नाचरेद्देहबाधायां दौर्मनस्यादिसम्भवे । सुगुप्ते तु शुभे रम्ये गुहायां पर्वतस्य तु ॥
भवक्षेत्रे सुगुप्ते वा भवारामे वनेऽपि वा । गृहे तु सुशुभे देशे विजने जन्तुवर्जिते ॥
अत्यन्तनिर्मले सम्यक्सुप्रलिप्ते विचित्रिते । दर्पणोदरसङ्काशे कृष्णागरुसुधूपिते ॥८३
नानापुष्पसमाकीर्णे वितानोपरिशोभिते । फलपल्लवमूलाढ्ये कुशपुष्पसमन्विते॥८४॥

समासनस्थो योगाङ्गान्यभ्यसेद्(हृ)धृषितः स्वयम् ।
प्रणिपत्य गुरुं पश्चाद्भवं देवीं विनायकम ॥८५ ॥
योगीश्वरान्सशिष्यांश्च योगं युञ्जीत योगवित् ।
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्धासनन्तु वा ॥ ८६ ॥

समजानुस्तथा धीमानेकजानुरथाऽपि वा । समं दृढासनो भूत्वा संहृत्यचरणावुभौ
संवृतास्योपवद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः । पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननंपुन

किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वन्दिशश्चाऽनवलोकयन् ॥ ८६ ॥

तमः प्रच्छाद्यरजसारजःसत्त्वेनछादयेत् । ततःसत्त्वस्थितोभूत्वाशिवध्यानंसमभ्यसेत्
ओङ्कारवाच्यं परमं शुद्धंदीपशिखाकृतिम् । ध्यायेद्वैपुण्डरीकस्यकर्णिकायांसमाहितः
नाभेरधस्ताद्वाविद्वान्ध्यात्वाकमलमुत्तमम् । त्र्यङ्गुलेचाष्टकोणम्वपञ्चकोणमथापिवा॥
त्रिकोणञ्च तथाग्नेयंसौम्यंसौरंस्वशक्तिभिः । सौरंसौम्यंतथाग्नेयमथवानुक्रमेणतु॥
आग्नेयञ्चततः सौरं सौम्यमेवं विधानतः । अग्नेरधः प्रकल्प्यैवं धर्मादीनांचतुष्टयम्
गुणत्रयं क्रमेणैव मण्डलोपरि भावयेत् । सत्त्वस्थं चिन्तयेद्रुद्रंस्वशक्त्यापरिमण्डितम्
नाभौवाऽथगलेवापिभ्रूमध्येवायथाविधि। ललाटफलिकायांवामूर्ध्निध्यानंसमाचरेत्

द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे क्रमेण तु । दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे स्मरेच्छिवम्
कनकाभेतथाङ्गारसन्निभे सुसिते ऽपि वा । द्वादशादित्यसङ्काशेचन्द्रबिम्बसमेऽपिवा॥
विद्युत्कोटिनिभे स्थाने चिन्तयेत्परमेश्वरम् । अग्निवर्णेऽथवाविद्युद्वलयाभेसमाहितः॥

वज्रकोटिप्रभे स्थाने पद्मरागनिभेऽपि वा ।
नीललोहितबिम्बे वा योगी ध्यानं समभ्यसेत् ॥ १०० ॥

महेश्वरं हृदि ध्यायेन्नाभिपद्मे सदाशिवम् । चन्द्रचूडं ललाटे तु भ्रूमध्ये शङ्करं स्वयम्
दिव्येच शाश्वतस्थानेशिवध्यानंसमभ्यसेत् । निर्मलंनिष्कलंब्रह्मसुशान्तंज्ञानरूपिणम्
अलक्षणमनिर्देश्यमणोरल्पतरं शुभम् । निरालम्बमतर्क्यञ्च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥
कैवल्यं चैव निर्वाणं निश्रेयसमनुत्तमम् । अमृतं चाऽक्षरं ब्रह्म अपुनर्भवमद्भुतम् ॥१०४
महानन्दं परानन्दं योगानन्दमनामयम् । हेयोपादेयरहितंसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं शिवम् ॥
स्वयं वेद्यमवेद्यं तच्छिवं ज्ञानमयं परम् । अतीन्द्रियमनाभासं परं तत्त्वं परात्परम् ॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं ध्यानगम्यं विचारतः । अद्वयं तमसश्चैव परस्तात्संस्थितं परम्
मनस्येवं महादेवं हृत्पद्मे वाऽपिचिन्तयेत् । नाभौ सदाशिवञ्चापिसर्वदेवात्मकंविभुम्
देहमध्ये शिवं देवं शुद्धज्ञानमयं विभुम् । कन्यसेनैवमार्गेण चोद्घातेनाऽपि शङ्करम् ॥
क्रमशः कन्यसेनैव मध्यमेनाऽपि सुव्रताः ! । उत्तमेनापिवैविद्वान्कुम्भकेन समभ्यसेत्
द्वात्रिंशद्रेचयेद्धीमान्हृदि नाभौ समाहितः । रेचकपूरकन्त्यक्त्वाकुम्भकञ्चद्विजोत्तमाः!
साक्षात्समरसेनैव देहमध्ये स्मरेच्छिवम् । एकीभावं समेत्यैवं तत्र यद्रससम्भवम्
आनन्दंब्रह्मणोविद्वान्साक्षात्समरसेस्थितः । धारणाद्वादशायामाध्यानंद्वादशधारणम्
ध्यानद्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते । अथवा ज्ञानिना विप्राः! सम्पर्कादेव जायते

प्रयत्नाद्वा तयोस्तुल्यं चिराद्वा ह्यचिराद्द्विजाः ! ।
योगान्तरायास्तस्याऽथ जायन्ते युञ्जतः पुनः ॥ ११५ ॥
नश्यन्तेऽभ्यासतस्तेऽपि प्रणिधानेन वै गुरोः ॥ ११६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवसाक्षात्करणाययोगसाधनवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

नवमोऽध्यायः

सयोगान्तरायं नानोपसर्गाणां विवरणम्

सूत उवाच

आलस्यं प्रथमंपश्चाद्व्याधिपीडाप्रजायते । प्रमादःसंशयस्थानेचित्तस्येहानवस्थितिः
अश्रद्धादर्शनं भ्रान्तिर्दुःखञ्च त्रिविधं ततः । दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योग्यता ॥
दशधाभिप्रजायन्ते मुनेर्योगान्तरायकाः । आलस्यञ्चाप्रवृत्तिश्च गुरुत्वात्कायचित्तयोः
व्याधयो धातुवैषम्यात्कर्मजादोषजास्तथा । प्रमादस्तुसमाधेस्तुसाधनानामभावनम्
इदं वेत्युभयस्योक्तं विज्ञानं स्थानसंशयः । अनवस्थितचित्तत्वमप्रतिष्ठा हि योगिनः
लब्धायामपि भूमौ च चित्तस्य भवबन्धनात् । अश्रद्धाभावरहितावृत्तिर्वै साधनेषु च
साध्ये चित्तस्य हि गुरौ ज्ञानाचारशिवादिषु । विपर्ययज्ञानमिति भ्रान्तिदर्शनमुच्यते
अनात्मन्यात्मविज्ञानमज्ञानात्तस्य सन्निधौ ।
दुःखमाध्यात्मिकं प्रोक्तं तथा चैवाऽऽधिभौतिकम् ॥ ८ ॥
आधिदैविकमित्युक्तं त्रिविधं सहजम्पुनः । इच्छाविघातात्संक्षोभश्चेतसस्तदुदाहृतम्
दौर्मनस्यं निरोद्धव्यं वैराग्येण परेण तु । तमसा रजसा चैव संस्पृष्टं दुर्मनः स्मृतम्
तदा मनसि सञ्जातंदौर्मनस्यमितिस्मृतम् । हठात्स्वीकरणंकृत्वायोग्यायोग्यविवेकतः
विषयेषु विचित्रेषु जन्तोर्विषयलोलता । अन्तरायाइतिख्यातायोगस्यैतेहि योगिनाम्
अत्यन्तोत्साहयुक्तस्य नश्यन्तिनचसंशयः । प्रनष्टेष्वन्तरायेषुद्विजाः!पश्चाद्धियोगिनः
उपसर्गाः प्रवर्तन्ते सर्वे ते सिद्धिसूचकाः । प्रतिभा प्रथमासिद्धिर्द्वितीयाश्रवणास्मृता
वार्त्ता तृतीया विप्रेन्द्रास्तुरीयाचेह दर्शना । आस्वादापञ्चमीप्रोक्तावेदनाषष्ठिकास्मृता
स्वल्पषट्सिद्धिसन्त्यागात्सिद्धिदाः सिद्धयो मताः ।
प्रतिभा प्रतिभावृत्तिः प्रतिभाव इति स्थितिः ॥ १६ ॥
बुद्धिर्विवेचना वेद्यं बुध्यते बुद्धिरुच्यते । सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते ॥

सर्वत्र सर्वदा ज्ञानं प्रतिभानुक्रमेण तु । श्रवणात्सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिनः॥१८॥
ह्रस्वदीर्घप्लुतादीनां गुह्यानां श्रवणादपि । स्पर्शस्याऽधिगमोयस्तु वेदना तूपपादिता
दर्शना दिव्यरूपाणां दर्शनञ्चाऽप्रयत्नतः । संविद्दिव्यरसे तस्मिन्नास्वादो ह्यप्रयत्नतः ॥
वार्त्ताचदिव्यगन्धानांतन्मात्राबुद्धिसंविदा । विन्दन्तेयोगिनस्तस्मादाब्रह्मभवनंद्विजाः
जगत्यस्मिन्हिदेहस्थं चतुःषष्टिगुणं समम् । औपसर्गिकमेतेषु गुणेषुगुणितं द्विजाः!
सन्त्याज्यं सर्वथासर्वमौपसर्गिकमात्मनः । पैशाचे पार्थिवञ्चाप्यंराक्षसानांपुरेद्विजाः
याक्षे तु तैजसंप्रोक्तंगान्धर्वेश्वसनात्मकम् । ऐन्द्रेव्योमात्मकंसर्वंसौम्येचैवतुमानसम्
प्राजापत्ये त्वहङ्कारं ब्राह्मे बोधमनुत्तमम् । आद्ये चाष्टौद्वितीयेच तथा षोडशरूपकम्
चतुर्विंशत् तृतीये तु द्वात्रिंशच्च चतुर्थके । चत्वारिंशत् पञ्चमेतु भूतमात्रात्मकं स्मृतम्
गन्धो रसस्तथा रूपं शब्दः स्पर्शस्तथैव च । प्रत्येकमष्टधासिद्धं पञ्चमे तच्छतक्रतोः॥
तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्तथैव च । चतुःषष्टिगुणं ब्राह्मं लभते द्विजसत्तमाः! ॥
औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत् । लोकेष्वालोक्य योगेन योगवित्परमं सुखम्

स्थूलता ह्रस्वता बाल्यं वार्धक्यं यौवनं तथा ।

नानाजातिस्वरूपञ्च चतुर्भिर्देहधारणम् ॥ ३० ॥

पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंयुतः । एतदष्टगुणं प्रोक्तमैश्वर्यं पार्थिवं महत्
जले निवसनंयद्वद्भूम्यामिव विनिर्गमः । इच्छेच्छक्तःस्वयंपातुं समुद्रमपि नातुरः ॥
यत्रेच्छतिजगत्यस्मिंस्तत्राऽस्यजलदर्शनम् । यद्यद्वस्तुसमादायभोक्तुमिच्छति कामतः
तत्तद्रसान्वितं तस्य त्रयाणांदेहधारणम् । भाण्डंविनाऽथहस्तेनजलपिण्डस्यधारणम्
अव्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवेन समन्वितम् । एतत्षोडशकंप्रोक्तमाप्यमैश्वर्यमुत्तमम् ॥
देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जितम् । लोकं दग्धमपीहान्यद्दग्धं स्वविधानतः ॥
जलमध्ये हुतवहञ्चाधाय परिरक्षणम् । अग्निनिग्रहणं हस्ते स्मृतिमात्रेण चागमः ॥
भस्मीभूतविनिर्माणं यथापूर्वंस्वकामतः । द्वाभ्यांरूपविनिष्पत्तिर्विनातैस्त्रिभिरात्मनः
चतुर्विंशात्मकं ह्येतत्तैजसं मुनिपुङ्गवाः । मनोगतित्वं भूतानामन्तर्निवसनं तथा॥३६॥
पर्वतादिमहाभारस्कन्धेनोद्वहनं पुनः । लघुत्वञ्च गुरुत्वञ्च पाणिभ्यां वायुधारणम् ॥

अङ्गुल्यग्रनिपातेन भूमेः सर्वत्र कम्पनम् । एकेन देहनिष्पत्तिर्वातैश्वर्यं स्मृतं बुधैः ॥
छायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणाञ्च दर्शनम् ।
आकाशगमनं नित्यमिन्द्रियार्थैः समन्वितम् ॥ ४२ ॥
दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम् । तन्मात्रलिङ्गग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम् ॥४३॥
ऐन्द्रमैश्वर्यमित्युक्तमेतैरुक्तः पुरातनः । यथा कामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः ॥
सर्वत्राभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम् । कामानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम् ॥४५
संसारदर्शनञ्चैव मानसं गुणलक्षणम् । छेदनं ताडनं बन्धं संसारपरिवर्त्तनम् ॥४६॥
सर्वभूतप्रसादश्च मृत्युकालजयस्तथा । प्राजापत्यमिदं प्रोक्तमाहङ्कारिकमुत्तमम् ॥४७
अकारणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रह एव च । प्रलयश्चाधिकारश्च लोकवृत्तप्रवर्त्तनम् ॥४८॥
असादृश्यमिदं व्यक्तं निर्माणञ्च पृथक्पृथक् ।
संसारस्य च कर्त्तृत्वं ब्राह्ममेतदनुत्तमम् ॥ ४६ ॥
एतावत्तत्वमित्युक्तं प्राधान्यं वैष्णवम्पदम् । ब्रह्मणा तद्गुणं शक्यं वेत्तुमन्यैर्नशक्यते
विद्यते तत्परंशैवंविष्णुना नाऽवगम्यते । असंख्येयगुणंशुद्धंकोजानीयाच्छिवात्मकम्
व्युत्थाने सिद्धयश्चैता ह्युपसर्गाश्च कीर्त्तिताः । निरोद्धव्याः प्रयत्नेन वैराग्येणपरेणतु
नाशातिशयतां ज्ञात्वा विषयेषु भयेषु च । अश्रद्धया त्यजेत्सर्वं विरक्त इति कीर्त्तितः
वैतृष्ण्यंपुरुषेख्यातंगुणवैतृष्ण्यमुच्यते । वैराग्येणैवसन्त्याज्याःसिद्धयश्चौपसर्गिकाः
औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत् । निरुध्यैव त्यजेत् सर्वं प्रसीदति महेश्वरः ॥
प्रसन्ने विमला मुक्तिर्वैराग्येण परेण वै । अथ वाऽनुग्रहार्थञ्च लीलार्थं वा तदा मुनिः
अनुरुध्य विचेष्टेद्यः सोऽप्येवं हि सुखी भवेत् ।
क्वचिद्भूमिं परित्यज्य आकाशे क्रीडते श्रिया ॥ ५७ ॥
उद्गिरेच्च क्वचिद्वेदान् सूक्ष्मानर्थान् समासतः । क्वचिच्छ्रुतेतदर्थेनश्लोकबन्धंकरोतिसः
क्वचिद्दण्डकबन्धन्तु कुर्याद्वन्धं सहस्रशः । मृगपक्षिसमूहस्य रुतज्ञानञ्च विन्दति ॥
ब्रह्माद्यं स्थावरान्तञ्च हस्तामलकवद्भवेत् । बहुनाऽत्र किमुक्तेन विज्ञानानि सहस्रशः॥
उत्पद्यन्तेमनिश्रेष्ठा ! मुनेस्तस्यमहात्मनः । अभ्यासेनैवविज्ञानंविशुद्धञ्चस्थिरंभवेत्

तेजोरूपाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित् । देवबिम्बान्यकानिविमानानिसहस्रशः
पश्यति ब्रह्मविष्णिवन्द्रयमाग्निवरुणादिकान् । ग्रहनक्षत्रताराश्च भुवनानि सहस्रशः ॥
पातालतलसंस्थाश्च समाधिस्थःस पश्यति । आत्मविद्याप्रदीपेन स्वस्थेनाऽचलनेनतु
प्रसादामृतपूर्णेन सत्वपात्रस्थितेन तु । तमो निहत्य पुरुषः पश्यतिह्यात्मनीश्वरम् ॥
तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च । वैराग्यमपवर्गश्च नाऽत्र कार्य्या विचारणा
न शक्यो विस्तरो वक्तुं वर्षाणामयुतैरपि । योगेपाशुपतेनिष्ठास्थातव्यञ्चमुनीश्वराः !

इति महापुराणे श्रीलैङ्गे योगान्तरायकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

सयोगसिद्धिप्राप्तपुरुषसाधुलक्षणं भगवच्छिवसाक्षात्कारोपायवर्णनम्

सूत उवाच

सतां जितात्मनां साक्षाद्द्विजातीनां द्विजोत्तमाः ! ।
धर्मज्ञानाञ्च साधूनामाचार्य्याणां शिवात्मनाम् ॥ १ ॥
दयावतांद्विजश्रेष्ठास्तथाचैवतपस्विनाम् ।संन्यासिनांविरक्तानांज्ञानिनांवशगात्मनाम्
दानिनां चैव दान्तानां त्रयाणां सत्यवादिनाम् ।
अलुब्धानां सयोगानां श्रुतिस्मृतिविदां द्विजाः ! ॥ ३ ॥
श्रौतस्मार्त्ताविरुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः । सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तदन्ते ये लभन्त्युत
सायुज्यं ब्रह्मणा यान्ति तेन सन्तःप्रचक्षते । दशात्मके ये विषये साधने चाऽष्टलक्षणे
न क्रुध्यन्तिनहृष्यन्तिजितात्मानस्तु ते स्मृताः । सामान्येषुचद्रव्येषुतथावैशेषिकेषुच
ब्रह्मक्षत्रविशोयस्माद्युक्तास्तस्माद्द्विजातयः । वर्णाश्रमेषुयुक्तस्यस्वर्गादिसुखकारिणः
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मज्ञउच्यते । विद्यायाःसाधनात्साधुर्ब्रह्मचारीगुरोर्हितः
क्रियाणांसाधनाच्चैवगृहस्थःसाधुरुच्यते । साधनात्तपसोऽरण्येसाधुर्वैखानसःस्मृतः

यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ।
एवमाश्रमधर्माणां साधनात् साधवः स्मृताः ॥ १० ॥

गृहस्थोब्रह्मचारीचवानप्रस्थोयतिस्तथा । धर्माधर्माविहप्रोक्तौश्रद्धावेतौ क्रियात्मकौ कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ । धारणार्थे महान् ह्येष धर्मशब्दःप्रकीर्तितः अधारणे महत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते । अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्य्यैरुपदिश्यते ॥ अधर्मश्चानिष्टफलोह्याचार्य्यैरुपदिश्यते।वृद्धाश्चाऽलोलुपाश्चैवआत्मवन्तोह्यदाम्भिकाः सम्यग्विनीताऋजवस्तानाचार्य्यान्प्रचक्षते । स्वयमाचरतेयस्मादाचारेस्थापयत्यपि

आचिनेऽति च शास्त्रार्थानाचार्य्यस्तेन चोच्यते ।
विज्ञेयं श्रवणाच्छ्रौतं स्मरणात् स्मार्तमुच्यते ॥ १६ ॥

इज्या वेदात्मकं श्रौतं स्मार्त्तं वर्णाश्रमात्मकम् । दृष्टानुरूपमर्थं यः पृष्टो नैवापिगूहति यथादृष्टप्रवादस्तु सत्यं लैङ्गेऽत्र पठ्यते । ब्रह्मचर्य्यं तथा मौनंनिराहारत्वमेव च॥१८॥ अहिंसा सर्वतःशान्तिस्तपइत्यभिधीयते । आत्मवत् सर्वभूतेषु यो हितायाऽहिताय च वर्तते त्वसकृद्वृत्तिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता । यद्यदिष्टतमंद्रव्यं न्यायेनैवागतंक्रमात् तत्तद्गुणवते देयं दातुस्तद्दानलक्षणम् । दानंत्रिविधमित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम्

कारुण्यात् सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु मध्यमः ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥ २२ ॥

शिष्टाचाराविरुद्धश्च सधर्मःसाधुरुच्यते । मायाकर्मफलत्यागीशिवात्मा परिकीर्त्तितः निवृत्तः सर्वसङ्गेभ्यो युक्तोयोगी प्रकीर्त्तितः । असक्तोभयतो यस्तुविषयेषुविचार्य्यच अलुब्धःसंयमीप्रोक्तःप्रार्थितोऽपिसमन्ततः । आत्मार्थं वा परार्थंवाइन्द्रियाणीहयस्यवै न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यैव तु लक्षणम् । अनुद्विग्नो ह्यनिष्टेषुतथेष्टान्नाभिनन्दति प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता । सन्न्यासः कर्मणांन्यासःकृतानामकृतैःसह कुशलाकुशलानान्तु प्रहाणं न्यासउच्यते । अव्यक्ताद्यविशेषान्तेविकारेऽस्मिन्नचेतने चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते । एवन्तु ज्ञानयुक्तस्य श्रद्धायुक्तस्य शङ्करः ॥ प्रसीदति न सन्देहो धर्मश्चाऽयं द्विजोत्तमाः ! । किन्तु गुह्यतमं वक्ष्ये सर्वत्र परमेश्वरे

भवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तोविमुच्यते । अयोग्यस्याऽपि भगवान् भक्तस्यपरमेश्वरः
प्रसीदति न सन्देहो निगृह्य विविधं तमः । ज्ञानमध्यापनं होमो ध्यानंयज्ञस्तपःश्रुतम्
दानमध्ययनं सर्वं भवभक्त्यै न संशयः । चान्द्रायणसहस्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा ॥
मासोपवासैश्चान्यैर्वाभक्तिर्मुनिवरोत्तमाः ! । अभक्ताभगवत्यस्मिन् लोकेगिरिगुहाशये
पतन्ति चात्मभोगार्थं भक्तो भावेनमुच्यते । भक्तानांदर्शनादेवनृणांस्वर्गादयोद्विजाः !
न दुर्लभा न सन्देहोभक्तानांकिंपुनस्तथा । ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणांतथान्येषामपिस्थितिः

भक्त्या एव मुनीनाञ्च बलसौभाग्यमेव च ।

भवेन च तथा प्रोक्तं सम्प्रेक्ष्योमां पिनाकिना ॥ ३७ ॥

देव्यै देवेन मधुरं वाराणस्यां पुरा द्विजाः ! । अविमुक्ते समासीना रुद्रेण परमात्मना

रुद्राणी रुद्रमाहेदं लब्ध्वा वाराणसीं पुरीम् ।

श्रीदेव्युवाच

केन वश्यो महादेव ! पूज्यो दृश्यस्त्वमीश्वरः ॥ ३६ ॥

तपसा विद्यया वाऽपि योगेनेह वद प्रभो ! ।

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्यास्तथा ह्यालोक्य पार्वतीम् ॥ ४० ॥

आह बालेन्दुतिलकःपूर्णेन्दुवदनां हसन् । स्मृत्वाऽथ मेनयापत्न्यागिरेर्गांकथितांपुरा
चिरकालस्थितिंप्रेक्ष्यगिरौदेव्यामहात्मनः । देवि! लब्धापुरीरम्यात्वयायत्प्रष्टुमर्हसि
स्थानार्थं कथितं मात्रा विस्मृतेह विलासिनि !। पुरा पितामहेनापिपृष्टः प्रश्नवतांवरे
यथा त्वयाऽद्य वै पृष्टोद्रष्टुं ब्रह्मात्मकंत्वहम् । श्वेतेश्वेतेनवर्णेन दृष्ट्वाकल्पेतु मां शुभे!
सद्योजातं तथा रक्ते रक्तं वामं पितामहः । पीते तत्पुरुषं पीतमघोरंकृष्णमीश्वरम्

ईशानं विश्वरूपाख्ये ! विश्वरूपं तदाह माम् ।

पितामह उवाच

वाम तत्पुरुषाघोर ! सद्योजात महेश्वर ! ॥ ४६ ॥

दृष्टो मया त्वं गायत्र्या देवदेवमहेश्वर !। केन वश्यो महादेव! ध्येयः कुत्र घृणानिधे !

द्रष्टव्यः पूज्यस्तथा देव्या वक्तुमर्हसि शङ्कर ! ।

भगवानुवाच

अवोचं श्रद्धयैवेति वश्यो वारिजसम्भव ! ॥ ४८ ॥

ध्येयो लिङ्गेत्वयादृष्टेविष्णुनापयसां निधौ । पूज्यःपञ्चास्यरूपेणपवित्रैःपञ्चभिर्द्विजैः

भव ! भक्त्याऽद्य दृष्टोऽहं त्वयाऽण्डज ! जगद्गुरो ! ।

सोऽपि मामाह भावार्थं दत्तं तस्मै मया पुरा ॥ ५० ॥

भावं भावेनदेवेशि ! दृष्टवान्मांहृदीश्वरम् । तस्मात्तुश्रद्धयावश्योद्रष्टव्यःश्रेष्ठगिरेःसुते !

पूज्यो लिङ्गे न सन्देहः सर्वदाश्रद्धयाद्विजैः । श्रद्धा धर्मःपरःसूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतंतपः

श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योऽहं श्रद्धया सदा ॥ ५३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भक्तिभावकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

श्वेतलोहितकल्पे सद्योजातमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय उचुः

कथं वै दृष्टवान्ब्रह्मा सद्योजातं महेश्वरम् । वामदेवं महात्मानंपुराणपुरुषोत्तमम् ॥१॥

अघोरञ्च तथेशानं यथावद्वक्तुमर्हसि ।

सूत उवाच

एकोनत्रिंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ॥ २ ॥

तस्मिंस्तत्परमं ध्यानं ध्यायतोब्रह्मणस्तदा । उत्पन्नस्तुशिखायुक्तःकुमारःश्वेतलोहितः

तं दृष्ट्वा पुरुषं श्रीमान्ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः । हृदि कृत्वा महात्मानंब्रह्मरूपिणमीश्वरम्

सद्योजातं ततो ब्रह्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् । ध्यानयोगात्परंज्ञात्वाववन्दे देवमीश्वरम्

सद्योजातं ततो ब्रह्म ब्रह्मवैसमचिन्तयत् । ततोऽस्यपार्श्वतःश्वेताःप्रादुर्भूतामहायशाः

सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ । शिष्यास्तेवैमहात्मानोयैस्तद्ब्रह्मसदावृतम्
तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः श्वेतोनाममहामुनिः । विजज्ञेऽथमहातेजास्तस्माज्जज्ञेहरस्त्वसौ
तत्र ते मुनयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम् । प्रपन्नाः परयाभक्त्यागृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम्
तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपद्यन्ति वै द्विजाः । प्राणायामपराभूत्वा ब्रह्म तत्परमानसाः
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः । विष्णुलोकमतिक्रम्य रुद्रलोकं व्रजन्ति ते॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सद्योजातमाहात्म्यं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

वामदेवमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तोनाम प्रकीर्तितः । ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत् ॥
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तभूषणः ॥
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान् । स तं दृष्ट्वामहात्मानंकुमारं रक्तवाससम् ॥३
परं ध्यानं समाश्रित्य बुबुधे देवमीश्वरम् । स तं प्रणम्य भगवान्ब्रह्मा परमयन्त्रितः॥
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिन्तयत् । तथा स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा परमेश्वरः॥
प्रीतहृदयः सर्वं इदमाह पितामहम् । ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेऽहं पितामह ! ॥
दृष्टः परमया भक्त्या स्तुतश्च ब्रह्मपूर्वकम् । तस्माद्ध्यानबलं प्राप्य कल्पेकल्पेप्रयत्नतः
वेत्स्यसे मांप्रसंख्यातंलोकधातारमीश्वरम् । ततस्तस्यमहात्मानश्चत्वारस्तेकुमारकाः
सम्बभूवुर्महात्मानो विशुद्धा ब्रह्मवर्चसः । विरजाश्च विबाहुश्च विशोको विश्वभावनः

ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ।
रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः ॥ १० ॥

रक्तकुङ्कुमलिप्ताङ्गा रक्तभस्मानुलेपनाः । ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मत्वेऽध्यवसायिनः ॥

गृणन्तश्च महात्मानो ब्रह्म तद्वामदैविकम् । अनुग्रहार्थंलोकानांशिष्याणांहितकाम्यया
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्रह्मणः प्रियाः । पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥१३
येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जानावाममीश्वरम् । प्रपश्यन्तिमहादेवंतद्भक्तास्तत्परायणाः
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मचारिणः । रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे वामदेवमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

तत्पुरुषमाहात्म्यनिरूपणम्

सूत उवाच

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इतिस्मृतः । ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रधृक्
पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्याम्बरो युवा । हेमयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मा लोकमहेश्वरम् । मनसा लोकधातारं प्रपेदे शरणं विभुम्
ततो ध्यानगतस्तत्रब्रह्मा माहेश्वरींवराम् । गां विश्वरूपांददृशेमाहेश्वरमुखाच्च्युताम्

चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम् ।
चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ॥ ६ ॥

द्वात्रिंशद्गुणसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखीम् । सतांदृष्ट्वामहातेजा महादेवीं महेश्वरीम्
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः । मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ॥८॥
एह्येहीति महादेवि! साऽतिष्ठत्प्राञ्जलिर्विभुम् । विश्वमावृत्य योगेनजगत्सर्वं वशीकुरु
अथतामाहदेवेशो रुद्राणीत्वंभविष्यसि । ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्था भविष्यसि
तथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः । प्रददौ देवदेवेशः चतुष्पादां जगद्गुरुः॥११
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् । ब्रह्मा लोकगुरोःसोऽथप्रतिपेदेमहेश्वराम्

गायत्रीन्तुततोरौद्रींध्यात्वाब्रह्मानुयन्त्रितः। इत्येतांवैदिकींविद्यांरौद्रींगायत्रीमीरिताम्
जपित्वा तु महादेवीं ब्रह्मालोकनमस्कृताम् । प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥
ततस्तस्य महादेवो दिव्ययोगं बहुश्रुतम् । ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्ति वैराग्यञ्च ददौ प्रभुः
ततोऽस्यपार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताःकुमारकाः । पीतमाल्याम्बरधराःपीतस्रगनुलेपनाः
पीताभोष्णीषशिरसः पीतास्याःपीतमूर्द्धजाः । ततोवर्षसहस्रान्तउषित्वाविमलौजसः
योगात्मानस्तपोह्लादा ब्राह्मणानां हितैषिणः । धर्मयोगबलोपेतामुनीनांदीर्घसत्रिणाम्
उपदिश्य महायोगं प्रविष्टास्ते महेश्वरम् ।
एवमेतेन विधिना ये प्रपन्ना महेश्वरम् ॥ १६ ॥
अन्येऽपिनियतात्मानोध्यानयुक्ताजितेन्द्रियाः । ते सर्वेपापमुत्सृज्यविमलाब्रह्मवर्चसः
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः ॥ २१ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे तत्पुरुषमाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

अघोरोत्पत्तिविवरणम्

सूत उवाच

ततस्तस्मिन्गते कल्पेपीतवर्णेस्वयम्भुवः । पुनरन्यःप्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्नाऽसितस्तुसः
एकार्णवे तदावृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके । स्रष्टुकामःप्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः॥
तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः । कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् । कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा
कृष्णाम्बरधरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् । कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम्
स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम् । ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिङ्गलम् ॥६ ॥
प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् । मनसाध्यानयुक्तेन प्रपन्नस्तुतमीश्वरम्

अघोरन्तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिन्तयत् । तथा वै ध्यायमानस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥
प्रददौ दर्शनं देवो ह्यघोरो घोरविक्रमः । अथाऽस्य पार्श्वतःकृष्णाःकृष्णस्रगनुलेपनाः
चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः ।
कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णवस्त्रधृक् ॥ १० ॥
ततो वर्षसहस्रन्तु योगतः परमेश्वरम् । उपासित्वा महायोगं शिष्येभ्यः प्रददुः पुनः
योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसाशिवम् । अमलंनिर्गुणं स्थानंप्रविष्टाविश्वमीश्वरम्
एवमेतेन योगेन येऽपि चाऽन्ये मनीषिणः । चिन्तयन्तिमहादेवं गन्तारो रुद्रमव्ययम्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अघोरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अघोरेशमाहात्म्यप्रतिपादनम्

सूत उवाच

ततस्तस्मिन्गते कल्पे कृष्णवर्णेभयानके । तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा तं ब्रह्मरूपिणम् ॥१॥
अनुगृह्यस्ततस्तुष्टो ब्रह्माणमवदद्धरः । अनेनैव तु रूपेण संहरामि न संशयः ॥ २ ॥
ब्रह्महत्यादिकान्घोरांस्तथान्यानपि पातकान् ।
हीनांश्चैव महाभाग ! तथैव विविधान्यपि ॥ ३ ॥
उपपातकमप्येवं तथा पापानि सुव्रत ! । मानसानिसुतीक्ष्णानिवाचिकानिपितामह !
कायिकानि सुमिश्राणि तथाप्रासङ्गिकानि च । बुद्धिपूर्वंकृतान्येवसहजागन्तुकानिच
मातृदेहोत्थितान्येवं पितृदेहे च पातकम् । संहरामि न संदेहः सर्वं पातकजं विभो !
लक्षं जप्त्वा ह्यघोरेभ्यो ब्रह्महा मुच्यते प्रभो !। तदर्द्धंवाचिके वत्स! तदर्द्धंमानसे पुनः
चतुर्गुणंबुद्धिपूर्वे क्रोधादष्टगुणं स्मृतम् । वीरहा लक्षमात्रेण भ्रूणहा कोटिमभ्यसेत् ॥
मातृहा नियुतं जप्त्वा शुद्ध्यते नाऽत्रसंशयः । गोघ्नश्चैवकृतघ्नश्चस्त्रीघ्नःपापयुतोनरः

अयुताघोरमभ्यस्यमुच्यतेनाऽत्र संशयः । सुरापोलक्षमात्रेणबुद्ध्याऽबुद्ध्यापिवैप्रभो मुच्यते नात्र सन्देहस्तद्वर्जेन च वारुणीम् । अज्ञाताशीसहस्रेण अजपीच तथा द्विजः अहुताशी सहस्रेण अदातावविशुद्ध्यति । ब्राह्मणस्वापहर्त्ता च स्वर्णस्तेयी नराधमः नियुतं मानसं जप्त्वा मुच्यते नाऽत्रसंशयः । गुरुतल्परतो वाऽपि मातृघ्नोवानराधमः ब्रह्मघ्नश्चजपेदेवं मानसं वै पितामह ! । सम्पर्कात्पापिनां पापं तत्समं परिभाषितम् ॥ तथाप्ययुतमात्रेण पातकाद्वै प्रमुच्यते । संसर्गात्पातकी लक्षं जपेद्वै मानसं धिया ॥ उपांशु यश्चतुर्धा वै वाचिकश्चाऽष्टधा जपेत् । पातकादर्द्धमेव स्यादुपपातकिनांस्मृतम् तदर्द्धं केवले पापे नाऽत्र कार्य्या विचारणा । ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च॥

कृत्वा च गुरुतल्पञ्च पापकृद् ब्राह्मणो यदि ।

ब्राह्मन्तु रुद्रगायत्र्या गोमूत्रं कापिलं द्विजाः ! ॥ १८ ॥

गन्धद्वारेतितस्यावैगोमयंस्वस्थमाहरेत् । तेजोऽसिशुक्रमित्याज्यंकापिलंसंहरेद्बुधः

आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेऽति चाहरेत् ।

गव्यं दधि नवं साक्षात् कापिलं वै पितामह ! ॥ २० ॥

देवस्यत्वेति मन्त्रेण संग्रहेद्वै कुशोदकम् । एकस्थं हेमपात्रे वा कृत्वा घोरेण राजते ताम्रे वा पद्मपात्रे वा पालाशे वा दले शुभे । सकूर्चंसर्वरत्नाढ्यंक्षिप्त्वातत्रैवकाञ्चनम् जपेल्लक्षमघोराख्यं हुत्वा चैव घृतादिभिः । घृतेन चरुणा चैव समिद्भिश्चतिलैस्तथा ॥ यवैश्च व्रीहिभिश्चैव जुहुयाद्वै पृथक् पृथक् । प्रत्येकं सप्तवारन्तु द्रव्यालाभे घृतेन तु हुत्वाऽघोरेणदेवेशंस्नात्वाऽघोरेण वै द्विजाः !। अष्टद्रोणघृतेनैवस्नाप्यपश्चाद्विशोध्यच

अहोरात्रोषितः स्नातः पिबेत् कूर्चं शिवाग्रतः ।

ब्राह्मं ब्रह्मजपं कुर्य्यादाचम्य च यथाविधि ॥ २६ ॥

एवं कृत्वा कृतघ्नोऽपि ब्रह्महा भ्रूणहा तथा । वीरहागुरुघाती च मित्रविश्वासघातकः स्तेयी सुवर्णस्तेयी च गुरुतल्परतः सदा । मद्यपो वृषलीसक्तः परदारविधर्षकः ॥ ब्रह्मस्वहा तथा गोघ्नो मातृहा पितृहा तथा । देवप्रच्यावकश्चैव लिङ्गप्रध्वंसकस्तथा

तथाऽन्यानि च पापानि मानसानि द्विजो यदि ।

वाचिकानि तथान्यानि कायिकानि सहस्रशः ॥ ३० ॥
कृत्वा विमुच्यते सद्यो जन्मान्तरशतैरपि । एतद्रहस्यं कथितमघोरेशप्रसङ्गतः ॥३१॥
तस्माज्जपेद् द्विजो नित्यं सर्वपापविशुद्धये ॥ ३२ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अघोरेशमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

ईशानमाहात्म्यकथनम्

सूत उवाच

अथाऽन्यो ब्रह्मणः कल्पो वर्त्ततेमुनिपुङ्गवाः । विश्वरूप इति ख्यातो नामतःपरमाद्भुतः
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे । ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती । विश्वमाल्याम्बरधरा विश्वयज्ञोपवीतिनी
विश्वोष्णीषाविश्वगन्धाविश्वमातामहोष्ठिका । तथाविधं स भगवानीशानंपरमेश्वरम्
शुद्धस्फटिकसङ्काशं सर्वाभरणभूषितम् । अथ तं मनसा ध्यात्वायुक्तात्मावैपितामहः
ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम् ।
ओमीशान ! नमस्तेऽस्तु महादेव ! नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
नमोऽस्तुसर्वविद्यानामीशान ! परमेश्वर ! । नमोऽस्तुसर्वभूतानामीशान ! वृषवाहन
ब्रह्मणोऽधिपते ! तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे । नमो ब्रह्माधिपतये शिवं मेऽस्तुसदाशिव !
ओङ्कारमूर्ते ! देवेश ! सद्योजात ! नमोनमः । प्रपद्येत्वांप्रपन्नोऽस्मिसद्योजातायवैनमः
अभवे च भवे तुभ्यं तथा नातिभवे नमः । भवोद्भवभवेशान ! मां भजस्व महाद्युते !
वामदेव ! नमस्तुभ्यं ज्येष्ठाय वरदाय च । नमो रुद्राय कालाय कलनाय नमो नमः
नमो विकरणायैव कालवर्णाय वर्णिने । बलाय बलिनां नित्यं सदा विकरणाय ते
बलप्रमथनायैव बलिने ब्रह्मरूपिणे । सर्वभूतेश्वरेशाय भूतानां दमनाय च ॥ १३ ॥

मनोन्मनाय देवाय नमस्तुभ्यं महाद्युते ! । वामदेवाय वामाय नमस्तुभ्यं महात्मने ॥
ज्येष्ठाय चैव श्रेष्ठाय रुद्राय वरदाय च । कालहन्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने
इति स्तवेन देवेशं ननाम वृषभध्वजम् । यः पठेत् सकृदेवेह ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥
श्रावयेद् वा द्विजान् श्राद्धे स याति परमाङ्गतिम् ।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम् ॥ १७ ॥
उवाच भगवानीशःप्रीतोऽहं ते किमिच्छसि । ततस्तुप्रणतोभूत्वावागिवशुद्धंमहेश्वरम्
उवाच भगवान् रुद्रं प्रीतं प्रीतेन चेतसा । यदिदं विश्वरूपन्ते विश्वगौः श्रेयसीश्वरी
एतद् वेदितुमिच्छामि यथेयं परमेश्वर ! । कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी
चतुःश्रृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दंष्ट्रा चतुःस्तनी । चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथंस्मृता
किं नाम गोत्रा कस्येयं किं वीर्य्या चाऽपि कर्मतः ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा देवदेवो वृषध्वजः ॥ २२ ॥
प्राह देववृषं ब्रह्मा ब्रह्माणञ्चात्मसम्भवम् । रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्द्धनम् ॥
श्रृणुष्वैतत् परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथा । एवं यो वर्त्तते कल्पोविश्वरूपस्त्वसौमतः
ब्रह्मस्थानमिदञ्चापि यत्र प्राप्तं त्वया प्रभो ! । त्वत्तःपरतरं देव! विष्णुनातत्पदंशुभम्
वैकुण्ठेनविशुद्धेन मम वामाङ्गजेन वै । तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः । पुरस्तात्तव देवेश ! तच्छृणुष्व महामते ! ॥
आनन्दस्तु स विज्ञेयआनन्दत्वेव्यवस्थितः । माण्डव्यगोत्रस्तपसा ममपुत्रत्वमागतः
त्वयियोगश्चसांख्यञ्चतपोविद्याविधिक्रिया । ऋतं सत्यंदयाब्रह्मअहिंसासम्मतिःक्षमा
ध्यानं ध्येयं दमः शान्तिर्विद्याऽविद्या मतिर्धृतिः ।
कान्तिर्नीतिः पृथा मेधा लज्जा दृष्टिः सरस्वती ॥ ३० ॥
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव प्रसादश्चप्रतिष्ठिताः । द्वात्रिंशत्सुगुणाह्येषाद्वात्रिंशाक्षरसञ्ज्ञया
प्रकृतिर्विहिता ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिर्महेश्वरी । विष्णोर्भगवतश्चाऽपितथाऽन्येषामपि प्रभो!
सैषा भगवती देवी मत्प्रसूतिः प्रतिष्ठिता । चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रतिष्ठिता
गौरीमाया च विद्याचकृष्णा हैमवतीति च । प्रधानंप्रकृतिश्चैवयामाहुस्तत्त्वचिन्तकाः

अजामेकां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वप्रजां सृजमानां सरूपाम् ।
अजोऽहं मां विद्धि तां विश्वरूपं गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्या ॥३५॥
एवमुक्त्वा महादेवः ससर्ज परमेश्वरः । ततश्च पार्श्वगा देव्याः सर्वरूपकुमारकाः ॥
जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जज्ञिरे । ततस्तेन यथोक्तेनयोगेनसुमहौजसः॥
दिव्यवर्षसहस्रान्ते उपासित्वा महेश्वरम् । धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा योगमयं दृढम् ॥
शिष्टाश्च नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥ ३६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ईशानमाहात्म्यकथनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

लिङ्गोद्भववर्णनम्

सूत उवाच

एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनांसमुद्भवः । यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपिश्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्
स याति ब्रह्मसायुज्यं प्रसादात् परमेष्ठिनः ।

ऋषय ऊचुः

कथं लिङ्गमभूलिङ्गे समभ्यर्च्यः स शङ्करः ॥ २ ॥
किं लिङ्गं कस्तथा लिङ्गी सूत ! वक्तुमिहाऽर्हसि ।

रोमहर्षण उवाच

एवं देवाश्च ऋषयः प्रणिपत्य पितामहम् ॥ ३ ॥
अपृच्छन् भगवल्लिङ्गंकथमासीदितिस्वयम् । लिङ्गे महेश्वरोरुद्र समभ्यर्च्यःकथंत्विति
किं लिङ्गं कस्तथा लिङ्गी सोऽप्याह च पितामहः ।

पितामह उवाच

प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः ॥ ५ ॥

रक्षार्थमम्बुधौमह्यंविष्णोस्त्वासीत्सुरोत्तमाः ! । वैमानिकेगतेसर्वेजनलोकंसहर्षिभिः
स्थितिकाले तदा पूर्णे ततः प्रत्याहृते तथा । चतुर्युगसहस्रान्ते सत्यलोकं गते सुराः
विनाधिपत्यं समतांगतेऽन्तेब्रह्मणो मम । शुष्के च स्थावरेसर्वेत्वनावृष्ट्याचसर्वशः
पशवोमानुषावृक्षाःपिशाचाःपिशिताशनाः । गन्धर्वाद्याःक्रमेणैवनिर्दग्धाभानुभानुभिः
एकार्णवे महाघोरे तमोभूते समन्ततः । सुष्वापाऽम्भसि योगात्मा निर्मलोनिरुपप्लवः
सहस्रशीर्षा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् । सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वदेवभवोद्भवः ॥
हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शङ्करः स्वयम् । सत्वेन सर्वगोविष्णुःसर्वात्मत्वेमहेश्वरः
कालात्माकालनाभस्तुशुक्लःकृष्णस्तुनिर्गुणः । नारायणोमहाबाहुःसर्वात्मासदसन्मयः
तथाभूतमहं दृष्ट्वा शयानं पङ्कजेक्षणम् । मायया मोहितस्तस्य तमवोचममर्षितः ॥
कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम् । तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण सुदृढेन तु ॥
प्रबुद्धोऽहीयशयनात्समासीनः क्षणं वशी । ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः ॥

मामग्रे संस्थितं भासाध्यासितो भगवान्हरिः ।
आह चोत्थाय भगवान्हसन्मां मधुरं सकृत् ॥ १७ ॥

स्वागतं स्वागतं वत्स ! पितामह महाद्युते ! । तस्य तद्वचनं श्रुत्वास्मितपूर्वं सुरर्षभाः
रजसा विद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम् । भाषसे वत्सवत्सेति सर्गसंहारकारणम् ॥
मामिहान्तःस्मितंकृत्वागुरुःशिष्यमिवाऽनघ !। कर्त्तारंजगतांसाक्षात्प्रकृतेश्चप्रवर्त्तकम्
सनातनमजंविष्णुंविरिञ्चिंविश्वसम्भवम् । विश्वात्मानंविधातारंधातारं पङ्कजेक्षणम्
किमर्थं भाषसेमोहाद्वक्तुमर्हसिसत्वरम् । सोऽपि मामाहजगतांकर्ताऽहमितिलोकय
भर्ता हर्ता भवानङ्गादवतीर्णोममाऽव्ययात् । विस्मृतोऽसिजगन्नाथंनारायणमनामयम्
पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम् ॥
तवापराधोनास्त्यत्रममामायाकृतंत्विदम् । शृणुसत्यञ्चतुर्वक्त्र ! सर्वदेवेश्वरो ह्यहम्
कर्ता नेता च हर्ता च न मयाऽस्तिसमोविभुः । अहमेव परं ब्रह्म परं तत्त्वं पितामह!॥
अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः । यद्यद्दृष्टं श्रुतंसर्वंजगत्यस्मिश्चराचरम्
तत्तद्विद्धि चतुर्वक्त्र ! सर्वं मन्मयमित्यथ । मयासृष्टंपुरा व्यक्तंचतुर्विंशतिकंस्वयम्

नित्यान्ताह्यणवोबद्धाःसृष्टाःक्रोधोद्भवाद्वयः ।प्रसादाद्विभवानण्डान्यनेकानीहलीलया
सृष्टाबुद्धिर्मयातस्यामहङ्कारस्त्रिधाततः । तन्मात्रापञ्चकंतस्मान्मनःषष्ठेन्द्रियाणि च
आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया ।
इत्युक्तवति तस्मिंश्च मयि चाऽपि वचस्तथा ॥ ३१ ॥
आवयोश्चाऽभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् । प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः ॥३२
एतस्मिन्नन्तरे लिङ्गमभवच्चाऽऽवयोः पुरः । विवादशमनार्थंहि प्रबोधार्थञ्च भास्वरम्
ज्वालामालासहस्राढ्यंकालानलशतोपमम् । क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम्
अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम् । तस्यज्वालासहस्रेण मोहितो भगवान्हरिः
मोहितंप्राहमामत्रपरीक्षावोऽग्निसम्भवम् । अधोगमिष्याम्यनलस्तम्भस्याऽनुपमस्यच
भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गन्तुमर्हसि सत्वरम् । एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा
वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान्सुराः ! । तदाप्रभृति मामाहुर्हंसं हंसोविराडिति
हंस हंसेति यो ब्रूयान्मां हंसः स भविष्यति । सुश्वेतो ह्यनलाक्षश्च विश्वतःपक्षसंयुतः
मनोऽनिलजवो भूत्वा गतोऽहंचोर्ध्वतः सुराः ! ।
नारायणोऽपि विश्वात्मा नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ४० ॥
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् । मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् ॥
कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम् ।
ह्रस्वपादं विचित्राङ्गं जैत्रं दृढमनौपमम् ॥ ४२ ॥
वाराहमसितं रूपमास्थाय गतवानधः । एवं वर्षसहस्रन्तु त्वरन्विष्णुरधोगतः ॥ ४३
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिङ्गस्य सूकरः । तावत्कालं गतोह्यूर्ध्वमहमप्यरिसूदनः ॥
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यां तं ज्ञातुमिच्छया । श्रान्तो ह्यदृष्ट्वा तस्यान्तमहङ्कारादधोगतः
तथैवभगवान्विष्णुः श्रान्तः सन्त्रस्तलोचनः । सर्वदेवभवस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः
समागतो मयासार्धंप्रणिपत्यमहामनाः । माययामोहितःशम्भोस्तस्थौसंविग्नमानसः
पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव चाग्रतः परमेश्वरम् । प्रणिपत्य मया सार्धंसस्मारकिमिदंत्विति
तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः । ओमोमितिसुरश्रेष्ठाः! सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः

किमिदं त्विति सञ्चिन्त्य मया तिष्ठन्महास्वनम् ।
लिङ्गस्य दक्षिणे भागे तदापश्यत्सनातनम् ॥ ५० ॥
आद्यं वर्णमकारन्तु उकारञ्चोत्तरे ततः । मकारं मध्यतश्चैव नादान्तं तस्यचोऽमिति
सूर्य्यमण्डलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्यन्तु दक्षिणे । उत्तरे पावकप्रख्यमुकारं पुरुषर्षभः ॥ ५२ ॥
शीतांशुमण्डलप्रख्यं मकारं मध्यमं तथा । तस्योपरि तदापश्यच्छुद्धस्फटिकवत्प्रभुम्
तुरीयातीतममृतं निष्कलं निरुपप्लवम् । निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम्
सबाह्याभ्यन्तरञ्चैव सबाह्याभ्यन्तरस्थितम् ।
आदिमध्यान्तरहितमानन्दस्याऽपि कारणम् ॥ ५५ ॥
मात्रास्तिस्रस्त्वर्धमात्रं नादाख्यंब्रह्मसंज्ञितम् । ऋग्यजुःसामवेदावैमात्रारूपेणमाधवः
वेदशब्देभ्य एवेशं विश्वात्मानमचिन्तयत् । तदाऽभवदृषिर्वेद ऋषेः सारतमं शुभम्
तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान्परमेश्वरम् ।

देव उवाच

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह ॥ ५८ ॥
अप्राप्य तं निवर्त्तन्ते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः । एकाक्षरेण तद्वाच्यमृतं परमकारणम्
सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम् । एकाक्षरादकाराख्यो भगवान्कनकाण्डजः ॥
एकाक्षरादुकाराख्यो हरिःपरमकारणम् । एकाक्षरान्मकाराख्योभगवान्नीललोहितः॥
सर्गकर्त्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः।
मकाराख्यस्तयोर्नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् ॥ ६२ ॥
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारोबीजमुच्यते । उकाराख्यो हरिर्योनिःप्रधानपुरुषेश्वरः
बीजीचबीजंतद्योनिर्नादाख्यश्चमहेश्वरः । बीजीविभज्यचात्मानंस्वेच्छयातुव्यवस्थितः
अस्य लिङ्गादभूद्बीजमकारो बीजिनः प्रभोः । उकारयोनौ निक्षिप्तमवर्धत समन्ततः
सौवर्णमभवच्चाण्डमावेष्ट्याद्यन्तदक्षरम् । अनेकाब्दंतथाचाप्सुदिव्यमण्डंव्यवस्थितम्
ततोवर्षसहस्रान्ते द्विधाकृतमजोद्भवम् । अण्डमप्सु स्थितं साक्षादाद्याख्येनेश्वरेणतु
तस्याऽण्डस्यशुभं हैमं कपालञ्चोर्ध्वसंस्थितम् । जज्ञेयद्द्यौस्तदपरं पृथिवीपञ्चलक्षणा

तस्मादण्डोद्भवो जज्ञे त्वकाराख्यश्चतुर्मुखः । स स्रष्टा सर्वलोकानांसएवत्रिविधःप्रभुः
एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषाम्वराः ।
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम् ॥ ७० ॥
एवमेव हरे ! ब्रह्मन्नित्याहुः श्रुतयस्तदा । ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छ्रुतिसम्भवेः ॥
मन्त्रैर्महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम् । आवयोःस्तुतिसन्तुष्टो लिङ्गे तस्मिन्निरञ्जनः ॥
दिव्ये शब्दमयं रूपमास्थाय प्रहसंस्थितः । अकारस्तस्य मूर्धा तु ललाटं दीर्घमुच्यते
इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम् । उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारोवाममुच्यते
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः । वामंकपोलम् ॠकारो लऌनासापुटेउभे॥
एकारमोष्ठमूर्ध्वश्च ऐकारस्त्वधरो विभोः । ओकारश्चतथौकारोदन्तपंक्तिद्वयंक्रमात्
अमस्तु तालुनीतस्य देवदेवस्य धीमतः । कादिपञ्चाक्षराण्यस्य पञ्चहस्तानि दक्षिणे
चादिपञ्चाक्षराण्येवं पञ्चहस्तानि वामतः । टादिपञ्चाक्षरं पादस्तादिपञ्चाक्षरं तथा ॥
पकारमुदरन्तस्य फकारः पार्श्व उच्यते । बकारो वामपार्श्वं वै भकारंस्कन्धमस्यतत्
मकारं हृदयं शम्भोर्महादेवस्य योगिनः । यकारादि सकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः
हकार आत्मरूपं वै क्षकारः क्रोध उच्यते ।
तं दृष्ट्वा उमया सार्धं भगवन्तं महेश्वरम् ॥ ८१ ॥
प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः । ओङ्कारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम्
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम् । मेधाकरमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम् ॥
गायत्रीप्रभवं मन्त्रं हरितं वश्यकारकम् । चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम् ॥
अथर्वमसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम् । अभिचारकमत्यर्थं त्रयस्त्रिंशच्छुभाक्षरम् ॥
यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाक्षरम् । कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा ॥
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लोहितम् । सामोद्भवं जगत्याद्यं वृद्धिसंहारकारणम्
वर्णाः षडधिका षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु ।
पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान् हरिः ॥ ८८ ॥
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम् । ईशानमीशमुकुटं पुरुषास्यं पुरातनम् ॥

अघोरहृदयं हृद्यं वामगुह्यं सदाशिवम् । सद्यः पादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम् ॥
विश्वतः पादवदनं विश्वतोऽक्षिकरं शिवम् । ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम्
तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्वरदमीश्वरम् ॥ ६२ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे लिङ्गोद्भवो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

विष्णुस्तवकरणम्

विष्णुरुवाच

एकाक्षराय रुद्राय अकारायाऽऽत्मरूपिणे । उकारायाऽऽदिदेवाय विद्यादेहाय वै नमः
तृतीयाय मकाराय शिवाय परमात्मने । सूर्याग्निसोमवर्णाय यजमानाय वै नमः ॥
अग्नये रुद्ररूपाय रुद्राणां पतये नमः । शिवाय शिवमन्त्राय सद्योजाताय वेधसे ॥३॥
वामाय वामदेवाय वरदायाऽमृताय ते । अघोरायाऽतिघोराय सद्योजाताय रंहसे ॥
ईशानाय श्मशानाय अतिवेगाय वेगिने । नमोऽस्तु श्रुतिपादाय ऊर्ध्वलिङ्गायलिङ्गिने
हेमलिङ्गाय हेमाय वारिलिङ्गाय चाम्भसे । शिवायशिवलिङ्गायव्यापिनेव्योमव्यापिने
वायवे वायुवेगाय नमस्ते वायुव्यापिने । तेजसे तेजसां भर्त्रे नमस्तेजोऽधिव्यापिने
जलाय जलभूताय नमस्ते जलव्यापिने । पृथिव्यै चान्तरीक्षाय पृथिवीव्यापिनेनमः
शब्दस्पर्शस्वरूपाय रसगन्धाय गन्धिने । गणाधिपतये तुभ्यं गुह्याद् गुह्यतमाय ते ॥
अनन्ताय विरूपाय अनन्तानामयाय च । शाश्वताय वरिष्ठाय वारिगर्भाय योगिने ॥
संस्थितायाऽम्भसां मध्ये आवयोर्मध्यवर्चसे । गोप्त्रे हर्त्रे सदाकर्त्रेनिधनायेश्वरायच
अचेतनाय चिन्त्याय चेतनायासहारिणे । अरूपाय सुरूपायअनङ्गायाङ्गहारिणे ॥१२॥
भस्मदिग्धशरीराय भानुसोमाग्निहेतवे । श्वेताय श्वेतवर्णाय तुहिनाद्रिचराय च ॥

सुश्वेताय सुवक्त्राय नमः श्वेतशिखाय च ।
श्वेतास्याय महास्याय नमस्ते श्वेतलोहित ! ॥ १४ ॥
सुताराय विशिष्टाय नमो दुन्दुभिने हर ! । शतरूपविरूपाय नमः केतुमते सदा॥१५॥
ऋद्धिशोकविशोकाय पिनाकाय कपर्दिने । विपाशाय सुपाशाय नमस्ते पाशनाशिने!
सुहोत्राय हविष्याय सुब्रह्मण्याय सूरिणे । सुमुखाय सुवक्त्राय दुर्दमाय दमाय च ॥
कङ्काय कङ्करूपाय कङ्कणीकृतपन्नग ! । सनकाय नमस्तुभ्यं सनातन ! सनन्दन!॥१८॥
सनत्कुमारसारङ्गमारणाय महात्मने । लोकाक्षिणे त्रिधामाय नमो विरजसे सदा ॥
शङ्खपालाय शङ्खाय रजसे तमसे नमः । सारस्वताय मेघाय मेघवाहन ! ते नमः ॥
सुवाहाय विवाहाय विवादवरदाय च । नमः शिवाय रुद्राय प्रधानाय नमो नमः ॥
त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहात्मने नमः । संसाराय नमस्तुभ्यं नमः संहारहेतवे ॥
मोक्षाय मोक्षरूपाय मोक्षकर्त्रे नमोनमः । आत्मने ऋषये तुभ्यं स्वामिनेविष्णवेनमः
नमो भगवते तुभ्यं नागानां पतये नमः । ओङ्काराय नमस्तुभ्यं सर्वज्ञाय नमो नमः
सर्वाय च नमस्तुभ्यं नमो नारायणाय च । नमो हिरण्यगर्भाय आदिदेवाय ते नमः
नमोऽस्त्वजाय पतये प्रजानां व्यूहहेतवे । महादेवाय देवानामीश्वराय नमो नमः ॥
शर्वाय च नमस्तुभ्यं सत्याय शमनाय च । ब्रह्मणे चैव भूतानां सर्वज्ञाय नमो नमः
महात्मने नमस्तुभ्यं प्रज्ञारूपाय वै नमः । चितये चितिरूपाय स्मृतिरूपाय वै नमः
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय नमस्ते सम्विदेसदा । शिखराय नमस्तुभ्यं नीलकण्ठाय वै नमः
अर्द्धनारीशरीराय अव्यक्ताय नमो नमः । एकादशविभेदाय स्थाणवे ते नमः सदा ॥
नमः सोमाय सूर्य्याय भवाय भवहारिणे । यशस्कराय देवाय शङ्करायेश्वराय च ॥
नमोऽम्बिकाधिपतये उमायाः पतये नमः । हिरण्यबाहवे तुभ्यं नमस्ते हेमरेतसे ॥३२
नीलकेशाय वित्ताय शितिकण्ठाय वै नमः । कपर्दिने नमस्तुभ्यं नागाङ्गाभरणाय च
वृषारूढाय सर्वस्य हर्त्रे कर्त्रे नमो नमः ।
वीररामातिरामाय रामनाथाय ते विभो ! ॥ ३४ ॥
नमो राजाधिराजाय राज्ञामधिगताय ते । नमः पालाधिपतये पालाशाकृन्तते नमः

नमः केयूरभूषाय गोपते ! ते नमो नमः । नमः श्रीकण्ठनाथाय नमो लिकुचपाणये
भुवनेशाय देवाय वेदशास्त्र ! नमोऽस्तु ते । सारङ्गाय नमस्तुभ्यं राजहंसाय ते नमः
कनकाङ्गदहाराय नमः सर्पोपवीतिने । सर्पकुण्डलमालाय कटिसूत्रीकृताहिने ॥३८॥

वेदगर्भाय गर्भाय विश्वगर्भाय ते शिव !।

ब्रह्मोवाच

विररामेति संस्तुत्वा ब्रह्मणा सहितो हरिः ॥ ३९ ॥

एतत् स्तोत्रवरं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । यः पठेत् श्रावयेद्वापिब्राह्मणान्वेदपारगान्

स याति ब्रह्मणो लोके पापकर्मरतोऽपि वै ।

तस्माज्जपेत् पठेन्नित्यं श्रावयेद् ब्राह्मणान् शुभान् ॥ ४१ ॥

सर्वपापविशुद्ध्यर्थं विष्णुना परिभाषितम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विष्णुस्तवो नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

विष्णुप्रबोधवर्णनम्

सूत उवाच

अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ! । पश्यतां मां महादेवं भयंसर्वंविमुच्यताम्
युवां प्रसूतौ गात्राभ्यां ममपूर्वं महाबलौ । अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः
वामेपार्श्वेच मेविष्णुर्विश्वात्मा हृदयोद्भवः । प्रीतोऽहंयुवयोःसम्यग्वरंदद्मियथेप्सितम्
एवमुक्त्वा तु तं विष्णुंकराभ्यांपरमेश्वरः । पस्पर्शसुभगाभ्यान्तुकृपया तु कृपानिधिः
ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य महेश्वरम् । प्राह नारायणो नाथं लिङ्गस्थं लिङ्गवर्जितम्

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।

भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाऽव्यभिचारिणी ॥ ६ ॥

देवः प्रदत्तवान् देवाः ! स्वात्मन्यव्यभिचारिणीम् ।
ब्रह्मणे विष्णवे चैव श्रद्धां शीतांशुभूषणः ॥ ७ ॥

जानुभ्यामवनीं गत्वा पुनर्नारायणः स्वयम् । प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मन्दतरंवशी
आवयोर्देवदेवेश ! विवादमतिशोभनम् । इहाऽऽगतो भवान् यस्माद्विवादशमनाय नौ
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरोहरिम् । प्रणिपत्यस्थितंमूर्द्ध्नाकृताञ्जलिपुटंस्मयन्

श्रीमहादेव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते ! ।
वत्स ! वत्स ! हरे ! विष्णो ! पालयैतच्चराचरम् ॥ ११ ॥

त्रिधा भिन्नोह्यहंविष्णो ! ब्रह्मविष्णुभवाख्यया । सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः
सम्मोहं त्यज भो विष्णो! पालयैनंपितामहम् । पाद्मे भविष्यतिसुतःकल्पेतवपितामहः
तदा द्रक्ष्यसि माञ्चैवंसोऽपिद्रक्ष्यतिपद्मजः । एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवाऽन्तरधीयत
तदाप्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता । लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः
लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः । यस्तु लैङ्गंपठेन्नित्यमाख्यानंलिङ्गसन्निधौ
स याति शिवतां विप्रो नाऽत्र कार्य्या विचारणा ॥ १७ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विष्णुप्रबोधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

ब्रह्मप्रबोधनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं पाद्मे पुरा कल्पे ब्रह्मा पद्मोद्भवोऽभवत् । भवश्च दृष्टवांस्तेन ब्रह्मणा पुरुषोत्तमः
एतत् सर्वं विशेषेण साम्प्रतं वक्तुमर्हसि ।

सूत उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥ २ ॥

मध्ये चैकार्णवेतस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः । जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्चकिरीटीश्रीपतिर्हरिः
नारायणमुखोद्गीर्णसर्वात्मा पुरुषोत्तमः । अष्टबाहुर्महावक्षा लोकानां योनिरुच्यते ॥

किमप्यचिन्त्यं योगात्मा योगमास्थाय योगवित् ।

फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ॥ ५ ॥

महाभोगपतेर्भोगंसाध्वास्तीर्य्य महोच्छ्रयम् । तस्मिन् महतिपर्य्यङ्केशेतेचैकार्णवेप्रभुः
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभुविष्णुना । आत्मारामेण क्रीडार्थं लीलयाक्लिष्टकर्मणा
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् । वज्रदण्डं महोत्सेधं नाभ्यांसृष्टन्तुपुष्करम्
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीदुषः । हेमगर्भाण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः
चतुर्वक्त्रो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया । श्रिया युक्तेन दिव्येनसुशुभेनसुगन्धिना
क्रीडमानञ्च पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा शुभेक्षणम् । सविस्मयमथागम्य सौम्यसम्पन्नया गिरा

प्रोवाच को भवान् शे(ऽछे)ते ह्याश्रितो मध्यमम्भसाम् ।

अथ तस्याऽच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः ॥ १२ ॥

उदतिष्ठत पर्य्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः । प्रत्युवाचोत्तरञ्चैव कल्पे कल्पे प्रतिश्रयः
कर्त्तव्यञ्च कृतञ्चैव क्रियते यच्च किञ्चन । द्यौरन्तरिक्षं भूश्चैव परं पदमहं भुवः ॥१४॥
तमेवमुक्त्वा भगवान्विष्णुःपुनरथाऽब्रवीत् । कस्त्वंखलुसमायातःसमीपंभगवान्कुतः

क वा भूयश्च गन्तव्यं कश्च वा ते प्रतिश्रयः ।

को भवान्विश्वमूर्त्तिर्वै कर्त्तव्यं किञ्च ते मया ॥ १६ ॥

एवं ब्रुवन्तं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः । मायया मोहितः शम्भोरविज्ञाय जनार्दनम्
मायया मोहितं देवमविज्ञातं महात्मनः । यथा भवांस्तथैवाऽहमादिकर्त्ता प्रजापतिः
सविस्मयं वचःश्रुत्वाब्रह्मणोलोकतन्त्रिणः । अनुज्ञातश्चते नाथ! वैकुण्ठोविश्वसम्भवः
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् । इमानष्टादशद्वीपान्ससमुद्रान्सपर्वतान्
प्रविश्य सुमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् । ब्रह्मणस्तम्भपर्यन्तसप्तलोकान्सनातनान्

ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान्विष्णुर्महाभुजः । अहोऽस्य तपसोवीर्यमित्युक्त्वाच पुनः पुनः
अटित्वा विविधाँल्लोकान्विष्णुर्नानाविधाश्रयान् ।
ततो वर्षसहस्रान्ते नान्तं हि ददृशे यदा ॥ २३ ॥
तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः । नारायणो जगद्धातापितामहमथाऽब्रवीत्
भगवानादिरन्तश्च मध्यं कालो दिशानभः । नाहमन्तंप्रपश्यामि उदरस्य तवाऽनघः॥
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः । भगवानेवमेवाऽहं शाश्वतं हि ममोदरम् ॥
प्रविश्यलोकान्पश्यैताननौपम्यान्सुरोत्तम !। ततःप्रह्लादिनींवाणींश्रुत्वातस्याभिनन्द्यच
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः । तानेवलोकान्गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः॥२८॥
पर्य्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः ।
ज्ञात्वा गतिं तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः ।
विभुर्मनः कर्त्तुमियेष चाऽऽशु सुखं प्रसुप्तोऽहमिति प्रचिन्त्य ॥ २६ ॥
ततो द्वाराणि सर्वाणिपिहितानिसमीक्ष्यवै । सूक्ष्मंकृत्वात्मनोरूपंनाभ्यांद्वारमविन्दत
पद्मसूत्रानुसारेण अन्वपश्यत्पितामहः । उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥३१॥
विरराजाऽरविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः । ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः ॥
एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कृत्स्नशः । वर्त्तमाने तु सङ्घर्षे मध्ये तस्यार्णवस्यतु
कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः । शूलपाणिर्महादेवो हेमचीराम्बरच्छदः ॥
अगच्छद्यत्रसोऽनन्तोनागभोगपतिर्हरिः । शीघ्रंविक्रमतस्तस्यपद्भ्यामाक्रान्तपीडिताः
उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः । अत्युष्णश्चातिशीतश्च वायुस्तत्रववौपुनः
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंब्रह्माविष्णुमभाषत । अब्बिन्दवश्चशीतोष्णाः कम्पयन्त्यम्बुजंभृशम्
एतन्मे संशयं ब्रूहि किं वा त्वन्यच्चिकीर्षसि ।
एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्गतम् ॥ ३८ ॥
श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरान्तकृत् । किंनुखल्वत्र मेनाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम्
वदति प्रियमत्यर्थं मन्युश्चाऽस्य मया कृतः । इत्येवं मनसा ध्यात्वाप्रत्युवाचेदमुत्तरम्
किमत्र भगवानद्य पुष्करे जातसम्भ्रमः । किं मया च कृतं देव ! यन्मां प्रियमनुत्तमम्

भाससे पुरुषश्रेष्ठ ! किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः । एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रानुगन्ततः ॥
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा वेदनिधिःप्रभुः । योऽसौतवोदरंपूर्वंप्रविष्टोऽहंत्वदिच्छया
यथा ममोदरे लोकाः सर्वेदृष्टास्त्वयाप्रभो !। तथैवदृष्टाःकात्स्न्येनमयालोकास्तवोदरे
ततो वर्षसहस्रात्तु उपावृत्तस्य मेऽनघ !। त्वया मत्सरभावेन मां वशीकर्त्तुमिच्छता ॥

आशु द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समन्ततः ।
ततो मया महाभाग ! सञ्चिन्त्य स्वेन तेजसा ॥ ४६ ॥

लब्धो नाभिप्रदेशेन पद्मसूत्राद्विनिर्गमः । माभूत्तेमनसोऽल्पोऽपिव्याघातोऽयंकथञ्चन
इत्येषानुगतिर्विष्णो ! कार्याणामौपसर्पिणी । यन्मयानन्तरंकार्यंब्रूहिकिंकरवाण्यहम्
ततः परममेयात्मा हिरण्यकशिपो रिपुः । अनवद्यांप्रियामिष्टांशिवांवाणींपितामहात्
श्रुत्वा विगतमात्सर्यं वाक्यमस्मै ददौ हरिः । न ह्येवमीदृशं कार्यं मयाध्यवसितन्तव॥
त्वाम्बोधयितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया । आशु द्वाराणिसर्वाणिघटितानिमयात्मनः

न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण ! यन्मयाऽपकृतं तव ॥ ५२ ॥

अस्मान्मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ! । नाहम्भवन्तंशक्नोमिसोढुं तेजोमयं गुरुम्
सहोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो !। पुत्रो भव ममारिघ्न ! मुदं प्राप्स्यसिशोभनाम्
सद्भाववचनं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो ! । सत्त्वञ्च नो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः
अद्यप्रभृति सर्वेशः श्वेतोष्णीषविभूषितः । पद्मयोनिरितिह्येवं ख्यातोनाम्नाभविष्यसि
पुत्रोमेत्वंभवब्रह्मन्सप्तलोकाधिपः प्रभो !। ततः स भगवान्देवो वरं दत्वा किरीटिने॥
एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः । प्रत्यासन्नमथायान्तंबालार्काभंमहाननम्
भवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् । अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री ध्वस्तशिरोरुहः ॥
दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतः स्थितः । लोकप्रभुःस्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली
मेढ्रेणोर्द्ध्वेन महता नर्दमानोऽतिभैरवम् । कःखल्वेषपुमान्विष्णो! तेजोराशिर्महाद्युतिः
व्याप्य सर्वादिशो द्याञ्च इत एवाऽभिवर्तते । तेनैवमुक्तोभगवान्विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत्
पद्भ्यांतलनिपातेनयस्यविक्रमतोऽर्णवे । वेगेनमहताऽऽकाशेऽप्युत्थिताश्चजलाशयाः

स्थूलाद्विविश्वतोऽत्यर्थं सिच्यसे पद्मसम्भव ! ।
घ्राणजेन च वातेन कम्प्यमानं त्वया सह ॥ ६४ ॥

दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं ममनाभिजम् । समागतोभवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृत्प्रभुः
भवानहञ्च स्तोत्रेण उपतिष्ठाव गोध्वजम् । ततःक्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षंब्रह्माप्रोवाचकेशवम्
भवान्ननूनमात्मानं वेत्ति लोकप्रभुंविभुम् । ब्रह्माणंलोककर्तारंमां न वेत्सि सनातनम्
को ह्यसौ शङ्करोनाम आवयोर्व्यतिरिच्यते । तस्यतत्क्रोधजंवाक्यंश्रुत्वाहरिरभाषत॥
मामैवं वद कल्याण! परिवादं महात्मनः । महायोगेन्धनो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः ॥
हेतुरस्याऽथ जगतःपुराणपुरुषोऽव्ययः । बीजी खल्वेष बीजानां ज्योतिरेकः प्रकाशते
बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम् । प्रधानमव्ययो योनिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ॥
मम चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः । यःकःस इतिदुःखार्त्तैर्दृश्यतेयतिभिःशिवः
एष बीजी भवान्बीजमहं योनिःसनातनः । सएवमुक्तोविश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमपृच्छत
भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः । एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥

ज्ञात्वा च विविधोत्पत्तिं ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः ।
इमं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥ ७५ ॥

अस्मान्महत्तरं भूतं गुह्यमन्यन्न विद्यते । महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ॥
द्विविधञ्चैवमात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः । निष्कलस्तत्रयोऽव्यक्तःसकलश्चमहेश्वरः
अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च । पुरा लिङ्गोद्भवं बीजंप्रथमंत्वादिसर्गिकम्
मम योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात् । हिरण्मयमकूपारे योन्यामण्डमजायत॥
शतानि दशवर्षाणामण्डमप्सुप्रतिष्ठितम् । अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुनातद्द्विधा कृतम्
कपालमेकं द्यौर्यज्ञे कपालमपरं क्षितिः । उल्बन्तस्य महोत्सेधो योऽसौ कनकपर्वतः
ततश्च प्रतिसन्ध्यात्मा देवदेवो वरः प्रभुः । हिरण्यगर्भो भगवांस्त्वमियज्ञे चतुर्मुखः॥
आतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यंलोकमवेक्ष्यच । कोऽहमित्यपिच ध्यातेकुमारास्तेऽभवंस्तदा

प्रियदर्शनास्तु यतयो यतीनां पूर्वजास्तव ।
भूयोवर्षसहस्रान्ते ततएवाऽऽत्मजास्तव ॥ ८४ ॥

भुवनानलसङ्काशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः । श्रीमान्सनत्कुमारश्च ऋभुश्चैवोर्ध्वरेतसौ ॥
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः । उत्पन्नाःसमकालन्तेबुद्ध्यातीन्द्रियदर्शनाः
उत्पन्नाः प्रतिभात्मानोजगतां स्थितिहेतवः । नारप्स्यन्तेचकर्माणितापत्रयविवर्जिताः
अल्पसौख्यंबहुक्लेशंजराशोकसमन्वितम् । जीवनं मरणञ्चैव सम्भवश्च पुनः पुनः
अल्पभूतं सुखं स्वर्गे दुःखानि नरके तथा । विदित्वा चागमंसर्वमवश्यंभवितव्यताम्
ऋभुंसनत्कुमारश्च दृष्ट्वा तववशेस्थितौ । त्रयस्तुत्रीन्गुणान्हित्वाचात्मजाःसनकादयः
वर्तेन तु ज्ञानेन प्रवृत्तास्ते महौजसः । ततस्तेषु प्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु॥६१॥
भविष्यसि विमूढस्त्वं माययाशङ्करस्य तु । एवं कल्पेतु वैवृत्ते सञ्ज्ञानश्यति तेऽनघ!

कल्पे शेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ।
सर्वेषां ह्यैश्वरी मया जागृतिः समुदाहृता ॥ ६३ ॥

यथैषपर्वतोमेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः । तस्य चेदं हि माहात्म्यं विद्धि देववरस्य ह ॥६४
ज्ञात्वाचेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् । महादेवं महाभूतं भूतानां वरदं प्रभुम् ॥
प्रणवेनाऽथसाम्नातुनमस्कृत्यजगद्गुरुम् । त्वाञ्चमाञ्चैवसंक्रुद्धोनिश्वासान्निर्दहेदयम्
एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठन्महाबलम् । अहंत्वामग्रतःकृत्वास्तोष्याम्यनलसप्रभुम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ब्रह्मप्रबोधनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्माविष्णुस्तुतिवर्णनम्

सूत उवाच

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः । अतीतैश्च भविष्यैश्चैव वर्त्तमानैस्तथैव च
नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ।

विष्णुरुवाच

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतानन्ततेजसे ॥ २ ॥

नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः । सुमेढ्रायाऽर्च्य ! मेढ्राय दण्डिने रूक्षरेतसे॥
नमोज्येष्ठाय श्रेष्ठाय पूर्वाय प्रथमाय च । नमो मान्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः
गह्वराय घटेशाय व्योमचीराम्बराय च । नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवे नमः ॥
वेदानां प्रभवे चैव स्मृतीनां प्रभवे नमः । प्रभवे कर्मदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥
नमोयोगस्य प्रभवे साङ्ख्यस्य प्रभवे नमः । नमो ध्रुवनिबद्धानां ऋषाणांप्रभवे नमः
ऋक्षाणांप्रभवे तुभ्यं ग्रहाणां प्रभवेनमः । वैद्युताशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः ॥८॥
महोदधीनां प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः । अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः ॥९
नमो नदीनां प्रभवे नदानां प्रभवे नमः । महौषधीनां प्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः ॥
धर्मवृक्षाय धर्माय स्थितीनां प्रभवे नमः । प्रभवेच परार्द्धस्य परस्य प्रभवे नमः॥११॥

नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः ।
क्षणानां प्रभवे चैव लवानां प्रभवे नमः ॥ १२ ॥

अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः । ऋतूनां प्रभवे तुभ्यं संख्यायाःप्रभवे नमः
प्रभवे चाऽपरार्द्धस्य परार्द्धप्रभवे नमः । नमः पुराणप्रभवे सर्गाणां प्रभवे नमः ॥ १४
मन्वन्तराणां प्रभवे योगस्य प्रभवे नमः । चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥
कल्पोदयनिबन्धानां वार्त्तानां प्रभवे नमः । नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्माधिपतये नमः॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्याधिपतये नमः । नमो व्रताधिपतये व्रतानां प्रभवे नमः ॥
मन्त्राणां प्रभवे तुभ्यं मन्त्राधिपतये नमः । पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः ॥
वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभायच । नमः पशूनाम्पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥१९॥
प्रजापतीनां पतये सिद्धीनां पतये नमः । दैत्यदानवसङ्घानां रक्षसां पतये नमः ॥ २०
गन्धर्वाणाञ्च पतये यक्षाणां पतये तमः । गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः ॥२१
सर्वगुह्यपिशाचानां गुह्याधिपतये नमः । गोकर्णायच गोप्त्रे च शङ्कुकर्णाय वै नमः ॥
वराहायाऽप्रमेयाय ऋक्षाय विरजाय च । नमो सुराणां पतये गणानां पतये नमः ॥

अम्भसां पतये चैव ओजसां पतये नमः ।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीपते भूपते नमः ॥ २४ ॥

बलाबलसमूहाय अक्षोभ्यक्षोभणायच । दीप्तश्रृङ्गैकश्रृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने ॥२५ ॥
नमः स्थैर्य्याय वपुषे तेजसानुव्रताय च । अतीताय भविष्याय वर्त्तमानाय वै नमः॥
सुवर्चसे च वीर्य्याय शूराय ह्यजिताय च । वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने ॥२७
नमो भूताय भव्याय महते प्रभवाय च । जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ॥२८
अणवे महते चैव नमः सर्वगताय च । नमो बन्धाय मोक्षाय स्वर्गाय नरकाय च ॥
नमोभवाय देवायईज्याय याजकाय च । प्रत्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वायाऽतिगुणाय च
नमः पाशाय शस्त्राय नमोऽस्त्राभरणाय च । हुताय उपहूतायप्रहुतप्राशिताय च ॥३१
नमोऽस्त्विष्टाय पूर्त्ताय अग्निष्टोमद्विजाय च । सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथायच

अहिंसायाप्रलोभाय पशुमन्त्रौषधाय च ।
नमः पुष्टिप्रदानाय सुशीलाय सुशीलिने ॥ ३३ ॥

अतीताय भविष्याय वर्त्तमानाय ते नमः । सुवर्चसे च वीर्य्याय शूराय ह्यजिताय च
वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने । नमो भूताय भव्याय महते चाऽभयाय च॥३५
जरासिद्ध ! नमस्तुभ्यमयसे वरदाय च । अधरे महते चैव नमः सस्तुपताय च॥३६॥

नमश्चेन्द्रियपत्राणां लेलिहानाय स्रग्विणे ।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतः शिरसे नमः ॥ ३७ ॥

सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाऽप्रतिमाय च । नमो हव्याय कव्याय हव्यवाहाय वै नमः
नमः सिद्धाय मेध्याय इष्टायेज्यापरायच । सुघोराय सुघोराय अक्षोभ्यक्षोभणाय च
सुप्रजाय सुमेधाय दीप्ताय भास्कराय च । नमो बुद्धाय शुद्धाय विस्तृताय मताय च
नमः स्थूलाय सूक्ष्माय दृश्यादृश्याय सर्वशः । वर्षते ज्वलते चैव वायवे शिशिराय च
नमस्ते वक्रकेशाय उरुवक्षः शिखाय च । नमोनमः सुवर्णाय तपनीयनिभाय च ॥
विरूपाक्षाय लिङ्गाय पिङ्गलाय महौजसे । वृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणायच ॥
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च । पिशिताय पिशङ्गाय पीतायच निषङ्गिणे
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः । नमईज्याय पूज्याय उपजीव्याय वै नमः॥
नमः क्षेम्याय वृद्धाय वत्सलाय नमो नमः । नमो भूतायसत्यायसत्यासत्यायवै नमः

नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे । नमोगौराय श्यामाय कद्रवे लोहिताय च
महासन्ध्याभ्रवर्णाय चारुदीप्ताय दीक्षिणे । नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय कपर्दिने॥
अप्रमाणाय सर्वाय अव्ययायाऽमराय च । नमो रूपाय गन्धाय शाश्वतायाऽक्षतायच
पुरस्ताद्वृहते चैव विभ्रान्ताय कृताय च ।
दुर्गमाय महेशाय क्रोधाय कपिलाय च ॥ ५० ॥
तर्क्यातर्क्यशरीराय बलिने रंहसाय च । सिकत्याय प्रवाह्याय स्थिताय प्रसृताय च
सुमेधसे कुलालाय नमस्ते शशिखण्डिने । चित्राय चित्रवेशाय चित्रवर्णाय मेधसे
चेकितानाय तुष्टाय नमस्ते निहिताय च । नमः क्षान्ताय दान्ताय वज्रसंहननाय च
रक्षोघ्नाय विषघ्नाय शितिकण्ठोर्ध्वमन्यवे । लेलिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च
सम्मोदायप्रमोदाय यातवेद्याय ते नमः । अनामयाय सर्वाय महाकालाय वै नमः ॥
प्रणवप्रणवेशाय भगनेत्रान्तकाय च । मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञान्तकाय च ॥५६॥
सर्वभूतात्मभूताय सर्वेशातिशयाय च । पुरघ्नाय सुशस्त्राय धन्विनेऽथ परश्वधे ॥५७
पूषदन्तविनाशाय भगनेत्रान्तकाय च । कामदाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च ॥५८ ॥
रङ्गे करालवक्त्राय नागेन्द्रवदनाय च । दैत्यानामन्तकेशाय दैत्याक्रन्दकराय च ॥५६
हिमघ्नाय च तीक्ष्णाय आर्द्रचर्मधराय च ।
श्मशानरतिनित्याय नमोऽस्तूल्मुकधारिणे ॥६० ॥
नमस्ते प्राणपालाय मुण्डमालाधराय च । प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय च ॥
नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च । जटिने मुण्डिने चैव व्यालयज्ञोपवीतिने ॥
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय उपनृत्यप्रियाय च । मन्यवे गीतशीलायमुनिभिर्गायते नमः ॥
कटङ्कटाय तिग्माय अप्रियाय प्रियाय च । विभीषणाय भीष्माय भगप्रमथनाय च ॥
सिद्धसङ्घानुगीताय महाभागाय वै नमः । नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटितायच
नर्दते कूर्दते चैव नमः प्रमुदितात्मने । नमोमृडाय श्वसते धावतेऽधिष्ठिते नमः ॥ ६६
ध्यायते जृम्भते चैव रुदते द्रवते नमः । वल्गते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे ॥ ६७॥
नमोऽकृत्याय कृत्याय मुण्डाय किकटाय च । नम उन्मत्तदेहाय किङ्किणीकायवैनमः

नमो विकृतवेशाय क्रूरायाऽमर्षणाय च।
अप्रमेयाय गोप्त्रे च दीप्तायाऽनिर्गुणाय च ॥६६ ॥
वामप्रियाय वामाय चूडामणिधराय च। नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रमिताय च ॥
नमो गुण्याय गुह्याय अगम्यगमनाय च। लोकधात्रीत्वियंभूमि:पादौसज्जनसेवितौ
सर्वेषां सिद्धियोगानामधिष्ठानंतवोदरम्। मन्येऽन्तरीक्षंविस्तीर्णंतारागणविभूषितम्
स्वातेः पथइवाऽऽभातिश्रीमान्हारस्तवोरसि। दिशोदशभुजास्तुभ्यंकेयूराङ्गदभूषिताः
विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाञ्जनचयोपमः। कण्ठस्ते शोभते श्रीमान्हेमसूत्रविभूषितः ॥
दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षमनौपम्यं मुखं तथा। पद्ममालाकृतोष्णीषंशिरोद्यौःशोभतेऽधिकम्
दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्य्यं शैलेऽनिले बलम्।
औष्ण्यमग्नौ तथा शैत्यमप्सु शब्दोऽम्बरे तथा ॥ ७६ ॥
अक्षरान्तरनिष्पन्दाद् गुणानेतान्विदुर्बुधाः। जपो जप्योमहादेवोमहायोगो महेश्वरः
पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः। तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दवर्द्धनः ॥७८ ॥
हयशीर्षापयोधाता विधाता भूतभावनः। बोद्धव्यो बोधिता नेतादुर्द्धर्षो दुष्प्रकम्पनः
बृहद्रथो भीमकर्माबृहत्कीर्त्तिर्धनञ्जयः। घण्टाप्रियो ध्वजीछत्रीपिनाकीध्वजिनीपतिः
कवची पट्टिशी खड्गीधनुर्हस्तःपरश्वधी। अघस्मरोऽनघः शूरो देवराजोऽरिमर्दनः ॥
त्वांप्रसाद्यपुराऽस्माभिर्द्विषन्तोनिहतायुधि। अग्निःसदार्णवाम्भस्त्वंपिबन्नपिनतृप्यसे
क्रोधाकारः प्रसन्नात्माकामदःकामगःप्रियः। ब्रह्मचारीच गाधश्च ब्रह्मण्यःशिष्टपूजितः
देवानामक्षयः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः। हव्यन्तवेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः ॥
प्रीते त्वयि महादेव ! वयं प्रीता भवामहे ॥ ८४ ॥
भवानीशो नादिमांस्त्वञ्च सर्वलोकानां त्वं ब्रह्मकर्त्तादिसर्गः।
सांख्याः प्रकृतेः परंत्वांविदित्वा क्षीणध्यानस्त्वाममृत्युं विशन्ति ॥८५॥
योगाश्च त्वां ध्यायिनो नित्यसिद्धं ज्ञात्वा योगान्सन्त्यजन्ते पुनस्तान्।
येचाऽप्यन्ये त्वां प्रपन्ना विशुद्धाः। स्वकर्मभिस्ते दिव्यभोगा भवन्ति॥८६
अप्रसंख्येयतत्वस्य यथा विद्मःस्वशक्तितः। कीर्त्तितंतवमाहात्म्यमपारस्यमहात्मनः ॥

शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ।

सूत उवाच

य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या ब्रह्मनारायणस्तवम् ॥ ८८ ॥

श्रावयेद्वाद्विजान्विद्वान्श्रृणुयाद्वासमाहितः । अश्वमेधायुतंकृत्वायत्फलंतदवाप्नुयात्

पापाचारोऽपि यो मर्त्यः श्रृणुयाच्छिवसन्निधौ ।

जपेद्वाऽपिविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ९० ॥

श्राद्धे वा दैविके कार्य्ये यज्ञे वाऽवभृथान्तिके ।

कीर्त्तयेद्वा सतां मध्ये स याति ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥९१ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ब्रह्मविष्णुस्तुतिर्नामैकविंशोऽध्याय ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

स्तुतिप्रसन्नेन शिवेन ब्रह्मनारायणयोःकृतेआश्वासनं ब्रह्मणासृष्टिकरणम्

सूत उवाच

अत्यन्तावनतौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः । प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवत्सत्यकीर्त्तनात ॥१॥

उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः । पिनाकी खण्डपरशुः सुप्रीतस्तु त्रिलोचनः ॥

ततः स भगवान्देवः श्रुत्वा वागमृतं तयोः ।

जानन्नपि महादेवः क्रीडापूर्वमथाऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ । समेतावम्बुजाभाक्षावस्मिन्घोरे महाप्लवे

तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।

भगवन् ! किन्तु यत्तेऽद्य न विज्ञातं त्वया विभो ! ॥५ ॥

विभो ! रुद्र ! महामाय ! इच्छया वां कृतौ त्वया ।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा अभिनन्द्याऽभिमान्य च ॥ ६ ॥

उवाच भगवान्देवो मधुरं श्लक्ष्णया गिरा ।

भो भो ! हिरण्यगर्भ ! त्वां त्वाञ्च कृष्ण ! ब्रवीम्यहम् ॥ ७ ॥

प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया । भवन्तौ हृदयस्याऽस्य मम हृद्यतरावुभौ युवाभ्यां किं ददाम्यद्यवराणावरमीप्सितम् । अथोवाचमहाभागोविष्णुर्भवमिदंवच सच मम कृतं देव ! परितुष्टोऽसि मे यदि । त्वयि मे सुप्रतिष्ठा तु भक्तिर्भवतु शङ्कर ! एवमुक्तस्तु विज्ञाय सम्भावयत केशवम् । प्रददौ च महादेवो भक्तिं निजपदाम्बुजे ॥ भवान्सर्वस्यलोकस्यकर्त्तात्वमधिदैवतम् । तदेवस्वस्तितेवत्स!गमिष्याम्यम्बुजेक्षण! एवमुक्त्वा तु भगवान् ब्रह्माणञ्चापि शङ्करः । अनुगृह्याऽस्पृशद्देवो ब्रह्माणं परमेश्वरः

कराभ्यां सुशुभाभ्याञ्च प्राह हृष्टतरः स्वयम् ।

मत्समस्त्वं न सन्देहो वत्स ! भक्तश्च मे भवान् ॥ १४ ॥

स्वस्त्यस्तुतेगमिष्यामिसंज्ञाभवतुसुव्रत ! । एवमुक्त्वातुभगवांस्ततोऽन्तर्धानमीश्वरः गतवान् गणपो देवः सर्वदेवनमस्कृतः । अथाप्यसंज्ञागोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः प्रजाः स्रष्टुमनाश्चक्रे तप उग्रं पितामहः । तस्यैव तप्यमानस्य न किञ्चित् समवर्तत ततो दीर्घेण कालेनदुःखात् क्रोधोह्यजायत । क्रोधाविष्टस्यनेत्राभ्यांप्रापतन्नश्रुबिन्दवः

ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ।

महाभागा महासत्वाः स्वस्तिकैरप्यलङ्कृताः ॥ १६ ॥

प्रकीर्णकेशाः सर्पास्तेप्रादुर्भूतामहाविषाः । सर्पांस्तानग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दयत् अहो! धिक् तपसो मह्यं फलमादृशकं यदि । लोकवैनाशिकी यज्ञे आदावेव प्रजा मम तस्यतीव्राऽभवन्मूर्च्छाक्रोधामर्षसमुद्भवा । मूर्च्छाभिपरितापेनजहौप्राणान् प्रजापतिः तस्याप्रतिमवीर्य्यस्यदेहात्कारुण्यपूर्वकम् । अथैकादश ते रुद्रा रुदन्तोऽभ्यक्रमस्तथा रोदनात् खलुरुद्रत्वतेषु वै समजायत । ये रुद्रास्तेखलुप्राणा ये प्राणास्तेतदात्मकाः प्राणाः प्राणवतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः । अत्युग्रस्यमहत्वस्यसाधुराचरितस्य च प्राणास्तस्यददौभूयस्त्रिशूलीनीललोहितः । लब्धासून् भगवान्ब्रह्मादेवदेवमुमापतिम् प्रणम्यसंस्थितोऽपश्यद्गायत्र्याविश्वमीश्वरम् । सर्वलोकमयंदेवंदृष्ट्वास्तुत्वापितामहः

ततो विस्मयमापन्नः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः । उवाच वचनं शर्वं सद्यादिस्त्वं कथं विभो !
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ब्रह्मणापश्चात्तापकरणं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सनानाकल्पवर्णनं चतुर्विधसर्गचतुष्पदागायत्रीप्रतिपादनम्

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो भगवान्भवः । ब्रह्मरूपी प्रबोधार्थं ब्रह्माणं प्राहसस्मितम्
श्वेतकल्पो यदाह्यासीदहमेवतदाऽभवम् । श्वेतोष्णीषःश्वेतमाल्यःश्वेताम्बरधरःसितः
श्वेतास्थिः श्वेतरोमा च श्वेतासृक् श्वेतलोहितः ।
तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ ॥ ३ ॥
मत्प्रसूता च देवेशी श्वेताङ्गी श्वेतलोहिता । श्वेतवर्णा तदाह्यासीद्गायत्रीब्रह्मसञ्ज्ञिता
तस्मादहञ्च देवेश ! त्वया गुह्येन वै पुनः । विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातत्वमागतः
सद्योजातेतिब्रह्मैतद्गुह्यञ्चैतत्प्रकीर्तितम् । तस्माद्गुह्यत्वमापन्नंयेवेत्स्यन्तिद्विजातयः
मत्समीपंगमिष्यन्तिपुनरावृत्तिदुर्लभम् । यदाचैव पुनस्त्वासील्लोहितोनामनामतः ॥
मत्कृतेन च वर्णेनकल्पोवैलोहितः स्मृतः । तदालोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसम्भवा
लोहिताक्षी स्तनवती गायत्री गौः प्रकीर्तिता ।
ततोऽस्या लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्ययात् ॥ ६ ॥
वामत्वाच्चैव देवस्यवामदेवत्वमागतः । तत्रापि च महासत्व! त्वयाऽहंनियतात्मना
विज्ञातःस्वेनयोगेनतस्मिन्वर्णान्तरेस्थितः । ततश्च वामदेवेतिख्यातियातोऽस्मिभूतले
ये चापि वामदेवत्वं ज्ञास्यन्तीह द्विजातयः । रुद्रलोकंगमिष्यन्तिपुनरावृत्तिदुर्लभम्
यदाहं पुनरेवेह पीतवर्णो युगक्रमात् । मत्कृतेन च नाम्ना वै पीतकल्पोऽभवत्तदा ॥
मत्प्रसूता च देवेशी पीताङ्गी पीतलोहिता । पीतवर्णास्तदाह्यासीद्गायत्रीब्रह्मसंज्ञिता

तत्रापि च महासत्त्व ! योगयुक्तेन चेतसा । यस्मादहन्ते विज्ञातो योगतत्परमानसः
तत्र तत्पुरुषत्वेन विज्ञातोऽहं त्वया पुनः । तस्मात्तत्पुरुषत्वं वै ममैतत्कनकाण्डज !
ये मां रुद्रञ्च रुद्राणीं गायत्रीं वेदमातरम् । वेत्स्यन्ति तपसा युक्ताविमलाब्रह्मसङ्गताः
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । यदाऽहं पुनरेवाऽऽसं कृष्णवर्णो भयानकः
मत्कृतेनच वर्णेन सङ्कल्पः कृष्ण उच्यते । तत्राऽहं कालसङ्काशः कालोलोकप्रकालकः

विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन् ! घोरो घोरपराक्रमः ।

मत्प्रसूता च गायत्री कृष्णाङ्गी कृष्णलोहिता ॥ २० ॥

कृष्णरूपाच देवेश! तदासीद्ब्रह्मसंज्ञिता । तस्माद्घोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्तिभूतले
तेषामघोरः शान्तश्चभविष्याम्यहमव्ययः । पुनश्चविश्वरूपत्वं यदा ब्रह्मन् ! ममाऽभवत्
तदाऽप्यहं त्वया ज्ञातःपरमेणसमाधिना । विश्वरूपा च संवृत्तागायत्रीलोकधारिणी

तस्मिन् विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले ।

तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव हि ॥ २४ ॥

यस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः । विश्वरूपातथाचेयंसावित्रीसमुदाहृता
सर्वरूपा तथा चेमे संवृत्ताममपुत्रकाः । चत्वारस्तेमयाख्याताःपुत्रा वै लोकसम्मताः
यस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजानाञ्चभविष्यति । सर्वभक्षा च मेध्या च वर्णतश्चभविष्यति
मोक्षोधर्मस्तथाऽर्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम् । यस्माद्वेदाश्चवेद्यश्चचतुर्धा वै भविष्यति
भूतग्रामाश्च चत्वार आश्रमाश्च तथैव च । धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो ममपुत्रकाः
तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम् । चतुर्धाऽवस्थितश्चैव चतुष्पादोभविष्यति
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोक स्वर्लोकश्चमहस्तथा । जनस्तपश्चसत्यञ्चविष्णुलोकस्ततःपरम्
अष्टाक्षरस्थितो लोकः स्थाने स्थानेतदक्षरम् । भूर्भुवः स्वर्महश्चैव पादाश्चत्वारएवच
भूर्लोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम् । स्वर्लोको वै तृतीयश्चचतुर्थस्तुमहस्तथा
पञ्चमस्तु जनस्तत्र षष्ठश्च तप उच्यते । सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भवगामिनाम् ॥

विष्णुर्लोकः स्मृतं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।

स्कान्दमौमन्तथा स्थानं सर्वसिद्धिसमन्वितम् ॥ ३५ ॥

रुद्रलोकःस्मृतस्तस्मात्पदंतद्योगिनांशुभम् । निर्ममानिरहङ्काराःकामक्रोधविवर्जिताः
द्रक्ष्यन्ति तद्विजायुक्ताध्यानतत्परमानसाः । यस्माच्चतुष्पदाह्येषात्वयादृष्टासरस्वती
पादान्तंविष्णुलोकवैकौमारंशान्तमुत्तमम् । ओमंमाहेश्वरञ्चैवतस्माद्दृष्टाचतुष्पदा
तस्मात्तु पशवः सर्वेभविष्यन्तिचतुष्पदाः । ततश्चैषांभविष्यन्तिचत्वारस्तेपयोधराः

सोमश्च मन्त्रसंयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्च्युतः ।

जीवः प्राणभृतां ब्रह्मन् ! पुनः पीतस्तनाः स्मृताः ॥ ४० ॥

तस्मात्सोममयञ्चैवअमृतंजीवसंज्ञितम् । चतुष्पादाभविष्यन्तिश्वेतत्वञ्चास्यतेनतत्
यस्माच्चैव क्रियाभूत्वाद्विपदा च महेश्वरी । दृष्टापुनस्तथैवैषासाविश्रीलोकभाविनी
तस्माच्च द्विपदाः सर्वेद्विस्तनाश्चनराः शुभाः । तस्माच्चेयमजाभूत्वासर्ववर्णामहेश्वरी
या वै दृष्टा महासत्वा सर्वभूतधरात्वया । तस्माच्च विश्वरूपत्वं प्रजानांवैभविष्यति
अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति । अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः

तस्मात् सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः ।

तपसा भावितात्मानो ये मां द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥ ४६ ॥

ईशित्वेचवशित्वेचसर्वगंसर्वतःस्थितम् । रजस्तमोभ्यांनिर्मुक्तास्त्यक्त्वामानुष्यकंवपुः
मत्समीपमुपेष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । इत्येवमुक्तो भगवान् ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः!
प्रणम्य प्रयतो भूत्वापुनराह पितामहः । य एवं भगवन् ! विद्वान् गायत्र्यावैमहेश्वरम्

विश्वात्मानं हि सर्वं त्वां गायत्र्यास्तव चेश्वर ! ।

तस्य देहि परं स्थानं तथाऽस्त्विति च सोऽब्रवीत् ॥ ५० ॥

तस्माद् विद्वान् हि विश्वत्वमस्याश्चाऽस्य महात्मनः ।

स याति ब्रह्मसायुज्यं वचनाद् ब्रह्मणः प्रभोः ॥ ५१ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सनानाकल्पवर्णनं चतुष्पदागायत्र्यासहितंचतुर्विधसर्गवर्णनं
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मणाशिवसम्वादः श्वेतमुनिरूपेणशिवस्यद्वापरान्तेयोगेन शिवतत्त्वसाक्षात्करणायाविर्भावकथनं तच्छिष्यपरम्परावर्णनम्

सूत उवाच

श्रुत्वैवमखिलं ब्रह्मा रुद्रेण परिभाषितम् । पुनः प्रणम्य देवेशं रुद्रमाह प्रजापतिः ॥१
भगवन् ! देवदेवेश ! विश्वरूप ! महेश्वर !। उमाधव! महादेव! नमो लोकाभिवन्दित!
विश्वरूप ! महाभाग ! कस्मिन्काले महेश्वर ! ।
या इमास्ते महादेव ! तनवो लोकवन्दिताः ॥ ३ ॥
कस्यांवायुगसम्भूत्यांद्रक्ष्यन्तीहद्विजातयः । केन वा तपसा देव ! ध्यानयोगेनकेनवा
नमस्ते वै महादेव! शक्यो द्रष्टुं द्विजातिभिः । तस्यतद्वचनंश्रुत्वाशर्वःसम्प्रेक्ष्य तं पुरः
स्मयन्प्राह महादेवो ऋग्यजुःसामसम्भवः ।

श्रीभगवानुवाच

तपसा नैव वृत्तेन दानधर्मफलेन च ॥ ६ ॥
न तीर्थफलयोगेनक्रतुभिर्वासदक्षिणैः । न वेदाध्ययनैर्वापि न वित्तेन न वेदनैः ॥ ७ ॥
न शक्यं मानवैर्द्रष्टुम् ऋते ध्यानादहं त्विहम् । सप्तमेचैववाराहेततस्तस्मिन्पितामह
कल्पेश्वरोऽथ भगवान् सर्वलोकप्रकाशनः । मनुर्वैवस्वतश्चैव तव पौत्रो भविष्यति ॥
तदा चतुर्युगावस्थे तस्मिन्कल्पे युगान्तिके । अनुग्रहार्थंलोकानांब्राह्मणानां हिताय च
उत्पत्स्यामि तदा ब्रह्मन् ! पुनरस्मिन् युगान्तिके । युगप्रवृत्याचतदातस्मिंश्चप्रथमेयुगे
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन् ! यदा व्यासः स्वयं प्रभुः ।
तदाऽहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन् युगान्तिके ॥ १२ ॥
भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः । हिमवच्छिखरे रम्ये छागलेपर्वतोत्तमे
तत्रशिष्याःशिखायुक्ताभविष्यन्तितदामम । श्वेतःश्वेतशिखश्चैवश्वेतास्यःश्वेतलोहितः
चत्वारस्तु महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः । ततस्तं ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा ब्रह्मगतिं पराम्

मत्समीपं गमिष्यन्ति ध्यानयोगपरायणाः । ततः पुनर्यदा ब्रह्मन् ! द्वितीयेद्वापरे प्रभुः प्रजापतिर्यदा व्यासः सद्योनाम भविष्यति । तदा लोकहितार्थायसुतारोनामनामतः

भविष्यामि कलौ तस्मिन् शिष्यानुग्रहकाम्यया ।

तत्रापि मम ते शिष्या नामतः परिकीर्त्तिताः ॥ १८ ॥

दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋर्चीकः केतुमांस्तदा । प्राप्य योगं तथाध्यानंस्थाप्यब्रह्मचभूतले रुद्रलोकं गमिष्यन्ति सहचारित्वमेव च । तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः तदाऽप्यहं भविष्यामि दमनस्तुयुगान्तिके । तत्रापिचभविष्यन्तिचत्वारोममपुत्रकाः विकोशश्च विकेशश्च विपाशः शापनाशनः । तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेनमहौजसः रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । चतुर्थे द्वापरे चैव यदाव्यासोऽङ्गिरा स्मृतः तदाऽप्यहं भविष्यामिसुहोत्रोनामनामतः । तत्रापिमम ते पुत्राश्चत्वारोऽपितपोधनाः द्विजश्रेष्ठा भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः । सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दुरो दुरतिक्रमः

प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषाः ।

तेऽपि तेनैव मार्गेण योगयुक्ता महौजसः ॥ २६ ॥

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा तदा चापि भविष्यामिकङ्कोनाममहातपाः । अनुग्रहार्थंलोकानांयोगात्मैककलागतिः चत्वारस्तुमहाभागाविमलाःशुद्धयोनयः । शिष्याममभविष्यन्तियोगात्मानोदृढव्रताः सनकः सनन्दनश्चैव प्रभुर्यश्च सनातनः । विभुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहङ्कृताः मत्समीपमुपेष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः तदाऽप्यहंभविष्यामिलौगाक्षिर्नामनामतः । तत्रापिममतेशिष्यायोगात्मानोदृढव्रताः भविष्यन्ति महाभागाश्चत्वारो लोकसम्मताः । सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रजएवच योगात्मानोमहात्मानःसर्वेवैदग्धकिल्बिषाः । तेऽपितेनैवमार्गेणध्यानयोगसमन्विताः मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः विभुर्नामा महातेजाःप्रथितःपूर्वजन्मनि । तदाप्यहंभविष्यामिकलौतस्मिन युगान्तिके जैगीषव्यो विभुः ख्यातःसर्वेषांयोगिनांवरः । तत्रापिमम ते पुत्राभविष्यन्तियुगेतथा

सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहः सुवाहनः । तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगपरायणाः ॥
गमिष्यन्ति महात्मानो रुद्रलोकं निरामयम् । वसिष्ठश्चाष्टमेव्यासःपरिवर्तेभविष्यति
यदा तदा भविष्यामि नाम्नाऽहं दधिवाहनः ।
तत्राऽपि मम ते पुत्रा योगात्मानो दृढव्रताः ॥ ४० ॥
भविष्यन्ति महायोगा येषांनास्तिसमोभुवि । कपिलश्चासुरिश्चैवतथापञ्चशिखोमुनिः
वाष्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः ।
प्राप्य माहेश्वरं योगं ज्ञानिनो दग्धकिल्बिषाः ॥ ४२ ॥
मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । परिवर्ते तु नवमे व्यासः सारस्वतो यदा
तदाऽप्यहं भविष्यामि ऋषभोनामनामतः । तत्रापि ममते पुत्रा भविष्यन्तिमहौजसः
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवाङ्गिरसौ तदा । भविष्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः
ध्यानमार्गं समासाद्य गमिष्यन्ति तथैव च । सर्वे तपोबलोत्कृष्टाःशापानुग्रहकोविदाः
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः । रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्
दशमे द्वापरे व्यासः त्रिपाद्वै नाम नामतः । यदा भविष्यते विप्रस्तदाऽहं भवितामुनिः
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे । नाम्ना भृगोस्तु शिखरं प्रथितं देवपूजितम्
तत्राऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः । बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥
योगात्मानो महात्मानस्तपोयोगसमन्विताः ।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ५१ ॥
एकादशे द्वापरे तु व्यासस्तु त्रिव्रतोयदा । तदाऽप्यहंभविष्यामिगङ्गाद्वारेकलौ तथा
उग्रोनाम महातेजाः सर्वलोकेषु विश्रुतः । तत्राऽपिमम ते पुत्रा भविष्यन्तिमहौजसः
लम्बोदरश्च लम्बाक्षो लम्बकेशः प्रलम्बकः । प्राप्यमाहेश्वरंयोगं रुद्रलोकं गता हि ते
द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा यदा मुनिः । भविष्यति महातेजा व्यासस्तु कविसत्तमः
तदाऽप्यहं भविष्यामि कलाविह युगान्तिके । हैतुकं वनमासाद्य अत्रिर्नाम्नापरिश्रुतः
तत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः । भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैवच । प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते

त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु । धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा
तदाऽप्यहं भविष्यामि वालिर्नाममहामुनिः । वालखिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गन्धमादने
तत्रापि ममते पुत्रा भविष्यन्तितपोधनाः । सुधामाकाश्यपश्चैववासिष्ठोविरजास्तथा
महायोगबलोपेता विमला ऊर्ध्वरेतसः ।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते ॥ ६२ ॥
यदा व्यासस्तरक्षुस्तु पर्य्याये तु चतुर्दशे । तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके
वंशे त्वङ्गिरसां श्रेष्ठे गौतमो नाम नामतः । भविष्यति महापुण्यं गौतमोनामतद्वनम्
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौतदा । अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः॥
योगात्मानो महात्मानः सर्वे योगसमन्विताः । प्राप्य माहेश्वरंयोगंरुद्रलोकायतेगताः
ततः पञ्चदशे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते । त्रैय्यारुणिर्यदा व्यासो द्वापरे समपद्यत ॥६७॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजः । तत्र वेदशिरोनामअस्त्रंतत्पारमेश्वरम्
भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः । हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यां नगोत्तमे ॥६६
तत्राऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्तितपोधनाः । कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः
योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः ॥ ७१ ॥
व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति । तत्रयोगप्रदानायभक्तानाश्र्यतात्मनाम्
तदाऽप्यहं भविष्यामि गोकर्णो नामनामतः । भविष्यतिसुपुण्यश्चगोकर्णनामतद्वनम्
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्तिचयोगिनः । काश्यपोह्युशनाश्चैवच्यवनोऽथबृहस्पतिः
तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः । प्राप्य माहेश्वरंयोगं गन्तारो रुद्रमेव हि
ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते । यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतञ्जयः ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः । हिमवच्छिखरेरम्ये महोत्तुङ्गे महालये॥
सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम् । तत्राऽपि मम ते पुत्रा योगज्ञाब्रह्मवादिनः
भविष्यन्ति महात्मानो निर्ममा निरहङ्कृताः । उतथ्योवामदेवश्च महायोगोमहाबलः
तेषांशतसहस्रन्तुशिष्याणांध्यानयोगिनाम् । भविष्यन्तितदाकालेसर्वेतेध्यानयुञ्जकाः

योगाभ्यासरताश्चैव हृदि कृत्वा महेश्वरम्। महालये पदं न्यस्तं दृष्ट्वायान्तिशिवं पदम्
ये चान्येऽपि महात्मानः कलौ तस्मिन् युगान्तिके।
ध्याने मनः समाधाय विमलाः शुद्धबुद्धयः ॥ ८२ ॥
मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः। गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरंपदम्
तीर्णस्तारयते जन्तुर्दशपूर्वान् दशोत्तरान्। आत्मानमेकविंशन्तु तारयित्वा महाल्ये
मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः। ततोऽष्टादशमे चैव परिवर्ते यदा विभो!
तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तु भविता मुनि॰।
तदाऽप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः ॥ ८६ ॥
सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते। हिमवच्छिखरे रम्ये शिखण्डी नाम पर्वतः॥८७
शिखण्डिनो वनञ्चापि यत्र सिद्धनिषेवितम्।
तत्राऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ॥ ८८ ॥
वाचश्रवा ऋचीकश्चश्यावाश्वश्चयतीश्वर॰। योगात्मानोमहात्मानःसर्वे ते वेदपारगाः
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संवृताः। अथ एकोनविंशे तु परिवर्त्ते क्रमागते ॥
व्यासस्तुभवितानाम्नाभरद्वाजोमहामुनि। तदाऽप्यहं भविष्यामिजटामालीचनामतः
हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोगाक्षी कुथुमिस्तथा।
ईश्वरा योगधर्माणः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ९३ ॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः। ततो विंशतिमश्चैव परिवर्त्तो यदातदा
गौतमस्तु तदा व्यासो भविष्यतिमहामुनिः। तदाप्यहंभविष्यामिअट्टहासस्तुनामतः
अट्टहासप्रियाश्चैव भविष्यन्ति तदा नराः। तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः
देवदानवयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः। तत्राऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥
योगात्मानो महात्मानो ध्यायिनो नियतव्रताः।
सुमन्तुर्बर्बरी विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः ॥ ९८ ॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः। एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते ॥

धाचश्रवाःस्मृतोव्यासोयदा स ऋषिसत्तमः । तदाप्यहं भविष्यामिदारुकोनामनामतः
तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं शुभम् । तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्तिमहौजसः
प्लक्षोदार्भायणिश्चैवकेतुमान्गौतमस्तथा । योगात्मानोमहात्मानो नियताऊर्ध्वरेतसः
नैष्ठिकं व्रतमास्थाय रुद्रलोकाय ते गताः । द्वाविंशेपरिवर्त्ते तु व्यासःशुष्मायणोयदा
तदाऽप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ।
नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः ॥ १०४ ॥
द्रक्ष्यन्तिमांकलौतस्मिन्भवञ्चैवहलायुधम् ।तत्राऽपिममतेपुत्राभविष्यन्तिसुधार्मिकाः
भल्लवी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुः कुशस्तथा । प्राप्य माहेश्वरंयोगं तेऽपिध्यानपरायणाः
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः । परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः
व्यासोहि भविताब्रह्मस्तदाऽहंभवितापुनः । श्वेतोनाममहाकायोमुनिपुत्रस्तुधार्मिकः
तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे । तेन कालञ्जरो नाम भविष्यति स पर्वतः
तत्राऽपि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः । उशिको बृहदश्वश्च देवलःकविरेवच
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकायतेगताः । परिवर्त्तेचतुर्विंशे व्यासोऋक्षोयदा विभो!
तदाऽप्यहं भविष्यामि कलौतस्मिन् युगान्तिके । शूलीनाममहायोगीनैमिषेदेववन्दिते
तत्राऽपिममते शिष्याभविष्यन्तितपोधनाः । शालिहोत्रोऽग्निवेशश्चयुवनाश्वःशरद्वसुः
तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकाय संस्थिताः । पञ्चविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते
वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ॥ ११५ ॥
तत्राऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्तितपोधनाः । छगलःकुण्डकर्णश्चकुम्भाण्डश्चप्रवाहकः
प्राप्य माहेश्वरं योगममृतत्वाय ते गताः । षड्विंशे परिवर्त्ते तु यदा व्यासःपराशरः
तदाऽप्यहं भविष्यामिसहिष्णुर्नाम नामतः । पुरं भद्रवटंप्राप्य कलौतस्मिन्युगान्तिके
तत्राऽपि मम ते पुत्राभविष्यन्तिसुधार्मिकाः । उलूकोविद्युतश्चैवशम्बूकोह्याश्वलायनः
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः । सप्तविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते ॥
जातूकर्ण्यो यदाव्यासोभविष्यतितपोधनः । तदाप्यहंभविष्यामिसोमशर्माद्विजोत्तमः

प्रभासतीर्थमासाद्ययोगात्मायोगविश्रुत । तत्रापि ममते शिष्याभविष्यन्तितपोधना
अक्षपाद कुमारश्च उलूको वत्स एव च । योगात्मानोमहात्मानोविमला शुद्धबुद्धय
प्राप्य माहेश्वर योग रुद्रलोक ततो गता । अष्टाविंशे पुन प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते
पराशरसुत श्रीमान् विष्णुर्लोकपितामह । यदाभविष्यतिव्यासो नाम्नाद्वैपायन प्रभु
तदा षष्ठेन चाऽशेन कृष्ण पुरुषसत्तम । वसुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥
तदाऽप्यह भविष्यामि योगात्मायोगमायया । लोकविस्मयनार्थायब्रह्मचारिशरीरक
श्मशाने मृतमुत्सृष्ट दृष्ट्वा कायमनाथकम् । ब्राह्मणानाहितार्थाय प्रविष्टोयोगमायया
दिव्या मेरुगुहा पुण्या त्वया सार्धञ्च विष्णुना ।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लकुली नाम नामत ॥ १२६ ॥
कायावतार इत्येव सिद्धक्षेत्रञ्च वै तदा । भविष्यति सुविख्यात यावद्भूमिर्धरिष्यति
तत्राऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्तितपस्विन । कुशिकश्चैव गर्गश्चमित्र कौरुष्यएवच
योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगा । प्राप्यमाहेश्वरयोग विमलाह्यर्ध्वरेतस
रुद्रलोक गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । एते पाशुपता सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहा
लिङ्गार्चनरता नित्य बाह्याभ्यन्तरत स्थिता ।
भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रिया ॥ १३४ ॥
ससारबन्धच्छेदाथ ज्ञानमार्गप्रकाशकम् । स्वरूपज्ञानसिद्ध्यर्थं योग पाशुपत महत् ॥
योगमार्गाअनेकाश्चज्ञानमार्गास्त्वनेकश । न निवृत्तिमुपायान्तिविनापञ्चाक्षरीक्वचित्
यदा चरेत् तपश्चाय सर्वद्वन्द्वविवर्जितम् । तदा स मुक्तोमन्तव्य पक्वफलमिवस्थित
एकाह य पुमान्सम्यक् चरेत् पाशुपतव्रतम् ।
न साङ्ख्ये पञ्चरात्रे वा न प्राप्नोति गतिं कदा ॥ १३८ ॥
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् । मन्वादि कृष्णपर्य्यन्तमष्टाविंशद् युगक्रमात्
तत्र श्रुतिसमूहानां विभागो धर्मलक्षण । भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा

सूत उवाच

निशम्यैव महातेजा महादेवेन कीर्त्तितम् । रुद्रावतार भगवान् प्रणिपत्य महेश्वरम्

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः पुनः प्राह च शङ्करम् ।

पितामह उवाच

सर्वे विष्णुमया देवाः सर्वे विष्णुमया गणाः ॥ १४२ ॥

न हि विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते । इत्येवं सततं वेदा गायन्तिनात्रसंशयः
स देवदेवो भगवांस्तव लिङ्गार्चने रतः । तव प्रणामपरमः कथं देवो ह्यभूत् प्रभुः ॥

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रपिबन्निव चक्षुर्भ्यां प्रीतस्तत्प्रश्नगौरवात् ॥
पूजाप्रकरणं तस्मै तमालोक्याऽऽहशङ्करः । भवान्नारायणश्चैव शक्रःसाक्षात्सुरोत्तमः

मुनयश्च सदा लिङ्गं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ।

स्वं स्वं पदं विभो ! प्राप्तास्तस्मात् सम्पूजयन्ति ते ॥ १४७ ॥

लिङ्गार्चनं विना निष्ठाना स्तितस्माज्जनार्दनः । आत्मनोयजतेनित्यंश्रद्धयाभगवान्प्रभुः
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः । पुनः सम्प्रेक्ष्य देवेशं तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥
तमुद्दिश्य तदा ब्रह्मा नमस्कृत्यकृताञ्जलिः । सर्व्वंत्वशेषंभगवान्लब्धसञ्ज्ञस्तुशङ्करात्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विविधपरिवर्तेषुव्यासावताराणाम्वर्णनं नाम
चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

लिङ्गार्चनविधौस्नानाचमनप्रकारवर्णनम्

ऋषय उचुः

कथं पूज्यो महादेवो लिङ्गमूर्त्तिर्महेश्वरः । वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण! साम्प्रतम्

सूत उवाच

देव्या पृष्टो महादेवःकैलासेतांनगात्मजाम् । अङ्कस्थामाहदेवेशोलिङ्गार्चनविधिंक्रमात्
तदा पार्श्वे स्थितो नन्दी शालङ्कायनकात्मजः । श्रुत्वाखिलंपुराप्राहब्रह्मपुत्रायसुव्रताः

सनत्कुमाराय शुभ लिङ्गार्चनविधिं परम् ।
तस्माद् व्यासो महातेजा श्रुतवान् श्रुतिसम्मितम् ॥ ४ ॥
स्नानयोगोपचार च यथा शैलादिनो मुखात् ।
श्रुतवान् तत् प्रवक्ष्यामि स्नानाद्य चाऽर्चनाविधिम् ॥५ ॥

शैलादिरुवाच

अथ स्नानविधिं वक्ष्ये ब्राह्मणाना हिताय च । सर्वपापहर साक्षाच्छिवेन कथितपुरा अनेनविधिनास्नात्वासकृत् पूज्य च शङ्करम् । ब्रह्मकूर्चञ्च पीत्वातु सर्वपापै प्रमुच्यते त्रिविध स्नानमाख्यात देवदेवेन शम्भुना । हिताय ब्राह्मणाद्याना चतुर्मुखसुतोत्तम ॥ वारुण पुरत कृत्वा ततश्चाग्नेयमुत्तमम् । मन्त्रस्नान तत कृत्वा पूजयेत् परमेश्वरम् भावदुष्टोऽम्भसिस्नात्वाभस्मनाचनशुद्ध्यति । भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथानसमाचरेत् सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलय नर । स्नात्वाऽपि भावदुष्टश्चेन्न शुद्ध्यतिनसशय ॥ नृणा हि चित्तकमल प्रबुद्धमभवद् यदा । प्रसुप्त तमसा ज्ञानभानोर्भासा तदा शुचि मृच्छकृत्तिलपुष्पञ्च स्नानाथ भसित तथा । आदायतीरे निक्षिप्यस्नानतीर्थेकुशानिच प्रक्षाल्याऽऽचम्यपादौचमलदेहाद्विशोध्यच । द्रव्यैस्तु तीरदेशस्थैस्तत स्नानसमाचरेत् उदधृतासीति मन्त्रेणपुनर्देह विशोधयेत् । मृदादायततश्चान्यद्वस्त्रस्नात्वाह्यनुत्तमम् गन्धद्वारा दुराधर्षामिति मन्त्रेण मन्त्रवित् । कपिलागोमयेनैव खस्थेनैव तु लेपयेत् पुन स्नात्वा परित्यज्य तद्वस्त्र मलिन तत । शुक्लवस्त्रपरिधानो भूत्वास्नानसमाचरेत् सर्वपापविशुद्ध्यर्थमावाह्य वरुण तथा । सम्पूज्य मनसा देव ध्यानयज्ञेन वैभवम् ॥ आचम्य त्रिस्तदा तीर्थे ह्यवगाह्यभवस्मरन् । पुनराचम्यविधिवदभिमन्त्र्यमहाजलम् अवगाह्य पुनस्तस्मिन् जपेद्वै चाऽघमर्षणम् । तत्तोये भानुसोमाग्निमण्डलञ्चस्मरेद्वशी आचम्य च पुनस्तस्माज्जलादुत्तीर्य्यमन्त्रवित् । प्रविश्यतीर्थमध्ये तु पुन पुण्यविवृद्धये शृङ्गेण पर्णपुटकै पालाशै क्षालितैस्तथा । सकुशेन सपुष्पेण जलेनैवाऽभिषेचयेत् ॥ रुद्रेण पवमानेन त्वरिताख्येन मन्त्रवित् । तरत् समन्दिवर्गाद्यैस्तथा शान्तिद्वयेन च शान्तिधर्मेण चैकेन पञ्चब्रह्मपवित्रकै । तत्तन्मन्त्राधिदेवाना स्वरूपञ्च ऋषीन् स्मरन्

एवं हि चाऽभिषिच्याऽथ स्वमूर्ध्नि पयसा द्विजाः ! ।
ध्यायेत्त्र्यम्बकं देवं हृदि पञ्चास्यमीश्वरम् ॥ २५ ॥
आचम्याचमनंकुर्य्यात्स्वसूत्रोक्तंसमीक्ष्यच । पवित्रहस्तःस्वासीनःशुचौदेशेयथाविधि
अभ्युक्ष्य सकुशञ्चापिदक्षिणेनकरेण तु । पिबेत् प्रक्षिप्यत्रिस्तोयंचक्रीभूत्वाह्यतन्द्रितः
प्रदक्षिणं ततः कुर्य्याद्धिंसापापप्रशान्तये । एवं संक्षेपतः प्रोक्तं स्नानाचमनमुत्तमम् ॥
सर्वेषां ब्राह्मणानान्तु हितार्थं द्विजसत्तमाः ! ॥ २६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे लिङ्गपूजाविधौ स्नानाचमनक्रमवर्णनं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

गायत्रीजपविधानपुरःसरं नित्यकर्मविधौपञ्चमहायज्ञप्रतिपादनसहितं स्नानविधिवर्णनम्

नन्द्युवाच

आवाहयेत्ततो देवीं गायत्रीं वेदमातरम् । आयातु वरदा देवीत्यनेनैव महेश्वरीम् ॥१
पाद्यमाचमनीयञ्चतस्याश्चार्घ्यंप्रदापयेत् । प्राणायामत्रयंकृत्वासमासीनस्थितोऽपिवा
सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा । गायत्रीं प्रणवेनैव त्रिविधेष्वेकमाचरेत् ॥३
अर्घ्यं दत्वासमभ्यर्च्यप्रणम्यशिरसास्वयम् । उत्तमेशिखरेदेवीत्युक्त्वोद्वास्यचमातरम्
प्राच्यालोक्याभिवन्द्येशां गायत्रीं वेदमातरम् । कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेद्भास्करंतथा
उदुत्यञ्च तथा चित्रं जातवेदसमेव च । अभिवन्द्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणञ्च विधानतः ॥६
तथा सौराणि सूक्तानि ऋग्यजुःसामजानि च ।
जप्त्वा प्रदक्षिणं पञ्चाभिः कृत्वा च विभावसोः ॥ ७ ॥

आत्मानं चान्तरात्मानं परमात्मानमेव च। अभिवन्द्यःपुनःसूर्यं ब्रह्माणञ्चविभावसुम्
मुनीन्पितॄन्यथान्यायंस्वनाम्नाऽऽवाहयेत्ततः। सर्वानावाहयामीतिदेवानावाह्यसर्वतः
तर्पयेद्विधिनापश्चात्प्राङ्मुखोवाह्युदङ्मुखः।ध्यात्वास्वरूपंतत्तत्वमभिवन्द्ययथाक्रमम्
देवानां पुष्पतोयेन ऋषीणान्तु कुशाम्भसा। पितॄणां तिलतोयेन गन्धयुक्तेन सर्वतः
यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणम्। प्राचीनावीतीविप्रेन्द्र! पितॄणांतर्पयेत्क्रमात्
अङ्गुल्यग्रेण वै धीमांस्तर्पयेद्देवतर्पणम्। ऋषीन् कनिष्ठाङ्गुलिना श्रोत्रियः सर्वसिद्धये
पितॄंस्तु तर्पयेद्विद्वान् दक्षिणाङ्गुष्ठकेन तु। तथैवं मुनिशार्दूल! ब्रह्मयज्ञं यजेद् द्विजः॥
देवयज्ञञ्च मानुष्यं भूतयज्ञं तथैव च। पितृयज्ञञ्च पूतात्मा यज्ञकर्मपरायणः॥ १५॥
स्वशाखाध्ययनं विप्रा! ब्रह्मयज्ञ इति स्मृतः। अग्नौ जुहोति यच्चान्नं देवयज्ञ इतिस्मृतः
सर्वेषामेव भूतानां बलिदानं विधानतः। भूतयज्ञ इति प्रोक्तो भूतिदः सर्वदेहिनाम्॥

सदारान् सर्वतत्वज्ञान् ब्राह्मणान् वेदपारगान्।
प्रणम्य तेभ्यो यद्दत्तमन्नं मानुष उच्यते॥ १८॥

पितॄनुद्दिश्य यद्दत्तं पितृयज्ञः स उच्यते। एवं पञ्च महायज्ञान्कुर्यात्सर्वार्थसिद्धये॥
सर्वेषां शृणु यज्ञानां ब्रह्मयज्ञः परः स्मृतः। ब्रह्मयज्ञरतो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते॥२०

ब्रह्मयज्ञेन तुष्यन्ति सर्वे देवाः सवासवाः।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शङ्करो नीललोहितः॥ २१॥

वेदाश्चपितरः सर्वे नात्रकार्य्याविचारणा। ग्रामाद्बहिर्गतोभूत्वाब्राह्मणोब्रह्मयज्ञवित्
यावत्स्वदृष्टममवदुटजानाच्छदंनरः। प्राच्यामुदीच्याञ्चतथाप्रागुदीच्यामथापिवा॥

पुण्यमाचमनं कुर्य्याद्ब्रह्मयज्ञार्थमेव तत्।
प्रीत्यर्थञ्च ऋचां विप्राः त्रिः पीत्वा प्लाव्य प्लाव्य च॥ २४॥

यजुषां परिमृज्यैवं द्विः प्रक्षाल्यचवारिणा। प्रीत्यर्थंसामवेदानामुपस्पृश्य च मूर्धनि॥

स्पृशेदथर्ववेदानां नेत्रे चाङ्गिरसां तथा।
नासिके ब्राह्मणोऽङ्गानां क्षाल्य क्षाल्य च वारिणा॥ २६॥

अष्टादशपुराणानां ब्रह्माद्यानां तथैव च। तथा चोपपुराणानां सौरादीनां यथाक्रमम्

पुण्यानामितिहासानां शैवादीनां तथैव च । श्रोत्रेस्पृशेद्द्विजुष्टयर्थंहृद्देशान्तुततःस्पृशेत्

कल्पादीनान्तु सर्वेषां कल्पवित्कल्पवित्तमाः ! ।

एवमाचम्य चाऽऽस्तीर्य्य दर्भपिञ्जूलमात्मनः ॥ २६ ॥

कृत्वा पाणितले धीमानात्मनोदक्षिणोत्तरम् । हेमाङ्गुलीयसंयुक्तोब्रह्मबन्धयुतोऽपिवा

विधिवद् ब्रह्मयज्ञञ्च कुर्य्यात्सूत्रीसमाहितः । अकृत्वाचमुनिःपञ्चमहायज्ञान्द्विजोत्तमः

भुक्त्वा च सूकराणान्तुयोनौवैजायते नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकर्त्तव्याःशुभमिच्छता

ब्रह्मयज्ञादथ स्नानं कृत्वादौ सर्वथात्मनः । तीर्थं संगृह्य विधिवत्प्रविशेच्छिविरं वशी

बहिरेव गृहात्पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य वारिणा । भस्मस्नानं ततः कुर्य्याद्विधिवद्देहशुद्धये

शोध्य भस्म यथान्यायं प्रणवेनाऽग्निहोत्रजम् ।

ज्योतिः सूर्य्य इति प्रातर्जुहुयादुदिते यतः ॥ ३५ ॥

ज्योतिरग्निस्तथा सायं सम्यक्चानुदिते मृषा ।

तस्मादुदितहोमस्थं भसितं पावनं शुभम् ॥ ३६ ॥

नास्तिसत्यसमं यस्मादसत्यं पातकञ्च यत् । ईशानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण च

उरोदेशमघोरेण गुह्यं वामेन सुव्रताः ! । सद्येन पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेनाऽभिषेचयेत् ॥

ततः प्रक्षालयेत्पादं हस्तं ब्रह्मविदां वरः । व्यपोह्य भस्म चादाय देवदेवमनुस्मरन् ॥

मन्त्रस्नानं ततः कुर्य्यादापोहिष्ठादिभिः क्रमात् ।

पुण्यैश्चैव तथा मन्त्रैर्ऋग्यजुःसामसम्भवैः ॥ ४० ॥

द्विजानान्तु हितायैवं कथितं स्नानमद्य ते । संक्षिप्यय: सकृत्कुर्य्यात्सयातिपरमंपदम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे स्नानविधिवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

शिवलिङ्गार्चनविधिक्रमवर्णनम्

शैलादिरुवाच

वक्ष्यामि शृणुसंक्षेपाल्लिङ्गार्चनविधिक्रमम् । वक्तुं वर्षशतेनाऽपि नशक्यंविस्तरेणयत्
एवंस्नात्वायथान्यायंपूजास्थानंप्रविश्यच । प्राणायामत्रयं कृत्वाध्यायेद्देवंत्रियम्बकम्
पञ्चवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । सर्वाभरणसंयुक्तं चित्राम्बरविभूषितम् ॥३
तस्य रूपं समाश्रित्य दहनप्लावनादिभिः । शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत् परमेश्वरम्
देहशुद्धिञ्च कृत्वैव मूलमन्त्रंन्यसेत्क्रमात् । सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम् ॥
सूत्रे नमः शिवायेति छन्दांसि परमे शुभे । मन्त्राणि सूक्ष्मरूपेणसंस्थितानि यतस्ततः
न्यग्रोधबीजे न्यग्रोधस्तथा सूत्रे तु शोभने । महत्यपिमहद्ब्रह्मसंस्थितंसूक्ष्मवत्स्वयम्

सेचयेदर्चनस्थानं गन्धचन्दनवारिणा ।

द्रव्याणि शोधयेत्पश्चात्क्षालनप्रोक्षणादिभिः ॥ ८ ॥

क्षालनं प्रोक्षणञ्चैव प्रणवेन विधीयते । प्रोक्षणी चार्घ्यपात्रञ्च पाद्यपात्रमनुक्रमात्
तथा ह्याचमनीयार्थं कल्पितं पात्रमेव च । स्थापयेद्विधिना धीमानवगुण्ठ्ययथाविधि
दर्भैराच्छादयेच्चैव प्रोक्षयेच्छुद्धवारिणा । तेषु तेष्वथ सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम्

प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान् ।

उशीरं चन्दनञ्चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् ॥ १२ ॥

जातिकङ्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकम् । चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके ॥१३
एवं सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनं तथा । कर्पूरञ्च यथान्यायं पुष्पाणि विविधानि च ॥
कुशाग्रमक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानि च । आज्यसिद्धार्थपुष्पाणिभसितंचार्घ्यपात्रके
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम् । दापयेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं प्रणवेन च ॥ १६ ॥
न्यसेत्पञ्चाक्षरञ्चैव गायत्री रुद्रदेवताम् । केवलं प्रणवं वापि वेदसारमनुत्तमम् ॥१७

अथ सम्प्रोक्षयेत्पश्चाद्द्रव्याणि प्रणवेन तु । प्रोक्षणीपात्रसंस्थेन ईशानाद्यैश्च पञ्चभिः
पार्श्वतो देवदेवस्य नन्दिनं मांसमर्चयेत् । दीप्तानलायुतप्रख्यं त्रिनेत्रं त्रिदशेश्वरम् ॥
बालेन्दुमुकुटञ्चैव हरिवक्त्रं चतुर्भुजम् । पुष्पमालाधरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥

उत्तरे चात्मनः पुण्यां भार्य्याञ्च मरुतां शुभाम् ।
सुयशां सुव्रतां चाम्बां पादमण्डनतत्पराम् ॥ २१ ॥

एवं पूज्य प्रविश्याऽन्तर्भवनं परमेष्ठिनः । दत्वा पुष्पाञ्जलिं भक्त्यापञ्चमूर्ध्वसुपञ्चभिः
गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्विविधैः पूज्य शङ्करम् । स्कन्दं विनायकंदेवींलिङ्गशुद्धिञ्चकारयेत्

जप्त्वा सर्वाणि मन्त्राणि प्रणवादिनमोऽन्तकम् ।
कल्पयेदासनं पश्चात्पद्माख्यं प्रणवेन तत् ॥ २४ ॥

तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम् । लघिमा दक्षिणञ्चैव महिमा पश्चिमं तथा ॥
प्राप्तिस्तथोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु । ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वंवायुगोचरे

सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ।
सोमस्याऽधस्तथा सूर्य्यस्तस्याऽधः पावकः स्वयम् ॥ २७ ॥
धर्मादयो विदिक्ष्वेते त्वनन्तं कल्पयेत्क्रमात् ।
अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्याऽन्ते गुणत्रयम् ॥ २८ ॥

आत्मत्रयं ततश्चोर्ध्वं तस्याऽन्तेशिवपीठिका । सद्योजातंप्रपद्यामीत्यावाह्यपरमेश्वरम्
वामदेवेन मन्त्रेण स्थापयेदासनोपरि । सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरुध्य च ॥
ईशानः सर्वविद्यानामिति मन्त्रेण पूजयेत् । पाद्यमाचमनीयञ्चविभोश्चाऽर्घ्यंप्रदापयेत्
स्नापयेद्विधिना रुद्रं गन्धचन्दनवारिणा । पञ्चगव्यं विधानेन गृह्य पात्रेऽभिमन्त्र्य च॥
प्रणवेनैव गव्यैस्तु स्नापयेच्च यथाविधि । आज्येन मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन च ॥
पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाऽभिषेचयेत् । जलभाण्डैः पवित्रैस्तु मन्त्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः॥
शुद्धिं कृत्वा यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः । कुशापामार्गकर्पूरजातिपुष्पकचम्पकैः
करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः । आपूर्य पुष्पैः सुशुभैःचन्दनाद्यैश्च तज्जलम्

न्यसेन्मन्त्राणि तत्तोये सद्योजातादिकानि तु ।

सुवर्णकलशेनाऽथ तथा वै राजतेन वा ॥ ३७ ॥
ताम्रेण पद्मपत्रेण पालाशेन दलेन वा । शङ्खेन मृण्मयेनाऽथ शोधितेन शुभेन वा ॥
सकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम् । मन्त्राणि ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसिद्धये
यैर्लिङ्गं सकृदप्येवं स्नाप्य मुच्येत मानवः । पवमानेन मन्त्रज्ञास्तथा वामीयकेन च॥
रुद्रेण नीलरुद्रेण श्रीसूक्तेन शुभेन च । रजनीसूक्तकेनैव चमकेन शुभेन च ॥ ४१ ॥
होतारेणाऽथशिरसाअथर्वणशुभेनच। शान्त्याचाऽथपुनःशान्त्याभारुण्डेनाऽऽरुणेनच
वारुणेन च ज्येष्ठेन तथा वेदव्रतेन च । तथान्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥ ४३
त्वरितेनैव रुद्रेण कपिना च कपर्दिना । आवो राजेति साम्ना तु बृहच्चन्द्रेणविष्णुना
विरूपाक्षेण स्कन्देन शतऋग्भिः शिवैस्तथा । पञ्चब्रह्मैश्च सूत्रेण केवलप्रणवेन च ॥
स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वपापप्रशान्तये । वस्त्रं शिवोपवीतञ्च तथा ह्याचमनीयकम् ॥४६॥
गन्धपुष्पं तथा धूपं दीपमन्नं क्रमेण तु । तोयं सुगन्धितञ्चैव पुनराचमनीयकम् ॥
मुकुटञ्च शुभं छत्रं तथा वै भूषणानि च । दापयेत् प्रणवेनैव मुखवासादिकानि च॥
ततः स्फटिकसङ्काशं देवं निष्कलमक्षरम् । कारणं सर्वदेवानां सर्वलोकमयं परम् ॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैर्ऋषिदेवैरगोचरम् । वेदविद्भिर्हि वेदान्तैस्त्वगोचरमिति श्रुतिः ॥
आदिमध्यान्तरहितंभेषजंभवरोगिणाम् । शिवतत्त्वमितिख्यातंशिवलिङ्गेव्यवस्थितम्
प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिङ्गमूर्धनि । स्तोत्रं जपेच्च विधिना नमस्कारं प्रदक्षिणम् ॥
अर्घ्यं दत्वाऽथ पुष्पाणि पादयोस्तु विकीर्य्य च ।
प्रणिपत्य च देवेशमात्मन्यारोपयेच्छिवम् ॥ ५३ ॥
एवं सङ्क्षिप्य कथितंलिङ्गार्चनमनुत्तमम् । आभ्यन्तरंप्रवक्ष्यामिलिङ्गार्चनमिहाऽद्यते

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवलिङ्गार्चनवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः
शिवस्याभ्यन्तरार्चाक्रमवर्णनम्
शैलादिरुवाच

आग्नेयं सौरममृतं बिम्बं भाव्यं ततोपरि । गुणत्रयञ्च हृदये तथा चात्मत्रयं क्रमात्
तस्योपरि महादेवं निष्कलं सकलाकृतिम् । कान्तार्धारूढदेहञ्चपूजयेत् ध्यानविद्यया
ततो बहुविधं प्रोक्तं चिन्त्यंतत्रास्तिचेद्युतः । चिन्तकस्यततश्चिन्ताअन्यथानोपपद्यते
तस्माद्ध्येयं तथा ध्यानंयजमानःप्रयोजनम् । स्मरेत्तत्राऽन्यथा जातु बुध्यतेपुरुषस्यह
पुरे शेते पुरं देहं तस्मात् पुरुष उच्यते । याज्यं यज्ञेन यजते यजमानस्तु स स्मृतः
ध्येयो महेश्वरो ध्यानं चिन्तनं निर्वृतिः फलम् । प्रधानपुरुषेशानं यथातथ्यं प्रपद्यते

इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पञ्चविंशकः ।
चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च ॥ ७ ॥

महांस्तथा स्वहङ्कारं तन्मात्रं पञ्चकं पुनः । कर्मेन्द्रियाणिपञ्चैव तथाबुद्धीन्द्रियाणिच
मनश्च पञ्चभूतानि शिवः षड्विंशकस्ततः । स एव भर्त्ता कर्त्ता च विधेरपि महेश्वरः
हिरण्यगर्भं रुद्रोऽसौ जनयामास शङ्करः । विश्वाधिकश्चविश्वात्माविश्वरूपइतिस्मृतः

विना यथा हि पितरं मातरं तनयास्त्विह ।
न जायन्ते तथा सोमं विना नास्ति जगत्त्रयम् ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच

कर्त्ता यदि महादेवः परमात्मामहेश्वरः । तथा कारयिता चैव कुर्वतोऽल्पात्मनस्तथा

नित्यो विशुद्धो बुद्धश्च निष्कलः परमेश्वरः ।
त्वयोक्तो मुक्तिदः किंवा निष्कलश्चेत् करोति किम् ॥ १३ ॥

शैलादिरुवाच

कालः करोति सकलं कालंकलयते सदा । निष्कलञ्चमनःसर्वंमन्यतेसोऽपिनिष्कलः

कर्मणा तस्य चैवेह जगत् सर्वं प्रतिष्ठितम् । किमत्र देवदेवस्य मूर्त्यष्टकमिदं जगत् ॥
विनाकाशं जगन्नैव विना क्ष्मां वायुना विना । तेजसावारिणाचैवयजमानंतथाविना
भानुना शशिना लोकस्तस्यैतास्तनवः प्रभोः । विचारतस्तु रुद्रस्यस्थूलमेतच्चराचरम्
सूक्ष्मं वदन्ति ऋषयोयन्नवाच्यंद्विजोत्तमाः ! । यतो वाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसासह
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेतिकुतश्चन । न भेतव्यं तथातस्माज्ज्ञात्वानन्दंपिनाकिनः
विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः । सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥
नमस्कारेण सततं गौरवात् परमेष्ठिनः । सर्वन्तु खल्विदं ब्रह्म सर्वो वै रुद्रईश्वरः ॥
पुरुषो वै महादेवो महेशानः परः शिवः । एवं विभुर्विनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैवचिन्तनम्
चतुर्व्यूहेण मार्गेण विचार्य्यालोक्यसुव्रत!। संसारहेतुः संसारो मोक्षहेतुश्च निर्वृतिः
चतुर्व्यूहः समाख्यातः चिन्तकस्येहयोगिनः । चिन्तावहुविधाख्यातासैकत्रपरमेष्ठिना
सुनिष्ठेत्यत्र कथिता रुद्रे रौद्री न संशयः । ऐन्द्रीचेन्द्रेतथासौम्यासोमेनारायणेतथा
सूर्य्ये वह्नौ च सर्वेषां सर्वत्रैवंविचारतः । सैवाहंसोऽहमित्येवंद्विधासंस्थाप्यभावतः

भक्तोऽसौ नास्ति यस्तस्माच्चिन्ता ब्राह्मी न संशयः ।
एवं ब्रह्ममयं ध्यायेत् पूर्वं विप्र ! चराचरम् ॥ २७ ॥

चराचरविभागञ्च त्यजेदभिमतं स्मरन् । त्याज्यं ग्राह्यमलभ्यञ्च कृत्यञ्चाऽकृत्यमेवच
यस्यनास्तिसुतृप्तस्यतस्यब्राह्मी न चान्यथा । आभ्यन्तरंसमाख्यातमेवमभ्यर्चनंक्रमात्

आभ्यन्तरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा ।
विरूपा विकृताश्चापि न निन्द्या ब्रह्मवादिनः ॥ ३० ॥

आभ्यन्तरार्चकाःसर्वेनपरीक्ष्याविजानता । निन्दकाएवदुःखार्त्ताभविष्यन्त्यल्पचेतसः
यथा दारुवनेरुद्रंविनिन्द्यमुनयः पुरा । तस्मात् सेव्यानमस्कार्य्याःसदाब्रह्मविदस्तथा

वर्णाश्रमविनिर्मुक्ता वर्णाश्रमपरायणैः ॥ ३३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवाभ्यन्तरार्चनक्रमवर्णनं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उनत्रिंशोऽध्यायः

श्वेतऋषिद्वारामृत्युञ्जयत्वप्राप्तिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुरा दारुवने विभो ! ।
प्रवृत्तं तद्वनस्थानां तपसा भावितात्मनाम् ॥ १ ॥
कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्नीललोहितः । विकृतं रूपमास्थाय चोर्ध्वरेता दिगम्बरः
किं प्रवृत्तं वने तस्मिन्रुद्रस्य परमात्मनः । वक्तुमर्हसि तत्त्वेन देवदेवस्य चेष्टितम् ॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रुतिसारविदाम्वरः । शीलादसूनुर्भगवान् प्राह किञ्चिद्धवं हसन्

शैलादिरुवाच

मुनयो दारुगहने तपस्तेपुः सुदारुणम् । तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य सदारतनयाग्नयः ॥ ५ ॥
तुष्टो रुद्रो जगन्नाथश्चेकितानो वृषध्वजः । धूर्जटिः परमेशानो भगवान्नीललोहितः ॥
प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं ज्ञातुं दारुवनौकसाम् । परीक्षार्थं जगन्नाथः श्रद्धया क्रीडयाच सः
निवृत्तिलक्षणज्ञानप्रतिष्ठार्थञ्च शङ्करः । देवदारुवनस्थानां प्रवृत्तिज्ञानचेतसाम् ॥८॥
विकृतं रूपमास्थाय दिग्वासाविषमेक्षणः । मुग्धोद्विहस्तःकृष्णाङ्गोदिव्यंदारुवनंययौ
मन्दस्मितञ्च भगवान् स्त्रीणां मनसिजोद्भवम् ।
भ्रविलासञ्च यानञ्च चकाराऽतीव सुन्दरः ॥ १० ॥
सम्प्रेक्ष्य नारीवृन्दं वै मुहुर्मुहुरनङ्गहा । अनङ्गवृद्धिमकरोदतीव मधुराकृतिः ॥ ११ ॥
वने तं पुरुषं दृष्ट्वा विकृतंनीललोहितम् । स्त्रियःपतिव्रताश्चाऽपि तमेवाऽन्वयुरादरात्
वनोटजद्वारगताश्च नार्यो विस्रस्तवस्त्राभरणा विचेष्टाः ।
लब्ध्वा स्मितं तस्य मुखारविन्दात् द्रुमालयस्थास्तमथाऽन्वयुस्ताः ॥१३॥
दृष्ट्वा काश्चिद्भवं नार्योमदघूर्णितलोचनाः । विलासबाह्यास्ताश्चापिभ्रूविलासंप्रचक्रिरे

अथ दृष्ट्वापरा नार्य्यः किञ्चित् प्रहसिताननाः ।
किञ्चिच्छिन्नस्तवसनाः स्रस्तकाञ्चीगुणा जगुः ॥ १५ ॥
काश्चित्तदा तं विपिने तु दृष्ट्वा विप्राङ्गनाः स्रस्तनवांशुकग्वा ।
स्वान् स्वान् विचित्रान् वलयान् प्रविध्य मदान्विता बन्धुजनांश्चजग्मुः ॥
काचित्तदा तं न विवेद दृष्ट्वा विवासना स्रस्तमहांशुका च ।
शाखा विचित्रान् विटपान् प्रसिद्धान् मदान्विता बन्धुजनांस्तथान्याः ॥
काश्चिज्जगुस्तं ननृतुर्निपेतुश्च धरातले । निषेदुर्गजवच्चान्या प्रोवाच द्विजपुङ्गवाः ! ॥
अन्योऽन्यं सस्मितंप्रेक्ष्यचालिलिङ्गुः समन्ततः । निरुध्यमार्गरुद्रस्य नैपुणानिप्रचक्रिरे
को भवानिति चाहुस्तमास्यतामिति चापराः ।
कुत्रेत्यथ प्रसीदेति जजल्पुः प्रीतमानसाः ॥ २० ॥
विपरीतानि पेतुर्वै विस्रस्तांशुकमूर्धजाः । पतिव्रताः पतीनान्तु सन्निधौ भवमायया
दृष्ट्वाश्रुत्वाभवस्तासांचेष्टावाक्यानिचाव्ययः । शुभंवाऽप्यशुभंवापिनोक्तवान्परमेश्वरः
दृष्ट्वा नारीकुलं विप्रास्तथाभूतञ्च शङ्करम् । अतीव परुषं वाक्यं जजल्पुस्तेमुनीश्वराः
तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शङ्करे । यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसिस्थिताः
श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्मणस्तु महात्मनः । समृद्धश्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान्
भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्य्यवान् । प्रादुर्भावान् दशप्राप्तोदुःखितश्चसदाकृतः
इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ ! छिन्नं सवृषणं पुरा । ऋषिणागौतमेनोर्व्यांकृद्धेनविनिपातितम्
गर्भवासो वसूनाञ्च शापेन विहितस्तथा । ऋषीणाञ्चैव शापेन नहुषः सर्पतांगतः ॥
क्षीरोदश्च समुद्रोऽसि निवासःसर्वदा हरेः । द्वितीयाश्चामृताधारोह्यपेयोब्राह्मणैःकृतः
अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्यांजनार्दनः । क्षीरेण चाऽभिषिच्येशं देवदेवंत्रियम्बकम्
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै । निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः ॥
सेचयित्वाऽथ भगवान् ब्रह्मणा मुनिभिः समम् ।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चाऽऽत्मनः प्रभुः ॥ ३२ ॥
धर्मश्चैव तथा शप्तो माण्डव्येन महात्मना । वृष्णायश्चैव कृष्णेन दुर्वासाद्यैर्महात्मभिः

राघवः सानुजश्चापि दुर्वासेन महात्मना । श्रीवत्सश्च मुनेः पादपतनात्तस्यधीमतः
एते चान्ये च बहवो विप्राणां वशमागताः । वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवमुमापतिम्
एवं हि मोहितास्तेन नावबुध्यन्त शङ्करम् । अत्युग्रवचनं प्रोचुश्चोग्रोऽप्यन्तरधीयत

तेऽपि दारुवनात्तस्मात् प्रातः संविग्नमानसाः ।

पितामहं महात्मानमासीनं परमासने ॥ ३७ ॥

गत्वा विज्ञापयामासुः प्रवृत्तमखिलं विभोः । शुभेदारुवनेतस्मिन् मुनयःक्षीणचेतसः
सोऽपि सञ्चिन्त्य मनसा क्षणादेव पितामहः । तेषां प्रवृत्तमखिलं पुण्ये दारुवने पुरा
उत्थाय प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणिपत्य भवाय च । उवाचसत्वरंब्रह्मामुनीन् दारुवनालयान्

धिग्युष्मान्प्राप्तनिधनान् महानिधिमनुत्तमम् ।

वृथा कृतं यतो विप्रा ! युष्माभिर्भाग्यवर्जितैः ॥ ४१ ॥

यस्तु दारुवनेतस्मिन् लिङ्गी दृष्टोऽप्यलिङ्गिभिः । युष्माभिर्विकृताकारःसएवपरमेश्वरः
गृहस्थैश्चननिन्द्यास्तुसदाह्यतिथयोद्विजाः !। विरूपाश्चसुरूपाश्चमलिनाश्चाप्यपण्डिताः
सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम् । पुरा भूमौ द्विजाग्र्येण जितोह्यतिथिपूजया

अन्यथा नास्ति सन्ततुं गृहस्थैश्च द्विजोत्तमैः ।

त्यक्त्वा चातिथिपूजां तामात्मनो भुवि शोधनम् ॥ ४७ ॥

गृहस्थोऽपि पुरा जेतुं सुदर्शन इति श्रुतः । प्रतिज्ञामकरोज्जायां भार्यामाह पतिव्रताम्
सुव्रते ! सुभ्रु ! सुभगे ! शृणु सर्वं प्रयत्नतः । त्वया वै नावमन्तव्यागृहेह्यतिथयःसदा
सर्व एव स्वयं साक्षादतिथिर्यत् पिनाकधृक् । तस्मादतिथये दत्वाआत्मानमपिपूजय
एवमुक्ताऽथ सन्तप्ता विवशा सा पतिव्रता । पतिमाह रुदन्ती च किमुक्तंभवताप्रभो!
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह सुदर्शनः । देवं सर्वंशिवायार्घ्येशिवएवातिथिःस्वयम्
तस्मात्सर्वे पूजनीयाः सर्वेऽप्यतिथयः सदा । एवमुक्ता तदाभर्त्राभार्य्यातस्यपतिव्रता

शेषामिवाज्ञामाघ्राय मूर्ध्ना सा प्राचरत्सदा ।

परीक्षितुं तथा श्रद्धां तयोः साक्षाद् द्विजोत्तमाः ! ॥ ५२ ॥

धर्मो द्विजोत्तमोभूत्वाजगामाथमुनेर्गृहम् । तं दृष्ट्वा चार्चयामाससार्घ्याद्यैरनघाद्विजम्

सम्पूजितस्तया तान्तुप्राहधर्मोद्विजःस्वयम् । भद्रे ! कुतःपतिर्धीमांस्तवभर्त्ता सुदर्शनः भक्ष्याद्यैरलमघार्ये ! त्वं दातुमिह चार्हसि । सा च लज्जावृता नारीस्मरन्तीकथितंपुरा भर्त्रा न्यमीलयन्नेत्रेचचालच पतिव्रता । किञ्चेत्याहपुनस्तांवैधर्मे चक्रे च सा मतिम् निवेदितुंकिलाऽऽत्मानंतस्मैपत्युरिहाज्ञया । एतस्मिन्नन्तरेभर्त्तातस्यानार्य्याःसुदर्शनः गृहद्वारं गतोधीमांस्तामुवाचमहामुनिः । एह्येहि क गताभद्रे ! तमुवाचातिथिःस्वयम् भार्य्ययात्वनयासार्द्धंमैथुनस्थोऽहमद्य वै । सुदर्शनमहाभाग ! किंकर्त्तव्यमिहोच्यताम् सुरतान्तस्तु विप्रेन्द्र ! सन्तुष्टोऽहं द्विजोत्तम ! । सुदर्शनस्ततः प्राहसुप्रहृष्टोद्विजोत्तमः

भुङ्क्ष्व चैनां यथाकामं गमिष्येऽहं द्विजोत्तम ! ।
हृष्टोऽथ दर्शयामास स्वात्मानं धर्मराट् स्वयम् ॥ ६१ ॥

प्रददौ चेप्सितं सर्वं तमाहच महाद्युतिः । एषा न भुक्ता विप्रेन्द्र! मनसाऽपि सुशोभना मया चैषा न सन्देहः श्रद्धां ज्ञातुमिहागतः । जितो वै यस्त्वयामृत्युधर्मेणैकेनसुव्रत! अहोऽस्य तपसोवीर्यमित्युक्त्वाप्रययौ च सः । तस्मात्तथापूजनीयाःसर्वेह्यतिथयःसदा बहुनाऽत्र किमुक्तेन भाग्यहीना द्विजोत्तमाः !। तमेव शरणं तूर्णं गन्तुमर्हथ शङ्करम् ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वाब्राह्मणोब्राह्मणर्षभाः । ब्रह्माणमभिवन्द्यार्त्ताः प्रोचुराकुलितेक्षणाः

ब्राह्मणा ऊचुः

नापेक्षितं महाभाग ! जीवितं धिकृताः स्त्रियः ।
दृष्टोऽस्माभिर्महादेवो निन्दितो यस्त्वनिन्दितः ॥ ६७ ॥
शप्तश्च सर्वगः शूली पिनाकी नीललोहितः ।
अज्ञानाच्छापजा शक्तिः कुण्ठिताऽस्य निरीक्षणात् ॥ ६८ ॥

वक्तुमर्हसि देवेश ! सन्न्यासं वै क्रमेण तु । द्रष्टुं वै देवदेवेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम् ॥

पितामह उवाच

आदौ वेदानधीत्यैवश्रद्धयाचगुरोःसदा । विचार्य्यार्थंमुनेर्धर्मान् प्रतिज्ञायद्विजोत्तमाः! ग्रहणान्तंहिवाविद्वानथद्वादशवार्षिकम् । स्नात्वाहृत्यचदारान् वैपुत्रानुत्पाद्यसुव्रतान्

वृत्तिभिश्चानुरूपाभिस्तान् विभज्य सुतान् मुनिः ।

अग्निष्टोमादिभिश्चेष्ट्वा यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विभुम् ॥ ७२ ॥
पूजयेत् परमात्मानं प्राप्याऽरण्यं विभावसौ । मुनिर्द्वादशवर्षं वा वर्षमात्रमथापि वा॥
पक्षद्वादशकं वापि दिनद्वादशकन्तु वा । क्षीरभुक् सयतः शान्तः सर्वान् सम्पूजयेत्सुरान्
इष्ट्वैव जुहुयादग्नौ यज्ञपात्राणि मन्त्रतः । अप्सु वै पार्थिवं न्यस्य गुरवे तैजसानि तु
स्वधनं सकलञ्चैव ब्राह्मणेभ्यो विशङ्कया । प्रणिपत्य गुरुं भूमौ विरक्तः सन्न्यसेद्यतिः
निकृत्य केशान् सशिखानुपवीतं विसृज्य च । पञ्चभिर्जुहुयादप्सु भूः स्वाहेति विचक्षणः
ततश्चोर्ध्वं चरेदेव यतिः शिवविमुक्तये । व्रतेनानशनेनापि तोयवृत्त्यापि वा पुनः ॥
पर्णवृत्त्या पयोवृत्त्या फलवृत्त्यापि वा यतिः । एवं जीवन्मृतो नो चेत् षण्मासाद्वत्सराच्च वा
प्रस्थानादिकमायासः स्वदेहस्य चरेद्यतिः । शिवसायुज्यमाप्नोति कर्मणाप्येवमाचरन्
सद्योऽपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ॥ ८१ ॥
त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च ।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमैर्लब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः ॥ ८२ ॥
श्वेतेनैव जितो मृत्युर्भवभक्त्या महात्मना । योऽस्तु भक्तिर्महादेवे शङ्करे परमात्मनि
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे श्वेतकृतमृत्योर्जयवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

श्वेतमुनेराख्यानवर्णनम्

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्राह्मणर्षभाः । श्वेतस्य च कथां पुण्यामपृच्छन् परमर्षयः

पितामह उवाच

श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान्गतायुर्गिरिगह्वरे । सक्तोह्यभ्यर्च्य यद्भक्त्या तुष्टाव च महेश्वरम्
रुद्राध्यायेन पुण्येन नमस्तेत्यादिना द्विजाः ।

ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तमम् ॥ ३ ॥
नेतुं सञ्चिन्त्य विप्रेन्द्राः ! सान्निध्यमकरोन्मुनेः ।
श्वेतोऽपि दृष्ट्वा तं कालं कालप्राप्तोऽपि शङ्करम् ॥ ४ ॥

पूजयामास पुण्यात्मा त्रियम्बकमनुस्मरन् । त्रियम्बकं यजेदेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् किं करिष्यति मे मृत्युर्मृत्योर्मृत्युरहं यतः । तं दृष्ट्वा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयङ्करः एह्येहि श्वेत! चाऽनेनविधिनाकिंफलंतव । रुद्रो वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मावाजगदीश्वरः कः समर्थः परित्रातुं मयाग्रस्तं द्विजोत्तम ! । अनेनममकिंविप्र ! रौद्रेणविधिनाप्रभोः नेतुंयस्योत्थितश्चाऽहंयमलोकंक्षणेन वै । यस्माद्गतायुस्त्वंतस्मान् मुने! नेतुमिहोद्यतः तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भैरवं धर्ममिश्रितम् । हा रुद्र ! रुद्ररुद्रेति ललाप मुनिपुङ्गवः ॥ तं प्राह च महादेवं कालं सम्प्रेक्ष्य वै दृशा । नेत्रेण बाष्पमिश्रेणसम्भ्रान्तेनसमाकुलः

श्वेत उवाच

त्वयाकिंकाल!नो नाथश्चास्तिचेद्विवृषध्वजः । लिङ्गेऽस्मिनशङ्करोरुद्रःसर्वदेवभवोद्भवः अतीवभवभक्तानांमद्विधानांमहात्मनाम् । विधिनाकिंमहाबाहो! गच्छगच्छयथागतम् ततो निशम्य कुपितस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयङ्करः । श्रुत्वा श्वेतस्यतद्वाक्यंपाशहस्तोभयावहः सिंहनादं महत्कृत्वा चास्फाट्यच मुहुर्मुहुः । बबन्ध च मुनिं काल:कालप्राप्तंतमाहच मया बद्धोऽसि विप्रर्षे ! श्वेत ! नेतुं यमालयम् । अद्य वै देवदेवेन तव रुद्रेणकिंकृतम् क्व शर्वस्तवभक्तिश्चक्वपूजापूजया फलम् । क्व चाहंक्वचमेभीतिः श्वेत ! बद्धोऽसिवैमया लिङ्गेऽस्मिन् संस्थितःश्वेत! तव रुद्रोमहेश्वरः।निश्चेष्टोऽसौमहादेव कथंपूज्योमहेश्वरः ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहन्तुमागतम् । निहन्तुमन्तकं स्मयन् स्मरारियज्ञहाहरः त्वरन् विनिर्गतः परःशिवःस्वयंत्रिलोचनः । त्रियम्बकोऽम्बयासमंसनन्दिनागणेश्वरैः ससर्जजीवितंक्षणाद्भवंनिरीक्ष्य वै भयात् । पपातचाशु वै बलीमुनेस्तुसन्निधौद्विजाः ननाद चोर्ध्वमुच्चधीर्निरीक्ष्य चान्तकान्तकम् । निरीक्षणेन वै मृतंभवस्य विप्रपुङ्गवाः विनेदुरुच्चमीश्वराः सुरेश्वरा महेश्वरम् । प्रणेमुरम्बिकामुमां मुनीश्वरास्तु हर्षिताः ॥ ससर्जुरस्य मूर्ध्नि वै मुनेर्भवस्य खेचराः । सुशोभनं सुशीतलं सुपुष्पवर्षमम्बरात् ॥

अहो निरीक्ष्यचान्तकंमृतंतदासुविस्मितः । शिलाशनात्मजोऽव्ययंशिवंप्रणम्यशङ्करम्
उवाच बालधीर्मृतः प्रसीद चेति वै मुनेः । महेश्वरं महेश्वरस्य चाऽनुगो गणेश्वरः ॥
ततो विवेश भगवाननुगृह्य द्विजोत्तमम् ! क्षणाद्गूढशरीरं हि ध्वस्तंदृष्ट्वान्तकंक्षणात्

तस्मान् मृत्युञ्जयञ्चैव भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजाः ! ।
मुक्तिदं भुक्तिदञ्चैव सर्वेषामपि शङ्करम् ॥ २८ ॥
बहुना किं प्रलापेन सन्न्यस्याऽभ्यर्च्य वै भवम् ।
भक्त्या चाऽपरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ ॥ २९ ॥

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः । प्रसीद भक्तिर्देवेशे भवे रुद्रे पिनाकिनि ॥
केन वा तपसा देव! यज्ञेनाऽप्यथ केन वा । व्रतैर्वा भगवद्भक्ता भविष्यन्तिद्विजातयः

पितामह उवाच

न दानेन मुनिश्रेष्ठास्तपसा च न विद्यया । यज्ञैर्होमैर्व्रतैर्वेदैर्योगशास्त्रैर्निरोधनैः ॥३२॥
प्रसादेनैव सा भक्तिः शिवे परमकारणे । अथ तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते परमर्षयः ॥
सदारतनयाः श्रान्ताःप्रणेमुश्चपितामहम् । तस्मात् पाशुपतीभक्तिर्धर्मकामार्थसिद्धिदा
मुनेर्विजयदा चैव सर्वमृत्युजयप्रदा । दधीचस्तु पुरा भक्त्या हरिं जित्वाऽमरैर्विभुम्
क्षुपं जघान पादेनवज्रास्थित्वज्ञलब्धवान् । मयापिनिर्जितोमृत्युर्महादेवस्यकीर्त्तनात्
श्वेतेनाऽपि गतेनास्यं मृत्योर्मुनिवरेण तु । महादेवप्रसादेन जितोमृत्युर्यथा मया ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवार्चनेनमृत्युञ्जयत्वप्राप्तिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

मुनिकृतंशिवस्तोत्रवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

कथम्भवप्रसादेन देवदारुवनौकसः । प्रपन्नाः शरणं देवं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ! ॥ १ ॥

शैलादिरुवाच

तानुवाच महाभागान् भगवानात्मभूः स्वयम् । देवदारुवनस्थांस्तुतपसापावकप्रभान्

पितामह उवाच

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः । न तस्मात् परमं किञ्चित् पदं समधिगम्यते
देवानाञ्च ऋषीणाञ्च पितॄणाञ्चैव स प्रभुः । सहस्रयुगपर्य्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनः ॥४॥
संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः । एष चैव प्रजाःसर्वाःसृजत्येकःस्वतेजसा
एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः । योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते ॥
द्वापरेचैवकालाग्निर्धर्मकेतुःकलौस्मृतः । रुद्रस्यमूर्त्तयस्त्वेतायेऽभिध्यायन्ति पण्डिताः
चतुरस्रं बहिश्चान्तः अष्टास्रं पिण्डिकाश्रये । वृत्तं सुदर्शनं योग्यमेवं लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥

तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्वं विष्णुः प्रकाशकम् ।

मूर्त्तिरेका स्थिता चाऽस्य मूर्त्तयः परिकीर्त्तिताः ॥ ६ ॥

यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् । तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम्
आराधयन्तिविप्रेन्द्राजितक्रोधाजितेन्द्रियाः । लिङ्गंकृत्वायथान्यायंसर्वलक्षणसंयुतम्
अङ्गुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसम्मतम् । समनाभं तथाष्टास्रं षोडशास्रमथापि वा ॥
सुवृत्तं मण्डलंदिव्यं सर्वकामफलप्रदम् । वेदिका द्विगुणा तस्य समावा सर्वसम्मता
गोमुखीचत्रिभागैकावेद्यालक्षणसंयुता । पट्टिका च समन्ताद्वैयवमात्रा द्विजोत्तमाः !
सौवर्णं राजतं शैलं कृत्वा ताम्रमयं तथा । वेदिकायाश्च विस्तारं त्रिगुणंवैसमन्ततः
वर्त्तुलं चतुरस्रं वा षडस्रं वा त्रिरास्रकम् । समन्तान्निर्व्रणंशुभ्रं लक्षणैस्तत्सुलक्षितम्
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं पूजालक्षणसंयुतम् । कलशं स्थापयेत्तस्यवेदिमध्येतथाद्विजाः !

सहिरण्यं सबीजञ्च ब्रह्मभिश्चाऽभिमन्त्रितम् ।

सेचयेच्च ततो लिङ्गं पवित्रैः पञ्चभिः शुभैः ॥ १८ ॥

पूजयेच्चयथालाभं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ । समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यत । ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः ॥
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति । ततः प्रदक्षिणं कृत्वा ब्रह्माणममितौजसम् ॥

सम्प्रस्थिता वनौकास्ते देवदारुवनं ततः । आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणाकथितं यथा
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च । नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च
शैवालभोजनाःकेचित्केचिदन्तर्जलेशयाः । केचिदभ्रावकाशास्तुपादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठिताः॥
दन्तोलूखलिनस्त्वन्येअश्मकुट्टास्तथापरे । स्थानवीरासनास्त्वन्येमृगचर्य्यां रताः परे
कालं नयन्ति तपसा पूजया च महाधियः । एवं संवत्सरे पूर्णे वसन्ते समुपस्थिते ॥

ततस्तेषां प्रसादार्थं भक्तानामनुकम्पया ।
देवः कृतयुगे तस्मिन्गिरौ हिमवतः शुभे ॥ २७ ॥

देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः । भस्मपांसूपदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः ॥२८
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः । क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद्गायति विस्मितः ॥
क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारं क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः । आश्रमे ह्यटते भैक्ष्यं याचते च पुनः पुनः
मायां कृत्वा तथा रूपां देवस्तद्वनमागतः । ततस्ते मुनयः सर्वे तुष्टुवुश्च समाहिताः
अद्भिर्विविधमाल्यैश्च धूपैर्गन्धैस्तथैव च । सपत्नीका महाभागाः सुपुत्राः सपरिच्छदाः
मुनयस्ते तथा वाग्भिरीश्वरं चेदमब्रुवन् । अज्ञानाद्देवदेवेश ! यदस्माभिरनुष्ठितम् ॥
कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । चरितानिविचित्राणिगुह्यानि गहनानि च
ब्रह्मादीनाञ्च देवानां दुर्विज्ञेयानि ते हर ! । अगतिं तेन जानीमो गतिं नैव च नैव च

विश्वेश्वर ! महादेव ! योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ।
स्तुवन्ति त्वां महात्मानो देवदेवं महेश्वरम् ॥ ३६ ॥

नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च । अनन्तबलवीर्य्याय भूतानां पतये नमः॥३७
संहर्त्रे च पिशङ्गाय अव्ययाय व्ययाय च । गङ्गासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने॥
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे । कन्दर्पाय हुताशाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥
शङ्कराय वृषाङ्काय गणानाम्पतये नमः । दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः
वेदमन्त्रप्रधानाय शतजिह्वाय वै नमः । भूतं भव्यं भविष्यञ्चस्थावरं जङ्गमञ्च यत् ॥
तव देहात्समुत्पन्नं देव ! सर्वमिदं जगत् । पासि हंसि च भद्रं ते प्रसीद भगवंस्ततः
अज्ञानाद्यदि विज्ञानाद् यत्किञ्चित्कुरुते नरः । तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया

एवं स्तुत्वा तुमुनयःप्रहृष्टैरन्तरात्ममिः । याचन्त तपसायुक्ताःपश्यामस्त्वांयथापुरा
ततो देवः प्रसन्नात्मास्वमेवाऽऽस्थायशङ्करः । रूपंत्र्यक्षञ्चसन्द्रष्टुं दिव्यञ्चक्षुरदात्प्रभुः
लब्धदृष्ट्या तया दृष्ट्वा देवदेवं त्रियम्बकम् । पुनस्तुष्टुवुरीशानं देवदारुवनौकसः ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे मुनिकृतंशिवस्तोत्रं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

शिवस्याऽपरास्तुतिकथनम्

ऋषय ऊचुः

नमो दिग्वाससे नित्यं कृतान्ताय त्रिशूलिने ।
विकटाय करालाय करालवदनाय च ॥ १ ॥

अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः । कटङ्कटाय रुद्राय स्वाहाकाराय वै नमः ॥२
सर्वप्रणतदेहाय स्वयञ्च प्रणतात्मने । नित्यं नीलशिखण्डाय श्रीकण्ठाय नमो नमः॥
नीलकण्ठाय देवाय चिताभस्माङ्गधारिणे । त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानांरुद्राणांनीललोहितः
आत्माच सर्वभूतानां साङ्ख्यैः पुरुष उच्यते । पर्वतानांमहामेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः
ऋषीणाञ्च वशिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा । ओङ्कारःसर्ववेदानां श्रेष्ठंसामचसामसु
आरण्यानां पशूनाञ्च सिंहस्त्वंपरमेश्वरः । ग्राम्याणामृषभश्चासिभगवान्लोकपूजितः

सर्वथा वर्त्तमानोऽपि यो यो भावो भविष्यति ।
त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं यथा ॥ ८ ॥

कामःक्रोधश्च लोभश्च विषादो मद एव च । एतदिच्छामहे बोद्धुं प्रसीद परमेश्वर !
महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव! कृतात्मना । करं ललाटे सम्विध्य वह्निरुत्पादितस्त्वया
तेनाग्निना तदा लोका अर्चिर्भिःसर्वतोवृताः । तस्मादग्निसमाह्येते बहवो विकृताग्नयः
कामः क्रोधश्च लोभश्चमोहोदम्भउपद्रवः । यानिचान्यानिभूतानिस्थावराणिचराणिच

दह्यन्ते प्राणिनस्तेतु त्वत्समुत्थेन वह्निना । अस्माकं दह्यमानानां त्राता भवत्सुरेश्वर!
त्वञ्च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिञ्चसि । महेश्वर! महाभाग! प्रभो! शुभनिरीक्षक!
आज्ञापय वयं नाथ! कर्त्तारो वचनं तव । भूतकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु च ॥१५॥
अन्तं गन्तुं न शक्ताः स्म देवदेव ! नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे श्रीशिवस्यापरास्तुतिर्नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पूजातुष्टेन शङ्करेणयतिनिन्दानिषेधकथनम्

नन्द्युवाच

ततस्तुतोष भगवाननुगृह्य महेश्वरः । स्तुतिं श्रुत्वा स्तुतस्तेषामिदं वचनमब्रवीत् ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि युष्माभिः कीर्त्तितं स्तवम् ।
श्रावयेद्वा द्विजान् विप्रो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ २ ॥
वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनिपुङ्गवाः !! स्त्रीलिङ्गमखिलं देवीप्रकृतिर्मम देहजा
पुंलिङ्गं पुरुषो विप्रा! मम देहसमुद्भवः । उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा ! न संशयः ॥
न निन्देद्यतिनं तस्माद्दिग्वाससमनुत्तमम् । बालोन्मत्तविचेष्टन्तु मत्परं ब्रह्मवादिनम्
ये हि मां भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः ।
यथोक्तकारिणो दान्ता विप्रा ध्यानपरायणाः ॥ ६ ॥
महादेवपरा नित्यं चरन्तो ह्यूर्ध्वरेतसः । अर्चयन्ति महादेवं वाङ्मनःकायसंयताः ॥७॥
रुद्रलोकमनुप्राप्य न निवर्त्तन्ति ते पुनः । तस्मादेतद्व्रतं दिव्यमव्यक्तं व्यक्तलिङ्गिनः॥
भस्मव्रताश्च मुण्डाश्च व्रतिनो विश्वरूपिणः । न तान्परिवदेद्विद्वान्नचैतानभिलङ्घयेत्
न हसेन्नाऽप्रियं ब्रूयादमुत्रेहहितार्थवान् । यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निन्दति
यस्त्वेतान् पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम् । एवमेष महादेवो लोकानां हितकाम्यया

युगे युगे महायोगी क्रीडते भस्मगुण्ठितः । एवञ्चरत भद्रं वस्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ
अतुलमिह महामयप्रणाशहेतुं शिवकथितं परमं पदं विदित्वा ।
व्यपगतभयलोभमोहचित्ताः प्रणिपतिताः सहसा शिरोभिरुग्रम् ॥ १३ ॥
ततः प्रमुदिता विप्राः श्रुत्वैवं कथितं तदा । गन्धोदकैः सुशुद्धैश्चकुशपुष्पविमिश्रितैः
स्नापयन्ति महाकुम्भैरद्भिरेव महेश्वरम् । गायन्ति विविधैर्गुह्यैर्हुङ्कारैश्चापि सुस्वरैः ॥
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय वै नमः । अर्द्धनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्त्तिने ॥१६॥
मेघवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने । कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥१७
सुरचितसुविचित्रकुण्डलाय सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम् ।
मृगपतिवरचर्मवाससे च प्रथितयशसे नमोऽस्तु शङ्कराय ॥ १८ ॥
ततस्तान् स मुनीन्प्रीतःप्रत्युवाचमहेश्वरः । प्रीतोऽस्मितपसायुष्मान्वरंवृणुतसुव्रताः
ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् । भृग्वङ्गिरा वशिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च॥
गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः । मरीचिःकश्यपःकण्वःसम्वर्त्तश्चमहातपाः
ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन् । भस्मस्नानञ्च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता ॥
सेव्यासेव्यत्वमेवञ्च एतदिच्छाम वेदितुम् । ततस्तेषां वचः श्रुत्वा भगवान्परमेश्वरः
सस्मितं प्राह सम्प्रेक्ष्य सर्वान् मुनिवरांस्तदा ॥ २४ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ऋषिवाक्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

योगिनःप्रशंसावर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

एतद्व वः सम्प्रवक्ष्यामि कथासर्वस्वमद्य वै । अग्निर्ह्यहंसोमकर्त्तासोमश्चाग्निमुपाश्रितः
कृतमेतद्वहत्यग्निर्भूयो लोकसमाश्रयात् । असकृत्त्वग्निना दग्धं जगत् स्थावरजङ्गमम्

भस्मसाद्विहितं सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम् । भस्मनावीर्य्यमास्थायभूतानि परिषिञ्चति

अग्निकार्य्यञ्च यः कृत्वा करिष्यति त्रियायुषम् ।

भस्मना मम वीर्य्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४ ॥

भासतेत्येव यद्भस्म शुभं भावयतेव यत् । भक्षणात्सर्वपापानांभस्मेति परिकीर्त्तितम्
ऊष्मपाः पितरो ज्ञेया देवावैसोमसम्भवाः । अग्नीषोमात्मकंसर्वंजगत्स्थावरजङ्गमम्
अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैवा महाम्बिका । अहमग्निश्च सोमश्च प्रकृत्यापुरुषःस्वयम्
तस्माद्भस्म महाभागा!मद्वीर्यमितिचोच्यते । स्ववीर्य्यंवपुषाचैवधारयामीतिवैस्थितिः
तदा प्रभृति लोकेषु रक्षार्थमशुभेषु च । भस्मना क्रियते रक्षा सूतिकानां गृहेषु च ॥
भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधोजितेन्द्रियः । मत्समीपंसमागम्य न भूयोविनिवर्त्तते
व्रतं पाशुपतं योगं कापिलञ्चैव निर्मितम् । पूर्वं पाशुपतं ह्येतन्निर्मितं तदनुत्तमम् ॥

शेषाश्चाऽऽश्रमिणः सर्वे पश्चात् सृष्टाः स्वयम्भुवा ।

सृष्टिरेषा मया सृष्टा लज्जामोहभयात्मिका ॥ १२ ॥

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा । ये चान्येमानवा लोकेसर्वेजायन्त्यवाससः
इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनाऽपि सम्वृतः । तैरेव संवृतैर्गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम् ॥
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यञ्चैव सर्वशः । तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम्
भस्मस्नानेनदिग्धाङ्गोध्यायतेमनसाभवम् । यद्यकार्य्यसहस्राणिकृत्वायःस्नातिभस्मना
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् । तस्माद्यत्नपरोभूत्वात्रिकालमपियःसदा
भस्मना कुरुतेस्नानं गाणपत्यं स गच्छति । समाहृत्यक्रतून्सर्वान्गृहीत्वाव्रतमुत्तमम्
ध्यायन्ति ये महादेवं लीलासद्भावभाविताः । उत्तरेणार्य्यपन्थानं तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः
दक्षिणेन च पन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे । अणिमागरिमाचैव लघिमा प्राप्तिरेव च
इच्छाकामावसायित्वं तथा प्राकाम्यमेवच । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च अमरत्वञ्चतेगताः
इन्द्रादयस्तथा देवाः कामिकव्रतमास्थिताः । ऐश्वर्य्यं परमं प्राप्य सर्वेप्रथिततेजसः॥

व्यपगतमदमोहमुक्तरागस्तमरजदोषविवर्जितस्वभावः ।

परिभवमिदमुत्तमं विदित्वा पशुपतियोगपरोभवेत्सदैव ॥ २३ ॥

इमं पाशुपतं ध्यायन्सर्वपापप्रणाशनम् । यः पठेच्च शुचिर्भूत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति । ते सर्वे मुनयः श्रुत्वावसिष्ठाद्याद्विजोत्तमाः
भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गा बभूवुर्विगतस्पृहाः । रुद्रलोकायकल्पान्तेसंस्थिताः शिवतेजसा
तस्मान्ननिन्द्याःपूज्याश्चविकृतामलिनाअपि। रूपान्विताश्चविप्रेन्द्राःसदायोगीन्द्रशङ्कया
बहुना किं प्रलापेन भवभक्ता द्विजोत्तमाः । सम्पूज्याः सर्वयत्नेन शिववच्चात्र संशयः
मलिनाश्चैव विप्रेन्द्रा भवभक्ता दृढव्रताः । दधीचस्तु यथा देवदेवं जित्वा व्यवस्थितः
नारायणं तथा लोके रुद्रभक्त्या न संशयः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मदिग्धतनूरुहाः
जटिनो मुण्डिनश्चैवनग्नानानाप्रकारिणः । सम्पूज्याः शिववन्नित्यंमनसाकर्मणागिरा

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे योगिप्रशंसानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

क्षुपपराभववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

कथं जघान राजानं क्षुपं पादेन सुव्रत ! । दधीचः समरे जित्वा देवदेवं जनार्दनम् ॥
वज्रास्थित्वंकथंलेभेमहादेवान्महातपाः !। वक्तुमर्हसिशैलादे ! जितोमृत्युस्त्वयायथा

शैलादिरुवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा राजा क्षुप इति स्मृतः । अभून्मित्रो दधीचस्य मुनीन्द्रस्यजनेश्वरः
चिरात्तयोः प्रसङ्गाद्वै वादः क्षुपदधीचयोः । अभवत्क्षत्रियश्रेष्ठो विप्र एवेति विश्रुतः
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृप । तस्मादिन्द्रो ह्यहं वह्निर्यमश्च निर्ऋतिस्तथा
वरुणश्चैव वायुश्च सोमो धनद एव च । ईश्वरोऽहं न सन्देहो नाऽवमन्तव्य एव च॥

महती देवता या सा महतश्चाऽपि सुव्रत ! ।
तस्मात्त्वया महाभाग ! च्यावनेय ! सदा ह्यहम् ॥ ७ ॥

नावमन्तव्य एवेह पूजनीयश्च सर्वथा । श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुपस्य मुनिसत्तमः ॥
दधीचश्च्यावनिश्चोग्रोगौरवादात्मनोद्विजः । अताडयत्क्षुपंमूर्ध्निदधीचोवाममुष्टिना
चिच्छेद वज्रेण च तं दधीचं बलवान्क्षुपः ॥ ६ ॥
ब्रह्मलोके पुरा सो हि ब्रह्मणःक्षुतसम्भवः । लब्धं वज्रश्चकार्य्यार्थवज्रिणा चोदितःप्रभुः
स्वेच्छयैव नरो भूत्वा नरपालो बभूव सः । तस्माद्राजा स विप्रेन्द्रमजय्यद्वै महाबलः
यथा वज्रधरः श्रीमान्बलवांस्तमसान्वितः । पपात भूमौ निहतो वज्रेण द्विजपुङ्गवः ॥
सस्मार च तदा तत्र दुःखाद्वै भार्गवं मुनिम् ।
शुक्रोऽपि सन्धयामास ताडितं कुलिशेन तम् ॥ १३ ॥
योगादेत्य दधीचस्य देहं देहभृतां वरः । सन्धाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याऽऽह भार्गवः ॥
भो दधीच ! महाभाग ! देवदेवमुमापतिम् । सम्पूज्य पूज्यं ब्रह्माद्यैर्देवदेवं निरञ्जनम्
अवध्यो भव विप्रर्षे प्रसादात्त्र्यम्बकस्य तु । मृतसञ्जीवनं तस्माल्लब्धमेतन्मयाद्विज !
नास्ति मृत्युभयं शम्भोर्भक्तानामिह सर्वतः । मृतसञ्जीवनञ्चाऽपि शैवमद्य वदामि ते
त्रियम्बकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम् ।
त्रिमण्डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम् ॥ १८ ॥
त्रितत्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधा भूतस्य सर्वतः । त्रिवेदस्य महादेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणे प्रकृतौ तथा । इन्द्रियेषु तथाऽन्येषु देवेषु च गणेषु च॥२०॥
पुष्पेषु गन्धवत्सूक्ष्मः सुगन्धिः परमेश्वरः ।
पुष्टिश्च प्रकृतिर्यस्मात्पुरुषस्य द्विजोत्तम ! ॥ २१ ॥
महदादिविशेषान्तविकल्पस्याऽपिसुव्रत!। विष्णोःपितामहस्याऽपिमुनीनाञ्चमहामुने!
इन्द्रस्याऽपि च देवानां तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः । तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसा तथा॥
स्वाध्यायेन च योगेनध्यानेनचयजामहे । सत्येनाऽनेनमुक्षीयान्मृत्युपाशाद्भवःस्वयम्
बन्धमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः । मृतसञ्जीवनो मन्त्रो मयालब्धस्तु शङ्करात्
जप्त्वा हुत्वाऽभिमन्त्र्यैवं जलं पीत्वा दिवानिशम् ।
लिङ्गस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं द्विज ! ॥ २६ ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वातपसाऽऽराध्यशङ्करम्। वज्रास्थित्वमवध्यत्वमदीनत्वञ्चलब्धवान्
एवमाराध्य देवेशं दधीचो मुनिसत्तमः। प्राप्याऽवध्यत्वमन्यैश्चवज्रास्थित्वंप्रयत्नतः
अताडयच्च राजेन्द्रं पादमूलेन मूर्ध्व(र्ध)नि। क्षुपो दधीचं वज्रेणजघानोरसि च प्रभुः
नाऽभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः। प्रभावात्परमेशस्य वज्रबद्धशरीरिणः॥
दृष्ट्वाऽप्यवध्यत्वमदीनताञ्च क्षुपो दधीचस्य तदा प्रभावम्।
आराधयामास हरिं मुकुन्दमिन्द्रानुजं प्रेक्ष्य तदाम्बुजाक्षम्॥ ३१॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे क्षुपपराभवो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

क्षुपदधीचसम्वादवर्णनम्

नन्दुवाच

पूजया तस्य सन्तुष्टो भगवान्पुरुषोत्तमः। श्रीभूमिसहितः श्रीमाञ्शङ्खचक्रगदाधरः॥
किरीटी पद्महस्तश्च सर्वाभरणभूषितः। पीताम्बरश्च भगवान्देवैर्दैत्यैश्च संवृतः॥ २
प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः। दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम्॥३॥
तुष्टावबाग्भिरिष्टाभिःप्रणम्यगरुडध्वजम्। त्वमादिस्त्वमनादिश्चप्रकृतिस्त्वंजनार्दनः
पुरुषस्त्वंजगन्नाथोविष्णुर्विश्वेश्वरोभवान्। योऽयंब्रह्मासिपुरुषोविश्वमूर्त्तिःपितामहः
तत्त्वमाद्यं भवानेव परं ज्योतिर्जनार्दन!। परमात्मा परंधामश्रीपते! भूपते! प्रभो!
त्वत्क्रोधसम्भवो रुद्रस्तमसा च समावृतः। त्वत्प्रसादाज्जगद्धाता रजसाचपितामहः
त्वत्प्रसादात्स्वयं विष्णुः सत्वेन पुरुषोत्तमः।
कालमूर्त्ते! हरे! विष्णो नारायण! जगन्मय!॥ ८॥
महांस्तथाचभूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणिच। त्वयैवाधिष्ठितान्येवविश्वमूर्त्ते! महेश्वर
महादेव! जगन्नाथ! पितामह! जगद्गुरो!। प्रसीद देवदेवेश! प्रसीद परमेश्वर!

प्रसीद त्वं जगन्नाथ ! शरण्यं शरणं गतः । वैकुण्ठ!शौरे! सर्वज्ञ वासुदेव ! महाभुज !
सङ्कर्षण ! महाभाग ! प्रद्युम्न ! पुरुषोत्तम ! ।
अनिरुद्ध ! महाविष्णो ! सदा विष्णो ! नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥
विष्णो ! तवासनं दिव्यमव्यक्तं मध्यतोविभुः । सहस्रफणसंयुक्तस्तमोमूर्त्तिर्धराधरः
अधश्च धर्मो देवेश ! ज्ञानं वैराग्यमेव च । ऐश्वर्य्यमासनस्यास्य पादरूपेण सुव्रत !
सप्तपातालपादस्त्वं धराजघनमेव च । वासांसि सागराः सप्त दिशश्चैव महाभुजाः
द्यौर्मूर्धा ते विभो! नाभिःखंवायुर्नासिकां गतः । नेत्रे सोमश्चसूर्य्यश्चकेशावैपुष्करादयः
नक्षत्रतारकाद्यौश्च ग्रैवेयकविभूषणम् । कथं स्तोष्यामि देवेशं पूज्यश्च पुरुषोत्तमः ॥
श्रद्धया च कृतं दिव्यंयच्छ्रुतंयच्चकीर्त्तितम् । यदिष्टंतत्क्षमस्वेश!नारायण!नमोऽस्तुते

शैलादिरुवाच

इदन्तु वैष्णवं स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि क्षुपेण परिकीर्तितम्
श्रावयेद्वा द्विजान्भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २० ॥
सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम् ।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ २१ ॥

राजोवाच

भगवन्ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः । धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखाममपुराऽभवत्
अवध्यः सर्वदा सर्वैः शङ्करार्चनतत्परः । सावज्ञं वामपादेन स मां मूर्ध्नि सदस्यथ ॥
ताडयामास देवेश! विष्णो विश्व जगत्पते !! उवाच च मदाविष्टोनबिभेमीतिसर्वतः
जेतुमिच्छामि तं विप्रं दधीचं जगदीश्वर !! यथाहितं तथा कर्तुं त्वमर्हसि जनार्दन !

शैलादिरुवाच

ज्ञात्वा सोऽपि दधीचस्य अवध्यत्वं महात्मनः । सस्मारच महेशस्यप्रभावमतुलंहरिः
एवं स्मृत्वा हरिः प्राह ब्रह्मणः क्षुतसम्भवम् । विप्राणांनास्तिराजेन्द्रभयमेत्यमहेश्वरम्
विशेषाद्रुद्रभक्तानां अभयं सर्वदा नृप ! । नीचानामपिसर्वत्रदधीचस्याऽस्य किंपुनः
तस्मात्तवमहाभाग!विजयोनास्तिभूपते !! दुःखं करोमि विप्रस्य शापार्थं ससुरस्य मे

भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरैः समम् । विनाशो मम राजेन्द्र ! पुनरुत्थानमेव च
तस्मात्समेत्य विप्रेन्द्र ! सर्वयत्नेन भूपते !। करोमि यत्नं राजेन्द्र! दधीचविजयायते

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा वाक्यं क्षुपः प्राह तथाऽस्त्विति जनार्दनम् ।
भगवानपि विप्रस्य दधीचस्याऽऽश्रमं ययौ ॥ ३२ ॥

आस्थाय रूपं विप्रस्य भगवान्भक्तवत्सलः । दधीचमाह ब्रह्मर्षिमभिनन्द्य जगद्गुरुः ॥

श्रीभगवानुवाच

भो! भो! दधीच ! ब्रह्मर्षे ! भवार्चनरताव्यय ! । वरमेकं वृणेत्वत्तस्तंभवान्दातुमर्हति
याचितो देवदेवेन दधीचः प्राह विष्णुना । ज्ञातं तवेप्सितंसर्वं नबिभेमि तथाऽप्यहम्
भवान्विप्रस्य रूपेण आगतोऽसि जनार्दन !। भूतं भविष्यं देवेश ! वर्त्तमानंजनार्दन !
ज्ञातंप्रसादाद्रुद्रस्यद्विजत्वंत्यजसुव्रत ! । आराधितोऽसि देवेश ! क्षुपेण मधुसूदन !॥
जाने तवैनां भगवन् ! भक्तवत्सलतांहरे ! । स्थानेतवैषाभगवन् ! भक्तवात्सल्यताहरे
अस्ति चेद्भगवन् ! भीतिर्भवार्चनरतस्य मे । वक्तुमर्हसि यत्नेन वरदाम्बुजलोचन ! ॥
वदामि न मृषा तस्मान्न बिभेमि जनार्दन ! । नबिभेमिजगत्यस्मिन्देवदैत्यद्विजादपि

नन्द्युवाच

श्रुत्वा वाक्यं दधीचस्य तदास्थाय जनार्दनः ।
स्वरूपं सस्मितं प्राह सन्त्यज्य द्विजतां क्षणात् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच

भयं दधीच ! सर्वत्र नास्त्येव तव सुव्रत ! ।
भवार्चनरतो यस्माद्भवान्सर्वज्ञ एव च ॥ ४२ ॥

बिभेमीति सकृद् वक्तुं त्वमर्हसि नमस्तव । नियोगान्मम विप्रेन्द्र ! क्षुपंप्रतिसदस्यथ
एवंश्रुत्वाऽपितद्वाक्यंसान्त्वंविष्णोर्महामुनिः । नबिभेमीतितत्प्राहदधीचोदेवसत्तमम्
प्रभावाद्देवदेवस्यशम्भोःसाक्षात्पिनाकिनः । सर्वस्यशङ्करस्याऽस्यसर्वज्ञस्यमहामुनिः
ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः । चक्रमुद्यम्य भगवान्दिधक्षुर्मुनिसत्तमम्

अभवत्कुण्ठिताग्रं हि विष्णोश्चक्रंसुदर्शनम् । प्रभावाद्विदधीचस्यक्षुपस्यैवहिसन्निधौ
दृष्ट्वातत्कुण्ठिताग्रं हि चक्रं चक्रिणमाह सः ।
दधीचः सस्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम् ॥ ४८ ॥
भगवन्! भवता लब्धं पुराऽतीवसुदारुणम् । सुदर्शनमितिख्यातंचक्रंविष्णोः प्रयत्नतः
भवस्यतच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह । ब्रह्मास्त्राद्यैस्तथान्यैर्हिप्रयत्नं कर्तुमर्हसि

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वानिर्वीर्य्यमायुधम् । ससर्ज च पुनस्तस्मैसर्वास्त्राणिसमन्ततः
चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोःसाहाय्यमव्ययाः । द्विजेनैकेनयोद्धुंहिप्रवृत्तस्यमहाबलाः
कुशमुष्टिं तदादाय दधीचः संस्मरन् भवम् । ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिःसर्वतोवशी
दिव्यं त्रिशूलमभवत्कालाग्निसदृशप्रभम् । दग्धुं देवान्मतिश्चक्रे युगान्ताग्निरिवाऽपरः
इन्द्रनारायणाद्यैश्च देवैस्त्यक्तानि यानि तु । आयुधानिसमस्तानिप्रणेमुस्त्रिशिखंमुने!
देवाश्चदुद्रुवुःसर्वेध्वस्तवीर्य्याद्विजोत्तम ! । ससर्जभगवान्विष्णुःस्वदेहात्पुरुषोत्तमः॥
आत्मनः सदृशान् दिव्यान् लक्षलक्षायुतान् गणान् ।
तानि सर्वाणि सहसा ददाह मुनिसत्तमः ॥ ५७ ॥
ततो विस्मयनार्थाय विश्वमूर्त्तिरभूद्धरिः । तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद् द्विजसत्तमः
दधीचो भगवान्विप्रः देवतानां गणान्पृथक् । रुद्राणांकोटयश्चैवगणानांकोटयस्तथा
अण्डानां कोटयश्चैव विश्वमूर्त्तेस्तनौ तदा । दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिर्विस्मितं तदा
विष्णुमाह जगन्नाथं जगन्मयमजंविभुम् । अम्भसाऽभ्युक्ष्यतंविष्णुंविश्वरूपंमहामुनिः
मायांत्यजमहाबाहो! प्रतिभासा विचारतः । विज्ञानानांसहस्राणिदुर्विज्ञेयानिमाधव !
मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया सार्धमनिन्दित ! । ब्रह्माणञ्च तथारुद्रंदिव्यांदृष्टिंददामिते
इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः । तं प्राह च हरिं देवं सर्वदेवभवोद्भवम्
मायया ह्यनया किं वा मन्त्रशक्त्याऽथ वा प्रभो ! ।
वस्तुशक्त्याऽथ वा विष्णो ! ध्यानशक्त्याऽथ वा पुनः ॥ ६५ ॥
त्यक्त्वा मायामिमां तस्माद् योद्धुमर्हसि यत्नतः ।

एवं तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा माहात्म्यमद्भुतम् ॥ ६६ ॥
देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणञ्च तम् । वारयामास निश्चेष्टं पद्मयोनिर्जगद्गुरुः ॥
निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणस्तेन निर्जितः । जगाम भगवान्विष्णुःप्रणिपत्यमहामुनिम्
क्षुपो दुःखातुरोभूत्वासम्पूज्य च मुनीश्वरम् । दधीचमभिवन्द्याशुप्रार्थयामासविक्लवः
दधीच ! क्षम्यतां देव! मयाऽज्ञानात्कृतं सखे !। विष्णुनापिसुरैर्वापिरुद्रभक्तस्यकिंतव
प्रसीद परमेशान ! दुर्लभादुर्जनैर्द्विज ! । भक्तिर्भक्तिमतां श्रेष्ठ ! मद्विधैःक्षत्रियाधमैः ॥
श्रुत्वाऽनुगृह्य तं विप्रो दधीचस्तपतां वरः । राजानं मुनिशार्दूलःशशापच सुरोत्तमान्
रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः । ध्वस्ता भवन्तुदेवेनविष्णुनाचसमन्विताः
प्रजापतेर्मखे पुण्ये दक्षस्य सुमहात्मनः । एवं शप्त्वा क्षुपं प्रेक्ष्य पुनराह द्विजोत्तमः
देवैश्च पूज्या राजेन्द्र ! नृपैश्चविविधैर्गणैः । ब्राह्मणाएवराजेन्द्र ! बलिनःप्रभविष्णवः
इत्युक्त्वा स्वोटजं विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः । दधीचमभिवन्द्यैवजगामस्वंनृपःक्षयम्
तदेव तीर्थमभवत् स्थानेश्वरमिति स्मृतम् । स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्
कथितस्तव संक्षेपाद्विवादः क्षुब्दधीचयोः । प्रभावश्च दधीचस्य भवस्य च महामुने !
य इदं कीर्त्तयेद्दिव्यं विवादंक्षुब्दधीचयोः । जित्वाऽपमृत्युं देहान्तेब्रह्मलोकंप्रयातिसः
य इदं कीर्त्य सङ्ग्रामं प्रविशेत्तस्य सर्वदा । नास्तिमृत्युभयञ्चैवविजयीचभविष्यति

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे क्षुब्दधीचसम्वादो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशिवद्वाराब्रह्मणेवरप्रदानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भवान् कथमनुप्राप्तो महादेवमुमापतिम् । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो

शैलादिरुवाच

प्रजाकामः शिलादोऽभूत्पिता मम महामुने ! ।

सोऽप्यन्धः सुचिरं कालं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ २ ॥

तपतस्तस्य तपसा सन्तुष्टो वज्रधृक्प्रभुः । शिलादमाह तुष्टोऽस्मि वरयस्व वरानिति

ततः प्रणम्य देवेशं सहस्राक्षं सहामरैः । प्रोवाच मुनिशार्दूल ! कृताञ्जलिपुटो हरिम् ॥

शिलाद उवाच

भगवन् ! देवताधिप ! सहस्राक्ष ! वरप्रद ! । अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामिसुव्रत

शक्र उवाच

पुत्रंदास्यामिविप्रर्षे!योनिजंमृत्युसंयुतम् । अन्यथा तेनदास्यामिमृत्युहीनानसन्ति वै

न दास्यति सुतं तेऽत्रमृत्युहीनमयोनिजम् । पितामहोऽपिभगवान्किमुतान्येमहामुने

सोऽपि देवःस्वयंब्रह्मामृत्युहीनो न चेश्वरः । योनिजश्चमहातेजाश्चाण्डजःपद्मसम्भवः

महेश्वराङ्गजश्चैव भवान्यास्तनयः प्रभुः । तस्याप्यायुः समाख्यातं परार्धद्वयसम्मितम्

कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै । समतीतानि कल्पानां तावच्छेषापरत्रये

तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः । परित्यजाशांविप्रेन्द्र ! गृहाणात्मसमंसुतम्

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनंश्रुत्वापिता मे लोकविश्रुतः । शिलाद इति पुण्यात्मापुनःप्राहशचीपतिम्

शिलाद उवाच

भगवन्नण्डयोनित्वं पद्मयोनित्वमेव च । महेश्वराङ्गयोनित्वं श्रुतं वै ब्रह्मणो मया ॥

पुरा महेन्द्रदायादाद्गदतश्चाऽस्य पूर्वजात् । नारदाद्धि महाबाहो! कथमत्राऽऽशु नो वद

दाक्षायणी सा दक्षोऽपिदेवःपद्मोद्भवात्मजः । पौत्रीकनकगर्भस्यकथंतस्याःसुतोविभुः

शक्र उवाच

स्थाने संशयितुं विप्र ! तव वक्ष्यामि कारणम् । कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः

ससर्ज सकलं ध्यात्वा ब्रह्माणं परमेश्वरः । जनार्दनो जगन्नाथः कल्पे वै मेघवाहने ॥

दिव्यं वर्षसहस्रन्तु मेघो भूत्वाऽवहद्धरम् । नारायणो महादेवं बहुमानेन सादरम् ॥

दृष्ट्वा भावं महादेवो हरेः स्वात्मनि शङ्करः । प्रददौ तस्य सकलं स्रष्टुं वै ब्रह्मणासह
तदा तं कल्पमाहुर्वै मेघवाहनसंज्ञया । हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा तस्य देहोद्भवस्तदा ॥२०॥
जनार्दनसुतः प्राह तपसा प्राप्य शङ्करम् । तव वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणाङ्गभवो ह्यहम्

मया सह जगत् सर्वं तथाऽप्यसृजदच्युतः ।

जगन्मयोऽवहद् यस्मान्मेघो भूत्वा दिवानिशम् ॥ २२ ॥

भवन्तमवहद्विष्णुर्देवदेवं जगद्गुरुम् । नारायणादपि विभो ! भक्तोऽहं तव शङ्कर !॥

प्रसीद देहि मे सर्वं सर्वात्मत्वं तव प्रभो ! ।

तदाऽथ लब्ध्वा भगवान् भवात्सर्वात्मतां क्षणात् ॥ २४ ॥

त्वरमाणोऽथ सङ्गम्य ददर्श पुरुषोत्तमम् । एकार्णवालये शुभ्रे त्वन्धकारे सुदारुणे
हेमरत्नचिते दिव्ये मनसा च विनिर्मिते । दुष्प्राप्ये दुर्जनैः पुण्यैः सनकाद्यैरगोचरे ॥
जगदावासहृदयं ददर्श पुरुषं त्वजः । अनन्तभोगशय्यायां शायिनं पङ्कजेक्षणम् ॥
शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम् । सर्वाभरणसंयुक्तं शशिमण्डलसन्निभम् ॥२८॥
श्रीवत्सलक्षणं देवं प्रसन्नास्यं जनार्दनम । रमामृदुकराम्भोजस्पर्शरक्तपदाम्बुजम् ॥
परमात्मानमीशानं तमसा कालरूपिणम् । रजसा सर्वलोकानां सर्गलीलाप्रवर्त्तकम्
सत्वेन सर्वभूतानां स्थापकं परमेश्वरम् । सर्वात्मानं महात्मानं परमात्मानमीश्वरम्
क्षीरार्णवेऽमृतमये शायिनं योगनिद्रया । तं दृष्ट्वा प्राह वै ब्रह्मा भगवन्तं जनार्दनम् ॥
ग्रसामि त्वां प्रसादेन यथापूर्वं भवानहम् । स्मयमानस्तुभगवान् प्रतिबुध्यपितामहम्
उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीषच्चकार सः । विवेश चाण्डजं तन्तुग्रस्तस्तेन महात्मना

ततस्तं चाऽसृजद् ब्रह्मा भ्रुवोर्मध्येन चाऽच्युतम् ।

सृष्टस्तेन हरिः प्रेक्ष्य स्थितस्तस्याऽथ सन्निधौ ॥ ३५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः । विकृतं रूपमास्थाय पुरा दत्तवरस्तयोः ॥३६॥
आगच्छद् यत्र वै विष्णुर्विश्वात्मा परमेश्वरः । प्रसादमतुलं कर्त्तुं ब्रह्मणश्चहरेः प्रभुः
ततः समेत्य तौ देवौ सर्वदेवभवोद्भवम् । अपश्यतां भवं देवं कालाग्निसदृशं प्रभुम् ॥
तौ तं तुष्टुवतुश्चैव शर्वमुग्रं कपर्दिनम् । प्रणेमतुश्च वरदं बहुमानेन दूरतः ॥ ३९ ॥

भवोऽपि भगवान् देवमनुगृह्य पितामहम् । जनार्दनं जगन्नाथस्तत्रैवाऽन्तरधीयत॥४०

इति लैङ्गे श्रीमहापुराणे ब्रह्मणे वरप्रदानं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मसृष्टिकथनम्

शैलादिरुवाच

गते महेश्वरे देवे तमुद्दिश्य जनार्दनः । प्रणम्य भगवान्प्राह पद्मयोनिमजोद्भवः ॥ १ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

परमेशो जगन्नाथः शङ्करस्त्वेष सर्वगः । आवयोरखिलस्येशः शरणञ्च महेश्वरः ॥ २॥
अहंवामाङ्गजो ब्रह्मन् ! शङ्करस्यमहात्मनः । भवान् भवस्यदेवस्यदक्षिणाङ्गभवःस्वयम्
मामाहुर्ऋषयः प्रेक्ष्य प्रधानं प्रकृतिं तथा । अव्यक्तमजमित्येवं भवन्तं पुरुषस्त्विति ॥
एवमाहुर्महादेवमावयोरपि कारणम् । ईशं सर्वस्य जगतः प्रभुमव्ययमीश्वरम् ॥ ५ ॥
सोऽपि तस्याऽमरेशस्य वचनाद्वारिजोद्भवः । वरेण्यं वरदं रुद्रमस्तुवत् प्रणनाम च॥
अथाऽम्भसाप्लुतांभूमिंसमादायजनार्दनः । पूर्ववत् स्थापयामासवाराहंरूपमास्थितः
नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाऽकरोत्प्रभुः । कृत्वा चोर्वीं प्रयत्नेन निम्नोन्नतविवर्जिताम्

धरायां सोऽचिनोत्सर्वान् भूधरान् भूधराकृतिः ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ॥ १ ॥

स्रष्टुञ्च भगवान् चक्रे मतिं मतिमताम्वरः । मुख्यञ्च तैर्यग्योन्यञ्च दैविकं मानुषंतथा
विभुश्चाऽनुग्रहं तत्र कौमारकमदीनधीः । पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा ॥११
सनातनं सतां श्रेष्ठं नैष्कर्म्येण गताः परम् । मरीचिभृग्वङ्गिरसंपुलस्त्यंपुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद् योगविद्यया । सङ्कल्पञ्चैव धर्मञ्च ह्यधर्मं भगवान्प्रभुः
द्वादशैव प्रजास्त्वेताब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । ऋभुंसनत्कुमारञ्चससर्जाऽऽदौ सनातनः

तौ चोर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ । कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ ॥

एवं मुख्यादिकान्सृष्ट्वा पद्मयोनिः शिलाशन ! ।
युगधर्मानशेषांश्च कल्पयामास विश्वसृक् ॥ १६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ब्रह्मसृष्टिनामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्युगधर्माणाम्वर्णनम्

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा शक्रेण कथितं पिता मम महामुनिः । पुनः पप्रच्छ देवेशं प्रणम्यरचिताञ्जलिः

शिलाद उवाच

भगवन् ! शक्र ! सर्वज्ञ ! देवदेवनमस्कृत ! । शचीपते ! जगन्नाथ ! सहस्राक्ष ! महेश्वर
युगधर्मान् कथं चक्रे भगवान् पद्मसम्भवः । वक्तुमर्हसि मे सर्वं साम्प्रतं प्रणताय मे

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिलादस्य महात्मनः । व्याजहार यथादृष्टं युगधर्मं सुविस्तरम्

शक्र उवाच

आद्यं कृतयुगं विद्धि ततस्त्रेतायुगं मुने ! । द्वापरं तिष्यमित्येते चत्वारस्तुसमासतः
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरञ्च रजस्तमः । कलिस्तमश्च विज्ञेयं युगवृत्तिर्युगेषु च ॥६॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते । भजनं द्वापरं शुद्धं दानमेव कलौ युगे ॥७ ॥

चत्वारि च सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ८ ॥

चत्वारि च सहस्राणि मानुषाणि शिलाशन ! । आयुः कृतयुगेविद्धिप्रजानामिहसुव्रत
ततः कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे च गते तु वै । पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तुसर्वतः

चतुर्भागैकहीनन्तु त्रेतायुगमनुत्तमम् । कृतार्धं द्वापरं विद्धि तदर्धं तिष्यमुच्यते ॥११
त्रिशत्री द्विशती सन्ध्यातथाचैकशती मुने ! । सन्ध्यांशकंतथाप्येवंकल्पेष्वेवंयुगेयुगे
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः । त्रेतायुगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः
त्रिपादहीनस्तिष्येतुसत्तामात्रेणधिष्ठितः । कृतेतुमिथुनोत्पत्तिःवृत्तिःसाक्षाद्रसोल्लसा

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः ।
अधमोत्तमता तासां न विशेषाः प्रजाः शुभाः ॥ १५ ॥

तुल्यमायुः सुखं रूपंतासांतस्मिनकृतेयुगे । तासांप्रीतिर्नच द्वन्द्वंनद्वेषोनास्तिचक्लमः ॥
पर्वतोदधिवासिन्योह्यनिकेताश्रयास्तुताः । विशोका.सत्वबहुलाएकान्तबहुलास्तथा
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यंमुदितमानसाः । अप्रवृत्तिःकृतयुगेकर्मणो शुभपापयोः
वर्णाश्रमव्यवस्था च तदासीन्नच सङ्करः । रसोल्लासःकालयोगात्त्रेताख्येनश्यतेद्विज!

तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायां अन्या सिद्धिः प्रजायते ।
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु वै ॥ २० ॥

मेघेभ्यःस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम् । सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले
प्रादुरासंस्तदातासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः । सर्ववृत्त्युपभोगस्तुतासां तेभ्यः प्रजायते
वर्त्तयन्तिस्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः । ततःकालेनमहता तासामेव विपर्य्ययात्

रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।
विपर्य्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना ॥ २४ ॥

प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्तेगृहसञ्ज्ञिताः । ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः

अपि ध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ॥ २६ ॥

वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च । तेष्वेव जायतेतासांगन्धवर्णरसान्वितम्
अमाक्षिकं महावीर्य्यं पुटके पुटके मधु । तेन ता वर्त्तयन्तिस्म सुखमायुः सदैव हि ॥
हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजावैविगतज्वराः । ततःकालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तुताः
वृक्षांस्तान्पर्यगृह्णन्ति मधु वा माक्षिकंबलात् । तासां तेनोपचारेण पुनर्लोभकृतेन वै

प्रनष्टामधुनासार्धंकल्पवृक्षाःक्वचित्क्वचित्। तस्यामेवाल्पशिष्टायांसिद्धयांकालवशात्तदा
आवर्त्तनात्त्रेतायांद्वन्द्वान्यभ्युत्थितानिवै। शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्तादुःखिताभृशम्
द्वन्द्वैः सम्पीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु। कृतद्वन्द्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः
पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेताअथाऽवसन्। यथायोगंयथाप्रीतिनिकेतेष्वेव सन् पुनः
कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वृत्त्युपायमचिन्तयन्। नष्टेषुमधुनासार्धंकल्पवृक्षेषु वै तदा
विषादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः। ततःप्रादुर्बभौतासांसिद्धिस्त्रेतायुगेपुनः

वार्त्तायाः साधिकाप्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्ट्युदकादीनि ह्यभवन्निम्नगानि तु॥ ३७॥

अभवन् वृष्टिसन्तत्या स्रोतस्थानानि निम्नगाः। एवंनद्यःप्रवृत्तास्तुद्वितीये वृष्टिसर्जने
ये पुनस्तदपांस्तोकाः पतिताःपृथिवीतले। अपां भूमेश्चसंयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्
अथाल्पकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश। ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे॥
प्रादुर्भूतानि चैतानि वृक्षजात्यौषधानि च। तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा॥
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः। अवश्यम्भाविनाऽर्थेन त्रेतायुगवशेन च॥
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्। वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्
विपर्ययेण चौषध्यः प्रनष्टास्ताश्चतुर्दश। मत्वाधरां प्रविष्टास्ताइत्यौषध्यः पितामहः
दुदोह गां प्रयत्नेन सर्वभूतहिताय वै। तदाप्रभृति चौषध्यः फालकृष्टास्त्वितस्ततः॥
वार्तां कृषिं समायाता वर्तुकामाः प्रयत्नतः। वार्त्तावृत्तिःसमाख्याताकृषिकामप्रयत्नतः
अन्यथा जीवितं तासां नास्ति त्रेतायुगात्यये। हस्तोद्भवाह्यपश्चैव भवन्तिबहुशस्तदा
तत्राऽपि जगृहुः सर्वे चान्योऽन्यंकोधमूर्च्छिताः। सुतदारधनाद्यांस्तुबलाद्युगबलेनतु

मर्य्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः।
ससर्ज क्षत्रियांस्त्रातुं क्षतात् कमलसम्भवः॥ ४६॥

वर्णाश्रमप्रतिष्ठाञ्च चकार स्वेन तेजसा। वृत्तेन वृत्तिना वृत्तं विश्वात्मानिर्ममेस्वयम्
यज्ञप्रवर्त्तनञ्चैव त्रेतायामभवत् क्रमात्। पशुयज्ञं न सेवन्ते केचित्तत्राऽपि सुव्रताः॥
बलाद्विष्णुस्तदा यज्ञमकरोत्सर्वदृक्क्रमात्। द्विजास्तदा प्रशंसन्तिततस्त्वाहिंसकंमुने

द्वापरेष्वपि वर्त्तन्ते मतिभेदास्तदानृणाम् । मनसाकर्मणावाचाकृच्छ्राद्वार्त्ताप्रसिध्यति
तदातुसर्वभूतानांकायक्लेशवशात्क्रमात् । लोभोभृतिर्वणिग्युद्धंतत्वानामविनिश्चयः
वेदशाखाप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा । वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥५५
द्वापरे तु प्रवर्त्तन्ते रागो लोभोमदस्तथा । वेदो व्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते । सङ्क्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु सः॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः । मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्य्ययैः ॥

संहिता ऋग्यजुः साम्नां संहन्यन्ते मनीषिभिः ।
सामान्या वै कृताश्चैव दृष्टिभिस्तैः पृथक् पृथक् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मणंकल्पसूत्राणिमन्त्रप्रवचनानिच । अन्येतुप्रस्थितास्तान्वैकेचित्तान्प्रत्यवस्थिताः
इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते कालगौरवात् । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा
भविष्यं नारदीयञ्च मार्कण्डेयमतः परम् । आग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गं वाराहमेव च ॥
वामनाख्यं ततः कूर्मं मात्स्यं गारुडमेवच । स्कान्दंतथाच ब्रह्माण्डं तेषांभेद प्रकथ्यते
लैङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नं द्वापरे शुभम् । मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः
यमापस्तम्बसम्वर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती । पराशरव्यासशङ्खलिखितादक्षगौतमौ ॥
शातातपो वसिष्ठश्च एवमाद्यैः सहस्रशः । अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथा व्याध्याद्युपद्रवाः ॥
वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः । निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् । दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः॥
एषा रजस्तमो युक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता । आद्ये कृतेतु धर्मोऽस्तिसत्रेतायांप्रवर्त्तते

द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥ ७० ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे चतुर्युगधर्माणाम्वर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः
चतुर्युगपरिमाणवर्णनम्

शक्र उवाच

तिष्ये मायामसूयाञ्चवधश्चैवतपस्विनाम् । साधयन्तिनरास्तत्रतमसाव्याकुलेन्द्रिया
कलौ प्रमादको रोग सतत क्षुद्भयानि च । अनावृष्टिभय घोर देशानाञ्च विपर्य्यय ॥
नप्रामाण्यश्रुतेरस्तिनृणाचाधर्मसेवनम् । अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पचेतस
अनृत ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताश्च दुष्प्रजा । दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमै ॥
विप्राणा कर्मदोषेण प्रजाना जायते भयम् । नाधीयन्ते तदावेदान्नयजन्ति द्विजातय

उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विश क्रमात् ।
शूद्राणा मन्त्रयोगेन सम्बन्धो ब्राह्मणै सह ॥ ६ ॥

भवतीह कलौ तस्मिन् शयनाशनभोजनै । राजान शूद्रभूयिष्ठाब्राह्मणान्बाधयन्तिते
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायन्ते प्रजासुवै । शूद्राश्चब्राह्मणाचारा शूद्राचाराश्चब्राह्मणा

राजवृत्तिस्थिता चौरा चौराचाराश्च पार्थिवा ।
एकपत्न्यो न शिष्यन्ति वर्धिष्यन्त्यभिसारिका ॥ ६ ॥

वर्णाश्रमप्रतिष्ठानो जायते नृषु सर्वत । तदा स्वल्पफला भूमि क्वचिच्चाऽपिमहाफला
अरक्षितारो हर्त्तार पार्थिवाश्चशिलाशन । शूद्रा वै ज्ञानिन सर्वेब्राह्मणैरभिवन्दिता
अक्षत्रियाश्चराजानोविप्रा शूद्रोपजीविन । आसनस्थाद्द्विजान्दृष्ट्वा न चलन्त्यल्पबुद्धय
ताडयन्तिद्विजेन्द्राश्चशूद्रा वै स्वल्पबुद्धय । आस्ये निधायवै हस्तकर्णेशूद्रस्यवैद्विजा
नीचस्येव तदा वाक्य वदन्ति विनयेन तम् । उच्चासनस्थान शूद्राश्चद्विजमध्येद्विजर्षभ
ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालवशेन तु । पुष्पैश्च वासितैश्चैवतथान्यैर्मङ्गलै शुभै
शूद्रानभ्यर्च्चयन्त्यल्प श्रुतभाग्यबलान्विता । न प्रेक्षन्ते गर्विताश्च शूद्राद्विजवरान्द्विज
सेवावसरमालोक्यद्वारेतिष्ठन्तिवैद्विजा । वाहनस्थान्समावृत्यशूद्रान्शूद्रोपजीविन ॥

सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ ।
तपोयज्ञफलानाञ्च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥

यतयश्च भविष्यन्तिबहवोऽस्मिन् कलौ युगे । पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकंयुगान्तेसमुपस्थिते निन्दन्ति वेदविद्याश्चद्विजाःकर्माणि वै कलौ । कलौ देवोमहादेवःशङ्करोनीललोहितः प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः । ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शङ्करम् कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम् । श्वापदप्रबलत्वञ्च गवाञ्चैव परिक्षयः साधूनां विनिवृत्तिश्च वेद्या तस्मिन्युगक्षये । तदा सूक्ष्मोमहोदर्कोदुर्लभोदानमूलवान् चातुराश्रमशैथिल्ये धर्मः प्रतिचलिष्यति । अरक्षितारो हर्त्तारो बलिभागस्यपार्थिवाः युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः । अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौयुगे । चित्रवर्षी तदा देवो यदा प्राहुर्युगक्षयम्

सर्वे वणिग् जनाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे ।
कुशीलचर्य्याः पाषण्डैः वृथारूपैः समावृताः ॥ २७ ॥

बहुयाजनको लोको भविष्यति परस्परम् । नाव्याहृतक्रूरवाक्यो नार्जवी नानसूयकः न कृते प्रतिकर्त्ता च युगक्षीणे भविष्यति । निन्दकाश्चैव पतिता युगान्तस्यचलक्षणम् नृपशून्या वसुमती न च धान्यधनावृता । मण्डलानि भविष्यन्ति देशेषु नगरेषु च ॥

अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा ।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः सम्भविष्यन्त्यशासनाः ॥ ३१ ॥

हर्त्तारः परवित्तानां परदारप्रधर्षकाः । कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः प्रनष्टचेतनाः पुंसो मुक्तकेशाश्च शूलिनः । जनाः षोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ शुक्लदन्ताजिनाक्षाश्चमुण्डाःकाषायवाससः । शूद्रा धर्मञ्चरिष्यन्तियुगान्तेसमुपस्थिते शस्यचौरा भविष्यन्ति दृष्टचैलाभिलाषिणः । चौराश्चोरस्वहर्त्तारोहर्तुर्हर्तातथापरः ॥ योग्यकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते । कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यंदुर्लभं तदा । कौशिकींप्रतिपत्स्यन्तेदेशान्क्षुद्भयपीडिताः दुःखेनाभिप्लुतानाञ्चपरमायुःशतं तदा । दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाःकलियुगेऽखिलाः

उत्सीदन्ति तदा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः ।
काषायिणोऽप्यनिर्ग्रन्थाः कापालीबहुलास्त्विह ॥ ३६ ॥

वेदविक्रयिणश्चान्येतीर्थविक्रयिणः परे । वर्णाश्रमाणां ये चान्येपाषण्डाःपरिपन्थिनः
उत्पद्यन्तेतदा ते वै सम्प्राप्ते तु कलौ युगे । अधीयन्तेतदावेदान् शूद्राधर्मार्थकोविदाः
यजन्ते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः । स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्
उपद्रवांस्तथान्योऽन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः । दुःखप्रभूतमल्पायुर्देहोत्सादःसरोगता
अधर्माभिनिवेशित्वात् तमोवृत्तं कलौस्मृतम् । प्रजासु ब्रह्महत्यादितदावै सम्प्रवर्त्तते
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते । तदा त्वल्पेनकालेनसिद्धिंगच्छन्तिमानवाः
धन्या धर्मञ्चरिष्यन्तियुगान्तेद्विजसत्तमाः । श्रुतिस्मृत्युदितंधर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः
त्रेतायांवार्षिकोधर्मोद्वापरेमासिकःस्मृतः । यथा क्लेशंचरन् प्राज्ञस्तदह्नाप्राप्नुतेकलौ
एषाकलियुगावस्थासन्ध्यांशन्तुनिबोधमे । युगेयुगेचहीयन्तेत्रींस्त्रीन्पादांस्तुसिद्धयः

युगस्वभावाः सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीह तु पादशः ।
स्वन्ध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः ॥ ४६ ॥

एवंसन्ध्यांशकेकालेसम्प्राप्ते तु युगान्तिके । तेषांशास्ताह्यसाधूनांभूतानांनिधनोत्थितः
गोत्रेऽस्मिनवैचन्द्रमसोनाम्नाप्रमितिरुच्यते । मानवस्यतुसोंऽशेनपूर्वंस्वायम्भुवेऽन्तरे
समाःसविंशतिःपूर्णाःपर्य्यटन् वै वसुन्धराम् । अनुकर्षन सवैसेनांसवाजिरथकुञ्जराम्
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः । स तदा तैः परिवृतोम्लेच्छान् हन्तिसहस्रशः
स हत्वासर्वशश्चैवराज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान् । पाषण्डांस्तुततःसर्वान्निःशेषंकृतवान्प्रभुः
नात्यर्थंधार्मिकायेचतान् सर्वान् हन्तिसर्वतः । वर्णव्यत्यासजाताश्चयेचताननुजीविनः

प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृत् स तु ।
अधृष्यः सर्वभूतानाञ्चचाराऽथ वसुन्धराम् ॥ ५६ ॥

मानवस्यतुसोंऽशेनदेवस्येहविजज्ञिवान् । पूर्वंजन्मनिविष्णोस्तुप्रमितिर्नामवीर्य्यवान्
गोत्रतोवै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगे प्रभुः । द्वात्रिंशेऽभ्युदितेवर्षेप्रक्रान्तोविंशतिःसमाः
विनिघ्नन् सर्वभूतानि शतशोऽथ सहस्रशः । कृत्वा बीजावशेषान्तु पृथिवींक्रूरकर्मणा

परस्परनिमित्तेनकोपेनाकस्मिकेन तु । ससाधयित्वावृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान्
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्थितिंप्राप्तःसहानुगः । ततो व्यतीतेकाले तु सामात्यःसहसैनिकः
उत्सादयपार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैवसहस्रशः ।तत्रसन्ध्यांशकेकालेसम्प्राप्तेतुयुगान्तिके
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित् क्वचित् ।
अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु कृत्स्नशः ॥ ६३ ॥
उपहिंसन्ति चान्योऽन्य प्रणिपत्य परस्परम् । अराजके युगवशात् संशयेसमुपस्थिते
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ।
व्याकुलाश्च परिभ्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ॥ ६५ ॥
स्वान्प्राणाननपेक्षन्तोनिष्कारुण्याःसुदुःखिताः ।नष्टेश्रौतेस्मार्त्तधर्मेपरस्परहतास्तदा
निर्मर्य्यादा निराक्रान्ता निःस्नेहा निरपत्रपाः ।
नष्टे धर्मे प्रतिहताः ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ॥ ६७ ॥
हित्वापुत्रांश्च दारांश्च विवादव्याकुलेन्द्रियाः । अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्यदूरतः
प्रत्यन्तानुपसेवन्ते हित्वा जनपदान्स्वकान् । सरित्सागरकूपांस्ते सेवन्तेपर्वतांस्तथा
मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदुःखिताः । चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कटं घोरमास्थिताः । एवं कष्टमनुप्राप्ता अल्पशेषा. प्रजास्तदा ॥
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमानसाः ।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणा ॥ ७२ ॥
साम्यावस्थात्मकोबोधःसम्बोधाद्धर्मशीलता। अरूपशमयुक्तास्तुकलिशिष्टाहिवैस्वयम्
अहोरात्रात्तदा तासां युगन्तु परिवर्त्तते । चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत्
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत । प्रवृत्ते तु ततस्मस्मिन्पुनः कृतयुगे तु वै ॥
उत्पन्ना. कलिशिष्टास्तु प्रजाःकार्त्तयुगास्तदा । तिष्ठन्तिचेहयेसिद्धाअदृष्टाविचरन्तिच
सप्त सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते तु व्यवस्थिताः । ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन । तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेऽपि च॥
वर्णाश्रमाचारयुक्तं श्रौतं स्मार्त्तं द्विधा तु यम् ।

ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्धन्ते वै प्रजाः कृते ॥ ७६ ॥
श्रौतस्मार्तकृतानाञ्च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते। केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह युगक्षये ॥
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै। यथादावप्रदग्धेषु तृणेष्विह ततः क्षितौ ॥
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषुसम्भवः। तथाकार्त्तयुगानान्तुकलिजेष्विहसम्भवः॥
एवं युगाद्युगस्येह सन्तानं तु परस्परम्। वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च। युगेष्वेतानिहीयन्तेत्रींस्त्रीन्पादान्क्रमेण तु
ससन्ध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः।
इत्येषा प्रतिसिद्धिर्वै कीर्तितैषा क्रमेणतु ॥ ८५ ॥
चतुर्युगाणां सर्वेषामनेनैव तु साधनम्। एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणी कृता ॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता। अनार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात्
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम्। एषां चतुर्युगाणाञ्च गुणिता ह्येकसप्ततिः
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते। चतुर्युगे यथैकस्मिन्भवतीह यदा तु यत् ॥८६
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम्। सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु॥
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूनानाऽधिकास्तथा। तथा कल्पायुगैःसार्धंभवन्तिसहलक्षणैः
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥ ६२ ॥
यथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
तथा तु सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥ ६३ ॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः। अतीतानागतानां हि सर्वमन्वन्तरेषु वै ॥
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणिच। व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पःकल्पेनचैवहि
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्य्यो विजानता। मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत। देवा ह्यष्टविधा ये च ये च मन्वन्तरेश्वराः
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः। एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागो युगे युगे ॥
युगस्वभावश्च तथा विधत्ते वै तदा प्रभुः।
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ॥ ६६ ॥

युगानां परिमाणन्ते कथितं हि प्रसङ्गतः । वदामि देवीपुत्रत्वं पद्मयोनेः समासतः ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे चतुर्युगपरिमाणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्वाराश्रीशिवशक्तिवर्णनंपश्चाद्ब्रह्मणस्समुत्पत्तिकथनम्

इन्द्र उवाच

पुनः ससर्ज भगवान् प्रभ्रष्टाः पूर्ववत्प्रजाः । सहस्रयुगपर्यन्ते प्रभाते तु पितामहः ॥
एवम्परार्धे विप्रेन्द्र! द्विगुणे तु तथा गते । तदा धराम्भसिव्याप्ता ह्यापोवह्नौ समीरणे
वह्निः समीरणश्चैव व्योम्नि तन्मात्रसंयुतः । इन्द्रियाणिदशैकश्च तन्मात्राणिद्विजोत्तम
अहङ्कारमनुप्राप्य प्रलीनास्तत्क्षणादहो । अभिमानस्तदातत्र महान्तंव्याप्यवै क्षणात्
महानपि तथाव्यक्तं प्राप्य लीनोऽभवद् द्विज !। अव्यक्तं स्वगुणैःसार्धंप्रलीनमभवद्भवे
ततः सृष्टिरभूत्तस्मात् पूर्ववत् पुरुषाच्छिवात् ।
अथ सृष्टास्तदा तस्य मनसा तेन मानसाः ॥ ६ ॥
न व्यवर्धन्त लोकेऽस्मिन् प्रजाःकमलयोनिना । वृद्ध्यर्थंभगवान्ब्रह्मापुत्रैर्वैमानसैःसह
दुश्चरं विचचारेशं समुद्दिश्य तपः स्वयम् । तुष्टस्तुतपसातस्यभवोज्ञात्वासवाञ्छितम्
ललाटमध्यं निर्भिद्य ब्रह्मणः पुरुषस्य तु । पुत्रस्तेऽहमिति प्रोच्य स्त्रीपुंरूपोऽभवत्तदा
तस्य पुत्रो महादेवो ह्यर्धनारीश्वरोऽभवत् । ददाह भगवान् सर्वं ब्रह्माणञ्चजगद्गुरुम्
अथाऽर्धमात्रां कल्याणीमात्मनःपरमेश्वरीम् । बुभुजे योगमार्गेणवृद्ध्यर्थंजगतांशिवः
तस्यां हरिञ्च ब्रह्माणं ससर्ज परमेश्वरः । विश्वेश्वरस्तु विश्वात्माचास्त्रं पाशुपतंतथा
तस्माद् ब्रह्मा महादेव्याश्चांशजश्च हरिस्तथा । अण्डजःपद्मजश्चैव भवाङ्गभव एव च
एतत्ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् । परार्धं ब्रह्मणो यावत्तावद्भूतिः समासतः ॥
वैराग्यं ब्रह्मणो वक्ष्ये तमोद्भूतं समासतः ।

नारायणोऽपि भगवान् द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम् ॥ १५ ॥
ससर्ज सकलं तस्मात्स्वाङ्गादेव चराचरम् । ततो ब्रह्माणमसृजद्ब्रह्मा रुद्रं पितामहः
मुने! कल्पान्तरे रुद्रो हरिं ब्रह्माणमीश्वरम् । ततो ब्रह्माणमसृजन्मुने! कल्पान्तरे हरिः
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणञ्च पुनर्भवः । तदा विचार्य वै ब्रह्मा दुःखं संसार इत्यजः ॥
सर्गं विसृज्य चात्मानमात्मन्येव नियोज्यच । संहृत्यप्राणसञ्चारं पाषाणइवनिश्चलः
दशवर्षसहस्राणि समाधिस्थोऽभवत्प्रभुः । अधोमुखन्तु यत्पद्मं हृदिसंस्थंसुशोभनम्
पूरितं पूरकेणैव प्रबुद्धञ्चाऽभवत्तदा । तदूर्ध्ववक्त्रमभवत् कुम्भकेन निरोधितम् ॥२१॥
तत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थापयामास चेश्वरम् । तदोमिति शिवं देवं अर्धमात्रापरम्परम्
मृणालतन्तुभागैकशतभागे व्यवस्थितम् । यमीयमविशुद्धात्मा नियम्यैयं हृदीश्वरम्
यमपुष्पादिभिः पूज्यं याज्यो ह्ययजदव्ययम् ।
तस्य हृत्कमलस्थस्य नियोगाच्चांशजो विभुः ॥ २४ ॥
ललाटमस्यनिर्भिद्य प्रादुरासीत्पितामहात् । लोहितोऽभूत्स्वयंनीलःशिवस्यहृदयोद्भवः
वह्नेश्चैव तु संयोगात् प्रकृत्या पुरुषः प्रभुः । नीलश्च लोहितश्चैवयतःकालाकृतिःपुमान्
नीललोहित इत्युक्तस्तेन देवेन वै प्रभुः । ब्रह्मणा भगवान्कालः प्रीतात्माचाभवद्विभुः
सुप्रीतमनसं देवं तुष्टाव च पितामहः । नामाष्टकेन विश्वात्मा विश्वात्मानं महामुने!॥

पितामह उवाच

नमस्ते भगवन्! रुद्र! भास्करामिततेजसे । नमो भवाय देवाय रसायाऽम्बुमयायते
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः । ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमो नमः॥
पशूनां पतये चैव पावकायाऽतितेजसे । भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः ॥
महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते । उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि पैतामहमिमं स्तवम् । रुद्राय कथितंविप्राञ्श्रावयेद्वा समाहितः
अष्टमूर्त्तेस्तु सायुज्यं वर्षादेकादवाप्नुयात् ।
एवं स्तुत्वा महादेवमवैक्षत पितामहः ॥ ३४ ॥
तदाष्टधा महादेवः समातिष्ठत् समन्ततः । तदा प्रकाशते भानुः कृष्णवर्त्मानिशाकरः

क्षितिर्वायुः पुमानम्भः सुषिरं सर्वगं तथा। तदाप्रभृति तं प्राहुरष्टमूर्त्तिरितीश्वरम् ॥
अष्टमूर्त्तेः प्रसादेन विरञ्चिश्चाऽसृजत्पुनः। सृष्ट्वैतदखिलं ब्रह्मा पुनः कल्पान्तरे प्रभुः ॥
सहस्रयुगपर्य्यन्तं संसुप्ते च चराचरे। प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तत उग्रं तपो महत् ॥
तस्यैवंतप्यमानस्य न किञ्चित् समवर्त्तत। ततोदीर्घेणकालेनदुःखात् क्रोधोव्यजायत
क्रोधाविष्टस्यनेत्राभ्यांप्रापतन्नश्रुबिन्दवः।ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्योभूताःप्रेतास्तदाऽभवन्
सर्वांस्तानग्रजान् दृष्ट्वा भूतप्रेतनिशाचरान्। अनिन्दत तदा देवो ब्रह्मात्मानमजोविभुः
जहौप्राणांश्चभगवान्क्रोधाविष्टःप्रजापतिः। ततःप्राणमयोरुद्रःप्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा बालार्कसदृशद्युतिः। तदैकादशधात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः

अर्धेनांऽशेन सर्वात्मा ससर्जाऽसौ शिवामुमाम्।
सा चाऽसृजत्तदा लक्ष्मीं दुर्गां श्रेष्ठां सरस्वतीम् ॥ ४४ ॥
वामां रौद्रीं महामायां वैष्णवीं वारिजेक्षणाम्।
कलां विकिरिणीञ्चैव कालीं कमलवासिनीम् ॥ ४५ ॥

बलविकरिणी देवीं बलप्रमथिनीं तथा। सर्वभूतस्य दमनीं ससृजे च मनोन्मनीम् ॥
तथान्या बहवः सृष्टास्तस्या नार्य्यः सहस्रशः। रुद्रैश्चैव महादेवस्ताभिस्त्रिभुवनेश्वरः
सर्वात्मनश्च तस्याऽग्रे ह्यतिष्ठत् परमेश्वरः। मृतस्य तस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
घृणी ददौ पुनः प्राणान्ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः। ब्रह्मणः प्रददौ प्राणानात्मस्थांस्तुतदाप्रभुः
प्रहृष्टोऽभूत्ततो रुद्रः किञ्चित्प्रत्यागतासवम्। अभ्यभाषत देवेशो ब्रह्माणं परमं वचः॥
माभैर्देव! महाभाग!विरिञ्च! जगतांगुरो!। मयेहस्थापिताःप्राणास्तस्मादुत्तिष्ठवैप्रभो!
श्रुत्वा वचस्ततस्तस्य स्वप्नभूतं मनोगतम्। पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रैःफुल्लाम्बुजप्रभैः
ततः प्रत्यागतप्राणः समुदैक्षन्महेश्वरम्। स उद्वीक्ष्य चिरं कालंस्निग्धगम्भीरयागिरा
उवाचभगवान्ब्रह्मासमुत्थायकृताञ्जलिः। भो! भो ! वद महाभाग!आनन्दयसिमेमनः

को भवानष्टमूर्त्तिर्वै स्थित एकादशात्मकः।

इन्द्र उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः ॥ ५५ ॥

स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्माणं मुखाभ्यां स सुरारिहा ।

श्रीशङ्कर उवाच

मां विद्धि परमात्मानमेनां मायामजामिति ॥ ५६ ॥

एते वै संस्थिता रुद्रास्त्वां रक्षितुमिहागताः । ततः प्रणम्य तं ब्रह्मा देवदेवमुवाच ह
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा । भगवन्! देवदेवेश! दुःखैराकुलितो ह्यहम् ॥
संसारान्मोक्तुमीशान!मामिहाऽर्हसि शङ्कर!। ततः प्रहस्य भगवान् पितामहमुमापतिः
तदा रुद्रैर्जगन्नाथस्तया चान्तर्दधे विभुः ।

इन्द्र उवाच

तस्माच्छिलादलोकेषु दुर्लभो वै त्वयोनिजः ॥ ६० ॥

मृत्युहीनः पुमान्विद्धिसमृत्युः पद्मजोऽपि सः । किन्तुदेवेश्वरोरुद्रःप्रसीदतियदीश्वरः
न दुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः । मयाच विष्णुना चैव ब्रह्मणाचमहात्मना
अयोनिजं मृत्युहीनमसमर्थं निवेदितुम् ।

शैलादिरुवाच

एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी ॥ ६३ ॥

देवैर्वृतो ययौ देवः सितेनेभेन वै प्रभुः ॥ ६४ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवब्रह्मणोस्सम्वादो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दीश्वरोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

गते पुण्ये च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः । आराधयन्महादेवं तपसाऽतोषयद्भवम् ॥१॥
अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य तु । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु गतं क्षणमिवाऽद्भुतम् ॥

वल्मीकेनावृताङ्गश्च लक्ष्य कीटगणैर्मुनि । वज्रशुचीमुखैश्चान्यैरक्तकीटैश्च सर्वत ॥
निर्मांसरुधिरत्वग्वै निर्लेप कुड्यवत् स्थित । अस्थिशेषोऽभवत्पश्चात्तममन्यतशङ्कर
यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण च स्मरारिणा । तदैव मुनिशार्दूलश्चोत्ससर्ज क्लमद्विज
तपतस्तस्य तपसा प्रभुस्तुष्टोऽथ शङ्कर । तुष्टस्तवेत्यथोवाच सगणश्चोमया सह ॥
तपसानेन किं कार्य्यं भवतस्ते महामते ! । ददामि पुत्र सर्वज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥
तत प्रणम्य देवेश स्तुत्वोवाच शिलाशन । हर्षगद्गदया वाचा सोम सोमविभूषणम्

शिलाद उवाच

भगवन् ! देवदेवेश ! त्रिपुरार्दन ! शङ्कर ! । अयोनिज मृत्युहीनपुत्रमिच्छामिसत्तम ॥

सूत उवाच

पूर्वमाराधित प्राह तपसा परमेश्वर । शिलाद ब्रह्मणा रुद्र प्रीत्या परमया पुन ॥

श्रीदेवदेव उवाच

पूर्वमाराधितो विप्र ! ब्रह्मणाऽह तपोधन !। तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमै
तव पुत्रो भविष्यामि नन्दिनाम्ना त्वयोनिज । पिता भविष्यसिममपितुर्वैजगतामुने
एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्यप्रणिपत्यस्थित घृणी । सोम सोमोपम प्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत
लब्धपुत्र पिता रुद्रात् प्रीतो मम महामुने ! । यज्ञाङ्गण महत् प्राप्ययज्ञार्थंयज्ञवित्तम
तदङ्गणादह शम्भोस्तनुजस्तस्य चाऽऽज्ञया । सञ्जात पूर्वमेवाऽह युगान्ताग्निसमप्रभ

ववर्षुस्तदा पुष्करावर्त्तकाद्याजगु खेचरा किन्नरा सिद्धसाध्या ।

शिलादात्मजत्व गते मय्युपेन्द्र ससर्जाऽथ वृष्टि सुपुष्पौघमिश्राम् ॥१६॥

मा दृष्ट्वा कालसूर्य्याभ जटामुकुटधारिणम् । त्र्यक्षञ्चतुर्भुज बाल शूलटङ्कगदाधरम् ॥
वज्रिण वज्रदष्ट्रञ्च वज्रिणाराधित शिशुम् । वज्रकुण्डलिन घोर नीरदोपमनि स्वनम्
ब्रह्माद्यास्तुष्टुवु सर्वे सुरेन्द्रश्चमुनीश्वरा । नेदु समन्तत सर्वे ननृतुश्चाऽप्सरोगणा
ऋषयोमुनिशार्दूल ! ऋग्यजु सामसम्भवै । मन्त्रैर्माहेश्वरै स्तुत्वासम्प्रणेमुर्मुदान्विता
ब्रह्मा हरिश्चरुद्रश्चशक्र साक्षाच्छिवाम्बिका । जीवश्चेन्दुर्महातेजाभास्कर पवनोऽनलः
ईशानो निर्ऋ तिर्यक्षो यमो वरुण एव च । विश्वेदेवास्तथा रुद्रा वसवश्च महाबला

लक्ष्मीः साक्षाच्छची ज्येष्ठा देवी चैव सरस्वती ।
अदितिश्च दितिश्चैव श्रद्धा लज्जा धृतिस्तथा ॥ २३ ॥
नन्दाभद्राश्च(व)सुरभीसुशीलासुमनास्तथा । वृषेन्द्रश्च महातेजाधर्मोधर्मात्मजस्तथा
आवृत्य मां तथालिङ्ग्य तुष्टुवुर्मुनिसत्तम !। शिलादोऽपिमुनिर्दृष्ट्वापितामेतादृशंतदा
प्रीत्या प्रणम्य पुण्यात्मा तुष्टावेष्टप्रदं सुतम् ।
शिलाद उवाच
भगवन् ! देवदेवेश ! त्रियम्बक ! ममाऽव्यय ! ॥ २६ ॥
पुत्रोऽसिजगतांयस्मात्त्राताद्दुःखाद्धिकिंपुनः ।रक्षकोजगतांयस्मात्पितामेपुत्र!सर्वगः
अयोनिज ! नमस्तुभ्यं जगद्योने ! पितामह ! । पितापुत्र!महेशान!जगताञ्च जगद्गुरो
वत्स ! वत्स ! महाभाग ! पाहि मां परमेश्वर ! ।
त्वयाऽहं नन्दितो यस्मान्नन्दीनाम्ना सुरेश्वर ! ॥ २६ ॥
तस्मान्नन्दय मां नन्दिन्नमामि जगदीश्वरम् । प्रसीद पितरौ मेऽद्य रुद्रलोकंगतौविभो
पितामहश्च भो ! नन्दिन्नवतीर्णे महेश्वरे । ममैव सफलं लोके जन्म वै जगतां प्रभो !
अवतीर्णे सुते नन्दिन् ! रक्षार्थंममामीश्वर ! । तुभ्यंनमःसुरेशान!नन्दीश्वर!नमोऽस्तुते
पुत्र ! पाहि महाबाहो ! देवदेव!जगद्गुरो !। पुत्रत्वमेवनन्दीश!मत्वायत्कीर्त्तितंमया
त्वयातत्क्षम्यतांवत्स! स्तवस्तव्य!सुरासुरैः । यः पठेच्छृणुयाद्वापिममपुत्रप्रभाषितम्
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्यामयासार्धं स मोदते । एवंस्तुत्वासुतंबालंप्रणम्यबहुमानतः
मुनीश्वरांश्चसम्प्रेक्ष्यशिलादोवाचसुव्रतः । पश्यध्वंमुनयः ! सर्वे ! महाभाग्यंममाव्ययः
नन्दीयज्ञाङ्गणेदेवश्चावतीर्णो यतः प्रभुः । मत्समः कःपुमान् लोकेदेवोवादानवोऽपिवा
एष नन्दी यतो जातो यज्ञभूमौ हिताय मे ॥ ३८ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे नन्दिकेश्वरोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरप्रादुर्भावेनन्दिकेश्वराभिषेकमन्त्रवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

मयासह पिताहृष्टः प्रणम्यच महेश्वरम् । उटजं स्वं जगामाऽऽशुनिधिलब्ध्वेवनिर्धनः यदा गतोऽहमुटजं शिलादस्य महामुने !। तदा वै दैविकंरूपंत्यक्त्वामानुष्यमास्थितः नष्टा चैव स्मृतिर्दिव्यायेनकेनापिकारणात । मानुष्यमास्थितंदृष्ट्वापितामेलोकपूजितः विललापाऽतिदुःखार्त्तः स्वजनैश्चसमावृतः । जातकर्मादिकांश्चैव चकार मम सर्वबित् शालङ्कायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः । उपदिष्टा हि तेनैव ऋक्शाखा यजुषस्तथा सामशाखासहस्रञ्च साङ्गोपाङ्गं महामुने ! । आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं चाऽश्वलक्षणम् हस्तिनाञ्चरितञ्चैव नराणाञ्चैव लक्षणम् । सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे ततोऽथ मुनिसत्तमौ मित्रावरुणनामानौ तपोयोगबलान्वितौ । तस्याश्रमंगतौदिव्यौद्रष्टुंमांचाज्ञयाविभोः ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्यमुहुर्मुहुः । तात ! नन्द्ययमल्पायुःसर्वशास्त्रार्थपारगः न दृष्टमेवमाश्चर्य्यमायुर्वर्षादतःपरम् । इत्युक्तवति विप्रेन्द्रः शिलादःपुत्रवत्सलः ॥१०॥ समालिङ्ग्य च दुःखार्त्तोरुरोदातीवविस्वरम् । हापुत्र! पुत्र ! पुत्रेतिपपातचसमन्ततः अहो बलं दैवविधेर्विधातुश्चेति दुःखितः । तस्य चार्त्तस्वरं श्रुत्वा तदाश्रमनिवासिनः निपेतुर्विह्वलात्यर्थं रक्षाञ्चक्रुश्च मङ्गलम् । तुष्टुवुश्च महादेवं त्रियम्बकमुमापतिम् ॥ हुत्वा त्रियम्बकेनैव मधुनैव च सम्प्लुताम् । दूर्वामयुतसंख्यातांसर्वद्रव्यसमन्विताम् पिता विगतसञ्ज्ञश्च तथा चैव पितामहः । विचेष्टश्च ललापाऽसौ मृतवन्निपपात च ॥ मृत्योर्भीतोऽहमचिराच्छिरसावाऽभिवन्द्यतम्।मृतवत्पतितंसाक्षात्पितरञ्चपितामहम् प्रदक्षिणीकृत्यच तं रुद्रजाप्यरतोऽभवम् । हृत्पुण्डरीकेसुषिरे ध्यात्वादेवंत्रियम्बकम् त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम् । सरितश्चान्तरैपुण्येस्थितं मां परमेश्वरः

तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्द्धभूषणः ।
वत्स ! नन्दिन् ! महाबाहो ! मृत्योर्भीतिः कुतस्तव ॥ १६ ॥

मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः। वत्सैतत्तव देहञ्च लौकिकं परमार्थतः॥
नास्त्येव दैविकं दृष्टं शिलादेन पुरा तव। देवैश्च मुनिभिः सिद्धैर्गन्धर्वैर्दानवोत्तमैः
पूजितं यत्पुरा वत्स! दैविकंनन्दिकेश्वर!। संसारस्यस्वभावोऽयंसुखंदुःखंपुनःपुनः
नृणां योनिपरित्यागः सर्वथैवविवेकिनः। एवमुक्त्वातु मां साक्षात् सर्वदेवमहेश्वरः
कराभ्यां सुशुभाभ्याऽच उभाभ्यां परमेश्वरः। पस्पर्श भगवान्रुद्रः परमार्त्तिहरो हरः
उवाच च महादेवस्तुष्टात्मा वृषभध्वजः। निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतःसुताम्
समालोक्य च तुष्टात्मा महादेवः सुरेश्वरः। अजरोजरयात्यक्तो नित्यंदुःखविवर्जितः
अक्षयश्चाऽव्ययश्चैव स पिता स सुहृज्जनः। ममेष्टो गणपश्चैव मद्वीर्य्यो मत्पराक्रमः॥
इष्टो मम सदा चैव मम पार्श्वगतः सदा। मद्बलश्चैव भविता महायोगबलान्वितः
एवमुक्त्वा च मां देवोभगवान्सगणस्तदा। कुशेशयमयींमालांसमुन्मुच्यात्मनस्तदा
आबबन्ध महातेजा मम देवो वृषध्वजः। तयाऽहं मालया जातः शुभया कण्ठसक्तया
त्र्यक्षो दशभुजश्चैव द्वितीय इव शङ्करः। तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः॥३१॥
उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम्। ततो जटाश्रितंवारिगृहीत्वाचातिनिर्मलम्
उक्त्वा नदी भवस्वेति उत्ससर्जवृषध्वजः। ततः सादीव्यतोया च पूर्णासितजलाशुभा
पद्मोत्पलवनोपेता प्रावर्त्तत महानदी। तामाह च महादेवो नदीं परमशोभनाम्॥
यस्माज्जटोदकादेव प्रवृत्ता त्वं महानदी। तस्माज्जटोदका पुण्या भविष्यसिसरिद्वरा
त्वयि स्नात्वा नरः कश्चित् सर्वपापैःप्रमुच्यते। ततो देव्यामहादेवः शिलादतनयंप्रभुः

पुत्रस्तेऽयमिति प्रोच्य पादयोः सन्यपातयत्।
सा मामाघ्राय शिरसि पाणिभ्यां परिमार्जति॥ ३७॥

पुत्रप्रेम्णाऽभ्यषिञ्चच्च स्रोतोभिस्तनयैस्त्रिभिः। पयसाशङ्खगौरेण देवदेवंनिरीक्ष्य सा

तानि स्रोतांसि त्रीण्यस्याः स्रोतस्विन्योऽभवंस्तदा।
नदीं त्रिस्रोतसं देवो भगवानवदद्भवः॥ ३८॥

त्रिस्रोतसं नदीं दृष्ट्वा वृषः परमहर्षितः। ननाद नादात्तस्माच्च सरिदन्या ततोऽभवत्

वृषध्वनिरिति ख्याता देवदेवेन सा नदी।

जाम्बूनदमयं चित्रं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ४१ ॥
स्वं देवश्चाऽद्भुतं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा । मुकुटश्चाबबन्धेशो मम मूर्ध्नि वृषध्वजः
कुण्डले च शुभे दिव्ये वज्रवैदूर्य्यभूषिते । आबबन्ध महादेवः स्वयमेव महेश्वरः ॥
मांतथाऽभ्यर्चितंव्योम्निदृष्ट्वामेघैःप्रभाकरः । मेघाम्भसाचाभ्यषिञ्चच्छिलादनमथोमुने
तस्याभिषिक्तस्य तदा प्रवृत्तास्रोतसाभृशम् । यस्मात्सुवर्णाज्जिःसृत्यनद्येषासम्प्रवर्त्तते
स्वर्णोदकेति तामाह देवदेवस्त्रियम्बकः । जाम्बूनदमयाद्यस्माद्द्वितीया मुकुटाच्छुभा
प्रावर्त्तत नदी पुण्या ऊचुर्जाम्बूनदीति ताम् । एतत्पञ्चनदं नाम जप्येश्वरसमीपगम् ॥
यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम् । पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः
अथ देवो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः । देवीमुवाच शर्वाणीमुमां गिरिसुतामजाम् ॥
देवि! नन्दीश्वरंदेवमभिषिञ्चामि भूतपम् । गणेन्द्रंव्याहरिष्यामिकिंवात्वंमन्यसेऽव्यये
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भवानी हर्षितानना । स्मयन्ती वरदं प्राह भवं भूतपतिं पतिम् ॥
सर्वलोकाधिपत्यञ्च गणेशत्वं तथैव च । दातुमर्हसि देवेश! शैलादिस्तनयो मम॥५२॥
ततः स भगवान् शर्वः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।
सस्मार गणपान् दिव्यान् देवदेवो वृषध्वजः ॥ ५३ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे नन्दिकेश्वरप्रादुर्भावसहितं नन्दिकेश्वराभिषेकमन्त्रो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दिकेश्वराभिषेकवर्णनम्

शैलादिरुवाच

स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः । सर्वे सहस्रहस्ताश्च सहस्रायुधपाणयः ॥
त्रिनेत्राश्च महात्मानस्त्रिदशैरपि वन्दिताः । कोटिकालाग्निसङ्काशाजटामुकुटधारिणः

दंष्ट्राकरालवदना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः ।
कोटिकोटिगणैस्तुल्यैरात्मनाचगणेश्वराः । असङ्ख्यातामहात्मानस्तत्राजग्मुर्मुदायुताः
गायन्तश्च द्रवन्तश्च नृत्यन्तश्च महाबलाः । मुखाडम्बरवाद्यानि वादयन्तस्तथैव च ॥
रथैर्नागैर्हयैश्चैव सिंहमर्कटवाहनाः । विमानेषु तथारूढा हेमचित्रेषु वै गणाः ॥ ५ ॥
भेरीमृदङ्गकाद्यैश्च पणवानकगोमुखैः । वादित्रैर्विविधैश्चान्यैः पटहैरेकपुष्करैः ॥ ६ ॥
भेरीमुरजसन्नादैराडम्बरकडिण्डिमैः । मर्दलैर्वेणुवीणाभिः विविधैस्तालनिस्वनैः ॥
दर्दुरैस्तलघातैश्च कच्छपैः पणवैरपि । वाद्यमानैर्महायोगा आजग्मुर्देवसंसदम् ॥ ८ ॥
ते गणेशा महासत्वाः सर्वदेवेश्वरेश्वराः । प्रणम्य देवं देवीञ्च इदं वचनमब्रुवन् ॥ ६॥
भगवन् ! देवदेवेश ! त्रियम्बक ! वृषध्वज ! ।
किमर्थञ्च स्मृता देव ! आज्ञापय महाद्युते ! ॥ १० ॥
किं सागरांश्छोषयामो यमं वा सह किङ्करैः । हन्मोमृत्युसुतांमृत्युंपशुवद्धन्मपद्मजम्
बध्वेन्द्रं सह देवैश्च सह विष्णुञ्चवायुना । आनयामः सुसंक्रुद्धादैत्यान्वासह दानवैः
कस्याऽद्यव्यसनंघोरंकरिष्यामस्तवाऽऽज्ञया । कस्यवाद्योत्सवोदेव!सर्वकामसमृद्धये
तांस्तथावादिनः सर्वान् गणेशान् सर्वसम्मतान् ।
उवाच देवः सम्पूज्य कोटिकोटिशतान् प्रभुः ॥ १४ ॥
शृणुध्वं यत्कृते यूयमिहाहूता जगद्धिताः । श्रुत्वा च प्रयतात्मानः कुरुध्वंतदशङ्किताः
नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो नः सर्वेषामीश्वरेश्वरः । प्रियोऽग्रंनायकश्चैवसेनानीर्वःसमृद्धिमान्
तमिमं मम सन्देशाद्यूयं सर्वेऽपि सम्मताः । सेनान्यमभिषिञ्चध्वंमहायोगपतिंपतिम्
एवमुक्ता भगवता गणपाः सर्व एव ते । एवमस्त्विति सम्मन्त्र्य सम्भारानाहरंस्ततः
तस्य सर्वाश्रयं दिव्यं जाम्बूनदमयं शुभम् । आसनं मेरुसङ्काशं मनोहरमुपाहरन् ॥१६
नैकस्तम्भमयञ्चापि चामीकरवरप्रभम् । मुक्तादामवलम्बञ्च मणिरत्नावभासितम् ॥२०
स्तम्भैश्च वैदूर्यमयैः किङ्किणीजालसंवृतम् । चारुरत्नकसंयुक्तं मण्डपं विश्वतोमुखम्
कृत्वा विन्यस्य तन्मध्ये तदासनवरं शुभम् । तस्याग्रतःपादपीठं नीलवज्रावभासितम्
चक्रुः पादप्रतिष्ठार्थं कलशौ चास्यपार्श्वगौ । सम्पूर्णौ परमाम्भोभिररविन्दावृताननौ

कलशानां सहस्रन्तु सौवर्णं राजतं तथा । ताम्रजं मृण्मयञ्चैव सर्वतीर्थाम्बुपूरितम्
वासोयुगं तथा दिव्यं गन्धं दिव्यं तथैव च । केयूरे कुण्डले चैव मुकुटं हारमेव च ॥
छत्रं शतशलाकञ्च बालव्यजनमेव च । दत्तं महात्मना तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ २६॥
शङ्खहाराङ्गगौरेण पृष्ठेनापि विराजितम् । व्यजनञ्चन्द्रशुभ्रञ्च हेमदण्डं सुचामरम् ॥

ऐरावतः सुप्रतीको गजावेतौ सुपूजितौ ।
मुकुटं काञ्चनञ्चैव निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २८ ॥

कुण्डले चामले दिव्ये वज्रञ्चैव वरायुधम् । जाम्बूनदमयं सूत्रं केयूरद्वयमेव च॥२६॥
सम्भाराणि तथान्यानिविविधानिबहून्यपि । समन्तान्निन्युरव्यग्रागणपादेवसम्मताः
ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा । मुनयो भगवान् ब्रह्मा नवब्रह्माण एव च
देवैश्च लोकाः सर्वे ते ततो जग्मुर्मुदा युताः । तेष्वागतेषु सर्वेषु भगवान् परमेश्वरः॥
सर्वकार्य्यविधिं कर्तुमादिदेश पितामहम् । पितामहोऽपिभगवान्नियोगादेव तस्य तु
चकार सर्वं भगवानभिषेकं समाहितः । अर्चयित्वा ततो ब्रह्मा स्वयमेवाऽभिषेचयेत्
ततो विष्णुस्ततःशक्रोलोकपालास्तथैवच । अभिषिञ्चन्तविधिवद्गणेन्द्रंशिवशासनात्
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः । स्तुतवत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः ॥
शिरस्यञ्जलिमादाय तुष्टाव च समाहितः । प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दञ्चकारच
ततो गणाधिपाः सर्वेततोदेवास्ततोऽसुराः । एवं स्तुतश्चाभिषिक्तोदेवैःसब्रह्मकैस्तदा
उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात् परमेष्ठिनः । मरुताञ्च सुता देवी सुयशाख्या बभूव या

लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम् ।
चामरे चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युता ॥ ४० ॥

सिंहासनञ्च परमं तया चाऽधिष्ठितं मया । अलङ्कृता महालक्ष्म्यामुकुटाद्यैःसुभूषणैः
लब्धो हारश्च परमो देव्याःकण्ठगतस्तथा । वृषेन्द्रश्चसितोनागःसिंहःसिंहध्वजस्तथा
रथश्च हेमछत्रञ्च चन्द्रबिम्बसमप्रभम् । अद्यापिसदृशःकश्चिन्मयानास्ति विभुः क्वचित्
सान्वयञ्च गृहीत्वेशस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः । आरुह्यवृषमीशानोमयादेव्यागतःशिवः
तदा देवी भवं दृष्ट्वा मया च प्रार्थयन्गणैः । मुनिर्देवर्षयः सिद्धा आशांपाशुपतींद्विजाः!

अथाऽऽज्ञां प्रददौ तेषामर्हाणामाज्ञया विभो ।

नन्दिको नगजाभर्त्तुस्तेषां पाशुपतीं शुभाम् ॥ ४६ ॥

तस्माद्द्विमुनयोलब्ध्वातदाज्ञामुनिपुङ्गवात् । भवभक्तास्तदावासस्तस्माद्देव समर्चयेत् नमस्कारविहीनस्तु नाम उद्गिरयेद्भवे । ब्रह्मप्रदशसन्तुल्य तस्य पाप गरीयसम् ॥ तस्मात् सर्वप्रकारेण नमस्कारादिमाचरेत् । आदौकुर्य्यान्नमस्कारतदन्तेशिवताव्रजेत्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे नन्दिकेश्वराभिषेको नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय

पातालवर्णनम्

ऋषय ऊचु

सूत ! सुव्यक्तमखिल कथित शङ्करस्य तु । सर्वात्मभाव रुद्रस्य स्वरूप वक्तुमर्हसि ॥

सूत उवाच

भूर्भुव स्वर्महश्चैव जन साक्षात्तपस्तथा । सत्यलोकश्च पाताल नरकार्णवकोटय ॥ तारकाग्रहसोमार्कध्रुव(१) सप्तर्षयस्तथा । वैमानिकास्तथाऽन्येचतिष्ठन्त्यस्यप्रसादत अनेन निर्मितास्त्वेवतदात्मानोद्विजर्षभा ।। समष्टिरूप सर्वात्मासस्थित सर्वदाशिव सर्वात्मान महात्मान महादेवमहेश्वरम् । न विजानन्तिसम्मूढामाययातस्य मोहिता तस्य देवस्य रुद्रस्यशरीर वै जगत्त्रयम् । तस्मात् प्रणम्य त वक्ष्येजगतानिर्णयशुभम् पुरा व कथित सर्वं मयाऽण्डस्ययथाकृति । भुवनानास्वरूपञ्चब्रह्माण्डेकथयाम्यहम् पृथिवीचाऽन्तरीक्षञ्चस्वर्महर्जनएवच । तप सत्यञ्चसप्तैते लोकास्त्वण्डोद्भवा शुभा

अधस्तादत्र चैतेषा द्विजा ! सप्ततलानि तु ।

महातलादयस्तेषामधस्तान्नरका क्रमात् ॥ ६ ॥

महातल हेमतल सर्वरत्नोपशोभितम् । प्रासादैश्च विचित्रैश्चभवस्यायतनैस्तथा॥१०॥

अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता । नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना ॥
शैलं रसातलं विप्राः ! शार्करं हि तलातलम् । पीतंसुतलमित्युक्तंवितलंविद्रुमप्रभम्
सितं हि अतलं तच्च तलंयच्चसितेतरम् । क्ष्मायास्तुयावद्विस्तारोह्यधस्तेषाञ्चसुव्रताः
तलानाञ्चैव सर्वेषां तावत् संख्या समाहिता । सहस्रयोजनं व्योम दशसाहस्रमेव च
लक्षं सप्तसहस्रं हि तलानां सघनस्य तु । व्योम्नः प्रमाणं मूलन्तु त्रिंशत्साहस्रकेणतु
सुवर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभ । रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्चनिषेवितम्
विरोचनहिरण्याक्षनरकाद्यैश्च सेवितम् । तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम्
वैनायकादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः । पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलञ्च तथापरैः ॥१८
वितलं दानवाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा । महान्तकाद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनाऽसुरेण च ॥
वितलञ्चाऽत्र विख्यातं कम्बलाश्वनिषेवितम् । महाकुम्भेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता
शङ्कुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः । नथान्यैर्विविधैर्वीरैस्तलञ्चैव सुशोभितम् ॥
तलेषु तेषु सर्वेषु चाऽम्बया परमेश्वरः । स्कन्देन नन्दिना सार्धं गणपैः सर्वतोवृतः
तलानाञ्चैव सर्वेषामूर्ध्वतः सप्तसत्तमाः !। क्ष्मातलानि धराचापिसप्तधाकथयामिवः

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पातालवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशेद्वीपद्वीपेश्वरवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तद्वीपा तथा पृथ्वी नदी पर्वतसङ्कुला । समुद्रैः सप्तभिश्चैव सर्वतः समलङ्कृता ॥१
जम्बूप्लक्षः शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चस्तथैव च ।
शाकः पुष्करनामा च द्वीपास्त्वभ्यन्तरक्रमात् ॥ २ ॥
सप्तद्वीपेषु सर्वेषु साम्बः सर्वगणैर्वृतः । नानावेशधरो भूत्वा सान्निध्यं कुरुते हरः ॥

क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदधिः । दध्यर्णवश्च क्षीरोदः स्वादूदश्चाप्यनुक्रमात्
समुद्रेष्विह सर्वेषु सर्वदा सगणः शिवः । जलरूपी भवःश्रीमान् क्रीडतेचोर्मिबाहुभिः
क्षीरार्णवामृतमिव सदा क्षीरार्णवे हरिः । शेते शिवज्ञानधिया साक्षाद्वै योगनिद्रया
यदा प्रबुद्धो भगवान् प्रबुद्धमखिलं जगत् । यदा सुप्तस्तदा सुप्तं तन्मयञ्च चराचरम्
तेनैव सृष्टमखिलं धृतं रक्षितमेव च । संहृतं देवदेवस्य प्रसादात् परमेष्ठिनः ॥ ८ ॥
सुषेणा इति विख्याता यजन्ते पुरुषर्षभम् । अनिरुद्धं मुनिश्रेष्ठाः ! शङ्खचक्रगदाधरम्
येवानिरुद्धंपुरुषंध्यायन्त्यात्मविदाम्वराः ! । नारायणसमाःसर्वेसर्वसम्पत्समन्विताः
सनन्दनश्च भगवान् सनकश्च सनातनः । बालखिल्याश्च सिद्धाश्चमित्रावरुणकौतथा
यजन्ति सततं तत्र विश्वस्य प्रभवं हरिम् । सप्तद्वीपेषु तिष्ठन्ति नानाशृङ्गा महोदयाः
आसमुद्रायताःकेचिद्गिरयोगह्वरैस्तथा । धरायाःपतयश्चाऽऽसन् बहवःकालगौरवात्
सामर्थ्यात् परमेशानाः क्रौञ्चारेर्जनकात्प्रभोः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह
प्रवक्ष्यामि धरेशान् वो वक्ष्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे । मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषुच

तुल्याभिमानिनश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः ।
स्वायम्भुवस्य च मनोः पौत्रास्त्वासन्महाबलाः ॥ १६ ॥

प्रियव्रतात्मजा वीरास्ते दशेहप्रकीर्त्तिताः । आग्नीध्रश्चाऽग्निबाहुश्चमेधामेधातिथिर्वसुः

ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनः पुत्र एव च ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ॥ १८ ॥

जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे आग्नीध्रं सुमहाबलम् । प्लक्षद्वीपेश्वरश्चाऽपि तेन मेधातिथिः कृतः॥
शाल्मलेश्च वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान् । ज्योतिष्मन्तंकुशद्वीपेराजानंकृतवान्नृपः॥
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् । शाकद्वीपेश्वरञ्चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः
पुष्कराधिपतिञ्चक्रे सवनञ्चापिसुव्रताः । पुष्करे सवनस्याऽपि महावीरः सुतोऽभवत्
धातकी चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवताम्वरौ । महावीरं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मना
नाम्नातुधातकेश्चैवधातकीखण्डमुच्यते । हव्योऽप्यजनयत् पुत्रांश्छाकद्वीपेश्वरःप्रभुः
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् । कुसुमोत्तरमोदाकी सप्तमस्तु महाद्रुमः ॥

अलदं जलदस्याऽथ वर्षं प्रथममुच्यते । कुमारस्य तु कौमारं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् ॥
सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्त्यते । मणीचकं चतुर्थन्तु माणीचकमिहोच्यते
कुसुमोत्तरस्य वै वर्षं पञ्चमंकुसुमोत्तरम् । मोदकश्चापि मोदाकेर्वर्षं षष्ठंप्रकीर्त्तितम्
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमं तन्महाद्रुमम् । तेषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्याऽपिपुत्राद्युतिमतस्तुवै । कुशलोमनुगश्चोष्णःपीवरश्चान्धकारकः

मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ।
तेषां स्वनामनिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः ॥ ३१ ॥

कुशलदेशः कुशलो मनुगस्यमनोऽनुगः । उष्णस्योष्णः स्मृतो देशःपीवरःपीवरस्यच
अन्धकारस्यकथितोदेशोनाम्नान्धकारकः । मुनेर्देशोमुनिःप्रोक्तोदुन्दुभेर्दुन्दुभिःस्मृतः
एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपेषु भास्वराः । ज्योतिष्मन्तः कुशद्वीपेसप्तचासन्महौजसः
उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लवणोधृतिः । षष्ठः प्रभाकरश्चाऽपि सप्तमः कपिलः स्मृतः
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् । तृतीयं द्वैरथञ्चैव चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥
पञ्चमं धृतिमत्षष्ठं प्रभाकरमनुत्तमम् । सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्त्तितम् ॥
शाल्मलस्येश्वराः सप्त सुतास्ते वै वपुष्मतः । श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतोरोहितस्तथा
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा । श्वेतस्य देशः श्वेतस्तुहरितस्य च हारितः
जीमूतस्य च जीमूतो रोहितस्य च रोहितः । वैद्युतो वैद्युतस्यापिमानसस्यचमानसः
सुप्रभः सुप्रभस्याऽपि सप्तवै देशलाञ्छकाः । प्लक्षद्वीपेतु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम्
सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः । ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानिवै
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः । आनन्दश्चशिवश्चैवक्षेमकश्चध्रुवस्तथा

तानि तेषान्तु नामानि सप्त वर्षाणि भागश. ।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ४४ ॥

मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः प्लक्षद्वीपनिवासिभिः । वर्णाश्रमाचारयुताःप्रजास्तत्रनिवेशिताः
प्लक्षद्वीपादिवर्षेषु शाकद्वीपान्तिकेषु वै । ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥
सुखमायुः स्वरूपञ्च बलं धर्मो द्विजोत्तमाः । पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वसाधारणंस्मृतम्

रुद्रार्चनरता नित्यं महेश्वरपरायणाः । अन्ये च पुष्करद्वीपे प्रजाताश्च प्रजेश्वराः ॥
प्रजापतेश्च रुद्रस्य मायामृतसुखोत्कटाः ॥ ४६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भुवनकोशे द्वीपद्वीपेश्वरकथनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भारतवर्षवर्णनम्

सूत उवाच

आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं काश्यपुत्रं महाबलम् । प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद्वै जम्बूद्वीपेश्वरं नृपः
सोऽतीव भवभक्तश्च तपस्वी तरुणः सदा ।
भवार्चनरतः श्रीमान गोमान धीमान् द्विजर्षभाः ! ॥२ ॥
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव । सर्वे माहेश्वराश्चैव महादेवपरायणाः ॥
ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिम्पुरुषोऽनुजः । हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोवैत्विलावृतः
रम्यस्तु पञ्चमस्तत्रहिरण्मान् षष्ठ उच्यते । कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वस्त्वष्टमःस्मृतः
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत । नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हेमाख्यन्तु पिता ददौ
हेमकूटन्तु यद् वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः । नैषधं यत् स्मृतं वर्षं हरये तत् पिता ददौ
इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यमः । नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ॥
श्वेतं यदुत्तरं तस्मात् पित्रा दत्तं हिरण्मते । यदुत्तरं शृङ्गवर्षं पिता तत् कुरवे ददौ
वर्षं माल्यवतश्चापि भद्राश्वस्य न्यवेदयत् । गन्धमादनवर्षन्तु केतुमालाय दत्तवान् ॥
इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागशः । आग्नीध्रस्तेषु वर्षेषु पुत्रांस्तानभिषिच्य वै
यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ।
तपसा भावितश्चैव स्वाध्यायनिरतस्त्वभूत् ॥ १२ ॥

स्वाध्यायनिरतः पश्चाच्छिवध्यानरतस्त्वभूत् ।
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि च ॥ १३ ॥

तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्रायाह्ययत्नतः । विपर्ययो न तेष्वस्तिजरामृत्युभयंनच
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तांनोत्तमाधममध्यमाः । न तेष्वस्तियुगावस्थाक्षेत्रेष्वष्टसुसर्वतः
रुद्रक्षेत्रे मृताश्चैव जङ्गमा स्थावरास्तथा । भक्ताः प्रासङ्गिकाश्चापितेषुक्षेत्रेषुयान्तिते
तेषां हिताय रुद्रेण चाऽष्टक्षेत्रं विनिर्मितम् । तत्र तेषां महादेवः सान्निध्यंकुरुते सदा
दृष्ट्वा हृदि महादेवमष्टक्षेत्रनिवासिनः । सुखिनः सर्वदा तेषां स एवेह परा गतिः ॥
नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाङ्केऽस्मिन्निबोधत । नाभिस्त्वजनयत्पुत्रंमेरुदेव्यांमहामतिः
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम् । ऋषभाद्भरतो यज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥
सोऽभिषिच्याऽथऋषभोभरतंपुत्रवत्सलः । ज्ञानवैराग्यमाश्रित्यजित्वेन्द्रियमहोरगान्

सर्वात्मनाऽऽत्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरम् ।
नग्नो जटी निराहारो चीरी ध्वान्तगतो हि सः ॥ २२ ॥

निराशस्त्यक्तसन्देहः शैवमाप परं पदम् । हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ॥
तस्मात्तुभारतंवर्षंतस्यनाम्नाविदुर्बुधाः । भरतस्याऽऽत्मजोविद्वान्सुमतिर्नामधार्मिकः
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्यवेशयत् । पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भरतवर्षकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

प्लक्षान्तर्गतजम्बूद्वीपेमेरुगिरिवर्णनम्

सूत उवाच

अस्य द्वीपस्य मध्येतु मेरुर्नाम महागिरिः । नानारत्नमयैःशृङ्गैःस्थितःस्थितिमतांवरः
चतुराशीतिसाहस्रमुत्सेधेन प्रकीर्तितः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु

शरावचत् संस्थितत्वाद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।
विस्तारात् त्रिगुणश्चाऽस्य परिणाहोऽनुमण्डलः ॥ ३ ॥
हैमीकृतो महेशस्य शुभाङ्गस्पर्शनेन च । धत्तूरपुष्पसङ्काशः सर्वदेवनिकेतनः ॥ ४ ॥
क्रीडाभूमिश्च देवानामनेकाश्चर्यसंयुतः । लक्षयोजनआयामस्तस्यैवन्तुमहागिरेः ॥५॥
ततः षोडशसाहस्रं योजनानिक्षितेरधः । शेषञ्चोपरिविप्रेन्द्रा ! धरायास्तस्यशृङ्गिणः
मूलायामप्रमाणन्तु विस्तारान् मूलतो गिरेः । ऊर्ध्वविस्तारमस्यैव द्विगुणंमूलतोगिरेः
पूर्वतः पद्मरागाभो दक्षिणे हेमसन्निभः । पश्चिमे नीलसङ्काश उत्तरे विद्रुमप्रभः ॥८ ॥
अमरावती पूर्वभागे नानाप्रासादसङ्कुला । नानादेवगणैः कीर्णा मणिजालसमावृता
गोपुरैर्विविधाकारैर्हेमरत्नविभूषितैः । तोरणैर्हेमचित्रैस्तु मणिकलशैः पथिस्थितैः ॥
संलापालापकुशलैः सर्वाभरणभूषितैः । स्तनभारविनम्रैश्च मदघूर्णितलोचनैः ॥ ११॥
स्त्रीसहस्रैः समाकीर्णा चाऽप्सरोभिः समन्ततः ।
दीर्घिकाभिर्विचित्राभिः फुल्लाम्भोरुहसङ्कुलैः ॥ १२ ॥
हेमसोपानसंयुक्तैर्हेमसैकतराशिभिः । नीलोत्पलैश्चोत्पलैश्च हैमैश्चापिसुगन्धिभिः॥
एवम्विधैस्तटाकैश्च नदीभिश्च नदैर्युता । विराजते पुरी शुभ्रा तयाऽसौ पर्वतः शुभः
तेजस्विनी नामपुरीआग्नेय्यांपावकस्य तु । अमरावतीसमादिव्यासर्वभोगसमन्विता
वैवस्वती दक्षिणे तु यमस्य यमिनां वराः ! । भवनैरावृता दिव्यैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः
नैर्ऋते कृष्णवर्णा च तथा शुद्धवती शुभा ।
तादृशी गन्धवन्ती च वायव्यां दिशि शोभना ॥१७॥
महोदया चोत्तरे च ऐशान्यान्तु यशोवती । पर्वतस्य दिगन्तेषु शोभते दिवि सर्वदा॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां तथाऽन्येषां निकेतनम् । सर्वभोगयुतं पुण्यं दीर्घिकाभिर्नगोत्तमम्
सिद्धैर्यक्षैस्तु सम्पूर्णं गन्धर्वैर्मुनिपुङ्गवैः । तथान्यैर्विविधाकारैर्भूतसङ्घैश्चतुर्विधैः ॥
गिरेरुपरिविप्रेन्द्राः!शुद्धस्फटिकसन्निभम् । सहस्रभौमविस्तीर्णं विमानंवामतःस्थितम्
तस्मिन्महाभुजः शर्वः सोमसूर्याग्निलोचनः ।
सिंहासने मणिमये देव्यास्ते षण्मुखेन च ॥ २२ ॥

हरेस्तदर्धं विस्तीर्णं विमानं तत्र सोऽपि च । पद्मरागमयं दिव्यं पद्मजस्य च दक्षिणे
तस्मिन्शक्रस्यविपुलं पुरं रम्यं यमस्यच । सोमस्य वरुणस्याऽथनिर्ऋतेःपावकस्यच
वायोश्चैव तु रुद्रस्य सर्वालयसमन्ततः । तेषां तेषां विमानेषु दिव्येषु विविधेषु च ॥
ईशान्यामीश्वरक्षेत्रे नित्यार्चाव्यवस्थिता । सिद्धेश्वरैश्चभगवांश्छैलादिःशिष्यसम्मतः
सनत्कुमारः सिद्धैस्तु सुखासीनः सुरेश्वरः । सनकश्च सनन्दश्च सद्वशाश्च सहस्रशः॥

योगभूमिः क्वचित्तस्मिन्भोगभूमिः क्वचित् क्वचित् ।
बालसूर्य्यप्रतीकाशं विमानं तत्र शोभनम् ॥ २८ ॥

शैलादिनः शुभश्चाऽस्तितस्मिन्नास्तेगणेश्वरः । षण्मुखस्यगणेशस्यगणानान्तुसहस्रशः
सुयशायाः सुनेत्रायाः मातॄणां मदनस्यच । तस्य जम्बूनदीनाम मूलमावेष्ट्यसंस्थिता
तस्य दक्षिणपार्श्वेतु जम्बूवृक्षः सुशोभनः । अत्युच्छ्रितःसुविस्तीर्णःसर्वकालफलप्रदः
मेरोः समन्ताद्विस्तीर्णं शुभं वर्षमिलावृतम् । तत्र जम्बूफलाहाराःकेचिच्चामृतभोजनाः
जाम्बूनदसमप्रख्या नानावर्णाश्च भोगिनः । मेरुपादाश्रितोविप्रा! द्वीपोऽयंमध्यमःशुभः
नववर्षान्वितश्चैव नदीनदगिरीश्वरैः । नववर्षन्तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपे यथातथम् ॥३४

विस्तारान्मण्डलाच्चैव योजनैश्च निबोधत ॥ ३५ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे जम्बूद्वीपे मध्यमद्वीपवर्णनं नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

समर्यादापर्वतवर्णनं इलावृतवर्षवर्णनम्

सूत उवाच

शतमेकं सहस्राणां योजनानां स तु स्मृतः । अनुद्वीपंसहस्राणांद्विगुणं द्विगुणोत्तरम्
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णासमुद्राधरास्मृता । द्वीपैश्चसप्तभिर्युक्तालोकालोकावृताशुभा
नीलस्तथोत्तरे मेरोः श्वेतस्तस्योत्तरे पुनः । शृङ्गी तस्योत्तरे विप्रास्त्रयस्ते वर्षपर्वताः

जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ । निषधो दक्षिणे मेरोस्तस्य दक्षिणतो गिरिः
हेमकूट इति ख्यातो हिमवांस्तस्य दक्षिणे ॥ ४ ॥
मेरोः पश्चिमतश्चैव पर्वतौ द्वौ धराधरौ । माल्यवान्गन्धमादश्च द्वावेतावुदगायतौ ॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः । तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमेकशः ॥६॥
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् । हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किम्पुरुषं स्मृतम् ॥
नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते । हरिवर्षात्परञ्चैव मेरोः शुभमिलावृतम् ॥ ८ ॥
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् । रम्यात्परतरं श्वेतं विख्याततद्धिरण्मयम्
हिरण्मयात्परश्चाऽपि शृङ्गी चैव कुरुःस्मृतः । धनुःसंस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षेदक्षिणोत्तरे
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यतस्तदिलावृतम् । मेरोः पश्चिमपूर्वेण द्वे तु दीर्घतरे स्मृते
अर्वाकुनिषधस्याऽथ वेद्यर्द्धं चोत्तरंस्मृतम् । वेद्यर्धे दक्षिणेत्रीणिवर्षाणित्रीणि चोत्तरे
तयोर्मध्ये च विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम् । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥
उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम पर्वतः । योजनानां सहस्रे द्वे उपरिष्टात्तु विस्तृतः
आयामतश्चतुस्त्रिंशत् सहस्राणि प्रकीर्त्तितः । तस्यप्रतीच्यांविज्ञेयःपर्वतोगन्धमादनः॥
आयामतः स विज्ञेयो माल्यवानिव विस्तृतः ।
जम्बूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समन्ततः ॥ १६ ॥
प्रागायताः सुपर्वाणः षडेते वर्षपर्वताः । अवगाढाश्चोभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥१७
हिमप्रायस्तु हिमवान् हेमकूटस्तु हेमवान् । तरुणादित्यसङ्काशो हैरण्योनिषधःस्मृतः
चतुर्वर्णः स सौवर्णो मेरुश्चोर्ध्वायतः स्मृतः । वृत्ताकृतिपरीणाहश्चतुरस्रः समुत्थितः
नीलश्च वैडूर्य्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः । मयूरबर्हवर्णस्तु शातकुम्भस्त्रिशृङ्गवान् ॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्ताः पुनःशृणु गिरीश्वरान् । मन्दरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ
कैलासो गन्धमादश्च हेमवांश्चैव पर्वतौ । पूर्वतश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥
निषधः पारियात्रश्च द्वावेतौ वरपर्वतौ । यथा पूर्वौ तथा याम्यावेतौपश्चिमतः श्रितौ
त्रिशृङ्गो जारुचिश्चैव उत्तरौ वरपर्वतौ । पूर्वतश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२४
मर्य्यादापर्वतानेतानष्टावाहुर्मनीषिणः । योऽसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः ! प्रांशुः कनकपर्वतः॥

तस्य पादास्तु चत्वारश्चतुर्दिक्षु नगोत्तमाः । यैर्विष्टब्धा न चलति सप्तद्वीपवती मही
दशयोजनसाहस्रमायामस्तेषु पठ्यते । पूर्वे तु मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२७॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः । महावृक्षाःसमुत्पन्नाश्चत्वारोद्वीपकेतवः
मन्दरस्य गिरेः शृङ्गे महावृक्षः सकेतुराट् । प्रलम्बशाखाशिखरः कदम्बश्चैत्यपादपः ॥

दक्षिणस्याऽपि शैलस्य शिखरे देवसेविता ।

जम्बूः सदा पुण्यफला सदा माल्योपशोभिता ॥ ३० ॥

सकेतुर्दक्षिणे द्वीपे जम्बूर्लोकेषु विश्रुता । विपुलस्याऽपि शैलस्य पश्चिमे च महात्मनः
सञ्जातः शिखरेऽश्वत्थःसमहान्चैत्यपादपः । सुपार्श्वस्योत्तरस्यापिशृङ्गेजातोमहाद्रुमः
न्यग्रोधोविपुलस्कन्धोऽनेकयोजनमण्डलः । तेषांचतुर्णांवक्ष्यामिशैलेन्द्राणांयथाक्रमम्
अमानुष्याणि रम्याणि सर्वकालर्तुकानि च । मनोहराणिचत्वारिदेवक्रीडनकानि च
वनानि वै चतुर्दिक्षु नामतस्तु निबोधत । पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे गन्धमादनम् ॥
वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम् । मित्रेश्वरन्तु पूर्वे तु षष्ठेश्वरमतःपरम् ॥३६
वर्य्येश्वरं पश्चिमे तु उत्तरे चाम्रकेश्वरम् । महासरांसि च तथा चत्वारि मुनिपुङ्गवाः
यत्र क्रीडन्ति मुनयः पर्वतेषु वनेषु च । अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसंस्मृतम् ॥
सितोदं पश्चिमसरो महाभद्रं तथोत्तरम् । शाखस्य दक्षिणे क्षेत्रं विशाखस्यच पश्चिमे
उत्तरे नैगमेयस्य कुमारस्य च पूर्वतः । अरुणोदयस्य पूर्वेण शैलेन्द्रा नामतःस्मृताः ॥
तांस्तु संक्षेपतो वक्ष्येनशक्यंविस्तरेण तु । सितान्तश्च कुरण्डश्चकुररश्चाचलोत्तमः
विकरो मणिशैलश्च वृक्षवांश्चाऽचलोत्तमः । महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्दर्दुरस्तथा
वेणुमांश्च समेघश्च निषधो देवपर्वतः । इत्येते पर्वतवरा ह्यन्ये च गिरयस्तथा ॥४३॥
पूर्वेण मन्दरस्यैते सिद्धावासा उदाहृताः । तेषु तेषु गिरीन्द्रेषु गुहासु च वनेषु च ॥
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि विष्णोर्नारायणस्य च । सरसो मानसस्येहदक्षिणेनमहाचलाः

ये कीर्त्यमानास्तान् सर्वान् सङ्क्षिप्य प्रवदाम्यहम् ।

शैलश्च विशिराश्चैव शिखरश्चाचलोत्तमः ॥ ४६ ॥

एकशृङ्गो महाशूलो गजशैलः पिशाचकः । पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः

इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः । तेषु तेषु च सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥४८॥
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि स्थापितानि सुरोत्तमैः ।
दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ताः पश्चिमे च वदामि वः ॥ ४६ ॥
अपरेण सितोदश्च सुरपश्च महाबलः । कुमुदो मधुमांश्चैव अञ्जनो मुकुटस्तथा॥५०॥
कृष्णश्च पाण्डुरश्चैव सहस्रशिखरश्च यः । पारिजातश्च शैलेन्द्रः श्रीशृङ्गश्चाऽचलोत्तमः
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः । सर्वे पश्चिमदिग्भागे रुद्रक्षेत्रसमन्विताः ॥
महाभद्रस्यसरसश्चोत्तरेचमहाबलाः । ये स्थिताःकीर्त्यमानांस्तान्संक्षिप्येहनिबोधत
शङ्कुकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः । नागश्च कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान् ॥
नीलः कण्टकशृङ्गश्च शतशृङ्गश्च पर्वतः । पुष्पकोशः प्रशैलश्च विरजश्चाऽचलोत्तमः
वराहपर्वतश्चैव मयूरश्चाचलोत्तम । जारुधिश्चैव शैलेन्द्र एत उत्तरसंस्थिताः॥५६॥
तेषु शैलेषु दिव्येषु देवदेवस्य शूलिनः । असंख्यातानि दिव्यानि विमानानि सहस्रशः
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम् । सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांस्युपवनानि च
वसन्ति देवा मुनयः सिद्धाश्च शिवभाविताः ।
कृतवासाः सपत्नीकाः प्रासादात्परमेष्ठिनः ॥ ५६ ॥
लक्ष्म्याद्यानां बिल्ववने ककुभेकश्यपादयः । तथातालवनेप्रोक्तमिन्द्रोपेन्द्रोरगात्मनाम्
उदुम्बरे कर्दमस्य तथाऽन्येषांमहात्मनाम् । विद्याधराणां सिद्धानांपुण्येत्वाम्रवनेशुभे
नागानां सिद्धसङ्घानां तथा निम्बवने स्थितिः । सूर्य्यस्यकिंशुकवनेतथारुद्रगणस्य च
बीजपूरवने पुण्ये देवाचार्य्यो व्यवस्थितः । कौमुदे तु वनेविष्णुप्रमुखानांमहात्मनाम्
स्थलपद्मवनान्तस्थ न्यग्रोधेऽशेषभोगिनः । शेषस्त्वशेषजगतां पतिरास्तेऽतिगर्वितः
स एव जगतां कालः पाताले च व्यवस्थितः ।
विष्णोर्विश्वगुरोर्मूर्त्तिर्दिव्यः साक्षाद्धलायुधः ॥ ६५ ॥
शयनं देवदेवस्य स हरेः कङ्कणं विभोः । वने पनसवृक्षाणां सशुक्रा दानवादयः॥६६॥
किन्नरैरुरगाश्चैव विशाखकवने स्थिताः । मनोहरवने वृक्षाः सर्वकोटिसमन्विताः ॥
नन्दीश्वरो गणवरैः स्तूयमानो व्यवस्थितः । सन्तानकस्थलीमध्येसाक्षाद्देवीसरस्वती

एवं संक्षेपतः प्रोक्ता वनेषु वनवासिनः । असंख्याता मयाऽप्यत्र वक्तुं नो विस्तरेणतु
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे नानावर्षैःसहतत्रस्थमहापर्वतानाम्वर्णनं
नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनविन्यासोद्देशस्थानप्रतिपादनम्

सूत उवाच

शितान्तशिखरे शक्रः पारिजातवने शुभे । तस्यप्राच्यांकुमुदाद्रिकूटोऽसौबहुविस्तरः॥
अष्टौ पुराण्युदीर्णानिदानवानांद्विजोत्तमाः !। सुवर्णकोटरेपुण्येराक्षसानांमहात्मनाम्
नीलकानां पुराण्याहुरष्टषष्टिर्द्विजोत्तमाः !। महानीलेऽपि शैलेन्द्रे पुराणि दशपञ्च च॥
हयाननानां मुख्यानां किन्नराणां च सुव्रताः ! । वेणुसौधे महाशैलेविद्याधरपुरत्रयम्

वैकुण्ठे गरुडः श्रीमान् करञ्जे नीललोहितः ।
वसुधारे वसूनान्तु निवासः परिकीर्त्तितः ॥ ५ ॥

रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणांमहात्मनाम् । सप्तस्थानानिपुण्यानिसिद्धावासयुतानि च
महत्प्रजापतेः स्थानमेकशृङ्गे नगोत्तमे । गजशैले तु दुर्गायाः सुमेधे वसवस्तथा ॥
आदित्याश्च तथा रुद्राः कृतावासास्तथाश्विनौ । अशीतिर्देवपुर्य्यस्तु हेमकक्षेनगोत्तमे
सुनीले रक्षसां वासाःपञ्चकोटिशतानि च । पञ्चकूटे पुराण्यासन् पञ्चकोटिप्रमाणतः
शतशृङ्गे पुरशतं यक्षाणाममितौजसाम् । ताम्राभे काद्रवेयाणां विशाखे तु गुहस्य वै
श्वेतोदरे मुनिश्रेष्ठाः ! सुपर्णस्य महात्मनः । पिशाचके कुबेरस्य हरिकूटे हरेर्गृहम् ॥
कुमुदे किन्नरावासस्त्वञ्जने चारणालयः । कृष्णो गन्धर्वनिलयः पाण्डुरे पुरसप्तकम्
विद्याधराणांविप्रेन्द्रा ! विश्वभोगसमन्वितम् । सहस्रशिखरेशैलेदैत्यानामुग्रकर्मणाम्
पुराणान्तु सहस्राणि सप्त शक्रारिणांद्विजाः ! । मुकुटेपन्नगावासःपुष्पकेतौमुनीश्वराः

वैवस्वतस्य सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च । तक्षके चैव शैलेन्द्रे चत्वार्य्यायतनानिच
श्वेन्द्रविष्णुरुद्राणांगुहस्य च महात्मनः । कुबेरस्य च सोमस्यतथान्येषांमहात्मनाम्
सन्त्यायतनमुख्यानि मर्य्यादापर्वतेष्वपि । श्रीकण्ठाद्रिगुहावासीसर्वावास सहोमया
श्रीकण्ठस्याऽऽधिपत्यंवैसर्वदेवेश्वरस्यच। अण्डस्याऽस्यप्रवृत्तिस्तुश्रीकण्ठेननसंशयः

अनन्तेशादयस्त्वेवं प्रत्येकं चाण्डपालकाः ।
चक्रवर्त्तिन इत्युक्तास्ततो विद्येश्वरास्त्विह ॥ १६ ॥

श्रीकण्ठाधिष्ठितान्यत्रस्थानानिचसमासतः । मर्य्यादापर्वतेष्वद्यश्रृण्वन्तु प्रवदाम्यहम्
श्रीकण्ठाधिष्ठितं विश्वं चराचरमिदंजगत् । कालाग्निशिवपर्य्यन्तंकथंवक्ष्येसविस्तरम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भुवनविन्यासोद्देशस्थानवर्णनं नाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोशस्थविविधद्वीपानाम्वर्णनम्

सूत उवाच

देवकूटो गिरौमध्ये महाकूटे सुशोभने । हेमवैदूर्य्यमाणिक्यनीलगोमेदकान्तिभिः॥१॥
तथान्यैर्मणिमुख्यैश्च निर्मिते निर्मले शुभे । शाखाशतसहस्राढ्ये सर्वद्रुमविभूषिते ॥
चम्पकाशोकपुन्नागबकुलासनमण्डिते । पारिजातकसम्पूर्णे नागपक्षिगणान्विते ॥
नैकधातुशतैश्चित्रे विचित्रकुसुमाकुले । नितम्बपुष्पसालम्बे नैकसत्वगणान्विते ॥
विमलस्वादुपानीये नैकप्रस्रवणैर्युते । निर्झरैः कुसुमाकीर्णैरनेकैश्च विभूषिते ॥ ५ ॥
पुष्पोडुपवहाभिश्च स्रवन्तीभिरलङ्कृते । स्निग्धवर्णं महामूलमनेकस्कन्धपादपम् ॥
रम्यं ह्यविरलच्छायं दशयोजनमण्डलम् । तत्र भूतवनं नाम नानाभूतगणालयम् ॥७॥
महादेवस्य देवस्य शङ्करस्य महात्मनः । दीप्तमायतनं तत्र महामणिविभूषितम् ॥८॥

हेमप्राकारसंयुक्तं मणितोरणमण्डितम् । स्फाटिकैश्च विचित्रैश्च गोपुरैश्च समन्वितम्
सिंहासनैर्मणिमयैः शुभास्तरणसंयुतैः । क्षिताविततः सम्यक् शर्वेणाधिष्ठितैः शुभैः
अम्लानमालानिचितैर्नानावर्णैर्गृहोत्तमैः । मण्डपैः सुविचित्रैस्तु स्फाटिकस्तम्भसंयुतैः
संयुतं सर्वभूतेन्द्रैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रपूजितैः । वराहगजसिंहर्क्षशार्दूलकरभाननैः ॥ १२ ॥
गृध्रोलूकमुखैश्चान्यैर्मृगोष्ट्राजमुखैरपि । प्रमथैर्विविधैः स्थूलैर्गिरिकूटोपमैः शुभैः ॥
करालैर्हरिकेशैश्च रोमशैश्च महाभुजैः । नानावर्णाकृतिधरैर्नानासंस्थानसंस्थितैः ॥
दीप्तास्यैर्दीप्तचरितैर्नन्दीश्वरमुखैः शुभैः । ब्रह्मेन्द्रविष्णुसङ्काशैरणिमादिगुणान्वितैः ॥
अशून्यममरैर्नित्यं महापरिषदैस्तथा । तत्र भूतपतेर्देवाः पूजां नित्यं प्रयुञ्जते ॥ १६ ॥
झर्झरैः शङ्खपटहैर्भेरीडिण्डिमगोमुखैः । ललितावसितोद्गीतैर्वृत्तवल्गितगर्जितैः ॥१७
पूजितो वै महादेवः प्रमथैः प्रमथेश्वरः । सिद्धर्षिदेवगन्धर्वैर्ब्रह्मणा च महात्मना ॥१८
उपेन्द्रप्रमुखैश्चान्यैः पूजितस्तत्र शङ्करः । विमलश्चारुशिखरं यत्र तच्छङ्खवर्चसम् ॥

कैलासो यक्षराजस्य कुबेरस्य महात्मनः ।
निवासः कोटियक्षाणां तथाऽन्येषां महात्मनाम् ॥ २० ॥

तत्राऽपि देवदेवस्य भवस्याऽऽयतनंमहत् । तस्मिन्नायतनेसोमःसदाऽऽस्तेसगणोहरः
यत्र मन्दाकिनी नाम नलिनी विपुलोदका । सुवर्णमणिसोपाना कुबेरशिखरे शुभे ॥
जाम्बूनदमयैः पद्मैर्गन्धस्पर्शगुणान्वितैः । नीलवैदूर्यपत्रैश्च गन्धोपेतैर्महोत्पलैः ॥
तथा कुमुदखण्डैश्च महापद्मैरलङ्कृता । यक्षगन्धर्वनारीभिरप्सरोभिश्च सेविता ॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः । उपस्पृष्टजला पुण्या नदी मन्दाकिनी शुभा ॥
तस्याश्चोत्तरपार्श्वेतुभवस्याऽऽयतनंशुभम्।वैदूर्यमणिसम्पन्नंतत्राऽऽस्तेशङ्करोऽव्ययः
द्विजाः कनकनन्दायास्तीरे वै प्राचि दक्षिणे । वनंद्विजसहस्राढ्यंमृगपक्षिसमाकुलम्

तत्रापि सगणः साम्बः क्रीडतेऽद्रिसमे गृहे ।
नन्दायाः पश्चिमे तीरे किञ्चिद्वै दक्षिणाश्रिते ॥ २८ ॥

पुरं रुद्रपुरी नाम नानाप्रासादसङ्कुलम् । तत्रापि शतधाकृत्वा ह्यात्मानं चाऽम्बयासह
क्रीडते सगणः साम्बस्तच्छिवालयमुच्यते । एवं शतसहस्राणि शर्वस्यायतनानि तु

प्रतिद्वीपे मुनिश्रेष्ठाः ! पर्वतेषु वनेषु च । नदीनदतटाकानां तीरेष्वर्णवसन्धिषु ॥३१॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भुवनकोशस्थविविधद्वीपशोभावर्णनं नामैक-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोशस्वभावकथनम्

सूत उवाच

नद्यश्चबहवःप्रोक्ताःसदाबहुजलाःशुभाः । सरोवरेभ्यःसम्भूतास्त्वसंख्याताद्विजोत्तमाः
प्राङ्मुखादक्षिणास्यास्तुचोत्तरप्रभवाःशुभाः । पश्चिमाप्रापवित्राश्चप्रतिवर्षंप्रकीर्त्तिताः
आकाशाम्भोनिधिर्योऽसौसोम इत्यभिधीयते । आधारःसर्वभूतानांदेवानाममृताकरः
अस्मात् प्रवृत्ता पुण्योदानदीत्वाकाशगामिनी । सप्तमेनानिलपथाप्रवृत्ताचामृतोदका

सा ज्योतींष्यनुवर्त्तन्ती ज्योतिर्गणनिषेविता ।
ताराकोटिसहस्राणां नभसश्च समायुता ॥ ५ ॥

परिवर्त्तत्यहरहो यथा सोमस्तथैव सा । चत्वार्य्यशीतिश्च तथासहस्राणांसमुच्छ्रितः
योजनानांमहामेरुः श्रीकण्ठाक्रीडकोमलः । तत्रासीनो यत. शर्वः साम्ब सहगणेश्वरैः

क्रीडते सुचिरं कालं तस्मात् पुण्यजला शिवा ।
गिरिं मेरुं नदी पुण्या सा प्रयाति प्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥

विभज्यमानसलिला सा जवेनाऽनिलेन च । मेरोरन्तरकूटेषु निपपात चतुर्ष्वपि ॥६॥
समन्तात् समतिक्रम्य सर्वाद्रीन् प्रविभागशः । नियोगाद्देवदेवस्यप्रविष्टासामहार्णवम्
अस्या विनिर्गता नद्यः शतशोऽथ सहस्रशः । सर्वद्वीपाद्रिवर्षेषु बहवः परिकीर्त्तिताः
क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याता गङ्गा यद्गाङ्गसाम्बरात् । केतुमाले नराः कालाःसर्वेपनसभोजनाः
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाजीवितञ्चायुतंस्मृतम् ।भद्राश्वेशुक्लवर्णाश्चस्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभाः

कालाम्रभोजनाः सर्वे निरातङ्का रतिप्रियाः । दशवर्षसहस्राणिजीवन्तिशिवभाविताः
हिरण्मया इवात्यर्थमीश्वरार्पितचेतसः । तथा रमणके जीवा न्यग्रोधफलभोजनाः ॥
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति शुक्लास्ते सर्वे शिवध्यानपरायणाः
हैरण्मया महाभागा हिरण्मयवनाश्रयाः । एकादशसहस्राणि शतानि दशपञ्च च ॥
वर्षाणां तत्र जीवन्ति अश्वत्थाशनजीवनाः । हिरण्मया इवात्यर्थमीश्वरार्पितमानसाः
कुरुवर्षे तु कुरवः स्वर्गलोकात् परिच्युताः । सर्वेमैथुनजाताश्चक्षीरिणःक्षीरभोजनाः
अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः । अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविनः॥
त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति ते महावीर्य्यानचान्यस्त्रीनिषेविणः
सहैव मरणं तेषां कुरूणां स्वर्गवासिनाम् । हृष्टानां सुप्रवृद्धानांसर्वाणाम्रृतभोजिनाम्
सदातुचन्द्रकान्तानांसदायौवनशालिनाम् । श्यामाङ्गानांसदासर्वभूषणास्पददेहिनाम्
जम्बूद्वीपे तु तत्रापि कुरुवर्षं सुशोभनम् । तत्र चन्द्रप्रभं शम्भोर्विमानं चन्द्रमौलिनः
वर्षेतु भारते मर्त्याः पुण्याः कर्मवशायुषः । शतायुषः समाख्यातानानावर्णाल्पदेहिनः
नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्मफलाशिनः । नानाज्ञानार्थसम्पन्ना दुर्बलाश्चाल्पभोगिनः
इन्द्रद्वीपे तथा केचित्तथैव च कसेरुके । ताम्रद्वीपं गताः केचित् केचिद्देशं गभस्तिमत्

नागद्वीपं तथा सौम्यं गान्धर्वं वारुणं गताः ।
केचिन् म्लेच्छाः पुलिन्दाश्च नानाजातिसमुद्भवाः ॥ २८ ॥

पूर्वेकिरातास्तस्याऽन्तेपश्चिमेयवनाःस्मृताः।ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःमध्येशूद्राश्चसर्वशः
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्त्तयन्तो व्यवस्थिताः । तेषांसंव्यवहारोऽयंवर्त्ततेऽत्रपरस्परम्
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानान्तु स्वकर्मसु । सङ्कल्पश्चाभिमानश्चआश्रमाणांयथाविधि
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्यत्र मानुषी । तेषाञ्च युगकर्माणि नान्यत्र मुनिपुङ्गवाः ॥
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे नृणाम् । सुवर्णवर्णाश्चनरास्त्रियश्चाप्सरसोपमाः
अनामया ह्यशोकाश्चसर्वे ते शिवभाविताः । शुद्धसत्वाश्चहेमाभाःसदाराःप्लक्षभोजनाः
महारजतसङ्काशा हरिवर्षेऽपि मानवाः । देवलोकाच्च्युताः सर्वे देवाकाराश्चसर्वशः॥
हरं यजन्ति सर्वेशं पिबन्तीक्षुरसंशुभम् । न जराबाधते तेन न च जीर्य्यन्ति ते नराः

दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः । मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्
न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्तिमानवाः । चन्द्रसूर्यौ न नक्षत्रं न प्रकाशमिलावृते
पद्मप्रभाः पद्ममुखाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः । पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते भवभाविताः ॥
जम्बूफलरसाहारा अनिष्यन्दाः सुगन्धिनः । देवलोकागतास्तत्र जायन्ते ह्यजरामराः
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणांते नरोत्तमाः । आयुःप्रमाणं जीवन्ति वर्षे दिव्येत्विलावृते

जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधते त्विमान् ।

न क्षुधा न क्लमश्चाऽपि न जनो मृत्युमांस्तथा ॥ ४२ ॥

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् । इन्द्रगोपप्रतीकाशं जायन्ते भास्वरन्तु तत् ॥
एवं मया समाख्यातानववर्षानुवर्तिनः । वर्णायुर्भोजनाद्यानिसङ्क्षिप्यनतुविस्तरात्
हेमकूटे तु गन्धर्वा विज्ञेयाश्चाप्सरोगणाः । सर्वे नागाश्च निषधेशेषवासुकितक्षकाः
महाबलास्त्रयस्त्रिंशद्रमन्ते याज्ञिकाः सुराः । नीले तु वैदूर्य्यमये सिद्धाब्रह्मर्षयोऽमलाः
दैत्यानां दानवानाञ्च श्वेतः पर्वत उच्यते । शृङ्गवान् पर्वतश्चैव पितॄणांनिलयःसदा

हिमवान् यक्षमुख्यानां भूतानामीश्वरस्य च ।

सर्वाद्रिषु महादेवो हरिणा ब्रह्मणाऽम्बया ॥ ४८ ॥

नन्दिना च गणैश्चैव वर्षेषु च वनेषु च । नीलश्वेतत्रिशृङ्गे च भगवान्नीललोहितः ॥
सिद्धैर्देवैश्च पितृभिर्दृष्टो नित्यं विशेषतः । नीलश्च वैदूर्य्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः
मयूरबर्हवर्णस्तु शातकुम्भस्त्रिशृङ्गवान् । एते पर्वतराजानो जम्बूद्वीपेव्यवस्थिताः ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भुवनकोशस्वभाववर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोशविन्यासनिर्णयप्रतिपादनम्

सूत उवाच

प्लक्षद्वीपादिद्वीपेषु सप्तसप्तसु पर्वताः । ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः ॥

प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामिसप्तदिव्यान्महाचलान्। गोमेदकोऽत्रप्रथमोद्वितीयश्चान्द्रउच्यते
तृतीयो नारदो नामचतुर्थोदुन्दुभिः स्मृतः। पञ्चमः सोमकोनाम सुमनाःषष्ठ उच्यते
स एव वैभ्रवः प्रोक्तो वैभ्राजः सप्तमः स्मृतः। सप्तैते गिरयः प्रोक्ता प्लक्षद्वीपेविशेषतः
सप्तैव शाल्मलिद्वीपे तांस्तुवक्ष्याम्यनुक्रमात्। कुमुदश्चोन्नमश्चैव पर्वतश्च बलाहकः
द्रोणः कङ्कश्च महिषः ककुद्मान् सप्तमःस्मृतः। कुशद्वीपे तु सप्तैवद्वीपाश्चकुलपर्वताः
तांस्तु सङ्क्षेपतोवक्ष्येनाममात्रेण वै क्रमात्। विद्रुमः प्रथमःप्रोक्तोद्वितीयोहेमपर्वतः

तृतीयो द्युतिमान्नाम चतुर्थः पुष्पितः स्मृतः।

कुशेशयः पञ्चमस्तु षष्ठो हरिगिरिः स्मृतः॥ ८॥

सप्तमो मन्दरः श्रीमान्महादेवनिकेतनम्। मन्द इति ह्यपां नाम मन्दरो धारणादपाम्
तत्र साक्षाद् वृषाङ्कस्तु विश्वेशोविमलःशिवः। सोमःसनन्दीभगवानास्तेहेमगृहोत्तमे
तपसा तोषितः पूर्वं मन्दरेण महेश्वरः। अविमुक्ते महाक्षेत्रे लेभे स परमं वरम्॥११
प्रार्थितश्च महादेवो निवासार्थं सहाऽम्बया। अविमुक्तादुपागम्यचक्रे वासंस मन्दरे
सनन्दी सगणः सोमस्तेनाऽसौतत्रमुञ्चति। क्रौञ्चद्वीपे तु सप्तैहक्रौञ्चाद्याःकुलपर्वताः

क्रौञ्चो वामनकः पश्चात्तृतीयश्चाऽन्धकारकः।

अन्धकारात् परश्चापि दिवावृन्नामपर्वतः॥ १४॥

दिवावृतःपरश्चापिविविन्दोगिरिरुच्यते। विविन्दात्परतश्चापिपुण्डरीकोमहागिरिः
पुण्डरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः। एते रत्नमयाःसप्तःक्रौञ्चद्वीपस्यपर्वताः
शाकद्वीपे च गिरयः सप्त तांस्तु निबोधत। उदयो रैवतश्चापिश्यामकोमुनिसत्तमाः
राजतश्चगिरिःश्रीमानाम्बिकेयःसुशोभनः। आम्बिकेयात्परो[illegible]ःसर्वौषधिसमन्वितः
तथैव केसरीत्युक्तो यतो वायुः प्रजायते। पुष्करे पर्वतः श्रीमानेक एव महाशिलः॥

चित्रैर्मणिमयैः कूटैः शिलाजालैः समुच्छ्रितैः।

द्वीपस्य तस्य पूर्वार्द्धे चित्रसानुस्थितो महान्॥ २०॥

योजनानां सहस्राणिऊर्ध्वपञ्चाशदुच्छ्रितम्। अधश्चैवचतुस्त्रिंशत्सहस्राणिमहाचलः
द्वीपस्यार्धे परिक्षिप्तः पर्वतो मानसोत्तरः। स्थितो वेलासमीपे तु नवचन्द्र इवोदितः

योजनानांसहस्राणिऊर्ध्वंपञ्चाशदुच्छ्रितः । तावदेव तु विस्तीर्णःपार्श्वतःपरिमण्डलः
स एव द्वीपपश्चार्धे मानसः पृथिवीधरः । एक एव महासानुःसन्निवेशाद्द्विधाकृतः॥
तस्मिन्द्वीपेस्मृतौद्वौ तु पुण्यौजनपदौशुभौ । राजतौमानसस्याऽथपर्वतस्यानुमण्डलौ
महावीतन्तु यद्वर्षं बाह्यतोमानसस्यतु । तस्यैवाऽऽभ्यन्तरो यस्तुधातकीखण्डउच्यते
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः । पुष्करद्वीपविस्तारविस्तीर्णोऽसौसमन्ततः
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पुष्करस्य समेन तु । एवं द्वीपाः समुद्रैस्तुसप्तसप्तभिरावृताः
द्वीपस्याऽनन्तरो यस्तु समुद्रः सप्तमस्तु वै । एवं द्वीपसमुद्राणांवृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्
परेण पुष्करस्याऽथअनुवृत्यस्थितो महान् । स्वादूदकसमुद्रस्तुसमन्तात्परिवेष्ट्यच

परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैकशिलोपमा ॥ ३१ ॥

तस्याः परेणशैलस्तुमर्य्यादापरिमण्डलः । प्रकाशश्चाप्रकाशश्चलोकालोकःसउच्यते
दृश्यादृश्यगिरिर्यावत्तावदेषा धराद्विजाः !। योजनानांसहस्राणिदशतस्योच्छ्रयःस्मृतः
तावांश्चविस्तरस्तस्यलोकालोकमहागिरेः । अर्वाचीने तुतस्याऽर्धेचरन्तिरविरश्मयः

परार्धे तु तमो नित्यं लोकालोकस्ततः स्मृतः ।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तो भूर्लोकस्य च विस्तरः ॥ ३५ ॥

आभानोर्वैभुवःस्वस्तुआध्रुवान्मुनिसत्तमाः !। आवहाद्यानिविष्टास्तुवायोर्वै सप्तनेमयः
आवहः प्रवहश्चैव ततश्चानुवहस्तथा । संवहो विवहश्चाऽथ ततश्चोर्ध्वं परावहः ॥
द्विजाः! परिवहश्चेति वायोर्वै सप्तनेमयः । बलाहकास्तथा भानुश्चन्द्रो नक्षत्रराशयः
ग्रहाणि ऋषयः सप्त ध्रुवो विप्राः क्रमादिह । योजनानां महीपृष्ठादूर्ध्वंपञ्चदशाध्रुवात्
नियुतान्येकनियुतं भूपृष्ठाद्भानुमण्डलम् । रथः षोडशसाहस्रो भास्करस्य तथोपरि
चतुराशीतिसाहस्रो मेरुश्चोपरि भूतलात् । कोटियोजनमाक्रम्यमहर्लोकोध्रुवाद्ध्रुवः
जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयंद्विजाः । जनलोकात्तपोलोकश्चतस्रःकोटयोमताः

प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकः कोटिषट्कं विसृज्य तु ।
पुण्यलोकास्तु सप्तैते ह्यण्डेऽस्मिन् कथिता द्विजाः !॥ ४३ ॥

अधः सप्ततलानान्तु नरकाणां हि कोटयः । मायान्ताश्चैव घोराद्याअष्टाविंशतिरेव तु
पापिनस्तेषु पच्यन्ते स्वस्वकर्मानुरूपतः । अवीच्यन्तानि सर्वाणि रौरवाद्यानितेषुच
प्रत्येकं पञ्चकान्याहुर्नरकाणिविशेषतः । अण्डमादौमयाप्रोक्तमण्डस्याऽऽवरणानिच
हिरण्यगर्भसर्गश्चप्रसङ्गाद्बहुविस्तरात् । अण्डानामीदृशानान्तुकोट्योज्ञेयाःसहस्रशः
सर्वगत्वात् प्रधानस्य तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा । अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश ॥
प्रत्यण्डं द्विजशार्दूलास्तेषां हेतुर्महेश्वरः । अण्डेषु चाण्डबाह्येषु तथाण्डावरणेषु च
तमोऽन्तेच तमः पारे चाऽष्टमूर्त्तिर्व्यवस्थितः । अस्यात्मनोमहेशस्यमहादेवस्यधीमतः
अदेहिनस्त्वहो देवमखिलं परमात्मनः । अस्याऽष्टमूर्त्तेः शर्वस्य शिवस्य गृहमेधिनः ॥
गृहिणी प्रकृतिर्दिव्या प्रजाश्च महदादयः । पशवः किङ्करास्तस्य सर्वे देहाभिमानिनः

आद्यन्तहीनो भगवाननन्तः पुमान् प्रधानप्रमुखाश्च सप्त ।
प्रधानमूर्त्तिस्त्वथ षोडशाङ्गो महेश्वरश्चाऽष्टतनुः स एव ॥ ५३ ॥
आज्ञाबलात्तस्य धरास्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्राः ।
ज्योतिर्गणः शक्रमुखाः सुराश्च वैमानिकाः स्थावरजङ्गमाश्च ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा यक्षं लक्षणैर्हीनमीशं दृष्ट्वा सेन्द्रास्ते किमेतत् त्विहेति ।
यक्षं गत्वा निश्चयात् पावकाद्याः शक्तिक्षीणाश्चाऽभवन् यत्ततोऽपि॥५५॥
दग्धुं तृणं वाऽपि समक्षमस्य यक्षस्य वह्निर्न शशाक विप्राः ! ।
वायुस्तृणञ्चालयितुंतथाऽन्ये स्वान् स्वान् प्रभावान् सकलामरेन्द्राः ॥५६॥
तदा स्वयं वृत्ररिपुः सुरेन्द्रैः सुरेश्वरः सर्वसमृद्धिहेतुः ।
सुरेश्वरं यक्षमुवाच को वा भवानितीत्थं सकुतूहलात्मा ॥ ५७ ॥
तदा ह्यदृश्यं गत एव यक्षस्तदाऽम्बिका हैमवती शुभास्या ।
उमा शुभैराभरणैरनेकैः सुशोभमाना त्वनु चाऽऽविरासीत् ॥ ५८ ॥
तां शक्रमुख्या बहुशोभमानामुमामजां हैमवतीमपृच्छन् ।
किमेतदीशे ! बहुशोभमाने ! को वाऽम्बिके ! यक्षवपुश्चकास्ति ॥ ५९ ॥
निशम्य तद्वयक्षमुमाऽम्बिकाऽऽह त्वगोचरश्चेति सुराः सशक्राः ।

प्रणेमुरेनां मृगराजगामिनीमुमामजां लोहितशुक्लकृष्णाम् ॥ ६० ॥
सम्भाविता सा सकलामरेन्द्रैः सर्वप्रवृत्तिस्तु सुरासुराणाम् ।
अहम्पुराऽऽसं प्रकृतिश्च पुंसो यक्षस्य चाऽऽज्ञावशगेत्यथाऽऽह ॥ ६१ ॥
तस्माद्द्विजाः सर्वमजस्य तस्य नियोगतश्चाऽण्डमभूदजाद्वै ।
अजश्च अण्डादखिलश्च तस्माज्ज्योतिर्गणैर्लोकमजात्मकं तत् ॥ ६२ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भुवनकोशविन्यासनिर्णयो नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अण्डेज्योतिर्गणप्रचारवर्णनम्

सूत उवाच

ज्योतिर्गणप्रचारं वै संक्षिप्याऽण्डे ब्रवीम्यहम् । देवक्षेत्राणि चालोक्य ग्रहचारप्रसिद्धये
मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां मेरोः पुरी स्थिता ।
दक्षिणे भानुपुत्रस्य वरुणस्य च वारुणी ॥ २ ॥
सौम्ये सोमस्य विपुला तासु दिग्देवतास्थिता । अमरावती संयमनी सुखा चैव विभाक्रमात्
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने । काष्ठां गतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत
दक्षिणप्रक्रमे भानुः क्षिप्तेषुरिव धावति । ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥
पुरान्तगो यदा भानुः शक्रस्य भवति प्रभुः । सर्वैः सायमनैः सौरो ह्युदयो दृश्यते द्विजाः
स एव सुखवत्यान्तु निशान्तस्थः प्रदृश्यते । अस्तमेति पुनः सूर्यो विभायां विश्वदृग्विभुः
यथा प्रोक्तोऽमरावत्यां यथाऽसौ वारितस्कर ।
तथा संयमनीं प्राप्य सुखाञ्चैव विभां खगः ॥ ८ ॥
यदापराह्णस्त्वाग्नेय्यां पूर्वाह्णो नैर्ऋते द्विजाः । तदा त्वपररात्रश्च वायुभागे सुदारुणः

ईशान्यां पूर्वराज्ञस्तु गतिरेषा च सर्वतः । एवं पुष्करमध्ये तु यदा सर्पति वारिपः ॥
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्यां मुहूर्त्तेनैव गच्छति । योजनानां मुहूर्त्तस्य इमां संख्यांनिबोधत
पूर्णा शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तुसास्मृता । पञ्चाशच्चतथाऽन्यानि सहस्राण्यधिकानितु
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा भास्करस्य महात्मनः । एतेनगतियोगेनयदाकाष्ठान्तुदक्षिणाम्
पर्यपृच्छेत्पतङ्गोऽपि सौम्याशां चोत्तरेऽहनि । मध्येतु पुष्करस्याऽथभ्रमतेदक्षिणायने
मानसोत्तरशैले तु महातेजा विभावसुः । मण्डलानां शतं पूर्णं तदशीत्यधिकं विभुः
बाह्यं चाऽऽभ्यन्तरं प्रोक्तमुत्तरायणदक्षिणे । प्रत्यहंचरते तानि सूर्यो वै मण्डलानि तु
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्त्तते । दक्षिणप्रक्रमे देवस्तथा शीघ्रं प्रवर्त्तते ॥१७॥

तस्मात् प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाऽल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणायने ॥ १८ ॥

त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्ना तु चरते रविः । मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१९
कुलालचक्रमध्यं तु यथा मन्दं प्रसर्पति । तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥२०॥
तस्माद्दीर्घेणकालेनभूमिमल्पांतुगच्छति । सरयोऽधिष्ठितोभानोरादित्यैर्मुनिभिस्तथा
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः । प्रदीपयन्सहस्रांशुरग्रतः पृष्ठतोऽप्यधः ॥२२॥

ऊर्द्ध्वतश्च करं त्यक्त्वा सभां ब्राह्मीमनुत्तमाम् ।
अम्भोभिर्मुनिभिस्त्यक्तैः सन्ध्यायन्तु निशाचरान् ॥ २३ ॥

हत्वा हत्वा तु सम्प्राप्तान्ब्राह्मणैश्चरते रविः । अष्टादशमुहूर्त्तन्तु उत्तरायणपश्चिमम् ॥
अहर्भवति तच्चाऽपि चरते मन्दविक्रमः । त्रयोदशार्द्धमृक्षाणि नक्तं द्वादशभीरविः ॥

मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि दिवाऽष्टादशभिश्चरन् ॥ २५ ॥

ततो मन्दतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा । मृत्पिण्डइवमध्यस्थो ध्रुवोभ्रमतिवैतथा
त्रिंशन्मुहूर्त्तैरेवाहुरहोरात्रं पुराविदः । उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ॥
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते । औत्तानपादो भ्रमति ग्रहैः सार्द्धं ग्रहाग्रणीः॥
गणो मुनिज्योतिषान्तु मन्दवा तस्य सर्पति । अधिष्ठितःपुनस्तेनभानुस्त्वादायतिष्ठति
किरणैः सर्वतस्तोयं देवो वै ससमीरणः । औत्तानपादस्य सदा ध्रुवस्त्वं वै प्रसादतः

विष्णोरौत्तानपादेन वातन्तातस्यहेतुना । आपःपीतास्तु सूर्येणक्रमन्तेशशिनःक्रमात्
निशाकराद्विस्रवन्ते जीमूतान्प्रत्यपःक्रमात् । वृन्दं जलमुचांचैवश्वसनेनाऽभिताडितम्
क्ष्मायां वृष्टिं विसृजते भासयत्तेन भास्करः । तोयस्य नास्तियैनाशः तदेवपरिवर्त्तते
हिताय सर्वजन्तूनां गतिः शर्वेण निर्मिता । भूर्भुवःस्वस्तथाह्यापोह्यन्नं चाऽमृतमेव च
प्राणा वै जगतामापो भूतानि भुवनानि च । बहुनाऽत्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत्
अपां शिवस्य भगवानाधिपत्ये व्यवस्थितः । अपां त्वधिपतिर्देवोभवइत्येवकीर्त्तितः
भवात्मकं जगत्सर्वमितिकिञ्चेहचाऽद्भुतम् । नारायणत्वं देवस्यहरेश्चाद्भिःकृतंविभोः

जगतामालयो विष्णुस्त्वापस्तस्याऽऽलयानि तु ।

दन्दह्यमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वथ निष्क्रमन्ति ।

या या ऊद्र्ध्वं मारुतेनेरिता वै तास्तास्त्वभ्राण्यग्निना वायुना च ॥ ३८ ॥

अतो धूमाग्निवातानां संयोगस्त्वभ्रउच्यते । वारीणिवर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्रदृक्
यज्ञधूमोद्भवं चाऽपि द्विजानां हितकृत्सदा । दावाग्निधूमसम्भूतमभ्रं वनहितं स्मृतम् ॥
मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति । अभिचाराग्निधूमोत्थं भूतनाशाय वै द्विजाः!॥
एवं धूमविशेषेण जगतां वै हिताहितम् । तस्मादाच्छादयेद्धूममभिचारकृतं नरः ॥

अनाच्छाद्य द्विजः कुर्य्याद् धूमं यश्चाऽभिचारिकम् ।

एवमुद्दिश्य लोकस्य क्षयकृच्च भविष्यति ॥ ४३ ॥

अपां निधानं जीमूताः षण्मासानिह सुव्रताः !। वर्षयन्त्येव जगतां हितायपवनाज्ञया
स्तनितञ्चेह वायव्यं वैद्युतं पावकोद्भवम् । त्रिधा तेषांहिमोत्पत्तिरभ्राणांमुनिपुङ्गवाः

न भ्रश्यन्ति यतोऽभ्राणि मेहनान्मेघ उच्यते ।

काष्ठावाहाश्च वैरिञ्च्याः पक्षाश्चैव पृथग्विधाः ॥ ४६ ॥

आद्यानां काष्ठसंयोगादग्नेर्धूमः प्रवर्त्तितः ।

द्वितीयानाञ्च सम्भूतिर्विरिञ्च्योच्छ्वासवायुना ॥ ४७ ॥

भूभृतान्त्वथपक्षैस्तुमघवच्छेदितैस्ततः । वाहेयास्त्वथजीमूतास्त्वावहस्थानगाःशुभाः
विरिञ्चोच्छ्वासजाःसर्वेप्रवहस्कन्धजास्ततः । पक्षजाःपुष्कराद्याश्चवर्षन्तिवयदाजलम्

मूकाः सशब्ददुष्टाशास्त्वेतैः कृत्यं यथाक्रमम् । क्षामवृष्टिप्रदादीर्घकालंशीतसमीरिणः
जीवकाश्वतथाक्षीणाविद्युदुध्वनिविवर्जिताः । तिष्ठन्त्याक्रोशमात्रेतुधरापृष्ठादितस्ततः
अर्द्धक्रोशे तु सर्वे वै जीमूतागिरिवासिनः । मेघायोजनमात्रन्तुसाध्यत्वाद्बहुतोयदाः
धरापृष्ठाद्द्विजाः!क्ष्मायांविद्युद्गुणसमन्विताः । तेषां तेषांवृष्टिलगं त्रेधाकथितमत्रतु
पक्षजाः कल्पजाः सर्वेपर्वतानांमहत्तमाः । कल्पान्तेतेचवर्षन्ति रात्रौ नाशाय शारदाः
पक्षजाः पुष्करावाश्च वर्षन्ति च यदाजलम् । तदार्णवमभूत्सर्वं तत्र शेते निशीश्वरः

आग्नेयानां श्वासजानां पक्षजानां द्विजर्षभाः !।
जलदानां सदा धूमो ह्याप्यायनइति स्मृतः ॥ ५६ ॥

पौण्ड्रास्तु वृष्टयःसर्वाविद्युता शीतशस्यदाः । पुण्ड्रदेशेषुपतितानागानांशीकराहिमाः
गाङ्गा गङ्गाम्बुसम्भूता पर्जन्येन परावहैः । नगानाञ्च नदीनाञ्च दिग्गजानांसमाकुलम्
मेघानाञ्च पृथग्भूतं जलं प्रायादगादगम् । परावहो यः श्वसनश्चानयत्यम्बिका गुरुम्
मेनापतिमतिक्रम्य वृष्टिशेषं द्विजाः! परम् । अभ्येति भारते वर्षे त्वपरान्तविवृद्धये ॥
वृष्टयः कथिताः ह्यद्य द्विधा वस्तुविवृद्धये । शस्यद्वयस्य संक्षेपात्प्रब्रवीमि यथामति
स्रष्टाभानुर्महातेजावृष्टीनांविश्वदृग्विभुः । सोऽपिसाक्षाद्द्विजश्रेष्ठाश्चेशानःपरमःशिवः
सएवतेजस्त्वोजस्तुबलंविप्रा!यशःस्वयम् । चक्षुःश्रोत्रंमनोमृत्युरात्मामन्युर्विदिग्दिशः
सत्यं ऋतं तथा वायुरम्बरं खचरश्च सः । लोकपालो हरिर्ब्रह्मा रुद्रः साक्षान्महेश्वरः

सहस्रकिरणः श्रीमानष्टहस्तः सुमङ्गलः ।
अर्द्धनारीवपुः साक्षात् त्रिनेत्रस्त्रिदशाधिपः ॥ ६५ ॥

अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टिर्नानाऽभवद्द्विजाः !। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते किरणैर्जलम्
जलस्य नाशो वृद्धिर्वानास्त्येवाऽस्यविचारतः । ध्रुवेणाऽधिष्ठितोवायुर्वृष्टिंसंहरतेपुनः
ग्रहान्निःसृत्य सूर्य्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले । चारस्यान्तेविशत्यर्कंध्रुवेणसमधिष्ठिता

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ज्योतिश्चक्रे सूर्य्यप्रभावादवृष्टिकथनं नाम
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

सौरं संक्षेपतो वक्ष्ये रथं शशिन एव च । ग्रहाणामितरेषाञ्च यथा गच्छति चाम्बुपः
सौरस्तु ब्रह्मणा सृष्टो रथस्त्वर्थवशेन सः । संवत्सरस्याऽवयवैःकल्पितश्चद्विजर्षभाः
त्रिनाभिना तु चक्रेण पञ्चारेणसमन्वितः । सौवर्णःसर्वदेवानामावासोभास्करस्यतु
नवयोजनसाहस्रो विस्तारायामतःस्मृतः । द्विगुणोऽपिरथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः
असङ्गैस्तु हयैर्युक्तो यतश्चक्रं ततः स्थितैः । वाजिनस्तस्यवैसप्तच्छन्दोभिर्निर्मितास्तुते
चक्रपक्षे निबद्धास्तु ध्रुवे चाऽक्षः समर्पितः । सहाश्वचक्रो भ्रमते सहाक्षो भ्रमते ध्रुवः
अक्षः सहैकचक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः । प्रेरको ज्योतिषांधीमान्ध्रुवोवैवातरश्मिभिः
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ द्वौ रश्मीस्यन्दनस्य तु । ध्रुवेणभ्रमतेरश्मिनिबद्धःसयुगाक्षयोः

भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ।
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य हि ॥ ६ ॥

ध्रुवेण प्रगृहीते वै विचक्राश्वे च रज्जुभिः । भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवं रश्मीच तावुभौ
युगाक्षकोटिस्त्वेतस्य वातोर्मिस्यन्दनस्य तु । कीलेसक्तायथारज्जुर्भ्रमतेसर्वतोदिशम्
भ्राम्यतस्तस्य रश्मी तु मण्डलेषूत्तरायणे । वर्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु
आकृष्येते यदाते वै ध्रुवेणाऽधिष्ठितौतदा । आभ्यन्तरस्थःसूर्य्योऽथभ्रमतेमण्डलानितु
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः । ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु
तथैव बाह्यतः सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु । उद्वेष्टयन्सवेगेन मण्डलानि तु गच्छति
देवाश्चैव तथा नित्यं मुनयश्च दिवानिशम् । यजन्ति सततं देवं भास्करं भवमीश्वरम्
सरथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः

एते वसन्ति वै सूर्य्ये द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु ।

आप्याययन्ति चाऽऽदित्यं तेजोभिर्भास्करं शिवम् ॥ १८ ॥

ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैवनृत्यगेयैरुपासते
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम् । सर्पावहन्ति वै सूर्यं यातुधानानुयान्ति च॥
बालखिल्यानयन्त्यस्तंपरिवार्योदयाद्रविम् । इत्येतेवैवसन्तीह द्वौ द्वौमासौदिवाकरे
मधुश्च माधवश्चैव शुक्रश्चशुचिरेवच । नभो नभस्यो विप्रेन्द्रा ! इषश्चोर्जस्तथैव च ॥
सहः सहस्यौ च तथा तपस्यश्च तपः पुनः । एते द्वादशमासास्तु वर्षवैमानुषंद्विजाः!
वासन्तिकस्तथाग्रैष्मःशुभो वै वार्षिकस्तथा । शारदश्चहिमश्चैवशैशिरोश्चतवःस्मृताः
धाताऽर्य्यमाऽथ मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रएवच । विवस्वांश्चैवपूषाच पर्जन्योंऽशुर्भगस्तथा
त्वष्टाविष्णुःपुलस्त्यश्चपुलहश्चाऽत्रिरेवच । वसिष्ठश्चाऽङ्गिराश्चैवभृगुर्बुद्धिमतांवरः

भारद्वाजो गौतमश्च कश्यपश्च क्रतुस्तथा ।

जमदग्निः कौशिकश्च वासुकिः कङ्कणीकरः ॥ २७ ॥

तक्षकश्च तथानाग एलापत्रस्तथाद्विजाः ! । शङ्खपालस्तथाचान्यस्त्वैरावतइतिस्मृतः
धनञ्जयो महापद्मस्तथा कर्कोटकः स्मृतः । कम्बलोऽश्वतरश्चैव तुम्बुरुर्नारदस्तथा ॥
हाहाहूहूर्मुनिश्रेष्ठा ! विश्वावसुरनुत्तमः । उग्रसेनोऽथ सुरुचिरन्यश्चैव परावसुः॥३०॥
चित्रसेनोमहातेजाश्चोर्णायुश्चैवसुव्रताः ! । धृतराष्ट्रःसूर्य्यवर्चादेवीसाक्षात्कृतस्थला
शुभानना शुभश्रोणिर्दिव्यावैपुञ्जिकस्थली । मेनकासहजन्याचप्रम्लोचाथशुचिस्मिता
अनुम्लोचाघृताचीचविश्वाचीचोर्वशीतथा । पूर्वचित्तिरितिख्याता देवीसाक्षात्तिलोत्तमा
रम्भाचाम्भोजवदना रथकृद्ग्रामणीः शुभः । रथौजा रथचित्रश्च सुबाहुर्वै रथस्वनः
वरुणश्चतथैवाऽन्यःसुषेणःसेनजिच्छुभः । तार्क्ष्यश्चाऽरिष्टनेमिश्चक्षतजित्सत्यजित्तथा

रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा ।

सर्पो व्याघ्रः पुनश्चाऽपो वातो विद्युद्दिवाकरः ॥ ३६ ॥

ब्रह्मोपेतश्च रक्षेन्द्रो यज्ञोपेतस्तथैव च । एते देवादयः सर्वे वसन्त्यर्के क्रमेण तु ॥३७
स्थानाभिमानिनोह्येतेगणाद्वादशसप्तकाः । धात्रादिविष्णुपर्य्यन्तादेवाद्वादशकीर्तिताः

आदित्यं परमं भानुं भाभिराप्याययन्ति ते ।

पुलस्त्याद्याः कौशिकान्ता मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ ३६ ॥

द्वादशैवस्तवैर्भानुंस्तुवन्तिच यथाक्रमम् । नागाश्चाश्वतरांतास्तुवासुकिप्रमुखा.शुभाः
द्वादशैव महादेवं वहन्त्येवं यथाक्रमम् । क्रमेण सूर्य्यवर्चान्तास्तुम्बरुप्रमुखाग्बुपम् ॥
गीतैरेनमुपासन्तेगन्धर्वाद्वादशोत्तमाः । कृतस्थलाद्यारम्भान्तादिव्याश्चाप्सरसोरविम्

ताण्डवैः सरसैः सर्वाश्चोपासन्ते यथाक्रमम् ।

दिव्याः सत्यजिदन्ताश्च ग्रामण्यो रथकृन्मुखाः ॥ ४३ ॥

द्वादशास्य क्रमेणैव कुर्वतेऽभीषु संग्रहम् ।

प्रयान्ति यज्ञोपेतान्ता रक्षोहेति मुखाः सह ॥ ४४ ॥

सायुधा द्वादशैवैते राक्षसाश्च यथाक्रमम् । धाताऽर्य्यमा पुलस्त्यश्चपुलहश्चप्रजापतिः
उरगो वासुकिश्चैव कङ्कणीकश्च तावुभौ । तुम्बरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ॥
कृतस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला । ग्रामणी रथकृच्चैव रथौजाश्चैव तावुभौ
रक्षोहेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ । मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥
वसन्ति ग्रीष्मकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह । ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षकोनाग एव च
मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहाहुहू । सुबाहुनामा ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ
पौरुषेयो बधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ । एते वसन्ति वै सूर्य्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः॥
ततः सूर्य्ये पुनश्चान्या निवसन्तीह देवताः । इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिराभृगुरेवच॥
एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ । विश्वावसूग्रसेनौ च वरुणश्च रथस्वनः ॥

प्रम्लोचा चैव विख्याता अनुम्लोचा च ते उभे ।

यातुधानास्तथा सर्पो व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ ॥ ५४ ॥

नभो नभस्ययोरेष गणो वसति भास्करम् । पर्य्यन्यश्चैव पूषाच भरद्वाजोऽथगौतमः
धनञ्जय इरावांश्च सुरुचिः सपरावसुः । घृताचीचाप्सरःश्रेष्ठाविश्वाचीचाऽतिशोभना
सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्चतौ । आपोवातश्चतावेतौयातुधानावुभौस्मृतौ
वसन्त्येते तु वै सूर्य्ये मास ऊर्जे इषे च ह । हैमन्तिकौतु द्वौमासौवसन्तिचदिवाकरे
अंशुर्भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुः सह । भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा॥

चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ । उर्वशी पूर्वचित्तिश्च तथैवाऽप्सरसावुभे

ताक्ष्यश्चाऽरिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ।

विद्युद्दिवाकरश्चोभौ यातुधानावुदाहृतौ ॥ ६१ ॥

सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे । ततः शैशिरयोश्चाऽपि मासयोर्निवसन्ति वै त्वष्टाविष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च । काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ धृतराष्ट्रः स गन्धर्वः सूर्यवर्चास्तथैव च । तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोहरा रथजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ । ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षोयज्ञोपेतश्चयःस्मृतः एते देवावसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौक्रमेणतु । स्थानाभिमानिनोह्येतेगणाद्वादशसप्तकाः सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसातेजउत्तमम् । ग्रथितैःस्वैर्वचोभिस्तुस्तुवन्तिमुनयोरविम् गन्धर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते । ग्रामणी यक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषु संग्रहम् ॥

सर्पा वहन्ति वै सूर्यं यातुधानानुयान्ति वै ।

वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ॥ ६६ ॥

एतेषामेव देवानां यथा तेजो यथा तपः । यथायोगं यथा मन्त्रं यथाधर्मं यथाबलम् तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिद्धस्तु तेजसा । इत्येते वै वसन्तीह द्वौद्वौमासौदिवाकरे ऋषयो देवगन्धर्वपन्नगाप्सरसाङ्गणाः । ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यतः एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्तिसृजन्तिच । भूतानामशुभंकर्मव्यपोहन्तीहकीर्तिताः मानवानां शुभं ह्येते हरन्तिचदुरात्मनाम् । दुरितंसुप्रचाराणांव्यपोहन्तिक्वचित्क्वचित् विमाने च स्थिता दिव्ये कामगे वातरंहसि । एतेसहैव सूर्येण भ्रमन्तिदिवसानुगाः वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्चवैद्विजाः ! । गोपायन्तीहभूतानिसर्वाणियामनुक्षयात्

स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

अतीतानागतानां वै वर्त्तन्ते साम्प्रतञ्च ये ॥ ७७ ॥

एते वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश । चतुर्दशसु सर्वेषु गणा मन्वन्तरेष्विह ॥ सङ्क्षेपादुविस्तराच्चैव यथावृत्तं यथाश्रुतम् । कथितं मुनिशार्दूला! देवदेवस्यधीमतः एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौक्रमेणतु । स्थानाभिमानिनोह्येतेगणाद्वादशसप्तकाः

इत्येष एकचक्रेण सूर्य्यस्तूर्णं रथेन तु । हरितैरक्षरैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवाकरः ॥८१ ॥
अहोरात्रं रथेनाऽसावेकचक्रेण तु भ्रमन् । सप्तद्वीपसमुद्राङ्कां सप्तभिः सर्पते दिवि ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सूर्य्यरथनिर्णयो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सोमवर्णनम्

सूत उवाच

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणिनिशाकरः । त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्चविज्ञेयस्तस्यवैरथः
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः । दशभिस्त्वकृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः ॥
रथेनाऽनेन देवैश्चपितृभिश्चैवगच्छति । सोमोह्यम्बुमयैर्गोभिःशुक्लैःशुक्लगभस्तिमान्
क्रमते शुक्लपक्षादौ भास्करात्परमास्थितः । आपूर्य्यते परस्याऽन्तःसततंदिवसक्रमात्
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यशः । पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेन भास्करः
आपूरयन् सुषुम्नेनभागंभागमनुक्रमात् । इत्येषासूर्य्यवीर्य्येणचन्द्रस्याऽऽप्यायितातनुः
स पौर्णमास्यां दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः । एवमाप्यायितंसोमं शुक्लपक्षेदिनक्रमात्
ततो द्वितीयाप्रभृतिबहुलस्य चतुर्दशीम् । पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधुसौम्यं सुधामृतम्
सम्भृतं त्वर्धमासेन अमृतं सूर्य्यतेजसा । पानार्थममृतं सोमं पौर्णमास्यामुपासते ॥

एकरात्रिं सुराः सर्वे पितृभिस्त्वृषिभिः सह ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥ १० ॥

प्रक्षीयन्तेपरस्याऽन्तः पीयमानाःकलाःक्रमात् । त्रयस्त्रिंशच्छताश्चैवत्रयस्त्रिंशत्तथैवच
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि देवाःसोमं पिबन्ति वै । एवं दिनक्रमात्पीते विबुधैस्तुनिशाकरे

पीत्वाऽर्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ॥ १३ ॥

ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके। अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते॥
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य कला तु या। निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्
मासतृप्तिमवाप्याग्र्यां पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्। पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्यां कला तु या
यावत्तु क्षीयते तस्य भागः पञ्चदशस्तु सः। अमावास्यां ततस्तस्या अन्तरा पूर्यते पुनः
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ। एवं सूर्यनिमित्तैषा पक्षवृद्धिर्निशाकरे
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सोमवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रे ग्रहचारप्रतिपादनम्

सूत उवाच

अष्टभिश्च हयैर्युक्तः सोमपुत्रस्य वै रथः। वारितेजोमयश्चाथ पिशङ्गैस्त्वेव शोभनैः॥
दशभिश्चाकृशैरश्वैर्नानावर्णै रथः स्मृत। शुक्रस्यक्ष्मामयैर्युक्तो दैत्याचार्यस्य धीमतः
अष्टाश्वश्चाथ भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः।
जीवस्य हैमश्चाष्टाश्वो मन्दस्याऽऽयसनिर्मितः ॥ ३ ॥
रथ आपोमयैरश्वैर्दशभिस्तु सितेतरैः। स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा चाष्टहयः स्मृतः
सर्वे ध्रुवनिबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः। एतेन भ्राम्यमाणाश्च यथायोगं व्रजन्ति वै॥
यावन्त्यश्चैव ताराश्च तावन्तश्चैव रश्मयः।
सर्वे ध्रुवनिबद्धाश्च भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ॥ ६ ॥
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्माद्वहति ज्योतींषि प्रवहस्तेन सः स्मृतः
नक्षत्रसूर्याश्च तथा ग्रहताराणै सह। उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूताः श्रिता दिवि
ध्रुवेणाऽधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्। प्रयान्ति चेश्वरं द्रष्टुं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः। त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः

द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति ॥ ११ ॥
उद्धृत्य पृथिवीं छाया निर्मिता मण्डलाकृतिम् ।
स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम् ॥ १२ ॥

चन्द्रस्यषोडशोभागोभार्गवस्यविधीयते। विष्कम्भान्मण्डलाच्चैवयोजनाग्रप्रमाणतः भार्गवात् पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः । पादहीनो वक्रसौरीतथायामप्रमाणतः विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः । तारा नक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानिवै बुधेनतानितुल्यानिविस्तारान्मण्डलादपि। प्रायशश्चन्द्रयोगीनिविद्याद्दृक्षाणितत्ववित् तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्। शतानि पञ्चचत्वारित्रीणि द्वे चैव योजने सर्वोपरि निकृष्टानि तारकामण्डलानि तु। योजनद्वयमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वनविद्यते उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः । सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेयामन्दविचारिणः तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्येमहाग्रहाः । सूर्यः सोमोबुधश्चैवभार्गवश्चैवशीघ्रगाः

तावन्त्यस्तारकाः कोट्यो यावन्त्यृक्षाणि सर्वशः ।
ध्रुवात्तु नियमाच्चैषामृक्षमार्गे व्यवस्थितिः ॥ २१ ॥

सप्ताश्वस्यैव सूर्यस्य नाचोच्चत्वमनुक्रमात्। उत्तरायणमार्गस्थो यदापर्वसु चन्द्रमाः उच्चत्वाद्दृश्यतेशीघ्रनातिव्यक्तैर्गभस्तिभिः । तदादक्षिणमार्गस्थोनीचावीथीमुपाश्रितः भूमिरेखावृतः सूर्यः पौर्णिमावास्ययोस्तदा। दद्दृशे च यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः । दद्दृशे दक्षिणे मार्गेनियमाद् दृश्यतेन च ज्योतिषां गतियोगेन सूर्यस्य तमसावृतः । समानकालास्तमयौ विषुवत्सुसमोदयौ उत्तरासुचवीथीषुव्यन्तरास्तमनोदयौ। पौर्णिमावास्ययोर्ज्ञेयौज्योतिश्चक्रानुवर्त्तिनौ दक्षिणायनमार्गस्थोयदाचरतिरश्मिमान्। ग्रहाणाञ्चैवसर्वेषांसूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वंचरतेशशी। नक्षत्रमण्डलंकृत्स्नंसोमादूर्ध्वंप्रसर्पति नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वन्तु भार्गवः । वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वंवक्रादूर्ध्वंबृहस्पतिः

तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्मात् सप्तर्षिमण्डलम् ।

ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुवस्योर्ध्वं व्यवस्थितिः ॥ ३१ ॥

तं विष्णुलोकं परमं ज्ञात्वा मुच्येत किल्बिषात् । द्विगुणेषुसहस्रेषुयोजनानांशतेषु च ग्रहनक्षत्रतारासु उपरिष्टाद् यथाक्रमम् । ग्रहाश्च चन्द्रसूर्य्यौ च युतौ दिव्येन तेजसा नित्यमृक्षेषुयुज्यन्तेगच्छन्तोऽहर्निशंक्रमात् । ग्रहनक्षत्रसूर्य्यास्तेनीचोच्चमृजुसंस्थिताः समागमेच भेदेच पश्यन्तियुगपत् प्रजाः । ऋतवःषट् स्मृताःसर्वेसमागच्छन्तिपञ्चधा परस्परास्थिता ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् । असङ्करेण विज्ञेयस्तेषांयोगस्तु वै बुधैः एवं संक्षिप्य कथितंग्रहाणां गमनं द्विजाः !। भास्करप्रमुखानाञ्चयथादृष्टंयथाश्रुतम् ग्रहाधिपत्ये भगवान् ब्रह्मणा पद्मयोनिना । अभिषिक्तः सहस्रांशुःरुद्रेण तु यथा गुहः

तस्माद् ग्रहार्चना कार्य्या अग्नौ चोद्यं यथाविधि ।
आदित्यग्रहपीडायां सद्भिः कार्य्यार्थसिद्धये ॥ ३६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ज्योतिश्चक्रे ग्रहचारकथनं नाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्याद्यभिषेकवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

अभ्यषिञ्चत्कथंब्रह्मा चाऽऽधिपत्ये प्रजापतिः ।
देवदैत्यमुखान् सर्वान् सर्वात्मा वद साम्प्रतम् ॥ १ ॥

सूत उवाच

ग्रहाधिपत्ये भगवानभ्यषिञ्चद्दिवाकरम् । ऋक्षाणामोषधीनाञ्च सोमं ब्रह्मा प्रजापतिः अपाञ्च वरुणं देवं धनानां यक्षपुङ्गवम् । आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनांपावकंतथा प्रजापतीनां दक्षञ्च मरुतां शक्रमेव च । दैत्यानां दानवानाञ्च प्रह्लादं दैत्यपुङ्गवम् ॥

धर्मं पितृणामधिपं निर्ऋतिं पिशिताशिनाम् ।

रुद्रं पशूनां भूतानां नन्दिनां गणनायकम् ॥ ५ ॥

वीराणां वीरभद्रञ्च पिशाचानांभयङ्करम् । मातृणाञ्चैवचामुण्डांसर्वदेवनमस्कृताम्
रुद्राणां देवदेवेशं नीललोहितमीश्वरम् । विघ्नानां व्योमजं देवं गजास्यन्तुविनायकम्
स्त्रीणांदेवीमुमांदेवींवचसांचसरस्वतीम् । विष्णुंमायाविनाञ्चैवस्वात्मानंजगतांतथा
हिमवन्तं गिरीणान्तुनदीनाञ्चैवजाह्नवीम् । समुद्राणाञ्चसर्वेषामधिपंपयसांनिधिम्

वृक्षाणाञ्चैव चाश्वत्थं प्लक्षञ्च प्रपितामहः ॥ १० ॥

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथञ्चकार ।

नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्य्यं सर्पाधिपं तक्षकमुग्रवीर्य्यम् ॥ ११ ॥

दिग्वारणानामधिपञ्चकार गजेन्द्रमैरावतमुग्रवीर्य्यम् ।

सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसञ्चकार ॥ १२ ॥

सिंहं मृगाणां वृषभं गवाञ्च मृगाधिपानां शरभञ्चकार ।

सेनाधिपानां गुहमप्रमेयं श्रुतिस्मृतीनां लकुलीशमीशम् ॥ १३ ॥

अभ्यषिञ्चत् सुधर्माणं तथा शङ्खपदं दिशाम् । केतुमन्तं क्रमेणैव हेमरोमाणमेव च ॥
पृथिव्यां पृथुमीशानं सर्वेषान्तु महेश्वरम् । चतुर्मूर्त्तिषु सर्वज्ञं शङ्करं वृषभध्वजम् ॥
प्रसादाद्भगवांश्छम्भोश्चाभ्यषिञ्चद्यथाक्रमम् । पुराऽभ्यषिच्यपुण्यात्माराराजभुवनेश्वरः
एतद्वो विस्तरेणैवकथितंमुनिपुङ्गवाः ! । अभिषिक्तास्ततस्त्वेतेविशिष्टा विश्वयोनिना

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सूर्य्याद्यभिषेककथनं नामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

सूर्यरश्मिस्वरूपकथनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्तं संशयान्विताः । पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते रोमहर्षणम्

ऋषय ऊचुः

यदेतदुक्तं भवता सूतेह वदताम्वर ! । एतद्विस्तरतो ब्रूहि ज्योतिषाञ्च विनिर्णयम् ॥२
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः । उवाच परमं वाक्यं तेषां संशयनिर्णये
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं शान्तबुद्धिभिः । एतद्वोऽहंप्रवक्ष्यामिसूर्य्यचन्द्रमसोर्गतिम्
यथा देवगृहाणीह सूर्य्यचन्द्रादयो ग्रहाः । अतः परन्तु त्रिविधमग्नेर्वक्ष्ये समुद्भवम् ॥

दिव्यस्य भौतिकस्याऽग्नेरथोऽग्नेः पार्थिवस्य च ।
व्युष्टायान्तु रजन्याञ्च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ६ ॥

अव्याकृतमिदंत्वासीन्नैशेनतमसावृतम् । चतुर्भागावशिष्टेऽस्मिन् लोकेनष्टेविशेषतः
स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकसर्वार्थसाधकः । खद्योतवत् स व्यचरदाविर्भावविकीर्षया

सोऽग्निं सृष्ट्वाऽथ लोकादौ पृथिवीजलसंश्रितः ।
संहृत्य तत्प्रकाशार्थं त्रिधा व्यभजदीश्वरः ॥ ६ ॥

पवनोयस्तुलोकेऽस्मिन्पार्थिवोवह्निरुच्यते । यश्चाऽसौतपतेसूर्य्येशुचिरग्निस्तुसःस्मृतः
वैद्युतोऽब्जस्तुविज्ञेयस्तेषांवक्ष्येतुलक्षणम् । वैद्युतो जाठरःसौरोवारिगर्भास्त्रयोऽग्नयः

तस्मादापः पिबन् सूर्य्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ विभुः ।
जले चाब्जः समाविष्टो नाद्भिरग्निः प्रशाम्यति ॥ १२ ॥
मानवानाञ्च कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः ।
अर्चिष्मान् पवनः सोऽग्निर्निष्प्रभो जाठरः स्मृतः ॥ १३ ॥

यश्चाऽयं मण्डलीशुक्लीनिरूष्मासम्प्रजायते । प्रभा सौरी तु पादेनह्यस्तंयातेदिवाकरे
अग्निमाविशतेरात्रौतस्माद्दूरात्प्रकाशते । उद्यन्तञ्चपुनःसूर्य्यमौष्ण्यमग्नेःसमाविशेत्
पादेनपार्थिवस्याऽग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ । प्रकाशोष्णस्वरूपेचसौराग्नेयेतुतेजसी
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते परस्परम् । उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यग्निश्च दक्षिणे ॥
उत्तिष्ठति पुनः सूर्य्यःपुनर्वैप्रविशत्यपः । तस्मात्ताम्राभवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्
अस्तं याति पुनःसूर्य्योअहर्वैप्रविशत्यपः । तस्माक्तंपुनः शुक्लाआपोदृश्यन्तिभास्वराः
एतेन कर्मयोगेन भूम्यर्ध्ये दक्षिणोत्तरे । उदयास्तमने नित्यमहोरात्रं विशत्यपः॥ २०॥

यश्चाऽसौ तपते सूर्यः पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥ २१ ॥

सहस्रपादसौ वह्निवृत्तकुम्भनिभः स्मृतः । आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः
नादेयीश्चैवसामुद्री कूपाश्चैवतथाघनाः । स्थावराजङ्गमाश्चैववापीकुल्यादिका अपः
तस्य रश्मिसहस्रं तच्छीतवर्षोष्णनिःस्रवम् । तासाञ्चतुःशतानाड्योवर्षन्ते चित्रमूर्तयः
भजनाश्चैव माल्याश्च केतना पतनास्तथा । अमृतानामतः सर्वारश्मयोवृष्टिसर्जनाः

हिमोद्वहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
रेशा मेघाश्च वात्स्याश्च ह्रादिन्यो हिमसर्जनाः ॥ २६ ॥

चन्द्रभानामतः सर्वाः पीताभाश्चगभस्तयः । शुक्राश्चककुभाश्चैवगावोविश्वभृतस्तथा
शुक्रास्तानामतः सर्वास्त्रिशतीर्घर्मसर्जनाः । सोमो बिभर्ति ताभिस्तुमनुष्यपितृदेवताः
मनुष्यानोषधेनेह स्वधया च पितॄनपि । अमृतेन सुरान्सर्वांस्तिसृभिस्तर्पयत्यसौ ॥
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शतैः शतपतत्त्रिभिः । वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिः सम्प्रवर्षति॥
हेमन्तेशिशिरेचैवहिममुत्सृजते त्रिभिः । इन्द्रोधाताभगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा
अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टावपर्जन्योविष्णुरेवच । वरुणो माघमासे तु सूर्य्यः एवतु फाल्गुने
चैत्रे मासि भवेदंशुर्धाता वैशाखतापनः । ज्यैष्ठे मासि भवेदिन्द्रआषाढेचार्य्यमारविः
विवस्वान्श्रावणेमासिप्रौष्ठपादेभगः स्मृतः । पर्जन्योऽश्वयुजेमासित्वष्टावैकार्त्तिकेरविः
मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः । पञ्चरश्मिसहस्राणिवरुणस्याऽर्ककर्मणि

श्रीमद्धिमनगजामानससरोजविहारकर्त्रे नमः ।
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंऽशुः सप्तभिस्तथा ।
धाताऽष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः ॥ ३६ ॥

विवस्वान्दशभिर्यातियात्येकादशभिर्भगः ।सप्तभिस्तपतेमित्रस्त्वष्टाचवाऽष्टभिः स्मृतः
अर्यमा दशभिर्यातिपर्जन्योनवभिस्तथा । षड्भीरश्मिसहस्रैस्तुविष्णुस्तपतिमेदिनीम्
वसन्ते कपिलःसूर्य्यो ग्रीष्मेकाञ्चनसप्रभः । श्वेतो वर्षासुवर्णेन पाण्डुः शरदिभास्करः
हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरेलोहितोरविः । इतिवर्णाः समाख्याता मयासूर्य्यसमुद्भवाः॥

ओषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितृष्वपि । सूर्य्योऽमरेष्वप्यमृतं त्रयंत्रिषुनियच्छति
एवंरश्मिसहस्रंतत्सौरंलोकार्थसाधकम् । भिद्यन्तेलोकमासाद्यजलशीतोष्णनिःस्रवम्
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्करं सूर्य्यसञ्ज्ञितम् । नक्षत्रग्रहसोमानांप्रतिष्ठा योनिरेवच
चन्द्रऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाःसूर्य्यसम्भवाः । नक्षत्राधिपतिःसोमोनयनंवाममीशितुः ॥
नयनञ्चैवमीशस्य दक्षिणं भास्करः स्वयम् । तेषां जनानांलोकेऽस्मिन्नयनंनयतेयतः
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सूर्य्यरश्मिस्वरूपकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

सूर्यप्रभाववर्णनम्

सूत उवाच

शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामचारिणः । पठ्यतेचाग्निरादित्यउदकंचन्द्रमाःस्मृतः
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वक्ष्यमाणांनिबोधत । सुरसेनापतिःस्कन्दःपठ्यतेऽङ्गारकोग्रहः
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदोजनाः । सर्वलोकप्रभुःसाक्षाद्यमोलोकप्रभुःस्वयम्
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठा ! मन्दगामी शनैश्चरः । देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ
प्रजापतिसुतावुक्तौ ततः शुक्रबृहस्पती । आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नाऽत्र संशयः
भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नंसदेवासुरमानुषम् । रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणांविप्रेन्द्राग्निदिवौकसाम्
द्युतिर्द्युतिमतांकृत्स्नंयत्तेजःसार्वलौकिकम् । सर्वात्मासर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः
सूर्य्य एव त्रिलोकेशो मूलंपरमदैवतम् । ततः सञ्जायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते ॥ ८ ॥

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।
अविज्ञेयो ग्रहो विप्रा ! दीप्तिमान्सुप्रभो रविः ॥ ९ ॥

अत्र गच्छन्ति निधनं जायन्तेचपुनःपुनः । क्षणामुहूर्त्तादिवसानिशाःपक्षाश्चकृत्स्नशः
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च । तदादित्यादृतेह्येषांकालसंख्यानविद्यते

कालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः । ऋतूनाञ्च विभागश्च पुष्पंमूलंफलंकुतः
कुतःसस्यविनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणोऽपि च । अभावोव्यवहाराणांजन्तूनांदिविचेहच
जगत्प्रतापनमृते भास्करं रुद्ररूपिणम् । स एष कालश्चाग्निश्चद्वादशात्माप्रजापतिः
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यंसचराचरम् । सएषतेजसां राशिःसमस्तःसार्वलौकिकः
उत्तमं मार्गमास्थाय रात्र्यहोभिरिदं जगत् । पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः॥
यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्येऽवलम्बितः । पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयतेसमम्
तद्वत् सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्प्रभुः । सूर्यो गोभिर्जगत्सर्वमादीपयति सर्वतः ॥
रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम् । तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्तरश्मयो ग्रहयोनयः ॥
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च । विश्वव्यचाः पुनश्चाऽऽद्यः सन्नद्धश्च ततःपरः

सर्वावसुः पुनश्चाऽन्यः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः ।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु दक्षिणां राशिमैधयत् ॥ २१ ॥

न्यगूर्ध्वाधःप्रचारोऽस्यसुषुम्नःपरिकीर्तितः । हरिकेशःपुरस्ताद्योऋक्षयोनिःप्रकीर्त्यते
दक्षिणेविश्वकर्मावरश्मिर्वर्धयतेबुधम् । विश्वव्यचास्तुयःपश्चाच्छुक्रयोनिःस्मृतोबुधैः
सन्नद्धश्च तु यो रश्मिःसयोनिर्लोहितस्य तु । षष्ठःसर्वावसूरश्मिःसयोनिस्तुबृहस्पतेः
शनैश्चरं पुनश्चाऽपि रश्मिराप्यायते स्वराट् । एवं सूर्यप्रभावेण नक्षत्रग्रहतारकाः ॥
दृश्यन्ते दिवि ताःसर्वाःविश्वञ्चेदंपुनर्जगत् । नक्षीयन्तेयतस्तानितस्मान्नक्षत्रतास्मृता

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सूर्यप्रभावचर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

ग्रहसंस्थावर्णनम्

सूत उवाच

क्षेत्राण्येतानिसर्वाणिआतपन्तिगभस्तिभिः । तेषांक्षेत्राण्यथादत्तेसूर्योनक्षत्रतारकाः
चीर्णेन सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयाः । तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैवतारकाः

दिव्यानांपार्थिवानाञ्चनैशानाञ्चैवसर्वशः । आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसांतमसामपि
सवने स्पन्दनेऽर्थे च धातुरेष विभाव्यते । सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनाऽसौसविताप्मतः
बहुलश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते । शुक्लत्वे चाऽमृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते
सूर्य्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे । जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे
घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् । घनतेजोमयं शुक्लंमण्डलंभास्करस्यतु
वसन्ति सर्वदेवाश्च स्थानान्येतानि सर्वशः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्य्यग्रहाश्रयाः॥
तेनग्रहागृहाण्येवतदाख्यास्तेभवन्ति च । सौरंसूर्य्योविशत् स्थानंसौम्यंसोमस्तथैव च

शौक्रं शुक्रो विशत् स्थानं षोडशार्च्चिः प्रतापवान् ।
बृहद् बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लोहितम् ॥ १० ॥

शनैश्चरं तथास्थानंदेवश्चापिशनैश्चरः । बौधंबुधस्तुस्वर्भानुःस्वर्भानुस्थानमाश्रितः

नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्ति च ।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥ १२ ॥

कल्पादौसम्प्रवृत्तानिनिर्मितानिस्वयम्भुवा । स्थानान्येतानितिष्ठन्तियावदाभूतसंप्लवम्
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै । अभिमानिनोऽवतिष्ठन्तेदेवस्थानं पुनःपुनः
अतीतैस्तु सहैतानि भाव्याभाव्यैःसुरैःसह । वर्त्तन्तेवर्त्तमानैश्चस्थानिभिस्तैःसुरैःसह
अस्मिन् मन्वन्तरेचैवग्रहावैमानिकाःस्मृताः । विवस्वानदितेःपुत्रःसूर्य्योवैवस्वतेऽन्तरे
द्युतिमान् ऋषिपुत्रस्तुसोमोदेवोवसुःस्मृतः । शुक्रोदेवस्तुविज्ञेयोभार्गवोऽसुरयाजकः
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्य्योऽङ्गिरासुतः । बुधो मनोहरश्चैवऋषिपुत्रस्तुसस्मृतः
शनैश्चरो विरूपस्तुसञ्ज्ञापुत्रोविवस्वतः । अग्निर्विकेश्यांजज्ञेतु युवाऽसौलोहितार्चिषः

नक्षत्र ऋक्षनामिन्यो दाक्षायण्यस्तु ताः स्मृताः ।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ॥ २० ॥
सोमर्क्षग्रहसूर्य्येषु कीर्त्तितास्त्वभिमानिनः ।
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ॥ २१ ॥

सौरमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः । हिमांशोस्तु स्मृतं स्थानमम्मयं शुक्लमेव च

आप्यंश्यामंमनोज्ञञ्चबुधरश्मिगृहंस्मृतम् । शुक्लस्याऽप्यम्मयंशुक्लंपदंषोडशरश्मिवत्
नवरश्मि तु भौमस्य लोहितं स्थानमुत्तमम् । हरिद्राभं बृहच्चाऽपिषोडशार्चिर्बृहस्पतेः
अष्टरश्मिगृहञ्चाऽपि प्रोक्तं कृष्णंशनैश्चरे । स्वर्भानोस्तामसं स्थानंभूतसन्तापनालयम्

विज्ञेयास्तारकाःसर्वास्त्वृषयस्त्वेकरश्मयः ।
आश्रयाःपुण्यकीर्त्तीनांशुक्लाश्चाऽपिस्ववर्णतः ॥ २६ ॥
घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादावेव निर्मिताः ।
आदित्यरश्मिसंयोगात् सम्प्रकाशात्मिकाः स्मृताः ॥ २७ ॥

नवयोजनसाहस्रोविष्कम्भःसवितु स्मृतः । त्रिगुणस्तस्यविस्तारोमण्डलस्यप्रमाणतः

द्विगुणः सूर्य्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृत ।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति ॥ २८ ॥
उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितां मण्डलाकृतिम् ।
स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम् ॥ ३० ॥

आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य समं गच्छति पर्वसु । आदित्यमेति सोमाच्चपुनःसौरेषुपर्वसु
स्वर्भानुंनुदतेयस्मात्तस्मात्स्वर्भानुरुच्यते । चन्द्रस्यषोडशोभागोभार्गवस्यविधीयते
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैवयोजनाग्रात्प्रमाणतः । भार्गवात्पादहीनस्तुविज्ञेयोवैबृहस्पतिः
बृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरीउभौस्मृतौ । विस्तारान्मण्डलाच्चैवपादहीनस्तयोर्बुधः
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै । बुधेन तानितुल्यानिविस्तारान्मण्डलाच्चवै
प्रायशश्चन्द्रयोगीनि विद्यादृक्षाणि तत्ववित् । तारानक्षत्ररूपाणिहीनानि तु परस्परम्
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने । सर्वोपरिनिकृष्टानितारकामण्डलानितु
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते । उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहास्ते दूरसर्पिणः
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेयामन्दविचारिणः । पूर्वमेवसमाख्यातागतिस्तेषांयथाक्रमम्
एतेष्वेव ग्रहाःसर्वे नक्षत्रेषुसमुत्थिताः । विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्य्यो वै मुनिसत्तमाः
विशाखासु समुत्पन्नोग्रहाणांप्रथमोग्रहः । त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तुसोमोदेवोवसुस्तुसः
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासुनिशाकरः । षोडशार्चिर्भृगोःपुत्रःशुक्रःसूर्य्यादनन्तरम्

ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्येक्षेत्रे समुत्थितः । ग्रहश्चाऽऽङ्गिरसःपुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः पूर्वाख्यासु जगद्गुरुः । नवार्चिर्लोहिताङ्गश्च प्रजापतिसुतोग्रहः
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्नइतिस्मृतः । रेवतीष्वेवसप्तार्चिःस्थानेसौरिःशनैश्चरः ॥
सौम्यो बुधो धनिष्ठासु पञ्चार्चिरुदितो ग्रहः । तमोमयो मृत्युसुतःप्रजाक्षयकरःशिखी
आश्लेषासु समुत्पन्नः सर्वहारी महाग्रहः । तथा स्वनामधेयेषुदाक्षायण्यःसमुत्थिताः
तमोवीर्य्यमयो राहुः प्रकृत्या कृष्णमण्डलः । भरणीषु समुत्पन्नो ग्रहश्चन्द्रार्कमर्दनः
एते ताराग्रहाश्चापि बोद्धव्या भार्गवादयः । जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतांयतः
मुच्यते तेन दोषेण ततस्तद्ग्रहभक्तितः । सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते॥५०॥
ताराग्रहाणां शुक्रस्तुकेतूनाञ्चापिधूमवान् । ध्रुवः किलग्रहाणान्तुविभक्तानांचतुर्दिशम्
नक्षत्राणां श्रविष्ठास्यादयनानांतथोत्तरम् । वर्षाणाञ्चैवपञ्चानामाद्यःसम्वत्सरःस्मृतः
ऋतूनां शिशिरश्चाऽपि मासानां माघउच्यते । पक्षाणांशुक्लपक्षस्तुतिथीनांप्रतिपत्तथा
अहोरात्रविभागानामहश्चादिः प्रकीर्त्तितम् । मुहूर्त्तानां तथैवादिमुहूर्त्तो रुद्रदैवतः ॥

क्षणश्चाऽपि निमेषादिः कालः कालविदाम्वराः ! ।
श्रवणान्तं धनिष्ठादि युगं स्यात् पञ्चवार्षिकम् ॥ ५५ ॥

भानोर्गतिविशेषेणचक्रवत् परिवर्त्तते । दिवाकरःस्मृतस्तस्मात् कालकृद्विभुरीश्वरः ॥
चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः । तस्याऽपि भगवान् रुद्रःसाक्षाद्देवः प्रवर्त्तकः
इत्येष ज्योतिषामेवं सन्निवेशोऽर्थनिश्चयः । लोकसंव्यवहारार्थं महादेवेन निर्मितः ॥
बुद्धिपूर्वंभगवताकल्पादौसम्प्रवर्त्तितः । स आश्रयोऽभिमानीचसर्वस्यज्योतिरात्मकः
एकरूपप्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः । नैष शक्यः प्रसङ्ख्यातुं याथातथ्येनकेनचित्
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा । आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ॥
परीक्ष्यनिपुणंबुद्ध्याश्रद्धातव्यंविपश्चिता । चक्षुःशास्त्रंजलंलेख्यंगणितंमुनिसत्तमाः!

पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्मानविनिर्णये ॥ ६३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे ग्रहसंख्यावर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

भुवनकोशे ध्रुवसंस्थानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं विष्णोःप्रसादाद्वैध्रुवो बुद्धिमताम्वरः । मेढीभूतोग्रहाणां वै वक्तुमर्हसिसाम्प्रतम्

सूत उवाच

एतमर्थं मया पृष्टो नानाशास्त्रविशारदः । मार्कण्डेयः पुरा प्राह मह्यं शुश्रूषवे द्विजाः !

मार्कण्डेय उवाच

सार्वभौमो महातेजाः सर्वशस्त्रभृताम्वरः । उत्तानपादो राजा वै पालयामासमेदिनीम्
तस्यभार्य्याद्वयमभूत्सुनीतिःसुरुचिस्तथा । अग्रजायामभूत् पुत्रःसुनात्यान्तुमहायशाः
ध्रुवो नाम महाप्राज्ञः कुलदीपोमहामतिः । कदाचित् सप्तवर्षोऽपिपितुरङ्कमुपाविशत्
सुरुचिस्तं विनिर्धूय स्वपुत्रं प्रीतिमानसा । न्यवेशयत्तं विप्रेन्द्रा ! ह्यङ्करूपेण मानिता
अलब्ध्वा स पितुर्धीमानङ्कं दुःखितमानसः । मातुः समीपमागम्य रुरोद स पुनःपुनः
रुदन्तं पुत्रमाहेदं माता शोकपरिप्लुता । सुरुचिर्दयिता भर्तुः तस्याःपुत्रोऽपितादृशः

मम त्वं मन्दभाग्याया जातः पुत्रोऽप्यभाग्यवान् ।
कि शोचसि किमर्थं त्वं रोदमानः पुनः पुनः ॥ १ ॥

सन्तप्तहृदयोभूत्वाममशोकंकरिष्यसि । स्वस्थस्थानंध्रुवंपुत्र! स्वशक्त्यात्वंसमाप्नुयाः
इत्युक्तः स तु मात्रा वै निर्जगामतदा वनम् । विश्वामित्रंततोदृष्ट्वाप्रणिपत्ययथाविधि
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा भगवन्! वक्तुमर्हसि । सर्वेषामुपरिस्थानं केनप्राप्स्यामिसत्तम
पितुरङ्के समासीनंमातामां सुरुचिर्मुने ! । व्यधूनयत् स तां राजापितानोवाचकिञ्चन
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंस्त्रस्तोऽहंमातरंगतः । सुनीतिराह मेमातामाकृथाःशोकमुत्तमम्
स्वकर्मणा परं स्थानं प्राप्तुमर्हसि पुत्रक ! । तस्याहि वचनं श्रुत्वा स्थानंतव महामुने
प्राप्तो वनमिदं ब्रह्मन्नद्य त्वांदृष्टवान्प्रभो !। तव प्रसादात्प्राप्स्येऽहं स्थानमद्भुतमुत्तमम्

इत्युक्तः स मुनिःश्रीमान्प्रहसन्निदमब्रवीत् । राजपुत्र!शृणुष्वेदं स्थानमुत्तममाप्स्यसि
आराध्य जगतामीशं केशवं क्लेशनाशनम् । दक्षिणाङ्गभवं शम्भोर्महादेवस्य धीमतः
जप नित्यं महाप्राज्ञ! सर्वपापविनाशनम् । इदं परमं शुद्धं पवित्रममलं परम् ॥१६॥
ब्रूहि मन्त्रमिमं दिव्यं प्रणवेन समन्वितम् । नमोऽस्तु वासुदेवाय इत्येवं नियतेन्द्रियः
ध्यायन् सनातनं विष्णुं जपहोमपरायणः । इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं विश्वामित्रंमहायशाः

प्राङ्मुखो नियतो भूत्वा जजाप प्रीतिमानसः ।
शाकमूलफलाहारः सम्वत्सरमतन्द्रितः ॥ २२ ॥

जजाप मन्त्रमनिशमजस्रं स पुनः पुनः । वेताला राक्षसा घोराःसिंहाद्याश्चमहामृगाः
तमभ्ययुर्महात्मानं बुद्धिमोहाय भीषणाः । जपन् स वासुदेवेति न किञ्चित्प्रतिपद्यत
सुनीतिरस्य या माता तस्या रूपेणसंवृता । पिशाचीसमनुप्राप्ता रुरोद भृशदुःखिता
मम त्वमेकपुत्रोऽसि किमर्थं क्लिश्यते भवान् । मामनाथामपाहायतपश्चास्थितवानसि
एवमादीनि वाक्यानि भाषमाणां महातपाः । अनिरीक्ष्यैव हृष्टात्मा हरेर्नामजजापसः
ततः प्रशेमुः सर्वत्र विघ्नरूपाणि तत्र वै । ततो गरुडमारुह्य कालमेघसमद्युतिः ॥२८॥
सर्वदेवैः परिवृतः स्तूयमानो महर्षिभिः । आययौ भगवान्विष्णुर्ध्रुवान्तिकमरातिहा॥

समागतं विलोक्याऽथ कोऽसावित्येव चिन्तयत् ।
पिबन्निव हृषीकेशं नयनाभ्यां जगत्पतिम् ॥ ३० ॥

जपन् सवासुदेवेतिध्रुवस्तस्थौमहाद्युतिः । शङ्खप्रान्तेनगोविन्दःपस्पर्शाऽऽस्यंहितस्यवै
ततः स परमं ज्ञानमवाप्य पुरुषोत्तमम् । तुष्टाव प्राञ्जलिर्भूत्वा सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥
प्रसीददेवदेवेश!शङ्खचक्रगदाधर !। लोकात्मन् ! वेदगुह्यात्मन्! त्वांप्रपन्नोऽस्मिकेशव!
न विदुस्त्वां महात्मानं सनकाद्या महर्षयः । तत्कथं त्वामहं विद्यां नमस्तेभुवनेश्वर!
तमाह प्रहसन् विष्णुरेहिवत्स! ध्रुवोभवान् । स्थानंध्रुवंसमासाद्यज्योतिषामग्रभुग्भव

मात्रा त्वं सहितस्तत्र ज्योतिषां स्थानमाप्नुहि ।
मत्स्थानमेतत् परमं ध्रुवं नित्यं सुशोभनम् ॥ ३६ ॥

तपसाराध्य देवेशं पुरा लब्धं हि शङ्करात् । वासुदेवेति यो नित्यं प्रणवेनसमन्वितम्

नमस्कारसमायुक्तं भगवच्छब्दसंयुतम् । जपेदेवं हि यो विद्वान् ध्रुवं स्थानं प्रपद्यते
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । मात्रा सहध्रुवंसर्वेतस्मिन्स्थानेन्यवेशयन्
विष्णोराज्ञांपुरस्कृत्यज्योतिषांस्थानमात्मवान् । एवंध्रुवोमहातेजा द्वादशाक्षरविद्यया
अवाप महतीं सिद्धिमेतत्ते कथितं मया ॥ ४१ ॥

सूत उवाच

तस्माद्यो वासुदेवाय प्रणामं कुरुते नरः । सयातिध्रुवसालोक्यंध्रुवत्वंतस्य तत्तथा
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे भुवनकोशे ध्रुवसंस्थानवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

देवादिसृष्टिकथनम्

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं ब्रूहि सूताऽद्य यथाक्रममनुत्तमम् ॥

सूत उवाच

सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते । दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा ॥
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान् । न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ॥ ३॥
दक्षः पुत्रसहस्राणिपञ्चसूत्यामजीजनत् । तांस्तुदृष्ट्वामहाभागानसिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः
नारदः प्राह हर्यश्वान्दक्षपुत्रान्समागतान् । भुवः प्रमाणं सर्वन्तु ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च
ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वं मुनिसत्तमाः !। ते तु तद्वचनंश्रुत्वा प्रयाताःसर्वतोदिशम्
अद्याऽपि न निवर्त्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः । हर्यश्वेषु च नष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः॥
सूत्यामेव च पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः । शबला नाम ते विप्राः!समेताः सृष्टिहेतवः
नारदोऽनुगतान्प्राह पुनस्तान् सूर्य्यवर्चसः । भुवः प्रमाणंसर्वन्तु ज्ञात्वाभ्रातॄन्पुनःपुनः
आगत्य वाऽथ सृष्टिं वै करिष्यथ विशेषतः ।

तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृगतिं तथा ॥ १० ॥

ततस्तेष्वपि नष्टेषु षष्टिकन्याः प्रजापतिः । वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तदा प्रादात् स दशकं धर्मे कश्यपाय त्रयोदश । विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते । द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानिविस्तरात् शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तारमादितः । मरुत्वती वसूर्यामिर्लम्बा भानुररुन्धती

सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।

धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्वदामि वः ॥ १५ ॥

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्यासाध्यानजीजनत् ।

मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ १६ ॥

भानोऽस्तुभानवःप्रोक्तामुहूर्त्तायामुहूर्त्तकाः।लम्बायाघोषनामानोनागवीथीस्तुयामिजः सङ्कल्पायास्तुसङ्कल्पोवसुसर्गंवदामिवः । ज्योतिष्मन्तस्तुयेदेवाव्यापकाःसर्वतोदिशम् वसवस्ते समाख्याता सर्वभूतहितैषिणः । आपो ध्रुवश्च सोमश्चधरश्चैवानिलोऽनलः प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौप्रकीर्त्तिताः । अजैकपादहिर्बु(ब्र)ध्न्यो विरूपाक्षःसभैरवः हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः । सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चाऽपराजितः ॥ एते रुद्राः समाख्याता एकादशगणेश्वराः । कश्यपस्य प्रवक्ष्यामिपत्नीभ्यःपुत्रपौत्रकम् अदितिश्च दितिश्चैव अरिष्टा सुरसा मुनिः । सुरभिर्विनता ताम्रा तद्वत्क्रोधवशा इला कद्रूस्त्विषादनुस्तद्वत्तासां पुत्रान्वदामि वः । तुषिता नामयेदेवाश्चाक्षुषस्यान्तरेमनोः

वैवस्वतान्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ।

इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ॥ २५ ॥

विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेवच । एते सहस्रकिरणाआदित्याद्वादशस्मृताः दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादितिनः श्रुतम् । हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षं तथैव च दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम् । विप्रचित्तिःप्रधानोऽभूत्तेषांमध्येद्विजोत्तमाः

ताम्रा च जनयामास षट्कन्या द्विजपुङ्गवाः ! ।

शुकीं श्येनीञ्च भासीञ्च सुग्रीवीं गृध्रिकां शुचिम् ॥ २६ ॥

शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः । श्येनीश्येनांस्तथाभासीकुरङ्गांश्चव्यजीजनत्
गृध्री गृध्रान्कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् । हंससारसकारण्डप्लवांश्छुचिरजीजनत्
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान्सुग्रीवी चाऽप्यजीजनत् । विनता जनयामास गरुडञ्चाऽरुणंशुभा
सौदामिनीं तथा कन्यां सर्वलोकभयङ्करीम् । सुरसायाः सहस्रन्तुसर्पाणाममभवत्पुरा
कद्रूः सहस्रशिरसां सहस्रं प्राप सुव्रता । प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिरुत्तमाः
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः । धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥ ३५ ॥
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः । शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥ ३६ ॥
शङ्खलोमा च नहुषो वामनः फणितस्तथा । कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरितिस्मृतः
रक्षोगणं क्रोधवशा महामायं व्यजीजनत् । रुद्राणाञ्चगणंतद्वद् गोमहिष्यौ वराङ्गना
सुरभिर्जनयामास कश्यपादिति नः श्रुतम् । मुनिर्मुनीनाञ्च गणं गणमप्सरसां तथा॥
तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाऽजनयद् बहून् । तृणवृक्षलतागुल्ममिला सर्वमर्जाजनत् ॥

त्विषा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ।
एते तु काश्यपेयाश्च संक्षेपात् परिकीर्त्तिताः ॥ ४१ ॥

एतेषां पुत्रपौत्रादि वंशाश्च बहवः स्मृताः । एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना
प्रतिष्ठितासुसर्वासुचरासुस्थावरासुच । अभिषिच्याऽऽधिपत्येषुतेषांमुख्यान्प्रजापतिः
ततो मनुष्याधिपतिञ्चक्रेवैवस्वतं मनुम् । स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वंब्रह्मणायेऽभिषेचिताः
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । यथोपदेशमद्याऽपि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥
स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वे ब्रह्मणा येऽभिषेचिताः । तेह्येते चाऽभिषिच्यन्तेमनवश्चभवन्तिते
मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः । एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे ततः
अतीतानागताः सर्वे नृपामन्वतरे स्मृताः । एतानुत्पाद्यपुत्रांस्तुप्रजासन्तानकारणात्
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार स पुनस्तपः । पुत्रो गोत्रकरो मह्यंभवतादितिचिन्तयन्

तस्यैवं ध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्रह्मयोगात्सुतौ पश्चात्प्रादुर्भूतौ महौजसौ ॥ ५० ॥

वत्सरश्चाऽसितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ । वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः

रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया नैध्रुवस्य वदामि वः । च्यवनस्यतुकन्यायांसुमेधाः समपद्यत
नैध्रुवस्य तु सा पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् । असितस्यैकपर्णायांब्रह्मिष्ठःसमपद्यत

शाण्डिल्यानां वरः श्रीमान्देवलः सुमहातपाः ।

शाण्डिल्या नैध्रुवा रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः ॥ ५४ ॥

नवप्रकृतयो देवाः पुलस्त्यस्य वदामि वः । चतुर्युगे ह्यतिक्रान्ते मनोरेकादशे प्रभोः
अर्धावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे सम्प्रवर्तिते । मानवस्य नरिष्यन्तः पुत्रश्चासीद्दमः किल
दमस्य तस्य दायादस्तृणबिन्दुरिति स्मृत । त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह
तस्यकन्यात्विलविलारूपेणाऽप्रतिमाभवत् ।पुलस्त्यायसराजर्षिस्तांकन्यांप्रत्यपादयत्
ऋषिरैरविलो यस्यां विश्रवाः समपद्यत । तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः
बृहस्पतेःशुभाकन्या नाम्ना वै देववर्णिनी । पुष्पोत्कटाबलाकाच सुतेमाल्यवतःस्मृते
कैकसीमालिनःकन्यातासांवै शृणुत प्रजाः । ज्येष्ठंवैश्रवणं तस्मात्सुषुवे देववर्णिनी
कैकसी चाऽप्यजनयद्रावणंराक्षसाधिपम् । कुम्भकर्णंशूर्पणखांधीमन्तञ्चविभीषणम्
पुष्पोत्कटाह्यजनयत्पुत्रांस्तस्माद् द्विजोत्तमाः ! । महोदरंप्रहस्तञ्चमहापार्श्वंखरन्तथा
कुम्भीनसीं तथा कन्यां बलाया शृणुतप्रजाः । त्रिशिरादूषणश्चैवविद्युज्जिह्वश्चराक्षसः
कन्या वै मालिकाचापिबलाया प्रसवःस्मृतः । इत्येतेक्रूरकर्माणःपौलस्त्याराक्षसानव

विभीषणोऽतिशुद्धात्मा धर्मज्ञः परिकीर्तितः ।

पुलस्त्यस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्याघ्राश्च दंष्ट्रिणः ॥ ६६ ॥

भूताः पिशाचाःसर्पाश्चसूकराहस्तिनस्तथा । वानराःकिन्नराश्चैवयेचकिम्पुरुषास्तथा
अनपत्यःक्रतुस्तस्मिन्स्मृतोवैवस्वतेऽन्तरे । अत्रेःपत्न्योदशैवाऽऽसन्सुन्दर्यश्चपतिव्रताः
भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः । भद्राभद्रा च जलदा मन्दानन्दा तथैवच
बलाबला च विप्रेन्द्रा ! याच गोपाबला स्मृता । तथा तामरसाचैव वरक्रीडाचवैदश
आत्रेयवंशप्रभवास्तासांभर्ताप्रभाकरः । स्वर्भानुपिहितेसूर्येपतितेऽस्मिन्दिवोमहीम्
तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन्प्रभायेनप्रवर्त्तिता । स्वस्त्यस्तुहि तवेत्युक्तेपतन्निहदिवाकरः
ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य पपात न विभुर्दिवः । ततः प्रभाकरेत्युक्तः प्रभुरत्रिर्महर्षिभिः ॥ ७३॥

भद्रायां जनयामाससोमं पुत्रं यशस्विनम् । स तासु जनयामास पुनः पुत्रांस्तपोधनः
स्वस्त्यात्रेयाइतिख्याता ऋषयो वेदपारगाः । तेषांद्वौख्यातयशसौब्रह्मिष्ठौचमहौजसौ
दत्तो ह्यत्रिवरोज्येष्ठोदुर्वासास्तस्यचाऽनुजः । यवीयसीस्वसातेषाममलाब्रह्मवादिनी
तस्य गोत्रद्वये जाताश्चत्वारः प्रथिताभुवि । श्यावश्चप्रत्वसश्चैववचल्गुश्चाऽथ गह्वरः
आत्रेयाणाञ्च चत्वारः स्मृताः पक्षा महात्मनाम् ।
काश्यपो नारदश्चैव पर्वतोऽनुद्धतस्तथा ॥ ७८ ॥
अग्निरे मानसा ह्येते अरुन्धत्यानिबोधत । नारदस्तु वसिष्ठायाऽरुन्धतीं प्रत्यपादयत्
ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः । पुरा देवासुरे युद्धे घोरे वै तारकामये ॥८०
अनावृष्ट्या हते लोके ह्युग्रे लोकेश्वरैःसह । वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजाः
अन्नोदकं मूलफलं ओषधीश्च प्रवर्त्तयन् । तानेताञ्जीवयामास कारुण्यादौषधेन च ॥
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु सुतानुत्पादयच्छतम् ।
ज्यायसो(ऽ?)जनयच्छक्तेरदृश्यन्ती पराशरम् ॥ ८३ ॥
रक्षसा भक्षिते शक्तौ रुधिरेण तु वै तदा । काली पराशराज्जज्ञे कृष्णा द्वैपायनंप्रभुम्
द्वैपायनो ह्यरण्यां वै शुकमुत्पादयत्सुतम् । उपमन्युश्चपीवर्य्यां विद्धीमेशुकसूनवः ॥
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरस्तुपञ्चमः । कन्याकीर्त्तिमतीचैवयोगमाताधृतव्रता
जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सात्वणुहस्यच । श्वेतःकृष्णश्चगौरश्चश्यामोधूम्रस्तथाऽरुणः
नीलो बादरिकश्चैव सर्वे चैते पराशराः । पराशराणामष्टौ ते पक्षा प्रोक्तामहात्मनाम्
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रमितिसम्भवम् । वसिष्ठस्य कपिञ्जल्यो घृताच्यामुदपद्यत
त्रिमूर्त्तिर्यः समाख्यातइन्द्रप्रमितिरुच्यते । पृथोःसुतायांसम्भूतोभद्रस्तस्याऽभवद्वसुः
उपमन्युः सुतस्तस्य बहवो ह्यौपमन्यवः । मित्रावरुणयोश्चैव कौण्डिन्यायेपरिश्रुताः
एकार्षेयास्तथा चाऽन्ये वासिष्ठा नाम विश्रुताः ।
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता दश महात्मनाम् ॥ ९२ ॥
इत्येतेब्रह्मणःपुत्रा मानसा विश्रुता भुवि । भर्त्तारश्च महाभागाएषांवंशाःप्रकीर्त्तिताः
त्रिलोकधारणे शक्ता देवर्षिकुलसम्भवाः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्चशतशोऽथसहस्रशः

यैस्तु व्याप्तास्त्रयो लोकाः सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ६५ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे देवादिसृष्टिकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

वासिष्ठवंशवर्णने शक्तिपुत्रायपराशरायपुलस्त्येनपुराणादिरचनाकरणाय-वरप्रदानम्

ऋषय ऊचुः

कथं हि रक्षसा शक्तिर्भक्षितःसोऽनुजैःसह । वासिष्ठोवदतांश्रेष्ठ !सूत!वक्तुमिहाऽर्हसि

सूत उवाच

राक्षसो रुधिरो नाम वसिष्ठस्यसुतंपुरा । शक्तिंसभक्षयामासशक्तेःशापात्सहाऽनुजैः
वसिष्ठयाज्यंविप्रेन्द्रास्तदाविश्यैवभूपतिम् । कल्माषपादंरुधिरोविश्वामित्रेण चोदितः
भक्षितः स इतिश्रुत्वावसिष्ठस्तेनरक्षसा । शक्तिःशक्तिमतांश्रेष्ठोभ्रातृभिःसहधर्मवित्
हा पुत्र ! पुत्रपुत्रेति क्रन्दमानो मुहुर्मुहुः । अरुन्धत्या सह मुनिः पपात भुवि दुःखितः
नष्टं कुलमिति श्रुत्वा मर्त्तुं चक्रेमतिंतदा । स्मरन्पुत्रशतञ्चैवशक्तिज्येष्ठञ्च शक्तिमान्
न तं विनाऽहं जीविष्ये इति निश्चित्य दुःखितः ॥ ७ ॥
आरुह्य मूर्धानमजात्मजोऽसौ तथाऽऽत्मवान्सर्वविदात्मविच्च ।
धराधरस्यैव तदा धरायां पपात पत्न्या सहसाऽश्रुदृष्टिः ॥ ८ ॥
धराधरात्तं पतितं धरा तदा दधार तत्राऽपि विचित्रकण्ठी ।
कराम्बुजाभ्यां करिखेलगामिनी रुदन्तमादाय रुरोद सा च ॥ ६ ॥
तदा तस्य स्नुषा प्राह पत्नी शक्तेर्महामुनिम् । वसिष्ठं वदतांश्रेष्ठंरुदन्ती भयविह्वला
भगवन् ! ब्राह्मणश्रेष्ठ! तवदेहमिदंशुभम् । पालयस्वविभो!द्रष्टुंतवपौत्रंममाऽऽत्मजम्
न त्याज्यं तव विप्रेन्द्र ! देहमेतत्सुशोभनम् । गर्भस्थोममसर्वार्थसाधकःशक्तिजोयतः
एवमुक्त्वाऽथ धर्मज्ञाकराभ्यांकमलेक्षणा । उत्थाप्यश्वशुरंनत्वानेत्रेसम्मृज्यवारिणा

दुखिताऽपि परित्रातुंश्वशुरंदुःखितंतदा। अरुन्धतीश्चकल्याणींप्रार्थयामासदुःखिताम्
स्नुषावाक्यंततःश्रुत्वावसिष्ठोत्थायभूतलात्।संज्ञामवाप्यचालिङ्ग्यसापपातसुदुःखिता
अरुन्धती कराभ्यांतांसंस्पृश्याऽस्राकुलेक्षणाम्। रुरोदमुनिशार्दूलोभार्य्ययासुतवत्सलः
अथनाभ्यम्बुजेधिष्णोर्यथातस्याश्चतुर्मुखः। आसीनोगर्भशय्यायांकुमार! ऋचमाहसः
ततोनिशम्यभगवान्वसिष्ठऋचमादरात्। केनोक्तामितिसञ्चिन्त्यतदाऽतिष्ठत्समाहितः

व्योमाङ्गणस्थोऽथ हरिः पुण्डरीकनिभेक्षणः।
वसिष्ठमाह विश्वात्मा घृणया स घृणानिधिः॥ १९॥
भो! वत्स! वत्स! विप्रेन्द्र! वसिष्ठ! सुतवत्सल!।
तव पौत्रमुखाम्भोजादृगेषाऽद्य विनिःसृताः॥ २०॥

मत्समस्तवपौत्रोऽसौशक्तिज शक्तिमान्मुने!।तस्मादुत्तिष्ठसन्त्यज्यशोकंब्रह्मसुतोत्तम
रुद्रभक्तश्च गर्भस्थो रुद्रपूजापरायणः। रुद्रदेवप्रभावेन कुलन्ते सन्तरिष्यति॥ २२॥
एवमुक्त्वा घृणीविप्रं भगवान् पुरुषोत्तमः। वसिष्ठं मुनिशार्दूलं तत्रैवाऽन्तरधीयत॥
ततः प्रणम्य शिरसा वसिष्ठो वारिजेक्षणम्। अदृश्यन्त्यामहातेजाःपस्पर्शोदरमादरात्
हा पुत्र! पुत्रपुत्रेति पपातच सुदुःखितः। ललापाऽरुन्धतीं प्रेक्ष्यतदाऽसौरुदतींद्विजाः
स्वपुत्रञ्चस्मरन्दुःखात् पुनरेह्येहिपुत्रक!। तवपुत्रमिमं दृष्ट्वा भो! शक्ते! कुलधारणम्

तवाऽन्तिकं गमिष्यामि तव मात्रा न संशयः।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा रुदन् विप्र! आलिङ्ग्याऽरुन्धतीं तदा॥ २७॥

पपात ताडयन्तीव स्वस्यकुक्षीकरेण वै। अदृश्यन्तीजघानाऽथशक्तिजस्याऽऽलयं शुभा
स्वोदरं दुःखिता भूमौ ललाप च पपात च। अरुन्धती तदा भीतावसिष्ठश्च महामतिः

समुत्थाप्य स्नुषां बालामूचतुर्भयविह्वलौ॥ ३०॥
किमारमुग्धे! तव गर्भमण्डलं कराम्बुजाभ्यां विनिहत्य दुर्लभम्।
कुलं वसिष्ठस्य समस्तमप्यहो निहन्तुमार्य्ये! कथमुद्यता वद॥ ३१॥
तवाऽऽत्मजं शक्तिसुतञ्च दृष्ट्वा चाऽऽस्वाद्य वक्त्रामृतमार्य्यसूनोः।

त्रातुं यतो देहमिमं मुनीन्द्रः सुनिश्चितः पाहि ततः शरीरम् ॥ ३२ ॥

सूत उवाच

एवं स्नुषामुपालभ्य मुनिंचारुन्धतीस्थिता । अरुन्धती वसिष्ठस्यप्राहचार्त्तेतिविह्वला
त्वय्येव जीवितं चाऽस्यमुनेर्यत् सुव्रते! मम । जीवितंरक्षदेहस्यधात्री च कुरुयद्धितम्

अदृश्यन्ती उवाच

मया यदि मुनिश्रेष्ठो त्रातुं वै निश्चितं स्वकम् ।
ममाऽशुभं शुभं देहं कथञ्चित् पालयाम्यहम् ॥ ३५ ॥

प्रियदुःखमहं प्राप्ता ह्यसती नःनात्र संशयः । मुने! दुःखादहं दाधायतःपुत्रीमुने!तव॥
अहोऽद्भुतं मया दृष्टंदुःखपात्रीह्यहंविभो !। दुःखत्राताभवब्रह्मन्! ब्रह्मसूनो!जगद्गुरो
तथापि भर्तृरहिता दीनानारोभवेदिह । पाहि मां तत आर्य्येन्द्र! परिभूताभविष्यति
पिता माता च पुत्राश्च पौत्राःश्वशुरएवच । एतेनबान्धवाःस्त्रीणांभर्त्ताबन्धुःपरागतिः
आत्मनो यद्धिकथितमप्यर्धमितिपण्डितैः । तदप्यत्रमृषाह्यासीत् गतःशक्तिरहंस्थिता
अहोममाऽत्र काठिन्यं मनसो मुनिपुङ्गव !। पतिं प्राणसमंत्यक्त्वा स्थितायत्रक्षणंयतः
वसिष्ठाश्वत्थमाश्रित्यह्यमृतातुयथालता ।निर्मूलाप्यमृताभर्त्रात्यक्तादीनास्थिताप्यहम्
स्नुषावाक्यंनिशम्यैवंवसिष्ठोभार्य्यया सह । तदाचक्रेमतिंधीमान् यातुंस्वाश्रममाश्रमी

कृच्छ्रात् सभार्य्यो भगवान् वशिष्ठः स्वाश्रमं क्षणात् ।
अदृश्यन्त्यां च पुण्यात्मा सम्विवेश स चिन्तयन् ॥ ४५ ॥

सा गर्भं पालयामास कथञ्चिन्मुनिपुङ्गवाः !। कुलसन्धारणार्थाय शक्तिपत्नीपतिव्रता
ततः साऽसूत तनयं दशमेमासिसुप्रभम् । शक्तिपत्नीयथायथाशक्तिंशक्तिमन्तमरुन्धती
असूतसादितिर्विष्णुंयथास्वाहागुहंसुतम् । अग्निंयथाऽरणिःपत्नीशक्तेःसाक्षात्पराशरम्
यदा तदा शक्तिसूनुरवतीर्णो महीतले । शक्तिस्त्यक्त्वा तदा दुःखं पितृणां समतांययौ
भ्रातृभिःसहपुण्यात्माआदित्यैरिवभास्करः । रराजपितृलोकस्थोवासिष्ठोमुनिपुङ्गवाः
जगुस्तदा च पितरो ननृतुश्च पितामहाः । प्रपितामहाश्च विप्रेन्द्रा!ह्यवतीर्णे पराशरे
ये ब्रह्मवादिनो भूमौ ननृतुर्दिवि देवताः । पुष्कराद्याश्च ससृजुः पुष्पवर्षञ्चखेचराः

पुरेषु राक्षसानाञ्च प्रणादं विषमं द्विजाः । आश्रमस्थाश्च मुनयः समूहुर्हर्षसन्ततिम् ॥
अवतीर्णो यथा ह्यण्डाद्भानुः सोऽपि पराशरः ।
अदृश्यन्त्याश्चतुर्वक्त्रो मेघजालाद्दिवाकरः ॥ ५३ ॥
सुखञ्चतु समभवददृश्यन्त्यास्तथाद्विजाः !। दृष्ट्वापुत्रंपतिंस्मृत्वाअरुन्धत्या मुनेस्तथा
दृष्ट्वा च तनयं बाला पराशरमतिद्युतिम् । ललाप विह्वला बाला सन्नकण्ठी पपात च
सा पराशरमहो ! महामतिं देवदानवगणैश्च पूजितम् ।
जातमात्रमनघं शुचिस्मिता वुध्य साश्रुनयना ललाप च ॥ ५६ ॥
हा वसिष्ठसुत ! कुत्रचिद्गतः पश्य पुत्रमनघं तवाऽऽत्मजम् ।
त्यज्य दीनवदनां वनान्तरे पुत्रदर्शनपरामिमां प्रभो ॥ ५७ ॥
शक्ते स्वच्च सुतं पश्य भ्रातृभिः सह षण्मुखम् ।
यथा महेश्वरोऽपश्यत् सगणो हृषिताननः ॥ ५८ ॥
अथ तस्यास्तदालापंवसिष्ठोमुनिसत्तमः । श्रुत्वास्नुषामुवाचेदंमारोदीरिति दुःखितः
आश्रयात्तस्यसाशोकंवसिष्ठस्यकुलाङ्गना । त्यक्त्वाह्यपालयद्बालंबाला बालमृगेक्षणा
दृष्ट्वातामबलांप्राहमङ्गलाभरणैर्विना । आसीनामाकुलांसाध्वीं बाष्पपर्याकुलेक्षणाम्
शाक्तेय उवाच
अम्ब ! मङ्गलविभूषणैर्विना देहयष्टिरनघेन शोभते ।
वक्तुमर्हसि तवाऽद्य कारणञ्चन्द्रबिम्बरहितेव शर्वरी ॥ ६२ ॥
मातर्मातः कथं त्यक्त्वा मङ्गलाभरणानि वै । आसीना भर्तृहीनेव वक्तुमर्हसि शोभने!
अदृश्यन्ती तदा वाक्यं श्रुत्वा तस्य सुतस्य सा ।
न किञ्चिदब्रवीत् पुत्रं शुभं वा यदि वेतरत् ॥ ६४ ॥
अदृश्यन्तीं पुनःप्राहशाक्तेयोभगवान्मम । मातः ! कुत्र महातेजाः पिता वदवदेतिताम्
श्रुत्वा रुरोद सा वाक्यंपुत्रस्याऽतीवविह्वला । भक्षितोरक्षसा तातस्तवेतिनिपपातच
श्रुत्वा वसिष्ठोऽपि पपात भूमौ पौत्रस्य वाक्यं स रुदन् दयालुः ।
अरुन्धती चाऽऽश्रमवासिनस्तदा मुनेर्वसिष्ठस्य मुनीश्वराश्च ॥ ६७ ॥

भक्षितो रक्षसा मातुः पिता तव मुखादिति ।
श्रुत्वा पराशरो धीमान् प्राह चाश्रा(स्रा)विलेक्षणः ॥ ६८ ॥

पराशर उवाच

अभ्यर्च्य देवदेवेशं त्रैलोक्यं सचराचरम् । क्षणेन मातः पितरं दर्शयामीति मे मतिः॥
सा निशम्य वचनं तदा शुभं सस्मिता तनयमाह विस्मिता ।
तथ्यमेतदिति तं निरीक्ष्य सा पुत्र ! पुत्र ! भवमर्चयेति च ॥७० ॥
ज्ञात्वाशक्तिसुतस्याऽस्यसङ्कल्पंमुनिपुङ्गवः। वसिष्ठोभगवान्प्राहपौत्रंधीमान्घृणानिधिः
स्थाने पौत्र! मुनिश्रेष्ठ ! सङ्कल्पस्तवसुव्रत !। तथापिश्रृणुलोकस्यक्षयंकर्तुं नचाऽर्हसि
राक्षसानामभावाय कुरुसर्वेश्वरार्चनम् । त्रैलोक्यंश्रृणुशाक्तेय ! अपराध्यति किं तव
ततस्तस्य वशिष्ठस्य नियोगाच्छक्तिनन्दनः । राक्षसानामभावाय मतिञ्चक्रे महामतिः
अदृश्यन्तींवशिष्ठञ्च प्रणम्याऽरुन्धतीं ततः । कृत्वैकलिङ्गंक्षणिकं पांसुनामुनिसन्निधौ
सम्पूज्य शिवसूक्तेन त्र्यम्बकेन शुभेन च । जप्त्वा त्वरितरुद्रञ्च शिवसङ्कल्पमेव च ॥
नीलरुद्रञ्च शाक्तेयः तथा रुद्रन्त्वशोभनम् । वामीयंपवमानञ्च पञ्चब्रह्म तथैव च ॥७७॥
होतारं लिङ्गसूक्तञ्च अथर्वशिर एव च । अष्टाङ्गमर्घ्यं रुद्राय दत्वाऽऽभ्यर्च्य यथाविधि

पराशर उवाच

भगवन् ! रक्षसा रुद्र ! भक्षितो रुधिरेण वै ।
पिता मम महातेजा भ्रातृभिः सह शङ्कर ! ॥ ७६ ॥
द्रष्टुमिच्छामि भगवन् ! पितरं भ्रातृभिः सह । एवं विज्ञापयल्लिङ्गंप्रणिपत्यमुहुर्मुहुः॥
हा रुद्र ! रुद्ररुद्रेति रुरोद निपपात च । तं दृष्ट्वा भगवान्रुद्रो देवीमाह च शङ्करः ॥
पश्य बालं महाभागे ! बाष्पपर्य्याकुलेक्षणम् । ममाऽनुस्मरणेयुक्तं मदाराधनतत्परम्
सा च दृष्ट्वा महादेवी पराशरमनिन्दिता । दुःखात् संक्लिष्टसर्वाङ्गमस्राकुलविलोचनम्
लिङ्गार्चनविधौ सक्तं हर ! रुद्रेतिवादिनम् । प्राहभर्त्तारमीशानं शङ्करं जगतामुमा ॥
ईप्सितं यच्छ सकलं प्रसीद परमेश्वर । निशम्य वचनं तस्याः शङ्करः परमेश्वरः॥८५॥
भार्य्यामार्य्यामुमाम्प्राह ततो हालाहलाशनः । रक्षाम्येनंद्विजंबालंफुल्लेन्दीवरलोचनम्

ददामि दृष्टिं मद्रूपदर्शनक्षम एव वै । एवमुक्त्वागणैर्दिव्यैर्भगवान्नीललोहितः ॥८७ ॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैः संवृतः परमेश्वरः । ददौ च दर्शनं तस्मै मुनिपुत्राय धीमते ! ॥
सोऽपि दृष्ट्वा महादेवमानन्दास्राविलेक्षण । निपपातच हृष्टात्मा पादयोस्तस्यसादरम्

पुनर्भवान्याः पादौ च नन्दिनश्च महात्मनः ।

सफलं जीवितं मेऽद्य ब्रह्माद्यांस्तांस्तदाह सः ॥ ९० ॥

रक्षार्थमागतस्त्वद्यममबालेन्दुभूषणः । कोऽन्यः समोमयालोकेदेवोवा दानवोऽपिवा
अथ तस्मिन् क्षणादेव ददर्श दिवि संस्थितम् । पितरंभ्रातृभिःसार्धं शाक्तेयस्तुपराशरः
सूर्यमण्डलसंकाशे विमानेविश्वतो मुखे । भ्रातृभिःसहितंदृष्ट्वा ननाम च जहर्ष च ॥
तदावृषध्वजो देवः सभार्य्यः सगणेश्वरः । वसिष्ठपुत्रं प्राहेदं पुत्रदर्शनतत्परम् ॥९४ ॥

श्रीदेव उवाच

शक्ते! पश्य सुतं बालमानन्दास्राविलेक्षणम् । अदृश्यन्तीश्च विप्रेन्द्र!वसिष्ठं पितरं तव
अरुन्धतीं महाभागां कल्याणीं देवतोपमाम् । मातरंपितरञ्चोभौ नमस्कुरुमहामते !
तदा हरं प्रणम्याऽऽशु देवदेवमुमांतथा । वशि(सि)ष्ठञ्च तदा श्रेष्ठं शक्तिर्वैशङ्कराज्ञया
मातरञ्च महाभागांकल्याणींपतिदेवताम् । अरुन्धतीजगन्नाथनियोगात्प्राहशक्तिमान्

वसिष्ठ उवाच

भो वत्स ! वत्स विप्रेन्द्र ! पराशर ! महाद्युते ।

रक्षितोऽहं त्वया तात ! गर्भस्थेन महात्मना ॥ ९९ ॥

अणिमादिगुणैश्वर्यं मया वत्स ! पराशर ! लब्धमद्याननं दृष्ट्वं तव बाल ममाऽऽज्ञया
अदृश्यन्तीं महाभागां रक्ष वत्स ! महामते !! अरुन्धतीञ्च पितरं वसिष्ठं मम सर्वदा
अन्वयःसकलोवत्स ! ममसन्तारितस्त्वया । पुत्रेणलोकान्जयतीत्युक्तंसद्भिःसदैवहि
ईप्सितंवरयेशानं जगतां प्रभवं प्रभुम् । गमिष्याम्यभिवन्द्येश भ्रातृभिःसह शङ्करम् ॥
एवं पुत्रमुपामन्त्र्य प्रणम्य च महेश्वरम् । निरीक्ष्य भार्य्यां सदसि जगाम पितरंवशी
गतं दृष्ट्वाऽथ पितरं तदाऽभ्यर्च्यैवशङ्करम् । तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिःशाक्तेयःशशिभूषणम्
ततस्तुष्टोमहादेवो मन्मथान्धकमर्दनः । अनुगृह्याऽथ शाक्तेयं तत्रैवाऽन्तरधीयत॥१०६

गते महेश्वरे साम्बे प्रणम्य च महेश्वरम् । ददाह राक्षसानान्तु कुलं मन्त्रेण मन्त्रवित्
ददाह पौत्रं धर्मज्ञो वसिष्ठो मुनिभिर्वृतः । अलमत्यन्तकोपेन तात ! मन्युमिमं जहि॥
राक्षसा नापराध्यन्तिपितुस्तेविहितं तथा । मूढानामेवभवति क्रोधो बुद्धिमतां न हि

हन्यते तात ! कः केन यतः स्वकृतभुक् पुमान् ।

सञ्चितस्याऽतिमहता वत्स ! क्लेशेन मानवैः ॥ ११० ॥

यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः स्मृतः । अलं हि राजसैर्यज्ञैर्दीनैरनपराधिभिः ॥
सत्रन्ते विरमत्वेतत् क्षमासारा हि साधवः । एवं वसिष्ठवाक्येन शाक्तेयोमुनिपुङ्गवः
उपसंहृतवान सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात् । ततः प्रीतश्च भगवान् वसिष्ठोमुनिसत्तमः
सम्प्राप्तश्चतदा सत्रं पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । वसिष्ठेन तु दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः
पराशरमुवाचेदं प्रणिपत्य स्थितं मुनिः । वैरे महति यद्वाक्याद् गुरोरद्याश्रिता क्षमा

त्वया तस्मात् समस्तानि भवान् शास्त्राणि वेत्स्यति ।

सन्ततेर्मम न छेदः क्रुद्धेनाऽपि यतः कृतः ॥ ११६ ॥

त्वया तस्मान्महाभाग ! ददाम्यन्यं महावरम् ।

पुराणसंहिताकर्त्ता भवान् वत्स ! भविष्यति ॥ ११७ ॥

देवतापरमार्थंचयथावद्वेत्स्यतेभवान् । प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा कर्मणस्तेऽमलामतिः
मत्प्रसादादसन्दिग्धातवयत्स ! भविष्यति । ततश्चप्राह भगवान् वसिष्ठोवदताम्वरः
पुलस्त्येनयदुक्तंते सर्वमेतद्भविष्यति । अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः
प्रसादाद्वैष्णवंचक्रे पुराणं वै पराशरः । षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसञ्चयम् ॥
षट्साहस्रमितं सर्वं वेदार्थेनच संयुतम् । चतुर्थं हि पुराणानां संहितासु सुशोभनम्
एष वः कथितः सर्वो वासिष्ठानांसमासतः । प्रभवःशक्तिसूनोश्च प्रभावोमुनिपुङ्गवाः!

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे वासिष्ठकथने शक्तिपुत्रायश्रीपुलस्त्येनवरदानवर्णनं
नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आदित्यवंशवर्णने तण्डिकृतंशिवसहस्रनामवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशं सोमस्य वंशं वंशविदाम्वर!। वक्तुमर्हसिचाऽस्माकं संक्षेपाद्रोमहर्षण!॥

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपाद् द्विजाः!

तस्याऽऽदित्यस्य चैवाऽऽसीद् भार्य्यात्रयमथाऽपरम् ॥ २ ॥

सञ्ज्ञाराज्ञीप्रभाछायापुत्रास्तासांवदामिवः। सञ्ज्ञात्वाष्ट्रीचसुषुवेसूर्य्यान्मनुमनुत्तमम्

यमञ्च यमुनाञ्चैव राज्ञीरैवतमेवच। प्रभाप्रभातमादित्याच्छायां सञ्ज्ञाऽप्यकल्पयत्

छाया च तस्मात् सुषुवे सावर्णि भास्कराद्द्विजाः!।

ततः शनिञ्च तपतीं विष्टिञ्चैव यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

छायास्वपुत्राभ्यधिकं स्नेहञ्चक्रे मनौतदा। पूर्वोमनुर्नचक्षामयमस्तुक्रोधमूर्च्छितः॥

सन्ताडयामासरुषापादमुद्यम्यदक्षिणम्। यमेनताडितासा तुछायावै दुःखिताऽभवत्

छायाशापात् पदञ्चैकं यमस्यक्लिन्नमुत्तमम् पूयशोणितसम्पूर्णंकृमीणांनिचयान्वितम्

सोऽपिगोकर्णमाश्रित्य फलकेनाऽनिलाशनः। आराधयन्महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम्

भवप्रसादादागत्यलोकपालत्वमुत्तमम्। पितृणमाधिपत्यन्तुशापमोक्षं तथैव च॥

लब्धवान्देवदेवस्य प्रभावाच्छूलपाणिनः। असहन्ती पुरा भानोस्तेजोमयमनिन्दिता

रूपं त्वाष्ट्री स्वदेहात्तुछायाख्यां सात्वकल्पयत्। वडवारूपमास्थायतपस्तेपेतुसुव्रता

कालात्प्रयत्नतोज्ञात्वा छायां छायापतिःप्रभुः। वडवामगमत्सञ्ज्ञामश्वरूपेणभास्करः

वडवा च तदा त्वाष्ट्री सञ्ज्ञा तस्माद्दिवाकरात्।

सुषुवे चाश्विनो देवौ देवानान्तु भिषग्वरौ ॥ १४ ॥

लिखितो भास्करः पश्चात्सञ्ज्ञापित्रा महात्मना।

विष्णोश्चक्रन्तु यद्घोरं मण्डलाद्भास्करस्य तु ॥ १५ ॥

निर्ममेभगवांस्त्वष्टा प्रधानं दिव्यमायुधम् । रुद्रप्रसादाच्च शुभं सुदर्शनमिति स्मृतम्
लब्धवान्भगवांश्चक्रं कृष्णः कालाग्निसन्निभम् । मनोस्तुप्रथमस्यासन्नवपुत्रास्तुतत्समाः
इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्णुः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तश्च वै धीमान्नाभागोऽरिष्ट एव च
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः । इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च पुंस्त्वं प्राप च या पुरा
सुद्युम्नइतिविख्यातापुंस्त्वंप्राप्तात्विलापुरा । मित्रावरुणयोस्त्वत्रप्रसादान्मुनिपुङ्गवाः!
पुनः शरवणं प्राप्य स्त्रीत्वं प्राप्तो भवाज्ञया । सुद्युम्नो मानवः श्रीमान्सोमवंशप्रवृद्धये
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन इला किम्पुरुषोऽभवत् । इला किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इतिचोच्यते
मासमेकं पुमान्वीरः स्त्रीत्वंमासमभूत्पुनः । इलाबुधस्यभवनं सोमपुत्रस्यचाऽऽश्रिता
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनाय प्रवर्त्तिता । सोमपुत्राद्बुधाच्चाऽपि ऐलो यज्ञे पुरूरवाः ॥
सोमवंशाग्रजोधीमान्भवभक्तः प्रतापवान् । इक्ष्वाकोर्वंशविस्तारंपश्चाद्वक्ष्येतपोधनाः!
पुत्रत्रयमभूत्तस्यसुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः! । उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च ॥
उत्कलस्योत्कलंराष्ट्रं विनताश्वस्यपश्चिमम् । गया गयस्य चाख्यातापुरीपरमशोभना

सुराणां संस्थितिर्यस्यां पितॄणाञ्च सदा स्थितिः ।

इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठादायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ २८ ॥

कन्याभावाच्चसुद्युम्नोनैवभागमवाप्तवान् । वसिष्ठवचनात्त्वासीत्प्रतिष्ठाने महाद्युतिः
प्रतिष्ठाधर्मराजस्यसुद्युम्नस्य महात्मनः । तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥
मानवेयोमहाभाग स्त्रीपुंसोर्लक्षणान्वितः । इक्ष्वाकोरभवद्वीरो विकुक्षिर्धर्मवित्तमः ॥

ज्येष्ठःपुत्रशतस्याऽऽसीद्दशपञ्च च तत्सुताः ।

अभूज्ज्येष्ठः ककुत्स्थश्च ककुत्स्थात्तु सुयोधनः ॥३२ ॥

तत.पृथुर्मुनिश्रेष्ठा!विश्वकःपार्थिवस्तथा। विश्वकस्यार्द्रकोधीमान्युवनाश्वस्तुतत्सुतः
शावस्तिश्चमहातेजावंशकस्तुततोऽभवत् । निर्मिता येनशावस्तीगौडदेशे द्विजोत्तमाः
वंशाच्चबृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्तुतत्सुतः । धुन्धुमारत्वमापन्नो धुन्धुं हत्वामहाबलम्
धुन्धुमारस्यतनयास्त्रयस्त्रैलोक्यविश्रुताः । दृढाश्वश्चैवचण्डाश्वःकपिलाश्वश्चतेस्मृताः

दृढाश्वस्यप्रमोदस्तुहर्य्यश्वस्तस्यवै सुतः । हर्य्यश्वस्यनिकुम्भस्तुसंहताश्वस्तु तत्सुतः

कृशाश्वोऽथ रणाश्वश्च संहताश्वात्मजावुभौ ।

युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता तस्य वै सुतः ॥ ३८ ॥

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्य्यवान् ।

मुचकुन्दश्च पुण्यात्मा त्रयस्त्रैलोक्यविश्रुताः ॥ ३९ ॥

अम्बरीषस्यदायादोयुवनाश्वोऽपरःस्मृतः । हरितोयुवनाश्वस्य हरितास्तु यतःस्मृताः

एते ह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः । पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः ॥

नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।

विष्णुवृद्धः सुतस्तस्यविष्णुवृद्धा यतः स्मृताः ॥ ४२ ॥

एते ह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेताः समाश्रिताः । सम्भूतिरपरं पुत्रमनरण्यमजीजनत् ॥४३

रावणेनहतोयोऽसौत्रैलोक्यविजयेद्विजाः ! । बृहदश्वोऽनरण्यस्यहर्य्यश्वस्तस्यचात्मजः

हर्य्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमना नृपः । तस्य पुत्रोऽभवद्राजात्रिधन्वाभवभावितः॥

प्रसादाद्ब्रह्मसूनोर्वैतण्डिनः प्राप्य शिष्यताम् । अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्यतदाज्ञया

गणैश्वर्य्यमनुप्राप्तोभवभक्तः प्रतापवान् । कथञ्चैवाऽश्वमेधम्वैकरोमीति विचिन्तयन्

धनहीनश्च धर्मात्माद्दृष्टवान्ब्रह्मणःसुतम् । तण्डिसञ्ज्ञंद्विजंतस्माल्लब्धवान्द्विजसत्तमाः

नाम्नां सहस्रं रुद्रस्य ब्रह्मणा कथितं पुरा । तेन नाम्नां सहस्रेणस्तुत्वातण्डिर्महेश्वरम्

लब्धवान्गाणपत्यञ्चब्रह्मयोनिर्द्विजोत्तमः । ततस्तस्मान्नृपोलब्ध्वातण्डिना कथितं पुरा

नाम्नां सहस्रं जप्त्वा वै गाणपत्यमवाप्तवान् ।

ऋषय ऊचुः

नाम्नां सहस्रं रुद्रस्य तण्डिना ब्रह्मयोनिना ॥ ५१ ॥

कथितं सर्ववेदार्थसञ्चयं सूत ! सुव्रत ! । नाम्नां सहस्रं विप्राणां वक्तुमर्हसि शोभनम्

सूत उवाच

सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्याऽमिततेजसः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नां शृणुत सुव्रताः ! ॥

यज्जप्त्वातुमुनिश्रेष्ठा!गाणपत्यमवाप्तवान् । ॐस्थिरःस्थाणुःप्रभुर्भानुःप्रवरोवरदोवरः

सर्वात्मासर्वविख्यातः सर्वःसर्वकरोभवः। जटीदण्डीशिखण्डी च सर्वगः सर्वभावनः
हरिश्च हरिणाक्षश्चसर्वभूतहरःस्मृतः। प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च शान्तात्मा श्वाश्वतो ध्रुवः
श्मशानवासीभगवान्खचरो गोचरोऽर्दनः। अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतधारणः
उन्मत्तवेशःप्रच्छन्नः सर्वलोकःप्रजापतिः। महारूपो महाकायः शवरूपो महायशाः॥
महात्मासर्वभूतश्च विरूपो वामनोनरः। लोकपालोऽन्तर्हितात्माप्रसादोऽभयदोविभुः
पवित्रश्च महांश्चैव नियतो नियताश्रयः। स्वयम्भूः सर्वकर्माच आदिरादिकरो निधिः

सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः।
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्मतः॥ ६१॥

राजा राज्योदयः कर्त्ता मृगबाणार्पणो घनः। महातपा दीर्घतपा अदृश्योधनसाधकः
संवत्सरः कृतीमन्त्रः प्राणायामःपरन्तपः। योगी योगो महाबीजोमहारेता महाबलः
सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो वृषवाहनः। दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः॥
विश्वरूपः स्वयं श्रेष्ठोबलवीरो बलाग्रणीः। गणकर्त्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम्यएवच
मन्त्रवित्परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः। कमण्डलुधरो धन्वीबाणहस्तःकपालवान्
शरी शतघ्नी खड्गीच पट्टिशीचायुधीमहान्। अजश्च मृगरूपश्च तेजस्तेजस्करो विधिः
उष्णीषीच सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा। दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च
शृगालरूपः सर्वार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः। सिंहशार्दूलरूपश्च गन्धकारी कपर्द्यपि॥

ऊर्ध्वरेतोर्ध्वलिङ्गी च ऊर्ध्वशायी नभस्तलः।
त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः॥ ७०॥

अहोरात्रश्च नक्तश्च तिग्ममन्युः सुवर्चसः। गजहा दैत्यहा कालो लोकधातागुणाकरः
सिंहशार्दूलरूपाणामार्द्रचर्माम्बरं धरः। कालयोगी महानादः सर्वावासश्चतुष्पथः॥
निशाचरः प्रेतचारी सर्वदर्शी महेश्वरः। बहुभूतो बहुधनः सर्वसारो मृतेश्वरः॥ ७३॥
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यो नर्त्तनः सर्वसाधकः। सकार्मुको महाबाहुर्महाघोरो महातपाः
महाशरो महापाशो नित्यो गिरिचरोमतः। सहस्रहस्तोविजयोव्यवसायोह्यनिन्दितः
अमर्षणो मर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशनः। दक्षहा परिचारी च प्रहसो मध्यमस्तथा

तेजोऽपहारीबलवान्विदितोऽभ्युदितोबहुः । गम्भीरघोषोयोगात्मायज्ञहाकामनाशनः
गम्भीररोषोगम्भीरोगम्भीरबलवाहनः । न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधोविश्वकर्माच विश्वभुक्

तीक्ष्णोपायश्च हर्य्यश्वः सहायः कर्मकालवित् ।
विष्णुः प्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः ॥ ७६ ॥

हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः । उग्रतेजा महातेजा जयो विजयकालवित्
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सन्धिर्विग्रह एवच । खड्गीशङ्खीजटीज्वाली खचरोद्युचरोबली
वैणवीपणवी कालः कालकण्ठः कटङ्कटः । नक्षत्रविग्रहो भावो निभावः सर्वतोमुखः
विमोचनस्तु शरणो हिरण्यकवचोद्भवः । मेखलाकृतिरूपश्च जलाचारः स्तुतस्तथा ॥
वीणीच पणवी ताली नाली कलिकटुम्तथा । सर्वतूर्य्यनिनादीच सर्वव्याप्यपरिग्रहः
व्यालरूपी बिलावासो गुहावासो तरङ्गवित् । वृक्षःश्रीमालकर्माचसर्वबन्धविमोचनः
बन्धनस्तु सुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः । सखा प्रवासो दुर्वाप.सर्वसाधुनिषेवितः
प्रस्कन्दोऽप्यविभावश्चतुल्योयज्ञविभागवित् । सर्ववासःसर्वचारीदुर्वासावासवोमतः

हैमो हेमकरो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ।
आकाशोनिर्विरूपश्च विवासाउरगः खगः ॥ ८८ ॥

भिक्षुश्च भिक्षुरूपो च रौद्ररूपः सुरूपवान् । वसुरेता सुवर्चस्वी वसुवेगो महाबलः ॥
मनोवेगो निशाचारः सर्वलोकशुभप्रदः । सर्वावासी त्रयीवासी उपदेशकरोऽधरः ॥
मुनिरात्मा मुनिर्लोकः सभाग्यश्च सहस्रभुक् । पक्षी च पक्षरूपश्चअतिदीप्तोनिशाकरः
समीरोदमनाकारो ह्यर्थो ह्यर्थकरोऽवशः । वासुदेवश्च देवश्च वामदेवश्च वामनः॥६२
सिद्धियोगापहारीच सिद्धः सर्वार्थसाधकः । अक्षुण्णः क्षुण्णरूपश्च वृषणोमृदुरव्ययः
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवाम्पतिः । चक्रहस्तस्तुविष्टम्भी मूलस्तम्भन एवच
ऋतुर्ऋतुकरस्तालो मधुर्मधुकरो वरः । वानस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः ॥

ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी सुचारवित् ।
ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी ह्यनेकदृक् ॥ ६६ ॥

निमित्तस्थो निमित्तश्च नन्दिर्नन्दिकरोहरः । नन्दीश्वरः सुनन्दी च नन्दनो विषमर्दनः

भगहारी नियन्ता च कालोलोकपितामहः । चतुर्मुखो महालिङ्गः(श)चारुलिङ्गस्तथैव च

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षः कालाध्यक्षो युगावहः ।

बीजाध्यक्षो बीजकर्त्ता अध्यात्मानुगतो बलः ॥ ६६ ॥

इतिहासश्च कल्पश्च दमनो जगदीश्वरः । दम्भो दम्भकरो दाता वंशो वंशकरः कलिः
लोककर्त्ता पशुपतिर्महाकर्त्ता ह्यधोक्षजः । अक्षरं परमं ब्रह्म बलवांश्छुक्र एव च ॥
नित्योह्यनीशःशुद्धात्माशुद्धोमानोगतिर्हविः । प्रासादस्तुबलोदर्पोदर्पणोहव्यमिन्द्रजित्
वेदकारः सूत्रकारो विद्वांश्च परमर्दनः । महामेघनिवासी च महाघोरो वशीकरः ॥
अग्निज्वालो महाज्वालः परिधूम्रावृतोरविः । धिषणःशङ्करोनित्योवर्चस्वीधूम्रलोचनः
नीलस्तथाङ्गलुब्धश्च शोभनो नरविग्रहः । स्वस्तिस्वस्तिस्वभावश्चभोगीभोगकरोलघुः
उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भः प्रतापवान् । कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियः सर्ववर्णिकः ॥
महापादो महाहस्तो महाकालोमहायशाः । महामूर्धा महामात्रो महामित्रो नगालयः
महास्कन्धो महाकर्णोमहोष्ठश्चमहाहनुः । महानासो महाकण्ठोमहाग्रीवःश्मशानवान्
महाबलो महातेजा ह्यन्तरात्मा मृगालयः । लम्बितोष्ठश्च निष्ठश्च महामायःपयोनिधिः
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः । महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः ॥
असपत्नःप्रसादश्चप्रत्ययोगीतसाधकः । प्रस्वेदनोस्वहे(स्वेद)नश्चआदिकश्चमहामुनिः
वृषको वृषकेतुश्च अनलो वायुवाहनः । मण्डली मेरुवासश्च देववाहन एव च॥११२

अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक् सहस्रोर्जितेक्षणः ।

यजुः पादभुजो गुह्यः प्रकाशौजास्तथैव च ॥ ११३ ॥

अमोघार्थप्रसादश्च अन्तर्भाव्यः सुदर्शनः । उपहारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनस्थितः

नाभिर्नन्दिकरो हर्म्यः पुष्करः स्थपतिः स्थितः ।

सर्वशास्त्रो धनश्चाऽऽद्यो यज्ञो यज्वा समाहितः ॥ ११५ ॥

नगो नीलः कविः कालो मकरः कालपूजितः । सगणो गणकारश्चभूतभावनसारथिः
भस्मशायी भस्मगोप्ता भस्मभूततनुर्गणः । आगमश्च विलोपश्च महात्मासर्वपूजितः
शुक्लः स्त्रीरूपसम्पन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः । आश्रमस्थःकपोतस्थोविश्वकर्मापतिर्विराट्

विशालशाखस्ताम्रोष्ठोह्यम्बुजालःसुनिश्चितः । कपिलःकलशःस्थूलआयुधश्चैवरोमशः
गन्धर्वो ह्यदितिस्ताक्ष्र्यो ह्यविज्ञेयः सुशारदः । परश्वधायुधोदेवो ह्यर्थकारीसुबान्धवः
तुम्बवीणो महाकोप ऊर्ध्वरेता जलेशयः । उग्रो वंशकरो वंशो वंशवादी ह्यनिन्दितः
सर्वाङ्गरूपी मायावी सुहृदो ह्यनिलो बलः । बन्धनो बन्धकर्त्ताच सुबन्धनविमोचनः
राक्षसघ्नोऽथ कामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः । लम्बितो लम्बितोष्ठश्च लम्बहस्तोवरप्रदः
बाहुस्त्वनिन्दितः सर्वः शङ्करोऽथाप्यकोपनः । अमरेशो महाघोरोविश्वदेवःसुरारिहा
अहिर्बुध्न्यो निर्ऋतिश्च चेकितानो हलीतथा । अजैकपाच्चकापालीशङ्कुमारोमहागिरिः
धन्वन्तरिर्धूमकेतुः सूर्यो वैश्रवणस्तथा । धाता विष्णुश्चशक्रश्च मित्रस्त्वष्टाधरोध्रुवः
प्रभासः पर्वतो वायुरर्यमा सविता रविः । धृतिश्चैव विधाताच मान्धाता भूतभावनः
नीरस्तीर्थश्च भीमश्च सर्वकर्मा गुणोद्वहः । पद्मगर्भो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रो नभोऽनघः ॥
बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यकृत्तमः । क्रूरकर्त्ता क्रूरवासी तनुरात्मा महौषधः ॥
सर्वाशयः सर्वचारी प्राणेशःप्राणिनाम्पतिः । देवदेवः सुखोत्सिक्तःसदसत्सर्वरत्नवित्
कैलासस्थो गुहावासी हिमवद्गिरिसंश्रय. । कुलहारी कुलाकर्त्ता बहुवित्तो बहुप्रजः
प्राणेशो बन्धकीवृक्षो नकुलश्चाऽऽद्रिकस्तथा । ह्रस्वग्रीवोमहाजानुरलोलश्चमहौषधिः

सिद्धान्तकारी सिद्धार्थश्छन्दो व्याकरणोद्भवः ।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहास्यः सिंहवाहनः ॥ १३३ ॥
प्रभावात्मा जगत्कालः कालः कम्पी तरुस्तनुः ।
सारङ्गो भूतचक्राङ्कः केतुमाली सुवेधकः ॥ १३४ ॥

भूतालयो भूतपतिरहोरात्रो मलोऽमलः । वसुभृत्सर्वभूतात्मा निश्चलः सुविदुर्बुधः ॥
असुहृत्सर्वभूतानांनिश्चलश्चलवि(द्?)त्बुधः । अमोघःसंयमोहृष्टो भोजनःप्राणधारणः
धृतिमान्मतिमांस्त्र्यक्षः सुकृतस्तु युधां पतिः । गोपालोगोपतिर्ग्रामोगोचर्मवसनोहरः
हिरण्यबाहुश्च तथा गुहावासः प्रवेशनः । महामना महाकामो वित्तकामोजितेन्द्रियः
गान्धारश्च सुरापश्च तापकर्मरतो हितः । महाभूतो भूतवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥
महाकेतुर्धरा धाता नैकतानरतः स्वरः । अवेदनीय आवेद्यः सर्वगश्च सुखावहः॥१४०॥

तारणश्चरणो धाता परिधा परिपूजितः । संयोगी वर्धनोवृद्धो गणिकोऽथगणाधिपः
नित्यो धाता सहायश्च देवासुरपतिः पतिः । युक्तश्च युक्तबाहुश्च सुदेवोऽपि सुपर्वणः
आषाढश्च सुषाढश्च स्कन्धदो हरितो हरः । वपुरावर्तमानोऽन्यो वपुःश्रेष्ठो महावपुः
शिरोविमर्शनः सर्वलक्ष्यलक्षणभूषितः । अक्षयोरथगीतश्च सर्वभोगी महाबलः॥१४४॥

साम्नायोऽथ महाम्नायस्तीर्थदेवो महायशाः ।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रो सुभगो बहुकर्कशः ॥ १४५ ॥

रत्नभूतोऽथरत्नाङ्गः(?)महार्णवनिपातवित् । मूलंविशालोह्यमृतंव्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः
आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महातपाः । महाकण्ठो महायोगी युगोयुगकरोहरिः
युगरूपो महारूपो वहनो गहनो नगः । न्यायो निर्वापणोऽपादः पण्डितोह्यचलोपमः
बहुमालो महामालः शिपिविष्टः सुलोचनः । विस्तारो लवणःकूपःकुसुमाङ्गःफलोदयः
ऋषभो वृषभो भङ्गो मणिबिम्बजटाधरः । इन्दुर्विसर्गः सुमुखः शूरः सर्वायुधः सहः
निवेदनः सुधाजातः स्वर्गद्वारो महाधनुः । गिरावासो विसर्गश्च सर्वलक्षणलक्षवित्
गन्धमाली च भगवाननन्तः सर्वलक्षणः । सन्तानो बहुलो बाहुः सकलः सर्वपावनः
करस्थाली कपालीच ऊर्ध्वसंहननो युवा । यन्त्रतन्त्रसुविख्यातोलोकःसर्वाश्रयोमृदुः

मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः ।
वार्यक्षः ककुभो वज्री दीप्ततेजाः सहस्रपात् ॥ १५४ ॥

सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः । सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत् ॥
पवित्रं त्रिमधुर्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः । ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नः शतपाशधृक्
कलाकाष्ठालवोमात्रा मुहूर्त्तोऽहःक्षपाक्षणः । विश्वक्षेत्रप्रदोबीजं लिङ्गमाद्यस्तुनिर्मुखः
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः । स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं प्रजाद्वारं त्रिविष्टपः
निर्वाणं हृदयश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः । देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः॥१५९
देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः । देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः ॥ १६० ॥
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः । देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ॥ १६१ ॥
देवासुरेश्वरो विष्णुर्देवासुरमहेश्वरः । सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मा स्वयं भवः ॥

उद्गतस्त्रिक्रमो वैद्यो वरदो वरजोऽम्बरः। इज्योहस्तीतथाव्याघ्रो देवसिंहो महर्षभः॥
विबुधाग्र्यःसुरःश्रेष्ठःस्वर्गदेवस्तथोत्तमः। संयुक्तःशोभनोवक्ताआशानांप्रभवोऽव्ययः
गुरुः कान्तो निजः सर्गः पवित्रः सर्ववाहनः। शृङ्गीशृङ्गप्रियोबभ्रूराजराजोनिरामयः
अभिरामः सुशरणो निरामः सर्वसाधनः। ललाटाक्षो विश्वदेहो हरिणो ब्रह्मवर्चसः
स्थावराणांपतिश्चैवनियतेन्द्रियवर्त्तनः। सिद्धार्थःसर्वभूतार्थोऽचिन्त्यःसत्यःशुचिव्रतः
व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः। विमुक्तो मुक्तकेशश्च श्रीमाञ्छ्रीवर्धनोजगत्
यथा प्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया। भक्तिमेवं पुरस्कृत्य मयायज्ञपतिर्विभुः
ततोह्यनुज्ञांप्राप्यैवंस्तुतोभक्तिमतांगतिः। तस्माल्लब्ध्वास्तवंशम्भोर्नृपस्त्रैलोक्यविश्रुतः

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य महायशाः।
गणाधिपत्यं सम्प्राप्तस्तण्डिनस्तेजसा प्रभोः॥ १७१॥

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपिश्रावयेद्ब्राह्मणानपि। अश्वमेधसहस्रस्यफलं प्राप्नोति वै द्विजाः
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः। शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः॥
मातृहा पितृहा चैव वीरहा भ्रूणहा तथा। संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा त्रिसन्ध्यंशङ्कराश्रमे

देवमिष्ट्वा त्रिसन्ध्यञ्च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १७५॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे तण्डिकृतं रुद्रसहस्रनामकथनं नाम
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

सोमवंशानुकीर्त्तनप्रसङ्गतस्त्रिधन्वादिवंशानुचरितवर्णने ययातिचरित्र-प्रतिपादनम्

सूत उवाच

त्रिधन्वा देवदेवस्य प्रसादात्तण्डिनस्तथा। अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य प्रयत्नतः
गाणपत्यं दृढं प्राप्तःसर्वदेवनमस्कृतः। आसीत्त्रिधन्वनश्चाऽपि विद्वांस्त्र्यारुणोनृपः

नस्यसत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः । तेनभार्य्याविदर्भस्यहृताहृत्वाऽमितौजसम्
पाणिग्रहणमन्त्रेषुनिष्ठामप्रापितेष्विह । तेनाऽधर्मेणसंयुक्तं राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत्

पितरं सोऽब्रवीत् त्यक्तः क गच्छामीति वै द्विजाः ! ।
पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तय ॥ ५ ॥

इत्युक्तःस विचक्रामनगराद्वचनात्पितुः । स तुसत्यव्रतोधीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिके
पित्रात्यक्तोऽवसद्वीरःपिताचास्यवनंययौ । सर्वलोकेषुविख्यातस्त्रिशङ्कुरितिवीर्य्यवान्
वसिष्ठकोपात्पुण्यात्माराजा सत्यव्रतःपुरा । विश्वामित्रोमहातेजावरंदत्वात्रिशङ्कवे
राज्येऽभिषिच्यतंपित्र्येयाजयामासतंमुनिः । मिषतांदेवतानाञ्चवसिष्ठस्यचकौशिकः
सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयद्विभुः । तस्य सत्यव्रता नाम भार्य्या केकयवंशजा
कुमारंजनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् । हरिश्चन्द्रस्य सुतो रोहितोनामवीर्य्यवान् ॥
हरितो रोहितस्याऽथ धुन्धुर्हारित उच्यते । विजयश्चसुतेजाश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः ॥
जेता क्षत्रस्य सर्वत्र विजयस्तेन स स्मृतः । रुचकस्तस्य तनयो राजा परमधार्मिकः

रुचकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद् बाहुश्च जज्ञिवान् ।
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥ १४ ॥

द्वेभार्य्येसगरस्याऽपिप्रभाभानुमतीतथा । ताभ्यामाराधितःपूर्वमौर्वोऽग्निःपुत्रकाम्यया
और्वस्तुष्टस्तयोःप्रादाद्यथेष्टंवरमुत्तमम् । एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं परा तथा ॥
अगृह्णाद्वंशकर्त्तारं प्रभाऽगृह्णात् सुतान् बहून् । एकं भानुमति पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्
ततःषष्टिसहस्राणिसुषुवे सा तु वै प्रभा । खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुहुङ्कारमार्गणैः
असमञ्जस्यतनयःसोंऽशुमान्नामविश्रुतः । तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वाऽवतारिता । भगीरथसुतश्चाऽपि श्रुतो नाम बभूव ह

नाभागस्तस्य दायादो भवभक्तः प्रतापवान् ।
अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥ २१ ॥

नाभागेनाऽम्बरीषेण भुजाभ्यां परिपालिता । बभूव वसुधाऽत्यर्थं तापत्रयविवर्जिता
अयुतायुःसुतस्तस्यसिन्धुद्वीपस्यवीर्य्यवान् । पुत्रोऽयुतायुषोधीमानृतुपर्णोमहायशाः

विव्यासहृदयज्ञो वै राजानलसखो बली। नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥
वीरसेनसुतश्चाऽन्यो यथेक्ष्वाकुकुलोद्भवः। ऋतुपर्णस्यपुत्रोऽभूत् सार्वभौमः प्रजेश्वरः
मुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसमोऽभवत्।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥ २६ ॥
ख्यातःकल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः। वसिष्ठस्तुमहातेजा क्षेत्रेकल्माषपादके
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम्। अश्मकस्योत्तरायान्तुमूलकस्तुसुतोऽभवत्
स हि रामभयाद्राजास्त्रीभिःपरिवृतोवने। बिभर्तित्राणमिच्छन्वैनारीकवचमुत्तमम्
मूलकस्याऽपिधर्मात्माराजाशतरथःसुतः। तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजात्विलबिलोबली
आसीत्वैलविलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा प्रतापवान्।
पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत् ॥ ३१ ॥
दिलीपस्तस्यपुत्रोऽभूत्खट्वांगइतिविश्रुतः। येनस्वर्गादिहागत्यमुहूर्त्तम्प्राप्यजीवितम्
त्रयोऽग्नयस्त्रयोलोकाबुद्ध्यासत्येनवैजिताः। दीर्घबाहुः सुतस्तस्यरघुस्तस्मादजायत
अजः पुत्रोरघोश्चाऽपि तस्माज्जज्ञे च वीर्य्यवान्।
राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवंशकृत् ॥ ३४ ॥
रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः। भरतोलक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥
तेषां श्रेष्ठो महातेजा रामः परमवीर्यवान्। रावणं समरे हत्वा यज्ञैरिष्ट्वा च धर्मवित्
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यं चकार सः। रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः॥
लवश्चसुमहाभागःसत्ववानभवत्सुधीः। अतिथिस्तुकुशाज्जज्ञेनिषधस्तस्यचाऽऽत्मजः
नलस्तुनिषधाज्जातोनभस्तस्मादजायत। नभसःपुण्डरीकाख्य क्षेमधन्वा ततः स्मृतः
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान्।
अहीनरः सुतस्तस्य सहस्राश्वस्ततः परः ॥ ४० ॥
शुभश्चन्द्रावलोकश्च तारापीडस्ततोऽभवत्।
तस्याऽऽत्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुचन्द्रस्ततोऽभवत् ॥ ४१ ॥
श्रुतायुरभवत्तस्माद् बृहद्बल इति स्मृतः। भारतेयो महातेजा सौभद्रेण निपातितः

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः ।
वंशे प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ॥ ४३ ॥
सर्वे पाशुपतं ज्ञानमधीत्य परमेश्वरम् । समभ्यर्च्य यथाज्ञानमिष्ट्वा यज्ञैर्यथाविधि ॥
दिवंगता महात्मानः केचिन्मुक्तात्मयोगिनः । नृगोब्राह्मणशापेन कृकलासत्वमागतः
धृष्टश्च धृष्टकेतुश्च यमबालश्च वीर्य्यवान् । रणधृष्टश्च ते पुत्रास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥
आनर्त्तोनामशर्यातेःसुकन्यानामदारिका । आनर्त्तस्याऽभवत्पुत्रो रोचमानःप्रतापवान्
रोचमानस्य रैवोऽभूद्रैवाद्रैवत एव च । ककुद्मी चाऽपरो ज्येष्ठपुत्रः पुत्रशतस्य तु ॥
रैवती यस्य सा कन्या पत्नी रामस्य विश्रुता ।
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूज्जितात्मा तु महाबली ॥ ४६ ॥
नाभागादम्बरीषस्तुविष्णुभक्तःप्रतापवान् । ऋतस्तस्यसुतःश्रीमान् सर्वधर्मविदाम्वरः
कृतस्तस्य सुधर्माऽभूत् पृषितोनामविश्रुतः । करूषस्यतुकारूषाःसर्वेप्रख्यातकीर्त्तयः॥
पृषितोहिंसयित्वागांगुरोःप्राप सुकल्मषम् । शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्येतिविश्रुता
दिष्टपुत्रस्तु नाभागस्तस्मादपि भलन्दनः । भलन्दनस्यविक्रान्तोराजाऽऽसीदजवाहनः
एते समासतःप्रोक्ता मनुपुत्रामहाभुजाः । इक्ष्वाकोःपुत्रपौत्राद्यापैलस्याऽथ वदामि वः

सूत उवाच

ऐलःपुरूरवा नाम रुद्रभक्तः प्रतापवान् । चक्रे त्वकण्टकं राज्यं देशे पुण्यतमे द्विजाः!
उत्तरे यमुनातीरे प्रयागे मुनिसेविते । प्रतिष्ठानाधिपः श्रीमान् प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठितः
तस्य पुत्राः सप्त भवन् सर्वे विततेजसः । गन्धर्वलोकविदिता भवभक्ता महाबलाः ॥
आयुर्मायुरमायुश्चविश्वायुश्चैव वीर्य्यवान् । श्रुतायुश्चशतायुश्चदिव्याश्चैवोर्वशीसुताः
आयुषस्तनयावीराः पञ्चैवाऽऽसन्महौजसः । स्वर्भानुतनयायान्तेप्रभायां जज्ञिरे नृपाः
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः । नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥
उत्पन्नाःपितृकन्यायांविरजायांमहौजसः। यतिर्ययातिःसंयातिरायातिःपञ्चमोऽन्धकः
विजातिश्चेति षड्मेसर्वे प्रख्यातकीर्त्तयः । यतिर्ज्येष्ठश्चतेषां वै ययातिस्तुततोऽवरः
ज्येष्ठस्तुयतिर्मोक्षार्थीब्रह्मभूतोऽभवत्प्रभुः । तेषां ययातिःपञ्चानांमहाबलपराक्रमः ॥

देवयानीमुशनसः सुतां भार्य्यामवाप सः । शर्मिष्ठामासुरीञ्चैव तनयां वृषपर्वणः ॥
यदुञ्च तुर्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत । तावुभौशुभकर्माणौ स्तुतौविद्याविशारदौ ॥
द्रुह्यञ्चाऽनुञ्च पूरुञ्च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । ययातये रथं तस्मै ददौ शुक्रः प्रतापवान् ॥
तोषितस्तेन विप्रेन्द्रः प्रीतः परमभास्वरम् । सुसङ्गंकाञ्चनं दिव्यमक्षये च महेषुधी
युक्तंमनोजवैरश्वैः येन कन्यां समुद्वहत् । स तेन रथमुख्येन षण्मासेनाऽजयन्महीम्
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानुषैः । भवभक्तस्तु पुण्यात्मा धर्मनिष्ठः समञ्जसः ॥
यज्ञयाजी जितक्रोधः सर्वभूतानुकम्पनः । कौरवाणाञ्च सर्वेषां स भवद्रथ उत्तमः ॥
यावन्नरेन्द्रप्रवरः कौरवो जनमेजयः । पुरोर्वंशस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारिक्षितस्य तु ॥
जगाम सरथो नाशं शापाद्गर्गस्यधीमतः । गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः
अक्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः । स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ॥
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्मकर्हिचित् । ततः स दुःखसन्तप्तो न लेभेसंविदंक्वचित्
जगाम शौनकऋषिंशरण्यं व्यथितस्तदा । इन्द्रेतिर्नामविख्यातोयोऽसौमुनिरुदारधीः
याजयामासचेन्द्रेतिस्तं नृपं जनमेजयम् । अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः !
स लोहगन्धान्निर्मुक्त पनसाच महायशाः । यज्ञस्याऽवभृथेमध्येयातोदिव्यो रथःशुभः
तस्माद्वंशात्परिभ्रष्टो वसोश्चेदिपतेः पुनः । दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः॥
ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् । प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः॥

सूत उवाच

अभ्यषिञ्चत् पुरुं पुत्रं ययातिर्नाहुषः प्रभुः । कृतोपकारस्तेनैव पुरुणा द्विजसत्तमाः !
अभिषेक्तुकामञ्च नृपं पुरुं पुत्रं कनीयसम् । ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतंप्रभो !। ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्यकनीयान् राज्यमर्हति
एते सम्बोधयामस्त्वां धर्मञ्च अनुपालय ॥ ८३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सोमवंशानुकीर्त्तनप्रसङ्गेत्रिधन्वादिवंशवर्णने पुरुराज्याभिषेकाय ययातिना ब्राह्मणप्रमुखानास्परामर्शवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सोमवंशवर्णने ययातिचरितवर्णनम्

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखावर्णाः सर्वे शृण्वन्तुमे वचः । ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथञ्चन
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नाऽनुपालितः । प्रतिकूलमतिश्चैव न स पुत्रः सतां मतः
मातापित्रोर्वचनकृत्सद्भिः पुत्रः प्रशस्यते । सपुत्रः पुत्रवद्यस्तु वर्त्तते मातृपितृषु ॥ ३॥
यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपि च । द्रुह्येन चाऽनुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ॥
पुरुणा च कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः । कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम
शुक्रेण मे समादिष्टा देवयान्याः कृते जरा । प्रार्थितेन पुनस्तेन जरा सञ्चारिणीकृता
शुक्रेण च वरोदत्तःकाव्येनोशनसास्वयम् । पुत्रोयस्त्वानुवर्त्तेत स ते राज्यधरस्त्विति
भवन्तोऽप्यनुजानन्तु पुरू राज्येऽभिषिच्यते ।

ऋषय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ॥ ८ ॥
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः । अर्हः पुरुरिदं राज्यं यः सुतो वाक्यकृत्तव
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं कर्तुमन्यथा ।

सूत उवाच

एवं जानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ॥ १०॥
अभिषिच्य ततो राज्ये पूरुं स सुतमात्मनः । दिशिदक्षिणपूर्वस्यांतुर्वसुं पुत्रमादिशत्
दक्षिणायामथोराजायदुं ज्येष्ठंन्ययोजयत् । प्रतीच्यामुत्तरस्यान्तुद्रुह्यंचाऽनुञ्चतावुभौ
सप्तद्वीपांययातिस्तुजित्वापृथ्वीं ससागराम् । व्यभजच्चत्रिधाराज्यंपुत्रेभ्योनाहुषस्तदा
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु हर्षनिर्भरमानसः । प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥१४॥
अत्रगाथामहाराज्ञापुरागीतायथातिना । याभिःप्रत्याहरेत्कामान्सर्वतोऽङ्गानिकूर्मवत्

तामिरैवनरः श्रीमान्नाऽन्यथा कर्मकोटिकृत् । नजातुकामःकामनामुपभोगेनशाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते । यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवःस्त्रियः नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् । यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् कर्मणामनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा । यदापरान्न बिभेति परे वाऽस्मान्नबिभ्यति यदा न निन्देन्न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा । या दुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजीर्य्यतिजीर्य्यतः

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ।
जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः ॥ २१ ॥

चक्षुः श्रोत्रे च जीर्य्यतेतृष्णैकानिरुपद्रवा । जीर्य्यन्तिदेहिनःसर्वेस्वभावादेवनान्यथा

जीविताशा धनाशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यते ।
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ॥ २३ ॥

तृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कलांनार्हति षोडशीम् । एवमुक्त्वास राजर्षिःसदारःप्राविशद्वनम् भृगुतुङ्गेतपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः । साधयित्वा त्वनशनं सदारःस्वर्गमाप्तवान् तस्यवंशास्तुपञ्चैतेपुण्यादेवर्षिसत्कृताः । यैर्व्याप्तापृथिवीकृत्स्नासूर्य्यस्येवमरीचिभिः धनी प्रजावानायुष्मान्कीर्त्तिमांश्चभवेन्नरः । ययातिचरितंपुण्यंपठञ्छृण्वंश्चबुद्धिमान्

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ २८ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

सोमवंशे यदुवंशवर्णनेनसह ज्यामघान्तवंशवर्णनम्

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः । संक्षेपेणाऽनुपूर्व्याच्च गदतो मे निबोधत ॥ यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः । सहस्रजित्सुतोज्येष्ठो क्रोष्टुर्नीलोजकोलघुः

सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः। सुताः शतजितः ख्यातास्त्रयः परमकीर्त्तयः
हैहयस्य हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः। हैहयस्य तु दायादो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥४॥
तस्य पुत्रोऽभवद्विप्राधर्मनेत्रइतिश्रुतः। धर्मनेत्रस्यकीर्त्तिस्तुसञ्जयस्तस्यचाऽऽत्मजः
सञ्जयस्यतुदायादोमहिष्मान्नामधार्मिकः। आसीन्महिष्मतःपुत्रोभद्रश्रेण्यः प्रतापवान्
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः। दुर्दमस्य सुतो धीमान्धनकोनामविश्रुतः
धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः। कृतवीर्य्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैवच
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कार्त्तवीर्य्यस्ततोऽर्जुनः। जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोत्तमः॥

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युर्नारायणात्मकः।

तस्य पुत्रशतान्यासीत्पञ्च तत्र महारथाः॥ १०॥

कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः। शूरश्च शूरसेनश्च धृष्टः कृष्णस्तथैवच
जयध्वजश्चराजाऽऽसीदावन्तीनांविशाम्पतिः। जयध्वजस्यपुत्रोऽभूत्तालजङ्घोमहाबलः

शतं पुत्रास्तु तस्येह तालजङ्घाः प्रकीर्त्तिताः।

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः॥ १३॥

वृषप्रभृतयश्चाऽन्ये तत्सुताः पुण्यकर्मणः। वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥

मधोः पुत्रशतं चाऽऽसीद् वृष्णिस्तस्य तु वंशभाक्।

वृष्णोस्तु वृष्णयः सर्वे मधोर्वै माधवाःस्मृताः। यादवायदुवंशेननिरुच्यन्तेतुहैहयाः

तेषां पञ्चगणा ह्येते हैहयानां महात्मनाम्॥ १६॥

वीतिहोत्राश्चहर्याताभोजाश्चावन्तयस्तथा। शूरसेनास्तुविख्यातास्तालजङ्घास्तथैवच
शूरश्च शूरसेनश्च वृषः कृष्णस्तथैव च। जयध्वजः पञ्चमस्तु विख्याता हैहयोत्तमाः
शूरश्च शूरवीरश्चशूरसेनस्य चाऽनघा.। शूरसेना इति ख्याता देशास्तेषां महात्मनाम्
वीतिहोत्रसुतश्चाऽपि विश्रुतो नर्त्त इत्युत। दुर्जयः कृष्णपुत्रस्तु बभूवाऽमित्रकर्षणः॥
क्रोष्टुश्च शृणु राजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम्। यस्याऽन्वयेतुसम्भूतोविष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः।

तस्य पुत्रोऽभवत् स्वाती कुशङ्कुस्तत् सुतोऽभवत्॥ २२॥

अथ प्रसूतिमिच्छन् वै कुशङ्कुः सुमहाबलः । महाक्रतुभिरीजेऽसौ विविधैराप्तदक्षिणैः
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः । अथ चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः॥
शशबिन्दुस्तु वै राजा अन्वयाद्व्रतमुत्तमम् । चक्रवर्ती महासत्वोमहावीर्यो बहुप्रजाः
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां सहस्राणामभूच्छतम् । शंसन्तितस्यपुत्राणामनन्तकमनुत्तमम्
अनन्तकात्सुतो यज्ञो यज्ञस्यतनयोधृतिः । उशनास्तस्य तनयः सम्प्राप्यतुमहीमिमाम्
आजहाराऽश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः । स्मृतश्चोशनसः पुत्रः सितेषुर्नाम पार्थिवः
मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिवंशवर्धनः । वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुत्तस्याऽऽत्मजःस्मृतः
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः । निहत्य रुक्मकवचोवीरान्कवचिनो रणे
धन्विनो निशितैर्बाणैरवापश्रियमुत्तमाम् । अश्वमेधेतुधर्मात्माऋत्विग्भ्यःपृथिवींददौ
जज्ञे तु रुक्मकवचात्परावृत् परवीरहा । जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्वाः परावृतः ॥
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः । परिघञ्च हरिञ्चैव विदेहेषु पितान्यसत्
रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयात् । तैस्तु प्रव्राजितोराजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे

प्रशान्तः स वनस्थोऽपि ब्राह्मणैश्च बोधितः ।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥ ३५ ॥

नर्मदातीरमेकाकी केवलं भार्यया युतः । ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा त्यक्तमन्यैरुवास सः
ज्यामघस्याऽभवद्भार्या शैव्या शीलवती सती । सा चैव तपसोग्रेण शैव्यावैसम्प्रसूयत
श्रुतं विदर्भं सुभगा वयः परिणता सती । राजपुत्रसुतायान्तु विद्वांसौ क्रथकैशिकौ
पुत्रौ विदर्भराजस्य शूरौरणविशारदौ । रोमपादस्तृतीयश्च बभ्रुस्तस्याऽऽत्मजःस्मृतः

सुधृतिस्तनयस्तस्य विद्वान् परमधार्मिकः ।
कौशिकस्तनयस्तस्मात्तस्माच्चैद्यान्वयः स्मृतः ॥ ४० ॥

क्रथोविदर्भस्यसुतःकुन्तिस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत् । कुन्तेर्वृतस्ततोजज्ञेरणधृष्टःप्रतापवान्
रणधृष्टस्य च सुतो निधृतिः परवीरहा । दशार्हो नैधृतो नाम्ना महारिगणसूदनः ॥
दशार्हस्य सुतो व्यासो जीमूत इति तत्सुतः । जीमूतपुत्रोविकृतिस्तस्य भीमरथःसुतः
अथ भीमरथस्याऽऽसीत्पुत्रो नवरथः किल । दानधर्मरतो नित्यं सत्यशीलपरायणः

तस्य चासीद्दृढरथःशकुनिस्तस्यचात्मजः । तस्मात्करम्भःसम्भूतोदेवरातोऽभवत्ततः
देवराताद्भूद्राजा देवरातिर्महायशाः । देवगर्भोपमो जज्ञे यो देवक्षत्रनामकः ॥ ४६ ॥
देवक्षत्रसुतः श्रीमान् मधुर्नाम महायशाः । मधूनां वंशकृद्राजा मधोस्तु कुरुवंशकः ॥
कुरुवंशादनुस्तस्मात्पुरुत्वान्पुरुषोत्तमः । अंशुर्जज्ञे च वैदर्भ्यां भद्रवत्यां पुरुत्वतः ॥
ऐक्ष्वाकीमवहच्चांशुः सत्वस्तस्मादजायत । सत्वात्सर्वगुणोपेतः सात्वतः कुलवर्धनः

ज्यामघस्य मया प्रोक्ता सृष्टिर्वै विस्तरेण वः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निसृष्टिं ज्यामघस्य तु ॥ ५० ॥
प्रजीवत्येति वै स्वर्गं राज्यं सौख्यञ्च विन्दति ॥ ५१ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सोमवंशवर्णने ज्यामघवंशानुवर्णनं नामाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सोमवंशानुकीर्तने श्रीकृष्णस्याऽऽविर्भावतिरोभाववर्णनम्

सूत उवाच

सात्वतः सत्यसम्पन्नः प्रजज्ञे चतुरःसुतान् । भजनं भ्राजमानञ्च दिव्यं देवावृधं नृपम्
अन्धकञ्च महाभागं वृष्णिञ्च यदुनन्दनम् । तेषां निसर्गांश्चतुरः शृणुध्वं विस्तरेण वै
सृञ्जय्यां भजनाच्चैव भ्राजमानाद्विजज्ञिरे । अयुतायुः शतायुश्च बलवान्हर्षकृत्स्मृतः
तेषां देवावृधो राजा चचार परमन्तपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्मरन्
तस्य बभ्रुरितिख्यातः पुण्यश्लोको नृपोत्तमः । अनुवंशपुराणज्ञागायन्तीतिपरिश्रुतम्

गुणा देवावृधस्याऽथ कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।
यथैव शृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथाऽन्तिकात् ॥ ६ ॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः । पुरुषाः पञ्चषष्टिस्तु षट्सहस्राणिचाऽष्ट च
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि । यज्वा दानमतिर्वीरो ब्रह्मण्यस्तु दृढव्रतः॥८॥

कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्वतानांमहारथः । तस्यान्ववायेसम्भूताभोजावैदैवतोपमाः
गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्येबभूवतुः । गान्धारीजनयामाससुमित्रंमित्रनन्दनम्
माद्री लेभे च तं पुत्रं ततः सा देवमीढुषम् । अनमित्रं शिनिञ्चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः । प्रसेनश्च महाभागः सत्राजिच्च सुतावुभौ

तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ।
स्यमन्तको नाम मणिर्दत्तस्तस्मै विवस्वता ॥ १३ ॥

पृथिव्यां सर्वरत्नानामसौ राजाऽभवन्मणिः । कदाचिन्मृगयांयातः प्रसेनेनसहैव सः
वधं प्राप्तोऽसहायश्च सिंहाद्दैवसुदारुणात् । अथपुत्रःशिनेर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्

सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
सात्यकिर्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान् ॥ १६ ॥

असङ्गो युयुधानस्य कुणिस्तस्य सुतोऽभवत् । कुणेर्युगन्धरःपुत्रःशैनेयाइतिकीर्त्तिताः
माद्रयाःसुतस्यसञ्जज्ञेसुतोवार्ष्णिर्युधाजितः ।श्वफल्कइतिविख्यातस्त्रैलोक्यहितकारकः
श्वफल्कश्च महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्त्तते । नास्ति व्याधिभयंतत्र नावृष्टिभयमप्युत

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामवाप सः ।
गान्दिनीं नाम काश्यो हि ददौ तस्मै स्वकन्यकाम् ॥ २० ॥

सा मातुरुदरस्था वै बहून्वर्षगणान्किल । वसन्ती नच सञ्जज्ञे गर्भस्थातांपिताऽब्रवीत्
जायस्व शीघ्रं भद्रन्ते किमर्थञ्चाभितिष्ठसि । प्रोवाचचैनंगर्भस्थासाकन्यागान्दिनीतदा
वर्षत्रयं प्रतिदिनं गामेकां ब्राह्मणाय तु । यदि दद्यास्ततः कुक्षेर्निर्गमिष्याम्यहं पितः
तथेत्युवाच तस्या वै पिता काममपूरयत् । दाता शूरश्च यज्वा च श्रुतवानतिथिप्रियः

तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्काद् भूरिदक्षिणः ।
रत्ना कन्या च शैवस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान् ॥ २५ ॥

अस्यामुत्पादयामास तनयांस्तान्निबोधत । उपमन्युस्तथा माङ्गुर्वृतस्तु जनमेजयः ॥
गिरिरक्षस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नो योऽरिमर्दनः । धर्मभृद् वृष्टधर्मा च गोधनोऽथ वरस्तथा
आवाहप्रतिवाहौ च सुधाराच वराङ्गना । अक्रूरस्योग्रसेन्यान्तु पुत्रौ द्वौ कुलनन्दनौ

देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसम्मतौ । सुमित्रस्य सुतो जज्ञे चित्रकश्च महायशाः॥२६॥
चित्रकस्याऽभवन् पुत्राः विपृथुः पृथुरेव च । अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधासूकगवेक्षणौ
अरिष्टनेमिरश्वश्च धर्मोऽधर्मभृदेव च । सुभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठा श्रवणे स्त्रियौ॥३१॥
अन्धकात्काश्यदुहिता लेभे च चतुरःसुतान् । कुकुरं भजमानञ्च शुचिं कम्बलवर्हिषम्
कुकुरस्य सुतोवृष्णिर्वृष्णेःशूरस्ततोऽभवत् । कपोतरोमातिबलस्तस्यपुत्रोविलोमकः

तस्याऽऽसीत् तुम्बुरुसखो विद्वान् पुत्रो नलः किल ।

ख्यायते स सुनाम्ना तु चन्दनानकदुन्दुभिः ॥ ३४ ॥

तस्मादप्यभिजित्पुत्र उत्पन्नोऽस्य पुनर्वसुः । अश्वमेधं स पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः॥
तस्यमध्येऽतिरात्रस्यसदोमध्यात्समुत्थितः । ततस्तुविद्वान्सर्वज्ञोदातायज्वापुनर्वसुः
तस्याऽपिपुत्रमिथुनंबभूवाऽभिजितःकिल । आहुकश्चाहुकीचैवख्यातौकीर्त्तिमताम्वरौ
आहुकात्काश्यदुहितुर्द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः । देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ॥३८॥
देवकस्य सुता राज्ञो जज्ञिरे त्रिदशोपमाः । देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ॥३६॥
तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन् वसुदेवाय ता ददौ । वृषदेवोपदेवा च तथान्यादेवरक्षिता
श्रीदेवा शान्तिदेवाच सहदेवातथाऽपरा । देवकी चापितासाञ्च वरिष्ठाऽभूत्सुमध्यमा
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथसहस्रशः
देवकस्य सुता पत्नी वसुदेवस्य धीमतः । बभूव वन्द्या पूज्या च देवैरपि पतिव्रता ॥
रोहिणीचमहाभागापत्नीचाऽऽनकदुन्दुभेः । पौरवी बाह्लिकसुतासम्पूज्यासीत्सुरैरपि
असूत रोहिणीरामंबलश्रेष्ठं हलायुधम् । आश्रितंकंसभीत्याचस्वात्मानंशान्ततेजसम्
जाते रामेऽथ निहते षड्गर्भे चाऽतिदक्षिणे । वसुदेवो हरिं धीमान्देवक्यामुदपादयत्
स एव परमात्माऽसौ देवदेवो जनार्दनः । हलायुधश्च भगवाननन्तो रजतप्रभः ॥ ४७
भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम् । बभूव तस्यां देवक्यां वासुदेवो जनार्दनः ॥
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी । नियोगाद्देवदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत्
सा चैव प्रकृतिः साक्षात्सर्वदेवनमस्कृता । पुरुषो भगवान् कृष्णो धर्ममोक्षफलप्रदः॥

तां कन्यां जगृहे रक्षन् कंसात् स्वस्याऽऽत्मजं तदा ।

चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्सकृतलाञ्छनम् ॥ ५१ ॥
शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम् । यशोदायै प्रदत्वा तु वसुदेवश्च बुद्धिमान् ॥५२
दत्वैनं नन्दगोपस्य रक्षतामितिचाऽब्रवीत् । रक्षकं जगतांविष्णुंस्वेच्छयाधृतविग्रहम्
प्रसादाद्देवदेवस्य शिवस्याऽमिततेजसः । रामेण सार्धं तं दत्वा वरदं परमेश्वरम् ॥
भूभारनिग्रहार्थञ्च अवतीर्णं जगद्गुरुम् । अतो वै सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति॥
अयं स गर्भो देवक्या यो नः क्लेश्यान् हरिष्यति ।
उग्रसेनात्मजायाऽथ कंसायाऽऽनकदुन्दुभिः ॥ ५६ ॥
निवेदयामासतदाजातांकन्यांसुलक्षणाम् । अस्यास्तवाष्टमोगर्भोदेवक्याःकंस!सुव्रत!
मृत्युरेव न सन्देह इति वाणी पुरातनी । ततस्तां हन्तुमारेभे कंसःसोल्लङ्घ्यचाम्बरम्
उवाचाऽष्टभुजा देवी मेघगम्भीरया गिरा । रक्षस्व तत्त्वकं देहमायातो मृत्युरेव ते
रक्षमाणस्य देहस्य मायावी कंसरूपिणः । किंकृतं दुष्कृतं मूर्ख! जातःखलुतवाऽन्तकृत्
देवक्याः स भयात्कंसो जघानैवाऽष्टमं त्विति ।
स्मरन्ति विहितो मृत्युर्देवक्यास्तनयोऽष्टमः ॥ ६१ ॥
यस्तत्प्रतिकृतौ यत्नो भोजस्यासीद्वृथाहरेः । प्रभावान्मुनिशार्दूलास्तयाचैवजडीकृतः
कंसोऽपि निहतस्तेन कृष्णेनाऽक्लिष्टकर्मणा । निहता बहवश्चाऽन्ये देवब्राह्मणघातिनः
तस्य कृष्णस्य तनयाः प्रद्युम्नप्रमुखास्तथा । बहवः परिसंख्याताःसर्वे युद्धविशारदाः
कृष्णपुत्राः समाख्याताः कृष्णेन सदृशाःसुताः । पुत्रेष्वेतेषुसर्वेषुचारुदेष्णादयो हरेः
विशिष्टा बलवन्तश्च रौक्मिणेयारिसूदनाः । षोडशस्त्रीसहस्राणिशतमेकंतथाऽधिकम्
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मिणी ।
तया द्वादशवर्षाणि कृष्णेनाऽक्लिष्टकर्मणा ॥ ६७ ॥
उष्यता वायुभक्षेण पुत्रार्थं पूजितो हरः । चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः॥
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः साम्ब एव च । एते लब्धास्तु कृष्णेन शूलपाणिप्रसादतः
तान्दृष्ट्वा तनयान्वीरान्रौक्मिणेयांश्च रुक्मिणीम् ।
जाम्बवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्य्या कृष्णस्य धीमतः ॥ ७० ॥

मम त्वंपुण्डरीकाक्ष ! विशिष्टं गुणवत्तरम् । सुरेशसम्मितं पुत्रं प्रसन्नो दातुमर्हसि
जाम्बवत्यावचःश्रुत्वा जगन्नाथस्ततोहरिः । तपस्तप्तुंसमारेभे तपोनिधिरनिन्दितः ॥
सोऽथनारायणःकृष्णः शङ्खचक्रगदाधरः । व्याघ्रपादस्य च मुनेर्गत्वाचैवाश्रमोत्तमम्
ऋषिंदृष्ट्वा त्वङ्गिरसंप्रणिपत्यजनार्दनः । दिव्यंपाशुपतंयोगं लब्धवांस्तस्य चाऽऽज्ञया
प्रलुप्तश्मश्रुकेशश्च घृताक्तो मुञ्जमेखली । दीक्षितो भगवान्कृष्णस्तताप च परन्तपः ॥
ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बः पादाङ्गुष्ठेष्वधिष्ठितः । फलाम्बनिलभोजी च ऋतुत्रयमधोक्षजः
तपसातस्यसन्तुष्टोददौरुद्रोबहून्वरान् । साम्बं जाम्बवतीपुत्रं कृष्णाय च महात्मने ॥

तथा जाम्बवती चैव साम्बं भार्य्या हरेः सुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे लब्ध्वाऽऽदित्यं यथाऽदितिः ॥ ७८ ॥

बाणस्य च तदा तेन छेदितं मुनिपुङ्गवाः !। भुजानाञ्चैव साहस्रं शापाद्रुद्रस्य धीमतः
अथ दैत्यवधञ्चक्रेहलायुधसहायवान् ।तथा दुष्टक्षितीशानां लीलयैव रणाजिरे ॥ ८०
स हत्वा देवसम्भूतं वग्कं दैत्यपुङ्गवम् । ब्राह्मणस्योर्ध्वचक्रस्य वरदानान्महात्मनः
स्वोपभोग्यानिकन्यानां षोडशातुलविक्रमः । शताधिकानि जग्राहसहस्राणिमहाबलः
शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् । संहृत्य तत्कुलञ्चैव प्रभासेऽतिष्ठदच्युतः ॥
तदा तस्यैव तु गतं वर्षाणामधिकंशतम् । कृष्णस्य द्वारकायांवैजराक्लेशापहारिणः
विश्वामित्रस्य कण्वस्य नारदस्यच धीमतः । शापंपिण्डारकेऽरक्षद्वचोदुर्वाससस्तदा

त्यक्त्वा च मानुषं रूपं जरकास्त्रच्छलेन तु ।
अनुगृह्य च कृष्णोऽपि लुब्धकं प्रययौ दिवम् ॥ ८६ ॥

अष्टावक्रस्यशापेन भार्य्याःकृष्णस्यधीमतः । चौरैश्चाऽपहृताःसर्वास्तस्यमायाबलेनच

बलभद्रोऽपि सन्त्यज्य नागो भूत्वा जगाम च ।
महिष्यस्तस्य कृष्णस्य रुक्मिणीप्रमुखाः शुभाः ॥ ८८ ॥

महाग्निं विविशुः सर्वाः कृष्णेनाऽक्लिष्टकर्मणा । रेवतीच तथा देवी बलभद्रेण धीमता
प्रविष्टा पावकं विप्राः! सावभर्तृपथं गता । प्रेतकार्य्यं हरेः कृत्वापार्थःपरमवीर्य्यवान्
रामस्यच तथाऽन्येषांवृष्णीनामपिसुव्रताः !। कन्दमूलफलैस्तस्यबलिकार्य्यञ्चकारसः

द्रव्याभावास्स्वयपार्थोभ्रातृभिश्चदिवगत । एवसक्षेपत प्रोक कृष्णस्याऽक्लिष्टकर्मण
प्रभावोपिलयश्चैवस्वेच्छयैव महात्मन । इत्येतत्सोमवशाना नृपाणाञ्चरित द्विजा '
य' पठेच्छणुयाद्वापिब्राह्मणाञ्छ्रावयेदपि । सयातिवैष्णवलोक नात्रकार्य्याविचारणा
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सोमवशानुकीर्त्तन नामैकोनसप्ततितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

अव्यक्तान्महदादीनामाविर्भावस्ततोनानासृष्टीनाम्वर्णनम्

ऋषय ऊचु

आदिसर्गस्त्वयासूत' सूचितो न प्रकाशित । साम्प्रत विस्तरेणैववक्तुमर्हसिसुव्रत '

सूत उवाच

महेश्वरो महादेव प्रकृते पुरुषस्यच । परत्वे सस्थितो देव परमात्मा मुनीश्वरा '
अव्यक्त चेश्वरात्तस्मादभवत्कारण परम् । प्रधान प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तका
गन्धवर्णरसैर्हीन शब्दस्पर्शविवर्जितम् । अजर ध्रुवमक्षय्य नित्य स्वात्मन्यवस्थितम्
जगद्योनि महाभूत पर ब्रह्म सनातनम् । विग्रह सर्वभूतानामीश्वराज्ञाप्रचोदितम् ॥
अनाद्यन्तमज सूक्ष्म त्रिगुण प्रभवाऽव्ययम् । अप्रकाशमविज्ञेय ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ ६॥
अस्यात्मनासर्वमिदव्याप्तत्वासीच्छिवेच्छया । गुणसाम्येतदातस्मिन्नविभागेतमोमये
सर्गकालेप्रधानस्यक्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै । गुणभावादव्यज्यमानो महान्प्रादुर्बभूव ह
सूक्ष्मेण महता चाऽथ अव्यक्तेनसमावृतम् । सत्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्तामात्रप्रकाशक
मनोमहास्तुविज्ञेयमेक तत्कारण स्मृतम् । समुत्पन्न लिङ्गमात्र क्षेत्रज्ञाधिष्ठित हितम्

धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्वार्थहेतव ।
महान्सृष्टि विकुरुते चोद्यमान सिसृक्षया ॥ ११ ॥

मनोमहान्मतिर्ब्रह्मापूर्बुद्धि ख्यातिरीश्वर । प्रज्ञाचिति स्मृति सविद्विश्वेशश्चेतिस स्मृत

मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टाफलं ततः । सौक्ष्म्यात्तेन विभक्तन्तु येनतन्मन उच्यते
तत्वानामग्रजोयस्मान्महांश्चपरिमाणतः । विशेषेभ्योगुणेभ्योऽपिमहानितिततःस्मृतः
बिभर्त्तिमानं मनुते विभागं मन्यतेऽपिच । पुरुषोभोगसम्बन्धात्तेनचाऽसौमतिःस्मृतः
बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च भावानां सकलाश्रयात् । यस्माद्धारयते भावान्ब्रह्मतेननिरुच्यते
यः पूरयति यस्माच्चकृत्स्नान्देवाननुग्रहैः । नयते तत्वभावञ्च तेन पूरिति चोच्यते ॥
बुध्यते पुरुषश्चाऽत्र सर्वान्भावान् हितंतथा । यस्माद्बोधयतेचैवबुद्धिस्तेननिरुच्यते
ख्यातिःप्रत्युपभोगश्चयस्मात्संवर्त्ततेततः । भोगस्यज्ञाननिष्ठत्वात्तेनख्यातिरितिस्मृतः
ख्यायते तद्गुणैर्वापिज्ञानादिभिरनेकशः । तस्माच्च महतः संज्ञाख्यातिरित्यभिधीयते

साक्षात्सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ।
यस्माज्ज्ञानानुगश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥ २१ ॥

ज्ञानादीनि च रूपाणिबहुकर्मफलानिच । विनोतियस्माद्भोगार्थंतेनाऽसौचितिरुच्यते
वर्त्तमानव्यतीतानि तथैवाऽनागतान्यपि । स्मरतेसर्वकार्य्याणितेनाऽसौस्मृतिरुच्यते
कृत्स्नञ्चविन्दतेज्ञानंयस्मान्माहात्म्यमुत्तमम् ।तस्माद्विन्देर्विदेश्चैवसम्विदित्यभिधीयते
विद्यतेऽपिच सर्वत्रतस्मिन्सर्वञ्चविन्दति । तस्मात्सम्विदितिप्रोक्तोमहद्भिर्मुनिसत्तमाः
जानातेर्ज्ञानमित्याहुर्भगवान् ज्ञानसन्निधिः । बन्धनादिपरीभावादीश्वरः प्रोच्यतेबुधैः
पर्य्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् । व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैर्देवसद्भावचिन्तकैः
महान्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानःसिसृक्षया । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्चतस्यवृत्तिद्वयंस्मृतम्
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् । महता च वृतः सर्गो भूतादिर्बाह्यतस्तु सः
तस्मादेव तमोद्रिक्तादहङ्कारादजायत । भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह । आकाशंसुषिरं तस्मादुत्पन्नंशब्दलक्षणम्
आकाशंशब्दमात्रन्तुस्पर्शमात्रं समावृणोत् । वायुश्चाऽपिविकुर्वाणोरूपमात्रं ससर्ज ह
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते । स्पर्शमात्रस्तु वै वायू रूपमात्रं ससर्ज ह ॥
ज्योतिश्चाऽपि विकुर्वाणंरसमात्रंससर्जह । सम्भवन्तिततोह्यापस्ताचैसर्वरसात्मिकाः

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्रोऽग्निरावृणोत् ।

आपश्चापि विकुर्वत्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥ ३५ ॥
सङ्घातोजायतेतस्मात्तस्यगन्धोगुणोमतः । तस्मिंस्तस्मिंश्चतन्मात्रंतेनतन्मात्रतास्मृता
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततस्तु ते । प्रशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥
भूततन्मात्रसर्गोऽयंविज्ञेयस्तुपरस्परम् । वैकारिकादहङ्कारात्सत्वोद्रिकात्तुसात्विकात्
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तते । बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च
साधकानीन्द्रियाणिस्युर्देवा वैकारिकादश । एकादशंमनस्तत्रस्वगुणेनोभयात्मकम्
श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैव पञ्चमी । शब्दादीनामवाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानितानिवै
पादौपायुरुपस्थश्चहस्तौवाग्दशमीभवेत् । गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पंवाक्यञ्चकर्मतत्
आकाशं शब्दमात्रञ्च स्पर्शमात्रं समाविशत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥ ४३ ॥
रूपं तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ । त्रिगुणस्तु ततस्त्वग्निः सशब्दस्पर्शरूपवान्
सशब्दस्पर्शरूपञ्च रसमात्रं समाविशत् । तस्माच्चतुर्गुणाआपोविज्ञेयास्तुरसात्मिकाः
शब्दस्पर्शञ्चरूपञ्च रसोवैगन्धमाविशत् । सङ्गतागन्धमात्रेण आविशन्तो महीमिमाम्
तस्मात्पञ्चगुणाभूमिःस्थूलाभूतेषुशस्यते । शान्ताघोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृताः
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् । भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकाचलावृतम्
विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च तेस्मृताः । गुणंपूर्वस्यसर्गस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तराः
तेषांयावच्चतद्यच्चयच्चतावद्गुणंस्मृतम् । उपलभ्याऽऽप्सु वै गन्धंकेचिद्ब्रूयुरपांगुणम्
पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ।
एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात् ॥ ५१ ॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च । महादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥
एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् । विशेषेभ्योऽण्डमभवन्महत्तदुदकेशयम् ॥५३॥
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम् ।
आपो दशगुणेनैतास्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥ ५४ ॥
तेजो दशगुणेनैव वायुनाबाह्यतो वृतम् । वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसावृतः ॥ ५५॥

आकाशेनावृतोवायुःखन्तुभूतादिनावृतम् । भूतादिर्महतावाऽपिअव्यक्तेनावृतो महान्
शर्वश्चाण्डकपालस्थोभवश्चाम्भसिसुव्रताः!। रुद्रोऽग्निमध्येभगवानुग्रोवायौपुनःस्मृतः
भीमश्चाऽवनिमध्यस्थो ह्यहङ्कारे महेश्वरः । बुद्धौ च भगवानीशः सर्वतः परमेश्वरः ॥
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् । एता आवृत्य चान्योऽन्यमष्टौप्रकृतयःस्थिताः
प्रसर्गकाले स्थित्वातु ग्रसन्त्येताःपरस्परम् । एवं परस्परोत्पन्नाधारयन्ति परस्परम्
आधाराधेयभावेन विकारास्तेविकारिषु । महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्
अण्डाज्जज्ञे स एवेशः पुरुषोऽर्कसमप्रभः । तस्मिन्कार्यस्य करणं संसिद्धंस्वेच्छयैव तु
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । तस्य वामाङ्गजो विष्णुः सर्वदेवनमस्कृतः
लक्ष्म्या देव्या ह्यभूद्देव इच्छया परमेष्ठिनः । दक्षिणाङ्गभवोब्रह्मा सरस्वत्या जगद्गुरुः

तस्मिन्नण्डे इमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥ ६५ ॥

लोकालोकद्वयंकिञ्चिदण्डेह्यस्मिन्समर्पितम् । यत्तत्सृष्टौप्रसङ्ख्यातंमयाकालान्तरंद्विजाः
एतत् कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् । रात्रिश्चैतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नतः ॥
अहस्तस्य तु या सृष्टिः रात्रिश्चप्रलयःस्मृतः । नाहस्तुविद्यतेतस्यनरात्रिरितिधारयेत्
उपचारस्तु क्रियते लोकानां हितकाम्यया । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानिपञ्चच
तस्मात्सर्वाणि भूतानि बुद्धिश्च सह दैवतैः । अहस्तिष्ठन्तिसर्वाणि परमेशस्यधीमतः
अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसम्भवः । स्वात्मन्यवस्थितेव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते
साधर्म्येणाऽवतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ । तमःसत्वरजोपेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ॥
अनुपृक्तावभूतां तावोतप्रोतौ परस्परम् । गुणसाम्येलयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥

तिले यथा भवेत्तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्वे च रजस्यनुसृतं जगत् ॥ ७४ ॥

उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरींतथा । अहर्मुखे प्रवृत्तश्च परः प्रकृतिसम्भवः ॥
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः । प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्य स महेश्वरः ॥७६ ॥
महेश्वरात्त्रयो देवा जज्ञिरे जगदीश्वरात् । शाश्वताः परमागुह्याःसर्वात्मानःशरीरिणः

एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणा । एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयोऽग्नय
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रता । परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ॥ ७९॥

अन्योऽन्यमिथुना ह्येते अन्योऽन्यमुपजीविन ।

क्षणं वियोगो न ह्येषा न त्यजन्ति परस्परम् ॥ ८० ॥

ईश्वरस्तु परो देवो विष्णुश्च महत पर । ब्रह्मा च रजसा युक्त सर्गादौ हि प्रवर्त्तते

पर स पुरुषो ज्ञेय प्रकृति सा परा स्मृता ॥ ८२ ॥

अधिष्ठिता सा हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमने समन्तात् ।

अनुप्रवृत्तस्तु महांस्तदेना चिरस्थिरत्वाद्विषय श्रित स्वयम् ॥ ८३ ॥

प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकाल प्रवर्त्तते । ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात् ॥
ससिद्ध कार्यकरणे रुद्रश्चाऽग्रे ह्यवर्त्तत । तेजसाऽप्रतिमो धीमानव्यक्त सम्प्रकाशक
स वै शरीरी प्रथम स वै पुरुष उच्यते । ब्रह्मा च भगवांस्तस्माच्चतुर्वक्त्र प्रजापति
संसिद्ध कार्यकरणे तथा वै समवर्त्तत । एक एव महादेवस्त्रिधैव स व्यवस्थित ॥
अप्रतीपेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण समन्वित । धर्मेण चाऽप्रतीपेन वैराग्येण च तेऽन्विता ॥
अव्यक्ताज्जायतेतेषामनसायदुयदीरितम् । वशीकृतत्वात्त्रैगुण्य सापेक्षत्वात्स्वभावत

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चाऽन्तक स्मृत ।

सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्था स्वयम्भुव ॥ ६० ॥

ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्कालत्वेसङ्क्षिपत्यपि । पुरुषत्वेह्युदासीनस्तिस्रोऽवस्था प्रजापते
ब्रह्मा कमलगर्भाभो रुद्र कालाग्निसन्निभ । पुरुष पुण्डरीकाक्षो रूप तत्परमात्मन
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधापुन । महेश्वर शरीराणि करोति विकरोति च
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया । महेश्वर शरीराणि करोति विकरोति च
त्रिधा यद्वर्त्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते । चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूह प्रकीर्त्तित
यदाप्नोति यदादत्तेयच्चाऽत्तिविषयानयम् । यच्चाऽस्यसततभावस्तस्मादात्मानिरुच्यते
ऋषि सर्वगतत्वाच्चशरीरीसोऽस्ययत्प्रभु । स्वामित्वमस्ययत्सर्वं विष्णु सर्वप्रवेशनात्
भगवान् भगवद्भावान्निर्मलत्वाच्छिव स्मृत । परम सम्प्रकृष्टत्वादवनादोमितिस्मृतः

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः । त्रिधा विभज्यचात्मानंत्रैलोक्येसम्प्रवर्त्तते
सृजते ग्रसते चैव रक्षते च त्रिभिः स्वयम् ।
आदित्वादादिदेवोऽसौ अजातत्वादजः स्मृतः ॥ १०० ॥
पातियस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरितिस्मृतः । देवेषुचमहान्देवोमहादेवस्ततः स्मृतः
सर्वगत्वाच्च देवानामवश्यत्वाच्च ईश्वरः । बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानादेकत्वात्केवलः स्मृतः । यस्मात्पूर्यां स शेतेच तस्मात्पूरुषउच्यते
अनादित्वाच्च पूर्वत्वात्स्वयम्भूरिति संस्मृत ।
याज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात् ॥ १०४ ॥
क्रमणः क्रमणीयत्वात्पालकश्चाऽपि पालनात् ।
आदित्यसञ्ज्ञः कपिलो ह्यग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ॥
हिरण्मयस्यगर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापिगर्भजः । तस्माद्धिरण्यगर्भत्वंपुराणेऽस्मिन्निरुच्यते
स्वयम्भुवोऽपि वृत्तस्य कालो विश्वात्मनस्तुयः । नशक्यःपरिसङ्ख्यातुमपिवर्षशतैरपि
कालसङ्ख्याविवृत्तस्य परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः ।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्याऽन्ते प्रतिसृज्यते ॥ १०८ ॥
कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानियानिवै । समतीतानिकल्पानां तावच्छेषाः परे तु ये
यस्त्वयं वर्त्तते कल्पो वाराहस्तं निबोधत ॥ १०६ ॥
प्रथमः साम्प्रतस्तेषांकल्पोऽयंवर्त्ततेद्विजाः ।। यस्मिन्स्वायम्भुवाद्यास्तुमनवस्तेचतुर्दश
अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता
पूर्ण युगसहस्रं वै परिपाल्या महेश्वरैः । प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम्
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवाऽन्तराणिच । कथितानिभविष्यन्तिकल्पः कल्पेन चैवहि
अतीतानिच कल्पानि सोदर्काणिसहान्वयैः । अनागतेषुतद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता
आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टे च पृथिवीतले । शान्ततारैकनीरेऽस्मिन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । तदा भवति वै ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रियः । ब्रह्मा नारायणाख्यस्तुसुष्वापसलिलेतदा

सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदैक्षत । इमश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति
आपो नाराश्च सूनव इत्यपां नाम शुश्रुमः । आपूर्यताभिरयनं कृतवानात्मनो यतः ॥
अप्सु शेते यतस्तस्मात्ततो नारायणः स्मृतः । चतुर्युगसहस्रस्य नैशङ्कालमुपास्यतः॥
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् । ब्रह्मातु सलिले तस्मिन्वायुर्भूत्वा समाचरत्

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्तु सः ।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायाऽन्तर्गतां महीम् ॥ १२८ ॥

अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं पुनः । अकरोत् स तनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ॥
ततो महान्माभगवान् दिव्यरूपमचिन्तयत् । सलिलेनाऽऽप्लुतांभूमिंदृष्ट्वासतुसमन्ततः
किन्तु रूपमहङ्कृत्वा उद्धरेयं महीमिमाम् । जलक्रीडानुसदृशं वाराहं रूपमाविशत् ॥
अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसञ्ज्ञितम् । पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥
अद्भिः सञ्छादितां भूमिं सतामाशुप्रजापतिः । उपगम्योज्जहारैनामापश्चापिसमाविशत्
सामुद्रा वै समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च । रसातलतले मग्नां रसातलपुटे गताम् ॥
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाऽभ्युज्जहार गाम् । ततःस्वस्थानमानीय पृथिवींपृथिवीधरः
मुमोच पूर्ववदसौ धारयित्वा धराधरः । तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता
ततसमा ह्युरुदेहत्वान्न महीयातिसम्प्लवम् । तत उत्क्षिप्यतां देवो जगतःस्थापनेच्छया

पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।

पृथिवीञ्च समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥ १३२ ॥

प्राक् सर्गे दह्यमानेतु तदासम्वर्त्तकाग्निना । तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभूरिविस्तराः
शैत्यादेकार्णवेतस्मिन्वायुनातेनसंहताः । निषिक्तायत्रयत्राऽऽसंस्तत्रतत्राचलाऽभवत्

तदाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।

गिरयो हि निगीर्णत्वाच्छयानत्वाच्छिलोच्चयाः ॥ १३५ ॥

ततस्तेषु विकीर्णेषु कोटिशो हि गिरिष्वथ । विश्वकर्माविभजते कल्पादिषु पुनःपुनः
ससमुद्रामिमां पृथ्वींसप्तद्वीपांसपर्वताम् । भूराद्यांश्चतुरोलोकान्पुनःसोऽथव्यकल्पयत्
लोकान्प्रकल्पयित्वाऽथप्रजासर्गंससर्जह । ब्रह्मास्वयम्भूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः

ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां कल्पादिषु यथापुरा । तस्याऽभिध्यायतःसर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम्
बुद्ध्याश्च समकालेवैप्रादुर्भूतस्तमोमयः । तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रश्चाऽन्धसञ्ज्ञितः
अविद्या पञ्चपर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मनः । पञ्चधाऽवस्थितः सर्गोध्यायतःसोऽभिमानिनः
सम्वृतस्तमसा चैव बीजाङ्कुरवदावृतः । बहिरन्तश्चाप्रकाशस्तब्धो निःसञ्ज्ञ एव च ॥

यस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्दुःखानि करणानि च ।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ १४३ ॥

मुख्यसर्गं तथाभूतं दृष्ट्वा ब्रह्मा ह्यसाधकम् । अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततोऽन्यंसोह्यमन्यत

तस्याऽभिध्यायतश्चैव तिर्य्यक्स्रोता ह्यवर्त्तत ।
यस्मात्तिर्य्यक्प्रवृत्तः स तिर्य्यक्स्रोतास्ततः स्मृतः ॥१४५ ॥
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ! ।
तस्याऽभिध्यायतोऽन्यं वै सात्विकः समवर्त्तत ॥ १४६ ॥
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स वै चोर्ध्वं व्यवस्थितः ।
यस्मात्प्रवर्त्तते चोर्ध्वमूर्ध्वस्रोतास्ततः स्मृतः ॥ १४७ ॥

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः । प्रकाशाबहिरन्तश्चऊर्ध्वस्रोतोभवा स्मृताः ॥
तेसत्वस्यवयोगेनसगुणाःसत्वोद्भवाःस्मृताः । ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयोवैदेवसर्गस्तुसस्मृतः

प्रकाशाद् बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ।
ते ऊर्ध्वस्रोतसो ज्ञेयास्तुष्टात्मानो बुधैः स्मृताः ॥ १५० ॥

ऊर्ध्वस्रोतःसुसृष्टेषुदेवेषु वरदः प्रभुः । प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत
ससर्ज सर्गमन्यं हि साधकंप्रभुरीश्वरः । ततोऽभिध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्तदा

प्रादुरासीत्तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधकः ।
यस्मादर्वाग्व्यवर्त्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते ॥ १५३ ॥

ते च प्रकाशबहुलास्तमः पृक्ता रजोऽधिकाः । तस्मात्तेदुःखबहुलाभूयोभूयश्चकारिणः
संवृता बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्चते । लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधातुव्यवस्थिताः
सिद्धात्मानोमनुष्यास्तेगन्धर्वसहधर्मिणः । इत्येषतैजसःसर्गोह्यर्वाक्स्रोताःप्रकीर्त्तिताः

पञ्चमोऽनुग्रह सर्गश्चतुर्धातु व्यवस्थित । विपर्य्ययेणशत्तयावसिद्ध्यातुष्ट्यातथैवच
स्थावरेषुविपर्य्यासस्तिर्यग्योनिषुशक्तित । सिद्धात्मानोमनुष्यास्तुतुष्टिर्देवेषुकृत्स्नश
इत्येष प्राकृत सर्गो वैकृतो नवम स्मृत । भूतादिकाना भूताना षष्ठ सर्ग सउच्यते
निवृत्तं वर्त्तमानञ्च तेषा जानन्ति वै पुन । भूतादिकाना भूताना सप्तम सर्ग एव च
ते परिग्राहिण सर्वेसविभागरता पुन । खादनाश्चाऽप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्चते
विपर्य्ययेण भूतादिरशतया च व्यवस्थित । प्रथमो महत सर्गो विज्ञेयोब्रह्मण स्मृत
तन्मात्राणां द्वितीयस्तुभूतसर्ग सउच्यते । वैकारिकस्तृतीयस्तुसर्गऐन्द्रियक स्मृत
इत्येष प्राकृत सर्ग सम्भूतो बुद्धिपूर्वक ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थश्च मुख्या वै स्थावरा स्मृता ॥ १६४ ॥
ततोऽर्वाक्स्रोतसासर्ग सप्तम सतुमानुष । अष्टमोऽनुग्रहससर्ग सात्विकस्तामसश्चस
पञ्चैते वैकृता सर्गा प्राकृतास्तु त्रय स्मृता । प्राकृतो वैकृतश्चैवकुमारोनवम स्मृत
अबुद्धिपूर्वका सर्गा प्राकृतास्तु त्रय स्मृता । बुद्धिपूर्वप्रवर्त्तन्ते षट् पुनर्ब्रह्मणस्तु ते
विस्तरानुग्रह सर्ग कीर्त्यमानोनिबोधत । चतुर्धाऽवस्थित सोऽथसर्वभूतेषुकृत्स्नश
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृता । परस्परानुरक्ताश्च कारणैश्च बुधै स्मृता
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मन समान । ऋभु सनत्कुमारश्चद्वावेतावूर्ध्वरेतसौ
पूर्वोत्पन्नौ पुरातेभ्य सर्वेषामपिपूर्वजौ । व्यतीते त्वग्रमे कल्पे पुराणौलोकसाक्षिणौ
तौ वाराहे तु भूर्लोके तेज सङ्क्षिप्यधिष्ठितौ ।
तावुभौ मोक्षकर्माणावारोग्यात्मानमात्मनि ॥ १७२ ॥
प्रजा धर्मञ्च कामञ्च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ । यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार सइहोच्यते
तस्मात्सनत्कुमारेति नामाऽस्येहप्रकीर्त्तितम् । सनन्दसनकञ्चैव विद्वासञ्च सनातनम्
विज्ञानेन निवृत्तास्ते व्यवर्त्तन्त महौजस । सम्बुद्धाश्चैव नानात्वेअप्रवृत्ताश्चयोगिन
असृष्ट्वैव प्रजासगप्रतिसर्गं गता पुन । ततस्तेषु व्यतीतेषु ततोऽन्यान्साधकान्सुतान्
मानसानसृजद् ब्रह्मा पुन स्थानाभिमानिन । आभूतसम्प्लवावस्थायैरिय विधृता मही॥
आपोऽग्नि पृथिवीं वायुमन्तरिक्ष दिवन्तथा । समुद्राश्च नदीश्चैवतथाशैलवनस्पतीन्

ओषधीनां तथात्मानो वल्लीनां वृक्षवीरुधाम् ।
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्त्ताः सन्धिरात्र्यहान् ॥ १७६ ॥

अर्द्धमासांश्चमासांश्च अयनाब्दयुगानिच। स्थानाभिमानिनःसर्वेस्थानाख्याश्चैवतेस्मृताः
देवानृषींश्च महतो गदतस्तान्निबोधत । मरीचिं भृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वशिष्ठञ्च सोऽसृजन्मानसान्नव । नव ब्रह्माणइत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥
तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषांब्रह्मवादिनाम् । स्थानानिकल्पयामासपूर्ववत्पद्मसम्भवः
ततोऽसृजच्च सङ्कल्पंधर्म्मञ्चैवसुखावहम् । ततोऽसृजद्व्यवसायात्तु धर्मं देवो महेश्वरः
सङ्कल्पं चैव सङ्कल्पात्सर्वलोकपितामहः । मानसश्च रुचिर्नाम विजज्ञे ब्रह्मणः प्रभोः॥
प्राणाद्ब्रह्माऽसृजद्दक्षंचक्षुर्भ्याञ्च मरीचिनम् । भृगुस्तुहृदयाज्जज्ञे ऋषिःसलिलजन्मनः
शिरसोऽङ्गिरसश्चैवश्रोत्रादत्रिन्तथासृजत् । पुलस्त्यंचतथोदानाद्व्यानाच्चपुलहम्पुनः
समानजो वसिष्ठश्चअपानान्निर्ममेक्रतुम् । इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा दिव्याएकादशस्मृताः॥
धर्मादयः प्रथमजाः सर्वे ते ब्रह्मणः सुताः । भृग्वादयस्तु ते सृष्टा नवैते ब्रह्मवादिनः
गृहमेधिनः पुराणास्तेधर्म्मस्तैःसम्प्रवर्त्तितः । तेषांद्वादशतेवेशादिव्यादेवगुणान्विताः
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः । ऋभुः सनत्कुमारश्चद्वावेतावूर्ध्वरेतसौ ॥
पूर्वोत्पन्नौ परन्तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ । व्यतीते त्वष्टमेकल्पे पुराणौलोकसाक्षिणौ
विराजेतामुभौ लोके तेजः सङ्क्षिप्यधिष्ठितौ ।
तावुभौ योगकर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि ॥ १६३ ॥

प्रजां धर्म्मञ्च कामञ्च त्यक्त्वावैराग्यमास्थितौ । यथोत्पन्नःसएवेहकुमारः सइहोच्यते
तस्मात्सनत्कुमारेति नामाऽस्येह प्रतिष्ठितम् ।
ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः ॥ १६५ ॥

तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्य्यैस्तैः कारणैःसह । क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्तगात्रेभ्यस्तस्य धीमतः
ततोदेवासुरपितॄन्मानुषांश्च चतुष्टयम् । सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत्॥
ततस्तु युञ्जतस्तस्य तमोमात्रसमुद्भवम् । समभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नेन प्रजापतेः ॥
ततोऽस्यजघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेसुताः । असुःप्राणःस्मृतोविप्रास्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः

यया सृष्टा सुराः सर्वे तान्तनुं स व्यपोहत । सापविद्धा तनुस्तेन सद्योरात्रिरजायत
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिर्नियामिका ।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वपन्त्युत ॥ २०१ ॥
सृष्ट्वा सुरांस्ततः सो वै तनुमन्यामगृह्णत । अव्यक्तां सत्वबहुलांततस्तांसोऽभ्यपूजयत्
ततस्तां युञ्जतस्तस्यप्रियमासीत्प्रजापतेः । ततो मुखात्समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः
यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्त्तिताः ।
धातुर्दिविति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते ॥ २०४ ॥
यस्मात्तस्य तु दीव्यन्तो जज्ञिरे तेन देवताः । देवान्सृष्ट्वाऽथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत॥
उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्योऽहः समजायत । तस्मादहो धर्मयुक्तं देवताः समुपासते
सत्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां सोऽभ्यमन्यत ।
पितृवन्मन्यमानस्य पुत्रस्तान्ध्यायतः प्रभोः ॥ २०७ ॥
पितरोह्यपपक्षाभ्यां राव्यह्नोरन्तरेऽभवत् । तस्मात्ते पितरो देवाः पितृत्वंतेनतेषु तत्
यया सृष्टास्तु पितरस्तनुन्तां स व्यपोहत । सापविद्धातनुस्तेनसद्यःसन्ध्या व्यजायत
यस्मादहर्देवतानांरात्रिर्या साऽऽसुरी स्मृता । तयोर्मध्ये तु पैत्रीयातनुःसातुगरीयसी
तस्माद्देवासुराःसर्वेऋषयोमानवास्तथा । उपासन्तेमुदायुक्ताराव्यह्नोर्मध्यमान्तनुम्
ततोह्यन्यां पुनर्ब्रह्मा तनुम्वै समगृह्णत । रजोमात्रात्मिकायान्तु मनसा सोऽसृजत्प्रभुः
रजःप्रियांस्ततःसोऽथमानसानसृजत्सुतान् । मनस्विनस्ततस्तस्यमानवाजज्ञिरेसुताः
सृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चाऽपि स्वां तनुन्तामपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥ २१४ ॥
यस्माद्भवन्ति संहृष्टाज्योत्स्नाया उद्भवेप्रजाः । इत्येतास्तनवस्तेनह्यपविद्धामहात्मना
सद्योराव्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ।
ज्योत्स्ना सन्ध्या अहश्चैव सत्वमात्रात्मकं त्रयम् ॥ २१६ ॥
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मान्निशात्मिका ।
तस्माद्देवाविधातन्वा तुष्ट्या सृष्टा मुखात्तु वै ॥ २१७ ॥

यस्मात्तेषांदिवाजन्म बलिनस्तेन वै दिवा । तन्वा ययासुरान्रात्रौ जघनादसृजत्प्रभु ॥
प्राणेभ्यो निशिजन्मानो बलिनो निशितेन ते । एतान्येव भविष्याणांदेवानामसुरै सह
पितृणा मानवाना च अतीतानागतेषु वै । मन्वन्तरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवन्ति हि

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्यम्भांसि तानि वै ।
भान्ति यस्मात्ततोऽम्भांसि शब्दोऽयं सुमनीषिभि ॥ २२१ ॥

भातिर्दीप्तौनिगदित पुनश्चाऽथप्रजापति । सोऽम्भांस्येतानिसृष्ट्वातु देवमानुषदानवान्

पितॄंश्चैवाऽसृजत्तन्वा आत्मनो विविधान्पुन ।
तामुत्सृज्य तनु ज्योत्स्ना ततोऽन्या प्राप्य स प्रभु ॥ २२३ ॥
मूर्त्ति तमोरज प्राया पुनरेवाऽभ्यपूजयत् ।
अन्धकारे क्षुधाविष्टास्ततोऽन्यान्सोऽसृजत्प्रभु ॥ २२४ ॥

तेनसृष्टा क्षुधात्मानोअम्भास्यादातुमुद्यता । अम्भांस्येतानिरक्षामउक्तवन्तस्तुतेषु ये

राक्षसा नाम ते यस्मात्क्षुधाविष्टा निशाचरा ।
येऽब्रुवन्यक्षमोऽम्भासि तेषा हृष्टा परस्परम् ॥ २२६ ॥

तेनतेकर्मणा यक्षा गुह्यका गूढकर्मणा । रक्षेति पालने चाऽपि धातुरेव विभाष्यते ॥
एष च यक्षतिर्धातुर्भक्षणेस निरुच्यते । त दृष्ट्वाह्यप्रियेणाऽस्य केशा शीर्णास्तुधीमत

ते शीर्णाश्चोत्थिता ह्यूर्ध्वन्ते चैवाऽऽरुरुधु प्रभुम् ।
हीनास्तच्छिरसो वाला यस्माच्चैवाऽवसर्पिण ॥ २२९ ॥
व्यालात्मान स्मृता वाला हीनत्वादहय स्मृता ।
पतत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवाऽवसर्पणात् ॥ २३० ॥

तस्यक्रोधोद्भवो योऽसौ अग्निगर्भ सुदारुण । सतुसर्पान्सहोत्पन्नानाविवेशविषात्मक
सर्पान्सृष्ट्वा तत क्रुद्ध क्रोधात्मानोविनिर्ममे । वर्णेन कपिशेनोग्रास्तेभूता पिशिताशना
भूतत्वात्तेस्मृता भूता पिशाचा पिशिताशनात् । धयतस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेयदा
धयतात्येष वै धातु पानत्वे परिपठ्यते । धयन्तो जज्ञिरे वाच गन्धर्वास्तेनतेस्मृता
अष्टस्वेतासु सृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभु । तत स्वच्छन्दतोऽन्यानिवयांसिवयसाऽसृजत्

स्वच्छन्दतःस्वच्छन्दांसिवयसावयवयांसिच । पशून्सृष्ट्वासदेवेशोऽसृजत्पक्षिगणानपि
मुखतोऽजाः ससर्जाऽथ वक्षसश्चावयोऽसृजत् ।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे ॥ २३७ ॥
पद्भ्यांचाश्वान्समातङ्गान्रासभानाव्ययान्मृगान् । उष्ट्रानश्वतरांश्चैवतथान्याश्चैवजातयः
ओषध्यःफलमूलिन्योरोमभ्यस्तस्यजज्ञिरे । एवंपश्वोषधीःसृष्ट्वाऽयूयुजत्सोऽध्वरेप्रभुः
गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ । एतान् ग्राम्यान्पशूनाहुररण्यान्वै निबोधत
श्वापदोद्विखुरोहस्तो वानराःपक्षिपञ्चमाः । औदकाःपशवःषष्ठाः सप्तमास्तुसरीसृपाः
महिषा गवयाश्चाश्च प्लवङ्गाः शरभावृकाः । सिंहस्तुसप्तमस्तेषामारण्याःपशवःस्मृताः
गायत्रञ्च ऋचश्चैव त्रिवृत् साम रथन्तरम् । अग्निष्टोमञ्च यज्ञानांनिर्ममेप्रथमान्मुखात्
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दस्तोमं पञ्चदशंतथा । बृहत्सामतथोक्थ्यञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात्
सामानि जगतीछन्दस्तोमं सप्तदशं तथा । वैरूपमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च । अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥
विद्युताऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषिच । तेजांसिच ससर्जाऽऽदौकल्पस्यभगवान्प्रभुः
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे । ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजता हि प्रजापतेः
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरनरान् पितॄन् । ततोऽसृजत्सभूतानिस्थावराणि चराणि च
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्त्वथैवाऽप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥ २५० ॥
अव्ययञ्चव्ययञ्चाऽपियदिदंस्थाणुजङ्गमम् । तेषांवैयानिकर्माणिप्राक्सृष्ट्यांप्रतिपेदिरे
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनःपुनः । हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ॥
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते । महाभूतेषु सृष्टेषु इन्द्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ॥
विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ।
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्मसु मानवाः ॥ २५४ ॥
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिन्तकाः । पौरुषं कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावतः ॥
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न ततो विदुः । एतदेवञ्च नैकञ्च नामभेदेन नाप्युभे ॥

कर्मस्था विषमं ब्रूयुः सत्वस्थाः समदर्शनाः । नामरूपञ्च भूतानां कृतानां च प्रपञ्चनम्
वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ निर्ममे स महेश्वरः । ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः । एवंविधाःसृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्तेसिद्धिमाश्रित्यमानसीम् । एवम्भूतानिसृष्टानिस्थावराणिचराणिच

यदाऽस्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त सत्तमाः ।
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदा शोकेन दुःखितः ॥ २६१ ॥

ततःस विदधेबुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् । अथात्मनिसमद्राक्षीत्तमोमात्रांनियामिकाम्
रजः सत्वं परित्यज्य वर्त्तमानां स्वधर्मतः । ततः स तेन दुःखेन दुःखं चक्रे जगत्पतिः
तमश्च व्युनुदत् पश्चाद्रजः सत्वं तमावृणोत् । तत्तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत॥
अधमस्तमसो जज्ञे हिंसा शोकादजायत । ततस्तस्मिन् समुद्भूतेमिथुनेदारुणात्मिके
गतासुर्भगवानासीत् प्रीतिश्चैनमशिश्रियत् । स्वान्तनुंस ततोब्रह्मातामपोहतभास्वराम्
द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् । अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपाव्यजायत

प्रकृतिं भूतधात्रीं तां कामाद्वै सृष्टवान् प्रभुः ।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्यधिष्ठिता ॥ २६८ ॥

ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति । यात्वर्धात् सृजतोनारीशतरूपाव्यजायत
सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् । भर्त्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥२६९
स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते । तस्यैव सप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥
लेभे स पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् । तया सार्द्धं स रमते तस्मात्सा रतिरुच्यते
प्रथमः सम्प्रयोगात्मा कल्पादौसमपद्यत । विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽभवत्पुरुषोविराट्
सम्राट् च शतरूपा वै वैराजः स मनुः स्मृतः । स वैराजःप्रजासर्गं ससर्जपुरुषो मनुः
वैराजात् पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत । प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ द्वौ लोकसम्मतौ

कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाता इमाः प्रजाः ।
देवी नाम तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते उभे ॥ २७६ ॥

स्वायम्भुवः प्रसूतिं तु दक्षाय प्रददौ प्रभुः । प्राणो दक्ष इति ज्ञेयः सङ्कल्पो मनुरुच्यते

रुचेः प्रजापतेः सोऽ[illegible]र्दतिप्रत्यपादयत् । आकूत्यां मिथुनंजज्ञेमानसस्यरुचेःशुभम्
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमलौ सम्बभूवतुः । यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे॥

यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एतस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामाश्च ते स्मृताः ॥ २८० ॥

अजितश्चैव शुक्रश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणाकृतौ । यामाः पूर्वं प्रजाताये तेऽभवंस्तुदिवौकसः
स्वायम्भुवसुतायान्तु प्रसूत्यांलोकमातरः । तस्यांकन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः
सर्वास्ताश्चमहाभागाःसर्वाःकमललोचनाः । भोगवत्यश्चताःसर्वाःसर्वास्तायोगमातरः
सर्वाश्चब्रह्मवादिन्यःसर्वाविश्वस्यमातरः । श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिःपुष्टिर्मेधाक्रियातथा
बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिःसिद्धिःकीर्त्तिस्त्रयोदश । पत्न्यर्थंप्रतिजग्राहधर्मोदाक्षायणीःप्रभुः
दाराण्येतानिवै तस्यविहितानिस्वयम्भुवा । ताभ्यःशिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचनाः

सती ख्यात्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।
सन्नतिश्चाऽनसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥ २८७ ॥

तास्तथा प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः । रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिरा. पुलहः क्रतुः ॥
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्चपितरोऽग्निस्तथैवच । सतीम्भवायप्रायच्छत्ख्यातिंचभृगवेततः
मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमङ्गिरसे ददौ । प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च
क्रतवे सन्नतिंनाम अनसूयां तथाऽत्रये । ऊर्जान्ददौ वसिष्ठाय स्वाहामप्यग्नये ददौ ॥

स्वधाञ्चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्या निबोधत ।
एताः सर्वा महाभागाः प्रजास्वनुस्मृताः स्थिताः ॥ २९२ ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम् । श्रद्धाकामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः॥
धृत्यास्तुनियमःपुत्रस्तुष्ट्याःसन्तोषएवच । पुष्ट्यालोभःसुतश्चापिमेधापुत्रःश्रुतस्तथा
क्रियायामभवत् पुत्रो दण्डःसमयएवच । बुद्ध्यां बोधःसुतस्तद्वत्प्रमादोऽप्युपजायत
लज्जायां विनयःपुत्रो व्यवसायोवपोःसुतः । क्षेमःशान्तिसुतश्चापिसुखंसिद्धेर्व्यजायत
यशः कीर्त्तिसुतश्चाऽपि इत्येतेधर्मसूनवः । कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्यांप्रीत्यांव्यजायत
इत्येष वै सुतोदर्कः सर्गो धर्मस्यकीर्त्तितः । जज्ञे हिंसात्वधर्माद्वै निकृतिंचाऽनृतंसुतम्

निकृत्यान्तु द्वयं जज्ञे भयं नरक एव च । माया च वेदना चाऽपि मिथुनद्वयमेतयोः ॥

भूयो जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ।
वेदनायाः सुतश्चाऽपि दुःखं जज्ञे च रौरवः ॥ ३०० ॥

मृत्योर्व्याधिजराशोकक्रोधासूयाश्च जज्ञिरे । दुःखोत्तराः सुता ह्येते सर्वे चाऽधर्मलक्षणाः
नैषां भार्यास्तु पुत्राश्च सर्वे ह्येते परिग्रहाः । इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।
सोऽभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे ह्यात्मसम्भवान् ॥ ३०३ ॥
नाधिकान् न च हीनांस्तान् मानसानात्मनः समान् ।
सहस्रं हि सहस्राणां सोऽसृजत्कृत्तिवाससः ॥ ३०४ ॥

तुल्यानेवात्मनः सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः । पिङ्गलान्सनिषङ्गांश्च सकपर्दान्सलोहितान्
विशिष्टान्हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः । महारूपान्विरूपांश्च विश्वरूपान्स्वरूपिणः
रथिनश्चर्मिणश्चैव वर्मिणश्च वरूथिनः । सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान्

स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रान्द्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ।
अन्नादान्पिशिताशांश्च आज्यपान्सोमपानपि ॥ ३०८ ॥

मीढुषोऽतिकपालांश्च शितिकण्ठोर्ध्वरेतसः । हव्यदान्कृतधर्मांश्च धर्मिणो ह्यथ वर्हिणः
आसीनान्धावतश्चैव पञ्चभूतान्सहस्रशः । अध्यापिनोऽध्यायिनश्च जपतो युञ्जतस्तथा
धूमवन्तो ज्वलन्तश्च नदीमन्तोऽतिदीप्तिनः । वृद्धान्बुद्धिमतश्चैव ब्रह्मिष्ठाञ्छुभदर्शनान्

नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वांश्चाऽथ क्षमाचरान् ।
अदृश्यान्सर्वभूतानां महायोगान्महौजसः ॥ ३१२ ॥

भ्रमन्तोऽभिद्रवन्तश्च प्लवन्तश्च सहस्रशः । [illegible]नेतान्सुरोत्तमान् ॥
ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेनं मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः । [illegible] प्रजा देव! नमोऽस्तु ते
अन्याः सृजत्वं भद्रन्ते प्रजा वै मृत्युसंयुताः । [illegible]
एवमुक्तोऽब्रवीदेवं नाहं मृत्युजरान्विताः । प्रजा[illegible]ऽहं त्वं सृज प्रजाः
एते देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महाबलाः । पृथिव्या[illegible] च दिक्षु चैव परिश्रिताः

शतरुद्राः समात्मानो भविष्यन्तीतियाज्ञिकाः । यज्ञभाजोभविष्यन्तिसर्वदेवगणैः सह
मन्वन्तरेषुयेदेवाभविष्यन्तीहभेदतः । सार्धन्तैरीज्यमानास्तेस्थास्यन्तीहायुगक्षयात्
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता । प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृष्यमाणः प्रजापतिः ॥
एवं भवतु भद्रन्ते यथा ते व्याहृतं विभो ! । ब्रह्मणा समनुज्ञाते तथा सर्वमभूत्किल

ततः प्रभृति देवेशो न चाऽसूयत वै प्रजाः ।
ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३२३ ॥
यस्मादुक्तः स्थितोऽस्मीति तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः ।
एष देवो महादेवः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः ॥ ३२४ ॥

अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः । स्वेच्छयाऽसौ द्विधाभूतःपृथक्स्त्रीपुरुषःपृथक्
सएवैकादशार्धेन स्थितोऽसौ परमेश्वरः । तत्र या सा महाभागाशङ्करस्यार्धकायिनी

प्रागुक्ता तु महादेवी स्त्री सैवेह सती ह्यभूत् ।
हिताय जगतां देवी दक्षेणाऽऽराधिता पुरा ॥ ३२७ ॥

कार्य्यार्थंदक्षिणंतस्याःशुक्लंवामंतथासितम् । आत्मानंविभजस्वेतिप्रोक्तादेवेनशम्भुना

सा तथोक्ता द्विधा भूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ! ।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृण्वन्तु च समाहिताः ॥ ३२६ ॥
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सती दाक्षायणी विद्या इच्छा शक्तिः क्रियात्मिका ॥ ३३० ॥

अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैवैकपाटला । उमा हैमवती चैव कल्याणी चैकमातृका
ख्यातिःप्रज्ञा महाभागालोकेगौरीतिविश्रुता । गणाम्बिकामहादेवीनन्दिनीजातवेदसी
एकरूपमथैतस्याः पृथग्देहविभावनात् । सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता
आज्ञाआवेशनीकृष्णातामसीसात्विकीशिवा । प्रकृतिर्विकृतारौद्रीदुर्गाभद्राप्रमाथिनी
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका । द्वापरान्तविभागे च नामानीमानि सुव्रताः
गौतमीकौशिकीचार्याचण्डीकात्यायनीसती । कुमारी यादवी देवीवरदाकृष्णपिङ्गला
बर्हिध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी । महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी दृषद्वत्येकशूलधृक् ॥

अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी । शुम्भादिदैत्यहन्त्री च महामहिषमर्दिनी
अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका ।
देव्या नामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ॥ ३३६ ॥
भद्रकाल्यामयोक्तानि सम्यक्फलप्रदानि च । येपठन्ति नरास्तेषां विद्यते नचपातकम्
अरण्ये पर्वतेवाऽपि पुरे वाऽप्यथवा गृहे । रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जलेवाऽथस्थलेऽपि वा
व्याघ्रकुम्भीनचोरेभ्यो भयस्थाने विशेषतः ।
आपत्स्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्तयेत् ॥ ३४२ ॥
आर्यकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिस्तथा । अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत्
महादेवी कले द्व तु प्रज्ञाश्रीश्च प्रकीर्तिते । आभ्यां देवीसहस्राणियैर्व्याप्तमखिलंजगत्
अनया देवदेवोऽसौ सत्या रुद्रो महेश्वरः । आतिष्ठत्सर्वलोकानां हिताय परमेश्वरः
रुद्रः पशुपतिश्चाऽऽसीत्पुरा दग्धं पुरत्रयम् । देवाश्च पशवः सर्वे बभूवुस्तस्य तेजसा
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपिआदिसर्गक्रमंशुभम् । सयातिब्रह्मणोलोकंश्रावयेद्वाद्विजोत्तमान्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पूर्वभागे सृष्टिविस्तारो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

विद्युन्मालीतारकाक्षकमलाक्षदैत्यानां तपसा तुष्टेन ब्रह्मणात्रिपुरनिर्माण-वरप्रदाने तत्त्रिपुरदाहे नन्दिकेश्वरवाक्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

समासाद्विस्तराच्चैवसर्गःप्रोक्तस्त्वयाशुभः । कथं पशुपतिश्चाऽऽसीत्पुरंदग्धुंमहेश्वरः
कथञ्च पशवश्चाऽऽसन्देवाः सब्रह्मकाःप्रभो ! । मयस्य तपसा पूर्वं सुदुर्गंनिर्मितंपुरम्
हैमञ्च राजतं दिव्यमयस्मयमनुत्तमम् । सुदुर्गं देवदेवेन दग्धमित्येव नः श्रुतम् ॥ ३ ॥
कथं ददाह भगवान्भगनेत्रनिपातनः । एकेनेषुनिपातेन दिव्येनाऽपि तदा कथम् ॥४ ॥
विष्णुनोत्पादितैर्भूतैर्न दग्धं तत्पुरत्रयम् । पुरस्य सम्भवः सर्वो वरलाभः पुरा श्रुतः

इदानीं वक्तुं सर्वं वक्तुमर्हसि सुव्रत ! । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः ॥
यथाश्रुतं तथा प्राह व्यासाद्विश्वार्थसूचकात् ।

सूत उवाच

त्रैलोक्यस्याऽस्य शापाद्धि मनोवाक्कायसम्भवात् ॥ ७ ॥
निहते तारके दैत्ये तारपुत्रे सबान्धवे । स्कन्देन वा प्रयत्नेन तस्य पुत्रा महाबलाः
विद्युन्माली तारकाक्षः कमलाक्षश्च वीर्य्यवान् । तपस्तेपुर्महात्मानो महाबलपराक्रमाः
तपउग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।
तपसा कर्षयामासुर्देहान् स्वान्दानवोत्तमाः ॥ १० ॥
तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ।

दैत्या ऊचुः

अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ ११ ॥
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् । तानब्रवीत्तदादेवो लोकानां प्रभुरव्ययः ॥
नास्तिसर्वामरत्वम्वै निवर्तध्वमतोऽसुराः । अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते
ततस्तेसहितादैत्याः सम्प्रधार्य परस्परम् । ब्रह्माणमब्रुवन्दैत्याःप्रणिपत्यजगद्गुरुम् ॥
वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेश ! त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो ! ॥ १५ ॥
तथा वर्षसहस्रेषु समेष्यामपरस्परम् । एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चाऽनघ !॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा । एकेनैवेषुणा देवः स नो मृत्युर्भविष्यति
एवमस्त्वितितान्देवःप्रत्युक्त्वाप्राविशद्दिवम् । ततो मयःस्वतपसाचक्रेवीरः पुराण्यथ
काञ्चनंदिवितत्राऽऽसीदन्तरिक्षेचराजतम् । आयसञ्चाभवद्भूमौपुरन्तेषांमहात्मनाम्
एकैकंयोजनशतंविस्तारायामतःसमम् । काञ्चनंतारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ॥
विद्युन्मालेश्चाऽऽयसं वै त्रिविधं दुर्गमुत्तमम् । मयश्च बलवांस्तत्र दैत्यदानवपूजितः
हैरण्ये राजतेचैव कृष्णायसमयेतथा । आलयंचाऽऽत्मनःकृत्वातत्राऽऽस्तेबलवांस्तदा
एवंबभूवुर्दैत्यानामतिदुर्गाणिसुव्रताः !। पुराणित्रीणि विप्रेन्द्रास्त्रैलोक्यमिवचापरम्

पुरत्रये तदाजाते सर्वे दैत्या जगत्त्रये। पुरत्रयं प्रविश्यैव बभूवुस्ते बलाधिकाः॥
कल्पद्रुमसमाकीर्णंगजवाजिसमाकुलम्। नानाप्रासादसङ्कीर्णं मणिजालैःसमावृतम्
सूर्य्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैर्विश्वतो मुखैः। पद्मरागमयैः शुभ्रैः शोभितं चन्द्रसन्निभैः॥
प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलाशशिखरोपमैः। शोभितं त्रिपुरं तेषां पृथक् पृथगनुत्तमैः॥

दिव्यस्त्रीभिः सुसम्पूर्णङ्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः।

रुद्रालयैः प्रतिगृहं साग्निहोत्रैर्द्विजोत्तमाः! ॥ २८ ॥

वापीकूपतडागैश्च दीर्घी(र्घि)काभिस्तु सर्वतः। मत्तमातङ्गयूथैश्च तुरङ्गैश्च सुशोभनैः

रथैश्च विविधाकारैर्विचित्रैर्विश्वतो मुखैः।

सभाप्रपादिभिश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥

वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः समन्ततः। अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्मयस्यैव च मायया
पतिव्रताभिः सर्वत्र सेवितं मुनिपुङ्गवाः। कृत्वाऽपि सुमहत् पापमपापैःशङ्करार्चनात्
दैत्येश्वरैर्महाभागैः सदारैः ससुतैर्द्विजाः!। श्रौतस्मार्त्तार्थधर्मज्ञैस्तद्धर्मनिरतैः सदा॥
महादेवेतरंत्यक्त्वादेवं तस्याऽर्चनेस्थितैः। व्यूढोरस्कैर्वृषस्कन्धैः सर्वायुधधरैःसदा
सर्वदा क्षुधितैश्चैव दावाग्निसदृशेक्षणैः। प्रशान्तैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा॥
नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुञ्चितमूर्धजैः। नीलाद्रिमेरुसङ्काशैर्नीरदोपमनिस्वनैः॥

मयेन रक्षितैः सर्वैः शिक्षितैर्युद्धलालसैः॥ ३६ ॥

अथ समररतैः सदा समन्ताच्छिवपदपूजनया सुलब्धवीर्य्यैः।

रविमरुदमरेन्द्रसन्निकाशैः सुरमथनैः सुदृढैःसुसेवितं तत् ॥ ३७ ॥

सेन्द्रा देवा द्विजश्रेष्ठा! द्रुमा दावाग्निना यथा।

पुरत्रयाग्निना दग्धा ह्यभवन्दैत्यबैभवात् ॥ ३८ ॥

अथैवन्ते तदा दग्धा देवा देवेश्वरं हरिम्। अभिवन्द्य तदा प्राहुस्तमप्रतिमवर्चसम्॥

सोऽपि नारायणः श्रीमान् चिन्तयामास चेतसा।

किं कार्य्यं देवकार्य्येषु भगवानिति स प्रभुः॥ ४० ॥

तदा सस्मार वै यज्ञं यज्ञमूर्त्तिर्जनार्द्दनः। यज्ञायज्ञगुणीशानो यज्वनां फलदः प्रभुः॥

ततो यज्ञः स्मृतस्तेन देवकार्य्यार्थसिद्धये । देवन्ते पुरुषश्चैव प्रणेमुस्तुष्टुवुस्तदा ॥
भगवानपितं दृष्ट्वायज्ञं प्राहसनातनम् । सनातनस्तदा सेन्द्रान् देवानालोकयचाऽच्युतः

श्रीविष्णुरुवाच ।

अनेनोपसदा देवा यजध्वं परमेश्वरम् । पुरत्रयविनाशाय जगत्त्रयविभूतये ॥ ४४ ॥

सूत उवाच

अथ तस्य वचःश्रुत्वा देवदेवस्यधीमतः । सिंहनादं महत् कृत्वा यज्ञेशं तुष्टुवुःसुराः
ततःसञ्चिन्त्यभगवान्स्वयमेव जनार्दनः । पुनःप्राह स सर्वांस्तांस्त्रिदशांस्त्रिदशेश्वर॥

हत्वा दग्ध्वा च भूतानि भुक्त्वा चाऽन्यायतोऽपि वा ।
यजेयदि महादेवमपापो नाऽत्रसंशयः ॥ ४७ ॥

अपापानैवहन्तव्याः पापाएव न संशय । हन्तव्याः सर्वयत्नेन कथं वध्याःसुरोत्तमाः
असुरा दुर्मदाः पापा अपिदेवैर्महाबलैः । तस्मान्न वध्या रुद्रस्य प्रभावात्परमेष्ठिनः ॥
कोऽहं ब्रह्माऽथवा देवा दैत्या देवारिसूदनाः । मुनयश्चमहात्मानःप्रसादेन विना प्रभोः
यः सप्तविंशको नित्यः परात्परतरः प्रभुः । विश्वामरेश्वरोवन्द्यो विश्वाधारोमहेश्वरः
स एव सर्वदेवेशः सर्वेषामपि शङ्करः । लीलया देवदैत्येन्द्रविभागमकरोद्धरः ॥ ५२ ॥
तस्यांऽशमेकं सम्पूज्य देवा देवत्वमागताः । ब्रह्माब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमेव च

तमपूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति ।
तस्मात्तेनैव हन्तव्या लिङ्गार्चनविधेर्बलात ॥ ५४ ॥

धर्मनिष्ठाश्चतेसर्वेश्रौतस्मार्त्तविधौ स्थिताः । तथापि यजमानेन रौद्रेणोपसदा प्रभुम्

रुद्रमिष्ट्वा यथान्यायं जेष्यामो दैत्यसत्तमान् ॥ ५५ ॥
सतारकाक्षेण मयेन गुप्तं स्वस्थं च गुप्तं स्फटिकाभमेकम् ।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम् ॥ ५६ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा हरिश्चेष्ट्वा यज्ञेनोपसदा प्रभुम् । उपविष्टो ददर्शाऽथ भूतसङ्घान् सहस्रशः
शूलशक्तिगदाहस्तान् टङ्कोपलशिलायुधान् । नानाप्रहरणोपेतान् नानावेशधरांस्तदा

कालाग्निरुद्रसङ्काशान् कालरुद्रोपमांस्तदा ।
प्राह देवो हरिः साक्षात् प्रणिपत्य स्थितान् प्रभुः ॥ ५६ ॥

विष्णुरुवाच

दग्ध्वाभित्वा च भुक्त्वा च गत्वा दैत्यपुरत्रयम् । पुनर्यथागतंवीरा गन्तुमर्हथभूतले
ततः प्रणम्य देवेशं भूतसङ्घाः पुरत्रयम् । प्रविश्य नष्टास्ते सर्वे शलभा इव पावकम्
ततस्तु नष्टास्ते सर्वे भूता देवेश्वराज्ञया । ननृतुर्मुमुदुश्चैव जगुर्दैत्याः सहस्रशः ॥
तुष्टुवुर्देवदेवेशं परमात्मानमीश्वरम् । ततः पराजिता देवा ध्वस्तवीर्य्याः क्षणेन तु
सेन्द्राः सङ्गम्य देवेशमुपेन्द्रं धिष्ठिता भयात् ।
तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ६४ ॥
किंकृत्यमितिसन्ततःसन्तप्तान्सेन्द्रकान्क्षणम् । कथन्तुतेषांदैत्यानांबलंहत्वाप्रयत्नतः
देवकार्य्यं करिष्यामि प्रसादात्परमेष्ठिनः । पापंविचारतोनास्ति धर्मिष्ठानांनसंशयः
तस्माद्दैत्यानवध्यान्तेभूतैश्चोपसदोद्भवैः । पापंनुदन्तिधर्मेण धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
धर्मादैश्वर्य्यमित्येषा श्रुतिरेषा सनातनी । दैत्याश्चैते हि धर्मिष्ठा सर्वेत्रिपुरवासिनः
तस्मादवध्यतांप्राप्तानान्यथा द्विजपुङ्गवाः !। कृत्वाऽपि सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयन्ति ये
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैःपद्मपत्रमिवाऽम्भसा । पूजयाभोगसम्पत्तिरवश्यञ्जायते द्विजाः!
तस्मात्तेभोगिनोदैत्यालिङ्गार्चनपरायणाः। तस्मात्कृत्वाधर्मविघ्नमहन्देवाःस्वमायया
दैत्यानां देवकार्य्यार्थं जेष्येऽहं त्रिपुरं क्षणात् ।

सूत उवाच

विचार्य्यैवन्ततस्तेषाम्भगवान् पुरुषोत्तमः। कर्तुंव्यवसितश्चाऽभूद्धर्मविघ्नंसुरारिणाम्
असृजच्च महातेजाः पुरुषञ्चाऽऽत्मसम्भवम् । मायीमायामयन्तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः
शास्त्रञ्चशास्तासर्वेषामकरोत्कामरूपधृक् । सर्वसम्मोहनं मायी दृष्टप्रत्ययसंयुतम् ॥
एतत्स्वाङ्गभवायैव पुरुषायोपदिश्यतु ।
मायी मायामयं शास्त्रं ग्रन्थषोडशलक्षकम् ॥ ७५ ॥
श्रौतस्मार्तविरुद्धञ्च वर्णाश्रमविवर्जितम् । इहैव स्वर्गनरकं प्रत्ययं नाऽन्यथा पुनः ॥

तच्छास्त्रमुपदिश्यैव पुरुषायाऽच्युतः स्वयम् । पुरत्रयविनाशाय प्राहैनं पुरुषं हरिः ॥
गन्तुमर्हसि नाशाय भो तूर्णंपुरवासिनाम् । धर्मास्तथाप्रणश्यन्तुश्रौतस्मार्तानसंशयः
ततः प्रणम्य तं मायी मायाशास्त्रविशारदः । प्रविश्य तत्पुरं तूर्णंमुनिर्मायांतदाकरोत्
माययातस्यतेदैत्याःपुरत्रयनिवासिनः । श्रौतंस्मार्तंचसन्त्यज्यतस्यशिष्यास्तदाभवन्
तत्यजुश्च महादेवं शङ्करं परमेश्वरम् । नारदोऽपि तदा मायी नियोगान्मायिनःप्रभोः
प्रविश्य तत्पुरन्तेन मायिना सह दीक्षितः । मुनिःशिष्यैःप्रशिष्यैश्चसंवृतःसर्वतःस्वयम्

स्त्रीधर्मञ्चाऽकरोत्स्त्रीणां दुश्चारफलसिद्धिदम् ।
चक्रुस्ताः सर्वदा लब्ध्वा सद्य एव फलं स्त्रियः ॥ ८३ ॥

जनासक्ता बभूवुस्ता विनिन्द्य पतिदेवताः । अद्याऽपिगौरवात्तस्यनारदस्यकलौमुनेः॥

नार्य्यश्चरन्ति सन्त्यज्य भर्तॄन्स्वैरं वृथाऽधमाः ।
स्त्रीणां माता पिता बन्धुः सखा मित्रञ्च बान्धवः ॥ ८५ ॥

भर्ता एव न सन्देहस्तथाप्यासह मायया । कृत्वाऽपि सुमहत्पापं या भर्तुः प्रेमसंयुता
प्राप्नुयात्परमं स्वर्गंनरकञ्चविपर्य्ययात् । पुरैका मुनिशार्दूलाः ! सर्वधर्मान्सदापतिम्

सन्त्यज्यापूजयन्साध्व्यो देवानन्याञ्जगद्गुरून् ।
ताः स्वर्गलोकमासाद्य मोदन्ते विगतज्वराः ॥ ८८ ॥

नरकञ्च जगन्मायातस्माद्भर्तापरागतिः । तथापिभर्तॄन्स्वांस्त्यक्त्वाबभूवु स्वैरवृत्तयः॥
माययादेवदेवस्यविष्णोस्तस्याज्ञयाप्रभोः । अलक्ष्मीश्चस्वयन्तस्यनियोगात्त्रिपुरङ्गता

या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वराद्जात् ।
बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः ॥ ९१ ॥

बुद्धिमोहन्तथाभूतं विष्णुमायाविनिर्मितम् । तेषां दत्वाक्षणंदेवस्तासांमायीचनारदः
सुखासीनौ ह्यसम्भ्रान्तौ धर्मविघ्नार्थमव्ययौ । एवं नष्टे तदाधर्मेश्रौतस्मार्तेसुशोभने
पाषण्डे स्थापिते तेन विष्णुनाविश्वयोनिना । त्यक्तेमहेश्वरेदैत्यैस्त्यक्तेलिङ्गार्चनेतथा
स्त्रीधर्मेनिखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते । कृतार्थ इव देवेशो देवैः सार्धमुमापतिम्

तपसा प्राप्य सर्वज्ञं तुष्टाव पुरुषोत्तमः ।

श्रीभगवानुवाच

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने ॥ ९६ ॥

नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे । शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नमः ॥

सूत उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं दण्डवत्प्रणिपत्य च । जजाप रुद्रं भगवान्कोटिवारं जलेस्थितः

देवाश्च सर्वे ते देवं तुष्टुवुः परमेश्वरम् । सेन्द्राः ससाध्याःसयमा सरुद्राःसमरुद्गणाः

देवा ऊचुः

नमः सर्वात्मने तुभ्यं शङ्करायाऽऽर्तिहारिणे । रुद्राय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे ॥

गतिर्न सर्वदाऽस्माभिर्वन्द्योदेवारिमर्दनः । त्वमादिस्त्वमनन्तश्चअनन्तश्चाऽक्षयःप्रभुः

प्रकृतिः पुरुषः साक्षात्स्रष्टा हर्ता जगद्गुरो ! ।

त्राता नेता जगत्यस्मिन्द्विजानां द्विजवत्सल ! ॥ १०२ ॥

वरदोवाङ्मयोवाच्योवाच्यवाचकवर्जितः । याज्योमुक्त्यर्थमीशानोयोगिभिर्योगविभ्रमैः

हृत्पुण्डरीकसुषिरे योगिनां संस्थितः सदा । वदन्ति सूरयः सन्तं परंब्रह्मस्वरूपिणम्

भवन्तंतत्त्वमित्यार्यास्तेजोराशिंपरात्परम् । परमात्मानमित्याहुरस्मिञ्जगतितद्विभो !

दृष्टं श्रुतं स्थितं सर्वं जायमानं जगद्गुरो ! । अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोऽपि महत्तरम्

सर्वतःपाणिपादन्त्वांसर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठसि

महादेवमनिर्देश्यं सर्वज्ञं त्वामनामयम् । विश्वरूपं विरूपाक्षं सदाशिवमनामयम् ॥

कोटिभास्करसङ्काशं कोटिशीतांशुसन्निभम् ।

कोटिकालाग्निसङ्काशं षड्विंशकमनीश्वरम् ॥ १०६ ॥

प्रवर्तकं जगत्यस्मिन्प्रकृतेः प्रपितामहम् । वदन्ति वरदं देवं सर्वावासं स्वयम्भुवम् ॥

श्रुतयः श्रुतिसारं त्वां श्रुतिसारविदो जनाः ॥ १११ ॥

अदृष्टमस्माभिरनेकमूर्ते! विना कृतं यद्भवताऽथ लोके ।

त्वमेव दैत्यान्सुरभूतसङ्घान्देवान्नरान्स्थावरजङ्गमांश्च ॥ ११२ ॥

पाहि नान्या गतिः शम्भो ! विनिहत्याऽसुरोत्तमान् ।

मायया मोहिताः सर्वे भवतः परमेश्वर ! ॥ ११३ ॥
यथा तरङ्गा लहरीसमूहा युध्यन्ति चान्योऽन्यमपांनिधौ च ।
जलाश्रया देवजडीकृताश्च सुरासुरास्तद्वदजस्य सर्वम् ॥ ११४ ॥

सूत उवाच

य इदं प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा जपेन्नरः । शृणुयाद्वा स्तवं पुण्यं सर्वकाममवाप्नुयात्
स्तुतस्त्वेवं सुरैर्विष्णोर्जपेनवमहेश्वरः । सोमःसोममथालिङ्ग्य नन्दिदत्तकरःस्मयन्
प्राह गम्भीरया वाचा देवानालोक्य शङ्करः । ज्ञातं मयेदमधुनादेवकार्यं सुरेश्वराः !
विष्णोर्मायाबलञ्चैव नारदस्य च धीमतः । तेषामधर्मनिष्ठानांदैत्यानांदेवसत्तमाः !
पुरत्रयविनाशञ्च करिष्येऽहं सुरोत्तमाः ! ।

सूत उवाच

अथ सब्रह्मका देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समागताः ॥ ११६ ॥
श्रुत्वाप्रमोस्तदावाक्यंप्रणेमुस्तुष्टुवुश्चते । अप्येतदन्तरे देवी देवमालोक्य विस्मिता
लीलाम्बुजेन चाऽऽहत्य कलमाह वृषध्वजम् ।

देव्युवाच

क्रीडमानं विभो ! पश्य षण्मुखं रविसन्निभम् ॥ १२१ ॥
पुत्रंपुत्रवतां श्रेष्ठ ! भूषितंभूषणैःशुभैः । मुकुटैः कटकैश्चैव कुण्डलैर्वलयैः शुभैः॥१२२॥
नूपुरैश्छन्नवीरैश्च तथा ह्युदरबन्धनैः । किङ्किणीभिरनेकाभिर्हैमैरश्वत्थपत्रकैः ॥१२३॥
कल्पकद्रुमजैः पुष्पैः शोभितैरलकैः शुभैः । हारैर्वारिजरागादिमणिचित्रैस्तथाङ्गदैः ॥
मुक्ताफलमयैर्हारैः पूर्णचन्द्रसमप्रभैः । तिलकैश्च महादेव ! पश्य पुत्रं सुशोभनम् ॥
अङ्कितं कुङ्कुमाद्यैश्च वृत्तम्भसितनिर्मितम् । वक्त्रवृन्दञ्च पश्येश! वृन्दं कामलकं यथा
नेत्राणि च विभो ! पश्य शुभानि त्वं शुभानि च ।
अञ्जनानि विचित्राणि मङ्गलार्थञ्च मातृभिः ॥ १२७ ॥
गङ्गादिभिःकृत्तिकाद्यैःस्वाहयाचविशेषतः ।इत्येवंलोकमातुश्चवाग्भिःसम्बोधितःशिवः
नययौतृप्तिमीशानःपिबन्स्कन्दाननामृतम् । नसस्मारचतान्देवान्दैत्यशस्त्रनिपीडितान्

स्कन्दमालिङ्ग्यचाघ्रायनृत्यपुत्रेत्युवाचह। सोऽपिलीलालसोबालोननर्त्तात्तिहरःप्रभुः
सहैव ननृतुश्चाऽन्ये सह तेन गणेश्वराः । त्रैलोक्यमखिलं तत्र ननर्तेशाज्ञया क्षणम् ॥
नागाश्च ननृतुः सर्वे देवाःसेन्द्रपुरोगमाः । तुष्टुवुर्गणपाःस्कन्दं मुमोदाऽम्बाचमातरः
ससृजुः पुष्पवर्षाणि जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । नृत्यामृतं तदा पीत्वा पार्वतीपरमेश्वरौ

अवापतुस्तदा तृप्तिं नन्दिना च गणेश्वराः ॥ १३३ ॥

ततः स नन्दी सह षण्मुखेन तथा च सार्द्धं गिरिराजपुत्र्या ।

विवेश दिव्यं भवनं भवोऽपि यथाम्बुदोऽन्याम्बुदमम्बुदाभः ॥१३४ ॥

द्वारस्य पार्श्वे ते तस्थुर्देवा देवस्य धीमतः । तुष्टुवुश्च महादेवं किञ्चिदुद्विग्नचेतसः॥

किन्तु किन्त्विति चाऽन्योन्यं प्रेक्ष्य चैतत्समाकुलाः ।

पापा वयमिति ह्यन्येअभाग्याश्चेति चाऽपरे ॥ १३६ ॥

भाग्यवन्तश्च दैत्येन्द्रा इति चाऽन्येसुरेश्वराः । पूजाफलमिमन्तेषामित्यन्येनेतिचाऽपरे
एतस्मिन्नन्तरे तेषां श्रुत्वाशब्दाननेकशः । कुम्भोदरोमहातेजा दण्डेनाऽताडयत्सुरान्
दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेति वादिनः । अपतन्मुनयश्चाऽन्ये देवाश्च धरणीतले ॥
अहो ! विधेर्बलञ्चेति मुनयः कश्यपादयः । दृष्ट्वाऽपि देवदेवेशं देवानांश्चाऽसुरद्विषाम्

अभाग्यान्न समाप्तन्तु कार्य्यमित्यपरे द्विजाः ।

प्रोचुर्नमः शिवायेति पूज्य चाऽल्पतरं हृदि ॥ १४१ ॥

ततः कपर्दी नन्दीशो महादेवप्रियोमुनिः । शूलीमाली तथाहाली कुण्डली वलयीगदी
वृषमारुह्यसुश्वेतं ययौतस्याऽऽज्ञया तदा । ततोवै नन्दिनंदृष्ट्वा गणःकुम्भोदरोऽपिसः
प्रणम्य नन्दिनं मूर्ध्ना सह तेन त्वरन्ययौ । नन्दी भाति महातेजा वृषपृष्ठे वृषध्वजः
सगणोगणसेनानीर्मेघपृष्ठे यथा भवः । दशयोजनविस्तीर्णं मुक्ताजालैरलङ्कृतम् ॥
सितातपत्रं शैलादेराकाशमिव भातितत् । तत्राऽन्तर्बद्धमाला सा मुक्ताफलमयीशुभा
गङ्गाकाशान्निपतिताभातिमूर्ध्निविभोर्यथा । अथ दृष्ट्वा गणाध्यक्षंदेवदुन्दुभयः शुभाः
नियोगाद्वज्रिणः सर्वे विनेदुर्मुनिपुङ्गवाः । तुष्टुवुश्च गणेशानं वाग्भिरिष्टप्रदं शुभम् ॥
यथादेवा भवं दृष्ट्वा प्रीतिकण्टकितत्वचः । नियोगाद्वज्रिणोमूर्ध्नि पुष्पवर्षञ्च खेचराः

ववृषुश्च सुगन्धाढ्यं नन्दिनो गगनोदितम् ।

वृष्ट्या तुष्टस्तदा रेजे तुष्ट्या पुष्ट्या यथार्थया ॥ १५० ॥

नन्दीभवश्चाम्बुयातु स्नातया गन्धवारिणा । पुष्पैर्नानाविधैस्तत्रभातिपृष्ठंवृषस्यतत्

सङ्कीर्णन्तु दिवः पृष्ठं नक्षत्रैरिव सुव्रताः ! । कुसुमैः संवृतोनन्दी वृषपृष्ठे रराज सः

दिवः पृष्ठे यथा चन्द्रो नक्षत्रैरिव सुव्रताः ।

तं दृष्ट्वा नन्दिनं देवाः सेन्द्रोपेन्द्रास्तथाविधम् ॥ १५३ ॥

तुष्टुवुर्गणपेशानं देवदेवमिवाऽपरम् ।

देवा ऊचुः

नमस्ते रुद्रभक्ताय रुद्रजाप्यरताय च ॥ १५४ ॥

रुद्रभक्तार्तिनाशाय रौद्रकर्मरताय ते । कूष्माण्डगणनाथाय योगिनाम्पतये नमः ॥

सर्वदाय शरण्याय सर्वज्ञायाऽऽर्तिहारिणे । वेदानाम्पतये चैव वेदवेद्याय ते नमः ॥

वज्रिणे वज्रदंष्ट्राय वज्रिवज्रनिवारिणे । वज्रालङ्कृतदेहाय वज्रिणाऽऽराधिताय ते ॥

रक्ताय रक्तनेत्राय रक्ताम्बरधराय ते । रक्तानां भवपादाब्जे रुद्रलोकप्रदायिने ॥

नमः सेनाधिपतये रुद्राणां पतये नमः । भूतानां भुवनेशानां पतये पापहारिणे ॥

रुद्राय रुद्रपतये रौद्रपापहराय ते । नमः शिवाय सौम्याय रुद्रभक्ताय ते नमः ॥

सूत उवाच

ततः प्रीतो गणाध्यक्षःप्राहदेवांश्छिलात्मजः । रथश्चसारथिशम्भोःकार्मुकंशरमुत्तमम्

कर्तुमर्हथ यत्नेन नष्टं मत्वा पुरत्रयम् । अथ ते ब्रह्मणा सार्धं तथा वै विश्वकर्मणा

रथं चक्रुः सुसंरब्धा देवदेवस्य धीमतः ॥ १६३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे त्रिपुरदाहे नन्दिकेश्वरवाक्यं नाम

एकसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

———

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

त्रिपुरदाहोपक्रमे रुद्ररथनिर्माणवर्णनम्

सूत उवाच

अथ रुद्रस्य देवस्य निर्मितो विश्वकर्म्मणा । सर्वलोकमयोदिव्यो रथोयत्नेनसादरम्
सर्वभूतमयश्चैव सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः ॥ २ ॥
रथाङ्गं दक्षिणं सूर्यो वामाङ्गं सोम एव च । दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारंतथोत्तरम्
अरेषु तेषु विप्रेन्द्राश्चाऽऽदित्याद्वादशैवतु । शशिनः षोडशारेषु कला वामस्यसुव्रताः!
ऋक्षाणि च तदा तस्य वामस्यैवतु भूषणम् । नेम्यःषड् ऋतवश्चैवतयोर्वैविप्रपुङ्गवाः!
पुष्करश्चाऽन्तरीक्षं वै रथनीडश्च मन्दरः । अस्ताद्रिरुदयाद्रिश्च उभौ तौ कूबरौस्मृतौ
अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केसराचलाः । वेगः संवत्सरस्तस्य अयने चक्रसङ्गमौ ॥

मूहूर्त्ता बन्धुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः ।
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा चाऽक्षदण्डाः क्षणाश्च वै ॥ ८ ॥

निमेषाश्चानुकर्षाश्चईषाचास्यलवाःस्मृता । द्यौर्वरूथंरथस्यास्यस्वर्गमोक्षावुभौध्वजौ

धर्मो विरागो दण्डोऽस्य यज्ञा दण्डाश्रयाः स्मृताः ।
दक्षिणाः सन्धयस्तस्य लोहाः पञ्चाशदग्नयः ॥ १० ॥

युगान्तकोटीतौतस्यधर्मकामावुभौस्मृतौ । ईषादण्डस्तथाव्यक्तंबुद्धिस्तस्यैवनड्वलः
कोणस्तथा ह्यहङ्कारो भूतानि च बलंस्मृतम् । इन्द्रियाणिचतस्यैवभूषणानिसमन्ततः
श्रद्धा च गतिरस्यैव वेदास्तस्य हयाः स्मृताः । पदानिभूषणान्येवषडङ्गान्युपभूषणम्
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि सुव्रताः !। बालाश्रयाः पटाश्चैवसर्वलक्षणसंयुताः

मन्त्रा घण्टाः स्मृतास्तेषां वर्णाः पादास्तथाऽऽश्रमाः ।
अवच्छेदो ह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः ॥ १५ ॥

दिशः पादारथस्याऽस्यतथाचोपदिशश्चह । पुष्कराद्या पताकाश्चसौवर्णा रत्नभूषिताः

समुद्रास्तस्यचत्वारोरथकम्बलिकाःस्मृताः । गङ्गाद्याःसरितःश्रेष्ठाःसर्वाभरणभूषिताः

चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः ।

तत्र तत्र कृतस्थानाः शोभयाञ्चक्रिरे रथम् ॥ १८ ॥

आवहाद्यास्तथा सप्तसोपानं हैममुत्तमम् । सारथिर्भगवान्ब्रह्मा देवोऽभीषुधरः स्मृतः
प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् । लोकालोकाचलस्तस्य ससोपानःसमन्ततः
विषमश्चतदाबाह्योमानसाद्रिःसुशोभनः । नासाःसमन्ततस्तस्यसर्वएवाऽचलाःस्मृताः
तलाः कपोताःकापोताःसर्वेतलनिवासिनः । मेरुरेवमहाच्छत्रंमन्दरः पार्श्वडिण्डिमः
शैलेन्द्रःकार्मुकञ्चैवज्याभुजङ्गाधिपःस्वयम् । कालरात्र्यातथैवेहतथेन्द्रधनुषा पुनः ॥
घण्टा सरस्वती देवी धनुषःश्रुतिरूपिणी । इषुर्विष्णुर्महातेजाः शल्यंसोमःशरस्यच ॥

कालाग्निस्तच्छरस्यैव साक्षात्तीक्ष्णः सुदारुणः ।

अनीकं विषसम्भूतं वायवो वाजकाः स्मृताः ॥ २५ ॥

एवंकृत्वा रथं दिव्यं कार्मुकञ्च शरं तथा । सारथिंजगताञ्चैव ब्रह्माणं प्रभुमीश्वरम् ॥
आरुरोहरथंदिव्यं रणमण्डनधृग्भवः । सर्वदेवगणैर्युक्तं कम्पयन्निव रोदसी ॥ २७ ॥
ऋषिभिस्तूयमानश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः । उपनृत्तश्चाप्सरसाङ्गणैर्नृत्यविशारदैः ॥
सुशोभमानोवरदः सम्प्रेक्ष्यैव च सारथिम् । तस्मिन्नारोहतिरथंकल्पितंलोकसंभृतम्
शिरोभिःपतिताभूमिन्तुरगावेदसम्भवाः । अथाऽधस्ताद्रथस्यास्यभगवान्धरणीधरः

वृषेन्द्ररूपी चोत्थाप्य स्थापयामास वै क्षणम् ।

क्षणान्तरे वृषेन्द्रोऽपि जानुभ्यामगमद्धराम् ॥ ३१ ॥

अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयान् विभुः । स्थापयामासदेवस्य वचनाद्वैरथं शुभम्
ततोऽश्वांश्चोदयामासमनोमारुतरंहसः । पुराण्युद्दिश्यस्वस्थानिदानवानांतरस्विनाम्

अथाऽऽह भगवान् रुद्रो देवानालोक्य शङ्करः ।

पशूनामाधिपत्यं मे दत्तं हन्मि ततोऽसुरान् ॥ ३४ ॥

पृथक्पशुत्वंदेवानांतथान्येषांसुरोत्तमाः ! । कल्पयित्वैववध्यास्तेनान्यथानैवसत्तमाः
इति श्रुत्वा वचः सर्वं देवदेवस्य धीमतः । विषादमगमन् सर्वे पशुत्वं प्रतिशङ्किताः ॥

तेषां भावं ततो ज्ञात्वा देवस्तानिदमब्रवीत् ।
मा वोऽस्तु पशुभावेऽस्मिन्भयं विबुधसत्तमाः ! ॥ ३७ ॥
श्रूयतांपशुभावस्यविमोक्षः क्रियताञ्चसः । यो वै पाशुपतंदिव्यंचरिष्यतिसमोक्ष्यति
पशुत्वादितिसत्यञ्च प्रतिज्ञातं समाहिताः !। ये चाऽप्यन्ये चरिष्यन्तिव्रतंपाशुपतंमम
मोक्ष्यन्ति ते न सन्देहः पशुत्वात्सुरसत्तमाः ! ।
नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्धं वर्षकत्रयम् ॥ ४० ॥
शुश्रूषांकारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते । तस्मात्परमिदंदिव्यं चरिष्यथसुरोत्तमाः!
तथेतिचाब्रुवन्देवाःशिवे ! लोकनमस्कृते !। तस्माद्वै पशवः सर्वे देवासुरनराः प्रभोः
रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः । यः पशुस्तत् पशुत्वञ्च व्रतेनाऽनेनसन्त्यजेत् ॥
तत् कृत्वा न च पापीयानिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
ततो विनायकः साक्षाद् बालो बालपराक्रमः ॥ ४४ ॥
अपूजितस्तदा देवैः प्राह देवान्निवारयन् ।

श्रीविनायक उवाच

मामपूज्य जगत्यस्मिन् भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः ॥ ४५ ॥
कः पुमान् सिद्धिमाप्नोति देवो वा दानवोऽपि वा ।
ततस्तस्मिन्क्षणादेव देवकार्ये सुरेश्वराः ! ॥ ४६ ॥
विघ्नं करिष्ये देवेशः कथं कर्तुं समुद्यताः ।
ततः सेन्द्राः सुराः सर्वे भीताः सम्पूज्य तं प्रभुम् ॥ ४७ ॥
भक्ष्यभोज्यादिभिश्चैव उण्डरैश्चैव मोदकैः । अब्रुवंस्ते गणेशानंनिर्विघ्नञ्चाऽस्तुनःसदा
भवोऽप्यनेकैः कुसुमैर्गणेशं भक्ष्यैश्च भोज्यैः सुरसैः सुगन्धैः ।
आलिङ्ग्य चाऽऽघ्राय सुतं तदानीमपूजयत्सर्वसुरेन्द्रमुख्यः ॥४९ ॥
सम्पूज्य पूज्यं सह देवसङ्घैर्विनायकं नायकमीश्वराणाम् ।
गणेश्वरैरेव नगेन्द्रधन्वा पुरत्रयं दग्धुमसौ जगाम ॥ ५० ॥
तं देवदेवं सुरसिद्धसङ्घा महेश्वरं भूतगणाश्च सर्वे ।

गणेश्वरा नन्दिमुखास्तदानीं स्ववाहनैरन्वयुरीशमीशाः ॥ ५१ ॥
अग्रे सुराणाञ्च गणेश्वराणां तदाऽथ नन्दी गिरिराजकल्पम् ।
विमानमारुह्य पुरं प्रहर्तुं जगाम मृत्युं भगवान्निवेशः ॥ ५२ ॥
यान्तं तदानीन्तु शिलादपुत्रमारुह्य नागेन्द्रवृषाश्वपर्य्यान् ।
देवास्तदानीं गणपाश्च सर्वे गणा ययुः स्वायुधचिह्नहस्ताः ॥ ५३ ॥
खगेन्द्रमारुह्य नगेन्द्रकल्पं खगध्वजो वामत एव शम्भोः ।
जगाम तूर्णं जगतां हिताय पुरत्रयं दग्धुमलुप्तशक्तिः ॥ ५४ ॥
तं सर्वदेवाः सुरलोकनाथं समन्ततश्चाऽन्वयुरप्रमेयम् ।
सुरासुरेशं शितशक्तिटङ्कगदात्रिशूलासिवरायुधैश्च ॥ ५५ ॥
रराज मध्ये भगवान्सुराणां विवाहनो वारिजपत्रवर्णः ।
यथा सुमेरोः शिखराधिरूढः सहस्ररश्मिर्भगवान्सुतीक्ष्णः ॥ ५६ ॥
सहस्रनेत्रः प्रथमः सुराणां गजेन्द्रमारुह्य च दक्षिणेऽस्य ।
जगाम रुद्रस्य पुरं निहन्तुं यथोरगांस्तत्र तु वैनतेयः ॥ ५७ ॥
तं सिद्धगन्धर्वसुरेन्द्रवीराः सुरेन्द्रवृन्दाधिपमिन्द्रमीशम् ।
समन्ततस्तुष्टुवुरिष्टदन्ते जयेति शक्रं वरपुष्पवृष्ट्या ॥ ५८ ॥
तदा ह्यहल्योपपतिं सुरेशं जगत्पतिं देवपतिं दिविष्ठाः ।
प्रणेमुरालोक्य सहस्रनेत्रं सलीलमम्बातनयं यथेन्द्रम् ॥ ५९ ॥
यमपावकवित्तेशा वायुर्निर्ऋतिरेव च । अपांपतिस्तथेशानो भवश्चाऽनु समागताः ॥
वीरभद्रो रणे भद्रो नैर्ऋत्यां वै रथस्य तु । वृषभेन्द्रं समारुह्य रोमजैश्च समावृतः ॥
सेवाञ्चक्रे पुरं हन्तुं देवदेवं त्रियम्बकम् । महाकालो महातेजा महादेव इवाऽपरः ॥
वायव्यां सगणैः सार्धं सेवाञ्चक्रे रथस्य तु ॥ ६३ ॥
षण्मुखोऽपि सह सिद्धचारणैः सेनया च गिरिराजसन्निभः ।
देवनाथगणवृन्दसम्वृतो वारणेन च तथाऽग्निसम्भवः ॥ ६४ ॥
विघ्नं गणेशोऽप्यसुरेश्वराणां कृत्वा सुराणां भगवानविघ्नम् ।

विघ्नेश्वरो विघ्नगणैश्च सार्धन्तं देशमीशानपदं जगाम ॥ ६५ ॥
काली तदा कालनिशाप्रकाशं शूलं कपालाभरणा करेण ।
प्रकम्पयन्ती च तदाऽसुरेन्द्रान्महासुरासृङ्मधुपानमत्ता ॥ ६६ ॥
मत्तेभगन्त्री मदलोलनेत्रा मत्तैः पिशाचैश्च गणैश्च मत्तैः ।
मत्तेभचर्माम्बरवेष्टिताङ्गी ययौ पुरस्ताच्च गणेश्वरस्य ॥ ६७ ॥
तां सिद्धगन्धर्वपिशाचयक्षविद्याधराहीन्द्रसुरेन्द्रमुख्याः ।
प्रणेमुरुच्चैरभितुष्टुवुश्च जयेति देवीं हिमशैलपुत्रीम् ॥ ६८ ॥
मातरः सुरवरारिसूदनाः सादरं सुरगणैः सुपूजिताः ।
मातरं ययुरथ स्ववाहनैः स्वैर्गणैर्ध्वजधरैः समन्ततः ॥ ६९ ॥
दुर्गाऽऽरूढमृगाधिपा दुरतिगा दोर्दण्डवृन्दैः शिवा-
बिभ्राणाऽङ्कुशशूलपाशपरशुं चक्रासिशङ्खायुधम् ।
प्रौढादित्यसहस्रवह्निसदृशैर्नेत्रैर्दहन्ती पथं
बालाबालपराक्रमा भगवती दैत्यान्प्रहर्तुं ययौ ॥ ७० ॥
तं देवमीशं त्रिपुरं निहन्तुं तदा तु देवेन्द्ररविप्रकाशाः ।
गजैर्हयैः सिंहवरैरथैश्च वृषैर्ययुस्ते गणराजमुख्याः ॥ ७१ ॥
हलैश्च फालैर्मुसलैर्भुशुण्डैर्गिरीन्द्रकूटैर्गिरिसन्निभास्ते ।
ययुः पुरस्ताद्धि महेश्वरस्य सुरेश्वरा भूतगणेश्वराश्च ॥ ७२ ॥
तथेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः सुरा गणेशाश्च गणेशमीशम् ।
जयेति वाग्भिर्भगवन्तमूचुः किरीटदत्ताञ्जलयः समन्तात् ॥ ७३ ॥
ननृतुर्मुनयः सर्वे दण्डहस्ताजटाधराः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः ।
पुरत्रयञ्च विप्रेन्द्राः प्राणदत्सर्वतस्तथा ॥ ७४ ॥
गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृङ्गी समावृतः सर्वगणेन्द्रवर्यः ।
जगाम योगी त्रिपुरं निहन्तुं विमानमारुह्य यथा महेन्द्रः ॥ ७५ ॥
केशो विगतवासाश्च महाकेशो महाज्वरः । सोमवल्ली सवर्णश्च सोमपः सेनकस्तथा

सोमधृक् सूर्य्यधाचश्च सूर्य्यपेषणकस्तथा । सूर्य्याक्षः सूरिनामाच सुरः सुन्दर एव च
प्रकुदः ककुवन्तश्च कम्पनश्च प्रकम्पनः । इन्द्रश्चेन्द्रजयश्चैव महाभीर्भीमकस्तथा ॥७८॥
शताक्षश्चैव पञ्चाक्षः सहस्राक्षो महोदरः । यमजिह्वः शताश्वश्च कुण्ठनः कण्ठपूजनः ॥

द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथा पञ्चशिखो द्विजाः ! ।
मुण्डोऽर्धमुण्डो दीर्घश्च पिशाचास्यः पिनाकधृक् ॥ ८० ॥

पिप्पलायतनश्चैव तथा ह्यङ्गारकाशनः । शिथिलः शिथिलास्यश्चअक्षपादो ह्यजः कुजः
अजवक्त्रो हयवक्त्रोगजवक्त्रोऽर्ध्ववक्त्रकः । इत्याद्याःपरिवार्येशंलक्ष्यलक्षणवर्जिताः
वृन्दशस्तं समावृत्य जग्मुः सोमंगणैर्वृताः । सहस्राणांसहस्राणिरुद्राणामूर्ध्वरेतसाम्
समावृत्य महादेवं देवदेवं महेश्वरम् । दग्धुं पुरत्रयं जग्मुः कोटिकोटिगणैर्वृताः॥८४॥
त्रयस्त्रिंशत्सुराश्चैव त्रयश्च त्रिशतास्तथा । त्रयश्च त्रिसहस्राणि जग्मुर्देवाः समन्ततः
मातरः सर्वलोकानां गणानाञ्चैव मातरः । भूतानां मातरश्चैव जग्मुर्देवस्य पृष्ठतः॥८६
भाति मध्ये गणानाञ्च रथमध्ये गणेश्वरः । नभस्यमलनक्षत्रे तारामध्य इवोडुराट् ॥
रराज देवी देवस्य गिरिजापार्श्वसंस्थिता । तदा प्रभावतो गौरी भवस्येव जगन्मयी
शुभावती तदादेवी पार्श्वसंस्थाविभातिसा । चामरासक्तहस्ताग्रासाहेमाम्बुजवर्णिका

अथ विभाति विभोर्विशदं वपुर्भसितभासितमम्बिकया तया ।
सितमिवाऽभ्रमहो सह विद्युता नभसि देवपतेः परमेष्ठिनः ॥९० ॥

भातीन्द्रधनुषाकाशं मेरुणा च यथाजगत् । हिरण्यधनुषासौम्यंवपुःशम्भोःशशिद्युतिः
सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं परमेष्ठिनः । यथोदये शशाङ्कस्य भात्यखण्डं हि मण्डलम्
सदुकूला शिवे!रक्तालम्बिताभातिमालिका । छत्रान्तात्सजाकाशात्पतन्तीव सरिद्वरा

अथ महेन्द्रविरिञ्चिविभावसुप्रभृतिभिर्नतपादसरोरुहः ।
सह तदा च जगाम तयाऽम्बया सकललोकहिताय पुरत्रयम् ॥ ९४ ॥
दग्धुं समर्थो मनसा क्षणेन चराचरं सर्वमिदं त्रिशूली ।
किमत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी स्वयं गतश्चाऽत्र गणैश्च सार्धम् ॥ ९५ ॥
रथेन किं चेषुवरेण तस्य गणैश्च किं देवगणैश्च शम्भोः ।

पुरत्रयं दग्धुमलुप्तशक्तेः किमेतदित्याहुरजेन्द्रमुख्याः ॥ ९६ ॥
मन्याम नूनं भगवान् पिनाकी लीलार्थमेतत्सकलं प्रवर्त्तुम् ।
व्यवस्थितश्चेति तथाऽन्यथा चेदाडम्बरेणाऽस्य फलं किमन्यत् ॥ ९७ ॥
पुरत्रयस्याऽस्य समीपवर्त्ती सुरेश्वरैर्नन्दिमुखैश्च नन्दी ।
गणैर्गणेशस्तु रराज देव्या जगद्रथो मेरुरिवाऽष्टशृङ्गैः ॥ ९८ ॥
अथ निरीक्ष्य सुरेश्वरमीश्वरं सगणमद्रिसुतासहितं तदा ।
त्रिपुरदङ्गतलोपरि संस्थितः सुरगणोऽनुजगाम स्वयं तथा ॥ ९९ ॥
जगत्त्रयं सर्वमिवापरं तत् पुरत्रयं तत्र विभाति सम्यक् ।
नरेश्वरैश्चैव गणैश्च देवैः सुरेतरैश्च त्रिविधैर्मुनीन्द्राः ॥ १०० ॥

अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वःसन्धायतंशरम् । युक्त्वा पाशुपतास्त्रेणत्रिपुरंसमचिन्तयत्
तस्मिन्स्थिते महादेवे रुद्रे विततकार्मुके । पुराणि तेन कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै ॥
एकीभावं गते चैव त्रिपुरे समुपागते । बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ॥

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ।
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तोऽष्टमूर्तिकम् ॥ १०४ ॥

अथाऽऽह भगवान्ब्रह्माभगनेत्रनिपातनम् । पुष्ययोगेऽपि सम्प्राप्तेलीलावशमुमापतिम्
स्थाने तव महादेव ! चेष्टेयं परमेश्वर ! । पूर्वदेवाश्च देवाश्च समास्तव यतः प्रभो !॥
तथापि देवाधर्मिष्ठाःपूर्वदेवाश्चपापिनः । यतस्तस्माज्जगन्नाथ! लीलांत्यक्तुमिहाऽर्हसि
किं रथेन ध्वजेनेश! तव दग्धुं पुरत्रयम् । इषुणा भूतसङ्घैश्च विष्णुना च मया प्रभो!
पुष्ययोगे त्वनुप्राप्ते पुरन्दग्धुमिहाऽर्हसि । यावन्न यान्ति देवेश ! वियोगं तावदेव तु
दग्धुमर्हसि शीघ्रं त्वं त्रीण्येतानि पुराणि वै । अथ देवो महादेवः सर्वज्ञस्तदवैक्षत ॥
पुरत्रयं विरूपाक्षस्तत्क्षणाद्भस्म वै कृतम् । सोमश्च भगवान्विष्णुः कालाग्निर्वायुरेव च
शरे व्यवस्थिताः सर्वे देवमूचुः प्रणम्य तम् । दग्धमप्यथ देवेश ! वीक्षणेन पुरत्रयम् ॥
अस्मद्धितार्थं देवेश!शरं मोक्तुमिहाऽर्हसि । अथ संमृज्य धनुषो ज्यां हसन्त्रिपुरार्दनः
मुमोच बाणं विप्रेन्द्रा ! व्याकृष्याऽऽकर्णमीश्वरः ।

तत्क्षणात्रिपुरं दग्ध्वा त्रिपुरान्तकरः शरः ॥ ११४ ॥
देवदेवं समासाद्य नमस्कृत्य व्यवस्थितः । रेजे पुरत्रयं दग्धं दैत्यकोटिशतैर्वृतम् ॥
इषुणा तेन कल्पान्ते रुद्रेणेव जगत्त्रयम् । ये पूजयन्तितत्राऽपि दैत्या रुद्रं सबान्धवाः
गाणपत्यं तदा शम्भोर्ययुः पूजाविधेर्बलात् । नकिञ्चिदब्रुवन्देवाःसेन्द्रोपेन्द्रागणेश्वराः
भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं हिमवतः सुताम् । दृष्ट्वा भीतं तदानीकं देवानां देवपुङ्गवः ॥
किञ्चेत्याह तदा देवान् प्रणेमुस्तं समन्ततः ॥ ११६ ॥
ववन्दिरे नन्दिनमिन्दुभूषणं ववन्दिरे पर्वतराजसम्भवाम् ।
ववन्दिरे चाद्रिसुतासुतं प्रभुं ववन्दिरे देवगणा महेश्वरम् ॥ १२० ॥
तुष्टाव हृदये ब्रह्मा देवैः सह समाहितः । विष्णुना च भवं देवं त्रिपुरारातिमीश्वरम्

श्रीपितामह उवाच

प्रसीद देवदेवेश! प्रसीद परमेश्वर !। प्रसीद जगतां नाथ! प्रसीदाऽनन्ददाऽव्यय !॥
पञ्चास्यरुद्ररुद्राय पञ्चाशत्कोटिमूर्त्तये । आत्मत्रयोपविष्टाय विद्यातत्त्वाय ते नमः ॥
शिवाय शिवतत्त्वाय अघोराय नमो नमः । अघोराष्टकतत्त्वाय द्वादशात्मस्वरूपिणे॥
विद्युत्कोटिप्रतीकाशमष्टकाशं सुशोभनम् ।
रूपमास्थाय लोकेऽस्मिन् संस्थिताय शिवात्मने ॥ १२० ॥
अग्निवर्णाय रौद्राय अम्बिकार्धशरीरिणे । धवलश्यामरक्तानां मुक्तिदायामराय च ॥
ज्येष्ठाय रुद्ररूपाय सोमाय वरदाय च । त्रिलोकाय त्रिदेवाय वषट्काराय वै नमः ॥
मध्ये गगनरूपाय गगनस्थाय ते नमः । अष्टक्षेत्राष्टरूपाय अष्टतत्त्वाय ते नमः॥१२८॥
चतुर्धा च चतुर्धा च चतुर्द्धा संस्थिताय च । पञ्चधा पञ्चधा चैव पञ्चमन्त्रशरीरिणे
चतुःषष्टिप्रकाराय अकाराय नमो नमः । द्वात्रिंशत्तत्त्वरूपाय उकाराय नमो नमः ॥
षोडशात्मस्वरूपाय मकाराय नमो नमः । अष्टधात्मस्वरूपाय अर्धमात्रात्मने नमः ॥
ओङ्काराय नमस्तुभ्यं चतुर्धा संस्थिताय च । गगनेशाय देवाय स्वर्गेशाय नमो नमः
सप्तलोकाय पातालनरकेशाय वै नमः । अष्टक्षेत्राष्टरूपाय परात्परतराय च ॥ १३३ ॥
सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राय च ते नमः । सहस्रपादयुक्ताय शर्वाय परमेष्ठिने ॥१३४॥

नवात्मतत्त्वरूपाय नवाष्टात्मात्मशक्तये । पुनरष्टप्रकाशाय तथाष्टाष्टकमूर्तये ॥ १३५ ॥
चतुःषष्ट्यात्मतत्त्वाय पुनरष्टविधाय ते । गुणाष्टकवृतायैव गुणिने निर्गुणाय ते ॥

मूलस्थाय नमस्तुभ्यं शाश्वतस्थानवासिने ।
नाभिमण्डलसंस्थाय हृदि निःस्वनकारिणे ॥ १३७ ॥

कन्धरे च स्थितायैव तालरन्ध्रस्थितायच । भ्रूमध्ये संस्थितायैवनादमध्येस्थितायच
चन्द्रबिम्बस्थितायैव शिवाय शिवरूपिणे । वह्निसोमार्करूपाय षट्त्रिंशच्छक्तिरूपिणे
त्रिधा सम्वृत्य लोकान् वै प्रसुप्तभुजगात्मने । त्रिप्रकारं स्थितायैव त्रेताग्निमयरूपिणे
सदाशिवाय शान्ताय महेशाय पिनाकिने । सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय वै नमः
अघोराय नमस्तुभ्यं वामदेवाय ते नमः । तत्पुरुषाय नमोऽस्तु ईशानाय नमो नमः ॥
नमस्त्रिंशत्प्रकाशाय शान्तातीताय वै नमः । अनन्तेशाय सूक्ष्माय उत्तमायनमोऽस्तुते
एकाक्षाय नमस्तुभ्यमेकरुद्राय ते नमः । नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं श्रीकण्ठाय शिखण्डिने॥
अनन्तासनसंस्थाय अनन्तायाऽन्तकारिणे । विमलाय विशालाय विमलाङ्गाय तेनमः
विमलासनसंस्थाय विमलार्थार्थरूपिणे । योगपीठान्तरस्थाय योगिने योगदायिने॥

योगिनां हृदि संस्थाय सदा नीवारशूकवत् ।
प्रत्याहाराय ते नित्यं प्रत्याहाररताय ते ॥ १४७ ॥

प्रत्याहाररतानाञ्च प्रतिस्थानस्थिताय च । धारणाय नमस्तुभ्यं धारणाभिरताय ते
धारणाभ्यासयुक्तानांपुरस्तात्संस्थितायच । ध्यानायध्यानरूपायध्यानगम्यायतेनमः
ध्येयाय ध्येयगम्याय ध्येयध्यानाय ते नमः । ध्येयानामपि ध्येयायनमोध्येयतमाय ते
समाधानाभिगम्याय समाधानाय ते नमः । समाधानरतानान्तु निर्विकल्पार्थरूपिणे

दग्ध्वोद्धृतं सर्वमिदं त्वयाऽद्य जगत्त्रयं रुद्र ! पुरत्रयं हि ।
कस्स्तोतुमिच्छेत्कथमीदृशं त्वां स्तोष्ये हि तुष्टाय शिवाय तुभ्यम् ॥१५२
भक्त्या च तुष्ट्याऽद्भुतदर्शनाच्च मर्त्या अमर्त्या अपि देवदेव ! ।
एते गणाः सिद्धगणैः प्रणामं कुर्वन्ति देवेश ! गणेश ! तुभ्यम् ॥ १५३ ॥
निरीक्षणादेव विभोऽसि दग्धुं पुरत्रयञ्चैव जगत्त्रयञ्च ।

लीलालसेनाम्बिकया क्षणेन दग्धं किलेषुश्च तदाऽथ मुक्तः ॥ १५४ ॥
हतो रथश्चेषुवरश्च शुभ्रं शरासनं ते त्रिपुरक्षयाय ।
अनेकयत्नैश्च मयाऽथ तुभ्यं फलं न दृष्टं सुरसिद्धसङ्घैः ॥ १५५ ॥
रथो रथी देववरो हरिश्च रुद्रः स्वयं शक्रपितामहौ च ।
त्वमेव सर्वे भगवन्! कथं तु स्तोष्ये ह्यतोष्यं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ १५६ ॥
अनन्तपादस्त्वमनन्तबाहुरनन्तमूर्धान्तकरः शिवश्च ।
अनन्तमूर्तिः कथमीदृशं त्वां तोष्ये ह्यतोष्यं कथमीदृशं त्वाम् ॥ १५७ ॥
नमो नमः सर्वविदे शिवाय रुद्राय शर्वाय भवाय तुभ्यम् ।
स्थूलाय सूक्ष्माय सुसूक्ष्मसूक्ष्मसूक्ष्माय सूक्ष्मार्थविदे विधात्रे ॥ १५८ ॥
स्रष्ट्रे नमः सर्वसुरासुराणां भर्त्रे च हर्त्रे जगतां विधात्रे ।
नेत्रे सुराणामसुरेश्वराणां दात्रे प्रशास्त्रे मम सर्वशास्त्रे ॥ १५९ ॥
वेदान्तवेद्याय सुनिर्मलाय वेदार्थविद्भिः सततं स्तुताय ।
वेदात्मरूपाय भवाय तुभ्यमन्ताय मध्याय सुमध्यमाय ॥ १६० ॥
आद्यन्तशून्याय च संस्थिताय तथात्वशून्याय च लिङ्गिने च ।
अलिङ्गिने लिङ्गमयाय तुभ्यं लिङ्गाय वेदादिमयाय साक्षात् ॥ १६१ ॥
रुद्राय ते मूर्धनिकृन्तनाय ममाऽऽदिदेवस्य च यज्ञमूर्तेः ।
विध्वान्तभङ्गं मम कर्तुमीश! दृष्ट्वैव भूमौ करजाग्रकोट्या ॥ १६२ ॥
अहो विचित्रन्तव देवदेव! विचेष्टितं सर्वसुरासुरेश! ।
देहीव देवैः सह देवकार्यं करिष्यसे निर्गुणरूपतस्त्व! ॥ १६३ ॥
एकं स्थूलं सूक्ष्ममेकं सुसूक्ष्मं मूर्तामूर्तं मूर्तमेकं ह्यमूर्तम् ।
एकं दृष्टं वाङ्मयञ्चैकमीशं ध्येयञ्चैकन्तत्त्वमत्राद्भुतन्ते ॥ १६४ ॥
स्वप्ने दृष्टं यत्पदार्थं ह्यलक्ष्यं दृष्टं नूनम्भाति मन्येन चाऽपि ।
मूर्तिर्नो वै देवकीशान देवैर्लक्ष्या यत्नैरप्यलक्ष्यङ्कथन्तु ॥ १६५ ॥
दिव्यः क देवेश! भवत्प्रभावो वयं क भक्तिः क च ते स्तुतिश्च ।

तथापि भक्त्या विलपन्तमीश ! पितामहं माम्भगवन् ! क्षमस्व ॥१६६॥

सूत उवाच

य इमं शृणुयाद् द्विजोत्तमा ! शुचि देवं प्रणिपत्य वा पठेत् ।

स च मुञ्चति पापबन्धनं भवभक्त्या पुरशासितुस्तवम् ॥ १६७ ॥

श्रुत्वा च भक्त्या चतुराननेन स्तुतो हसन् शैलसुतां निरीक्ष्य ।

स्तवन्तदा प्राह महानुभावं महाभुजो मन्दरशृङ्गवासी ॥ १६८ ॥

शिव उवाच

स्तवेनाऽनेन तुष्टोऽस्मि तवभक्त्याच पद्मज !। वरान्वरय भद्रन्ते देवानाञ्चयथेप्सितान्

सूत उवाच

ततः प्रणम्य देवेशं भगवान् पद्मसम्भवः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्राहेदं प्रीतमानसः ॥

श्रीपितामह उवाच

भगवन् देवदेवेश ! त्रिपुरान्तक ! शङ्कर !। त्वयि भक्तिं परां मेऽद्य प्रसीद परमेश्वर !

देवानाञ्चैव सर्वेषां त्वयिसर्वार्थदेश्वर ! । प्रसीद भक्तियोगेन सारथ्येन च सर्वदा ॥

जनार्दनोऽपिभगवान्नमस्कृत्यमहेश्वरम् । कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्राह साम्बन्त्रियम्बकम्

वाहनत्वन्तवेशान ! नित्यमीहे प्रसीद मे । त्वयि भक्तिञ्चदेवेश ! देवदेव नमोऽस्तुते

सामर्थ्यञ्च सदामह्यंभवन्तंवोढुमीश्वरम् । सर्वज्ञ ! त्वञ्चवरद ! सर्वग ! त्वञ्च शङ्कर !

सूत उवाच

तयोःश्रुत्वामहादेवो विज्ञप्तिम्परमेश्वरः । सारथ्ये वाहनत्वे च कल्पयामास वै भवः

दत्त्वा तस्मै ब्रह्मणे विष्णवे च दग्ध्वा दैत्यान्देवदेवो महात्मा ।

सार्धं देव्या नन्दिना भूतसङ्घैरन्तर्धानं कारयामास शर्वः ॥ १६७ ॥

ततस्तदा महेश्वरे गते रणाङ्गणेः सह । सुरेश्वराः सुविस्मिता भवं प्रणम्य पार्वतीम्

ययुश्च दुःखवर्जिताः स्ववाहनैर्दिवन्ततः । सुरेश्वरा मुनीश्वरा गणेश्वराश्च भास्कराः

त्रिपुरारेरिमंपुण्यंनिर्मितंब्रह्मणापुरा । यः पठेच्छ्राद्धकाले वा दैवे कर्मणि च द्विजाः !

श्रावयेद्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति ।

मानसैर्वाचिकैः पापैस्तथा वै कायिकैः पुनः ॥ १८१ ॥
स्थूलैःसूक्ष्मैःसुसूक्ष्मैश्च महापातकसम्भवैः । पातकैश्च द्विजश्रेष्ठा ! उपपातकसम्भवैः
पापैश्चमुच्यतेजन्तुःश्रुत्वाध्यायमिमंशुभम् । शत्रवोनाशमायान्तिसङ्ग्रामेविजयीभवेत्
सर्वरोगैर्नबाध्येत आपदो न स्पृशन्ति तम् । धनमायुर्यशोविद्यां प्रभावमतुलं लभेत्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे त्रिपुरदाहे ब्रह्मस्तवो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

शिवपूजामाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

गतेमहेश्वरे देवे दग्ध्वा च त्रिपुरंक्षणात् । सदस्याहसुरेन्द्राणांभगवान् पद्मसम्भवः॥

पितामह उवाच

सन्त्यज्य देवदेवेशं लिङ्गमूर्तिमहेश्वरम् । तारपौत्रोमहातेजा तारकस्य सुतो बली ॥
तारकाक्षोऽपि दितिजः कमलाक्षश्च वीर्यवान् ।
विद्युन्माली च दैत्येशः अन्ये चापि सबान्धवाः ॥ ३ ॥
त्यक्त्वा देवं महादेवं मायया च हरेः प्रभोः । सर्वे विनष्टाःप्रध्वस्ताःस्वपुरैःपुरसम्भवैः
तस्मात् सदापूजनीयोलिङ्गमूर्तिःसदाशिवः । यावत्पूजासुरेशानांतावदेव स्थितिर्यतः
पूजनीयःशिवो नित्यं श्रद्धया देवपुङ्गवैः । सर्वलिङ्गमयो लोकःसर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्
तस्मात्सम्पूजयेल्लिङ्गंयइच्छेत् सिद्धिमात्मनः । सर्वे लिङ्गार्चनादेवदेवादैत्याश्चदानवाः
यक्षाविद्याधराःसिद्धाराक्षसाःपिशिताशनाः । पितरोमुनयश्चापिपिशाचाःकिन्नरादयः
अर्चयित्वालिङ्गमूर्तिं संसिद्धानात्र संशयः । तस्माल्लिङ्गंयजेन्नित्यं येनकेनापिवासुराः!
पशवश्च वयं तस्य देवदेवस्य धीमतः । पशुत्वञ्च परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं ततः ॥
पूजनीयोमहादेवो लिङ्गमूर्तिः सनातनः । विशोध्यचैव भूतानि पञ्चभिः प्रणवैः समम्

प्राणायामैःसमायुक्तैःपञ्चभिःसुरपुङ्गवाः ! चतुर्भिः प्रणवैश्चैव प्राणायामपरायणैः ॥

त्रिभिश्च प्रणवैर्देवाः ! प्राणायामैस्तथाविधैः ।

द्विधा न्यस्य तथोङ्कारं प्राणायामपरायणः ॥ १३ ॥

ततश्चोङ्कारमुच्चार्य्य प्राणापानौनियम्य च । ज्ञानामृतेनसर्वाङ्गाण्यापूर्य्य प्रणवेन च । गुणत्रयं चतुर्थाख्यमहङ्कारञ्चसुव्रताः ! तन्मात्राणि च भूतानि तथा बुद्धीन्द्रियाणिच कर्मेन्द्रियाणिसंशोध्यपुरुषंयुगलं तथा । चिदात्मानंतनुंकृत्वाचाग्निर्भस्मेति संस्पृशेत् वायुर्भस्मेतिच व्योमतथाम्भःपृथिवी तथा । त्रियायुषं त्रिसन्ध्यञ्च धूलयेद्धसितेन यः स योगी सर्वतत्त्वज्ञो व्रतंपाशुपतन्त्विदम् । भवेनपाशमोक्षार्थं कथितं देवसत्तमाः!॥ एवं पाशुपतंकृत्वा सम्पूज्य परमेश्वरम् । लिङ्गे पुरा मया दृष्टे विष्णुनाच महात्मना पशवो नैव जायन्ते वर्षमात्रेण देवताः ! । अस्माभिःसर्वकार्याणां देवमभ्यर्च्य यत्नतः बाह्येवाऽभ्यन्तरेचैवमन्येकर्तव्यमीश्वरम् । प्रतिज्ञा मम विष्णोश्चदिव्यैषासुरसत्तमाः!

मुनीनाञ्च न सन्देहस्तस्मात् सम्पूजयेच्छिवम् !

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता ॥ २२ ॥

यत्क्षणं वा मुहूर्तम्वा शिवमेकं न चिन्तयेत् । भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ॥ भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्यभाजनम् । भवनानिमनोज्ञानिदिव्यमाभरणं स्त्रियः॥ धनंवातुष्टिपर्यन्तंशिवपूजाविधेःफलम् । येवाञ्छन्तिमहाभोगान् राज्यञ्चत्रिदशालये॥ तेऽर्चयन्तुसदाकालंलिङ्गमूर्तिमहेश्वरम् । हत्वाभित्त्वाचभूतानि दग्ध्वासर्वमिदं जगत् यजेदेकं विरूपाक्षं न पापैः स प्रलिप्यते । शैलं लिङ्गं मदीयं हि सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ इत्युक्त्वा पूर्वमभ्यर्च्य रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्देवदेवंत्रियम्बकम् तदाप्रभृतिशक्राद्याःपूजयामासुरीश्वरम् । साक्षात्पाशुपतंकृत्वा भस्मोद्धूलितविग्रहाः इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवपूजामाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

नानाविधशिवलिङ्गानाम्वर्णनम्

सूत उवाच

लिङ्गानिकल्पयित्वैवंस्वाधिकारानुरूपतः । विश्वकर्माददौतेषां नियोगाद्ब्रह्मणःप्रभोः
इन्द्रनीलमयं लिङ्गं विष्णुनापूजितं सदा । पद्मरागमयं शक्रो हैमं विश्रवसः सुतः ॥
विश्वेदेवास्तथारौप्यंवसवःकान्तिकंशुभम् । आरकूटमयंवायुरश्विनौ पार्थिवं सदा॥

स्फाटिकं वरुणो राजा आदित्यास्ताम्रनिर्मितम् ।
मौक्तिकं सोमराड् धीमांस्तथा लिङ्गमनुत्तमम् ॥ ४ ॥

अनन्ताद्या महानागाः प्रवालकमयंशुभम् । दैत्या ह्ययोमयंलिङ्गं राक्षसाश्च महात्मनः
त्रैलोहिकंगुह्यकाश्च सर्वलोहमयं गणाः । चामुण्डासैकतंसाक्षान्म.तरश्च द्विजोत्तमाः
दारुजं नैर्ऋतिर्भक्त्या यमो मारकतंमुभम् । नीलाद्याश्चतथा रुद्राःशुद्धंभस्ममयंशुभम्
लक्ष्मीवृक्षमयं लक्ष्मीर्गुहो वै गोमयात्मकम् । मुनयोमुनिशार्दूलाः कुशाग्रमयमुत्तमम्
वामाद्याः पुष्पलिङ्गन्तु गन्धलिङ्गंमनोन्मनी । सरस्वती च रत्नेन कृतंरुद्रस्यवाग्भवा
दुर्गा हैमं महादेवं सवेदिकमनुत्तमम् । उग्रविष्टमयं सर्वे मन्त्रा ह्याज्यमयं शुभम् ॥
वेदाः सर्वे दधिमयंपिशाचाःसीसनिर्मितम् । लेभिरेचयथायोग्यंप्रसादाद्ब्रह्मणः पदम्
बहुनाऽत्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत् । शिवलिङ्गं समभ्यर्च्य स्थितमत्र न संशयः
षड्विधंलिङ्गमित्याहुर्द्रव्याणाञ्चप्रभेदतः । तेषांभेदाश्चतुर्युक्चत्वारिंशदिति स्मृताः
शैलजं प्रथमं प्रोक्तं तद्धि साक्षाच्चतुर्विधम् । द्वितीयं रत्नजं तच्च सप्तधा मुनिसत्तमाः!
तृतीयं धातुजं लिङ्गमष्टधा परमेष्ठिनः । तुरीयं दारुजं लिङ्गं तत्तु षोडशधोच्यते ॥

मृण्मयं पञ्चमं लिङ्गं द्विधा भिन्नं द्विजोत्तमाः ।
षष्ठन्तु क्षणिकं लिङ्गं सप्तधा परिकीर्त्तितम् ॥ १६ ॥

श्रीप्रदं रत्नजं लिङ्गं शैलजं सर्वसिद्धिदम् । धातुजं धनदं साक्षाद्दारुजंभोगसिद्धिदम्

मृण्मयञ्चैवविप्रेन्द्राः ! सर्वसिद्धिकरंशुभम् । शैलजंचोत्तमंप्रोक्तंमध्यमञ्चैवधातुजम्
बहुधा लिङ्गभेदाश्च नव चैव समासतः । मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः॥
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यःसदाशिवः । लिङ्गवेदी महादेवी त्रिगुणात्रिमयाम्बिका
तया च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ । शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्

मृण्मयं क्षणिकं वाऽपि भक्त्या स्थाप्यं फलं शुभम् ।
सुरेन्द्राम्भोजगर्भाग्नियमाम्बुपधनेश्वरैः ॥ २२ ॥

सिद्धविद्याधराहीन्द्रैर्यक्षदानवकिन्नरैः । स्तूयमानः सुपुण्यात्मा देवदुन्दुभिनिस्वनैः ॥
भूर्भुवः स्वर्महर्लोकान् क्रमाद्वै जनतः परम् । तपः सत्यं पराक्रम्य भासयन्स्वेनतेजसा
लिङ्गस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना । आशु ब्रह्माण्डमुद्भिद्यनिर्गच्छेन्निर्विशङ्कया
शैलजंरत्नजंवापिधातुजंवापिदारुजम् । मृण्मयंक्षणिकं त्यक्त्वा स्थापयेत्सकलंवपुः

विधिना चैव कृत्वा तु स्कन्दोमासहितं शुभम् ।
कुन्दगोक्षीरसङ्काशं लिङ्गं यः स्थापयेन्नरः ॥ २७ ॥

नृणां तनुं समास्थायस्थितोरुद्रोन संशयः । दर्शनात्स्पर्शनात्तस्यलभन्तेनिर्वृतिं नराः
तस्य पुण्यं मया वक्तुं सम्यग्युगशतैरपि । शक्यते नैव विप्रेन्द्रास्तस्माद्वैस्थापयेत्तथा
सर्वेषामेवमर्त्यानां विभोर्दिव्यंवपुःशुभम् । सकलंभावनायोग्यंयोगिनामेवनिष्कलम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे नानाविधशिवलिङ्गानाम्वर्णनं नाम
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शिवाद्वैतवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

निष्कलोनिर्मलोनित्यःसकलत्वं कथं गतः । वक्तुमर्हसिवाऽस्माकंयथापूर्वंयथाश्रुतम्

सूत उवाच

परमार्थविदःकेचिदूचुःप्रणवरूपिणम् । विज्ञानमितिविप्रेन्द्राः ! श्रुत्वाश्रुतिशिरस्यजम्

शब्दादि विषयं ज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ।

तज्ज्ञानंभ्रान्तिरहितमित्यन्येनेति चापरे ॥ ३ ॥

यज्ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निराश्रयम् ।

गुरुप्रकाशकं ज्ञानमित्यन्ये मुनयो द्विजाः ॥ ४ ॥

ज्ञानेनैवभवेन्मुक्तिःप्रसादोज्ञानसिद्धये । उभाभ्यां मुच्यते योगीतत्राऽऽनन्दमयोभवेत्

वदन्ति मुनयः केचित्कर्मणा तस्यसङ्गतिम् । कल्पनाकल्पितं रूपंसंहृत्यस्वेच्छयैवहि

द्यौर्मूर्धा तु विभोस्तस्यखंनाभिःपरमेष्ठिनः । सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशःश्रोत्रंमहात्मनः

चरणौ चैव पातालं समुद्रस्तस्य चाऽम्बरम् ।

देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ॥ ८ ॥

प्रकृतिस्तस्य पत्नीच पुरुषो लिङ्गमुच्यते । वक्त्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वेब्रह्माचभगवान्प्रभुः॥

इन्द्रोपेन्द्रौभुजाभ्यान्तुक्षत्रियाश्चमहात्मनः। वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तुशूद्राःपादात्पिनाकिनः

पुष्करावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्तिताः ।

वायवो घ्राणजास्तस्य गतिः श्रौतं स्मृतिस्तथा ॥ ११ ॥

अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्त्तकः । पुंसान्तु पुरुषः श्रीमान्ज्ञानगम्योनचान्यथा॥

कर्मयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते । तपो यज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥

जपयज्ञसहस्रेभ्योध्यानयज्ञो विशिष्यते । ध्यानयज्ञात्परोनास्तिध्यानंज्ञानस्यसाधनम्

यदा समरसे निष्ठोयोगी ध्यानेन पश्यति । ध्यानयज्ञरतस्याऽस्यतदासन्निहितःशिवः

नास्ति विज्ञानिनां शौचं प्रायश्चित्तादिचोदना ।

विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जनाः ॥ १६ ॥

नास्ति क्रिया च लोकेषु सुखं दुःखं विचारतः ।

धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानिनां सन्निधिः सदा ॥ १७ ॥

परानन्दात्मकं लिङ्गं विशुद्धं शिवमक्षरम् । निष्कलं सर्वगंज्ञेयंयोगिनांहृदिसंस्थितम्

लिङ्गन्तु द्विविधं प्राहुर्बाह्यमाभ्यन्तरं द्विजाः ।
बाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः ! सूक्ष्ममाभ्यन्तरं द्विजाः ! ॥ १६ ॥

कर्मयज्ञरताः स्थूलाः स्थूललिङ्गार्चने रताः । असतां भावनार्थायनान्यथास्थूलविग्रहः आध्यात्मिकञ्चयल्लिङ्गंप्रत्यक्षंयस्यनोभवेत् । असौमूढोबहिःसर्वंकल्पयित्वैवनान्यथा ज्ञानिनांसूक्ष्मममलंभवेत्प्रत्यक्षमव्ययम् । यथास्थूलमयुक्तानांमृत्काष्ठाद्यैःप्रकल्पितम् अर्थो विचारतो नास्तीत्यन्ये तत्त्वार्थवेदिनः । निष्कलःसकलश्चेतिसर्वंशिवमयं ततः व्योमैकमपि दृष्टंहि शरावंप्रतिसुव्रताः !। पृथक्त्वंचाऽपृथक्त्वञ्चशङ्करस्येतिवाऽपरे प्रत्ययार्थं हि जगतामेकस्थोऽपिदिवाकरः । एकोऽपि बहुधा दृष्टो जलाधारेषुसुव्रताः जन्तवो दिवि भूमौ च सर्वेवैपाञ्चभौतिकाः । तथापिबहुलादृष्टाजातिव्यक्तिविभेदतः॥ दृश्यतेश्रूयतेयद्यत्तत्तद्विद्धिशिवात्मकम् । भेदोजनानांलोकेऽस्मिन्प्रतिभासोविचारतः

स्वप्ने च विपुलान्भोगान्भुक्त्वा मर्त्यः सुखी भवेत् ।
दुःखी च भोगं दुःखञ्च नाऽनुभूतं विचारतः ॥ २८

एवमाहुस्तथाऽन्येच सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः । हृदिसंसारिणां साक्षात्सकलः परमेश्वरः योगिनां निष्कलो देवो ज्ञानिनाञ्च जगन्मयः । त्रिविधं परमेशस्य वपुर्लोके प्रशस्यते निष्कलं प्रथमञ्चकं ततः सकलनिष्कलम् । तृतीयं सकलञ्चैव नान्यथेति द्विजोत्तमाः अर्चयन्ति मुहुःकेचित्सदासकलनिष्कलम् । सर्वज्ञं हृदये केचिच्छिवलिङ्गेविभावसौ सकलं मुनयः केचित्सदा संसारवर्तिनः । एवमभ्यर्चयन्त्येव सदाराः ससुता नराः ॥ यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः । तस्मादभेदबुद्ध्यैव सप्तविंशत्प्रभेदतः यजन्ति देहे बाह्ये च चतुष्कोणे षडस्रके । दशारे द्वादशारे च षोडशारे त्रिरस्रके ॥

स स्वेच्छया शिवः साक्षाद्देव्या सार्द्धं स्थितः प्रभुः ।
सन्तारणार्थञ्च शिवः सदसद्व्यक्तिवर्जितः ॥ ३६ ॥
तमेकमाहुर्द्विगुणञ्च केचित्केचित्तमाहुस्त्रिगुणात्मकञ्च ।
ऊचुस्तथा तञ्च शिवं तथाऽन्ये संसारिणं वेदविदो वदन्ति ॥ ३७ ॥
भक्त्या च योगेन शुभेन युक्ता विप्राः सदा धर्मरता विशिष्टाः ।

यजन्ति योगेशमशेषमूर्त्तिं षडब्जमध्ये भगवन्तमेव ॥ ३८ ॥
ये तत्र पश्यन्ति शिवं त्रिरब्जे त्रितत्त्वमध्ये त्रिगुणं त्रियक्षम्।
ते यान्ति चैनं न च योगियोऽन्ये तया च देव्या पुरुषं पुराणम् ॥ ३९ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवाद्वैतकथनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शिवमूर्त्तिप्रतिष्ठाफलकथनम्

सूत उवाच

अतःपरंप्रवक्ष्यामि स्वेच्छाविग्रहसम्भवम्। प्रतिष्ठायाःफलं सर्वं सर्वलोकहितायवै ॥
स्कन्दोमासहितं देवमासीनं परमासने।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २ ॥
स्कन्दोमासहितंदेवं सम्पूज्य विधिनासकृत्। यत्फलंलभतेमर्त्यस्तद्वदामियथाश्रुतम्
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः। रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्गेयनाट्यसमन्वितैः ॥
शिववत् क्रीडते योगी यावदाभूतसंप्लवम्।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् विमानैः सार्वकामिकैः ॥ ५ ॥
भौमंकौमारमैशानं वैष्णवं ब्राह्ममेव च। प्राजापत्यं महातेजा जनलोकं महस्तथा ॥
ऐन्द्रमासाद्य चैन्द्रत्वं कृत्वा वर्षायुतं पुनः।
भुक्त्वा चैव भुवर्लोके भोगान् दिव्यान् सुशोभितान् ॥ ७ ॥
मेरुमासाद्य देवानां भवनेषु प्रमोदते। एकपादं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं शूलसंयुतम् ॥ ८ ॥
सृष्ट्वास्थितं हरिंवामे दक्षिणेचतुराननम्। अष्टाविंशतिरुद्राणां कोटीः सर्वाङ्गसुप्रभम्
पञ्चविंशतिकं साक्षात्पुरुषं हृदयात्तथा। प्रकृतिं वामतश्चैवं बुद्धिं वै बुद्धिदेशतः ॥
अहङ्कारमहङ्कारात्तन्मात्राणि तु तत्र वै। इन्द्रियाणीन्द्रियादेव लीलया परमेश्वरम् ॥

पृथिवीं पादमूलात्तु गुह्यदेशाज्जलं तथा। नाभिदेशात्तथा वह्निं हृदयाद्भास्करं तथा॥
कण्ठात्सोमं तथाऽऽत्मानं भ्रूमध्यान् मस्तकाद्दिवम्।
सृष्ट्वैवं संस्थितं साक्षाज्जगत्सर्वं चराचरम्॥ १३॥
सर्वज्ञंसर्वगं देवं कृत्वा विधाविधानतः। प्रतिष्ठाप्ययथान्यायंशिवसायुज्यमाप्नुयात्
त्रिपादं सप्तहस्तञ्च चतुःशृङ्गं द्विशीर्षकम्। कृत्वा यज्ञेशमीशानं विष्णुलोके महीयते
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पलक्षं सुखी नरः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् सर्वं यज्ञान्तगो भवेत्॥ १६॥
वृषारूढन्तु यः कुर्यात्सोमं सोमार्द्धभूषणम्। हयमेधायुतं कृत्वा यत्पुण्यं तदवाप्यसः
काञ्चनेनविमानेन किङ्किणीजालमालिना। गत्वा शिवपुरं दिव्यं तत्रैव स विमुच्यते
नन्दिनासहितंदेवंसाम्बंसर्वगणैर्वृतम्। कृत्वा यत्फलमाप्नोति वक्ष्ये तद्वैयथाश्रुतम्
सूर्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैर्वृषसंयुतैः। अप्सरोगणसङ्कीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः॥ २०॥
नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैः सर्वतः सर्वशोभितैः।
गत्वा शिवपुरं दिव्यं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २१॥
नृत्यन्तं देवदेवेशं शैलजासहितं प्रभुम्। सहस्रबाहुं सर्वज्ञं चतुर्बाहुमथापि वा॥२२॥
भृग्वाद्यैर्भूतसङ्घैश्च संवृतं परमेश्वरम्। शैलजासहितंसाक्षाद् वृषभध्वजमीश्वरम्॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुसोमाद्यैः सदासर्वैर्नमस्कृतम्। मातृभिर्मुनिभिश्चैव संवृतं परमेश्वरम्॥
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य यत्फलं तद्वदाम्यहम्। सर्वयज्ञतपोदानतीर्थदेवेषुयत्फलम्
तत्फलं कोटिगुणितं लब्ध्वा याति शिवं पदम्।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् यावदाभूतसंप्लवम्॥ २६॥
सृष्ट्यन्तरे पुनः प्राप्ते मानवं पदमाप्नुयात्। नग्नश्चतुर्भुजं श्वेतं त्रिनेत्रं सर्पमेखलम्॥
कपालहस्तं देवेशं कृष्णकुञ्चितमूर्धजम्।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ २८॥
इमेन्द्रदारकं देवं साम्बं सिद्धार्थदं प्रभुम्। सुधूम्रवर्णं रक्ताक्षं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्॥
काकपक्षधरं मूर्ध्ना नागटङ्कधरं हरम्। सिंहाजिनोत्तरीयञ्च मृगचर्माम्बरं प्रभुम्॥

तीक्ष्णदंष्ट्रं गदाहस्तं कपालोद्यतपाणिनम् ।

हुं फट्कारे महाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुखम् ॥ ३१ ॥

पुण्डरीकाजिनंदोर्भ्यांबिभ्रन्तंकम्बुकं तथा। हसन्तञ्च नदन्तञ्च पिबन्तं कृष्णसागरम्

नृत्यन्तं भूतसङ्घैश्च गणसङ्घैस्त्वलङ्कृतम् ।

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य यथा विभवविस्तरम् ॥ ३३ ॥

सर्वविघ्नानतिक्रम्य शिवलोके महीयते । तत्र भुक्त्वामहाभोगान्यावदाभूतसंप्लवम्

ज्ञानं चिरात्ततो लब्ध्वा रुद्रेभ्यस्तत्र मुच्यते । अर्द्धनारीश्वरं देवं चतुर्भुजमनुत्तमम् ॥

वरदाभयहस्तञ्च शूलपद्मधरं प्रभुम् । स्त्रीपुम्भावेन संस्थानं सर्वाभरणभूषितम् ॥३६॥

कृत्वाभक्त्याप्रतिष्ठाप्यशिवलोकेमहीयते । तत्र भुक्त्वा महाभोगानणिमादिगुणैर्युतः

आचन्द्रतारकं ज्ञानन्ततो लब्ध्वा विमुच्यते ।

यः कुर्याद्देवदेवेशं सर्वज्ञं नकुलीश्वरम् ॥ ३८ ॥

वृतं शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याख्यानोद्यतपाणिनम् ।

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोकं स गच्छति ॥ ३९ ॥

भुक्त्वातुविपुलांस्तत्र भोगान्युगशतंनरः । ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैवच विमुच्यते ॥

पूर्वदेवामराणाञ्च यत्स्थानं सकलेप्सितम् । कृतमुद्रस्य देवस्य चिताभस्मानुलेपिनः

त्रिपुण्ड्रधारिणस्तेषां शिरोमालाधरस्य च । ब्रह्मणः केशकेनैकमुपवीतञ्च बिभ्रतः ॥

बिभ्रतो वामहस्तेन कपालं ब्रह्मणोवरम् । विष्णोः कलेवरञ्चैव बिभ्रतः परमेष्ठिनः ॥

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य मुच्यते भवसागरात् ।

ॐ नमो नीलकण्ठाय इति पुण्याक्षराष्टकम् ॥ ४४ ॥

मन्त्रमाहसकृद्वा यः पातकैः स विमुच्यते । मन्त्रेणानेनगन्धाद्यैर्भक्त्याविक्तानुसारतः

सम्पूज्य देवदेवेशं शिवलोके महीयते । जालन्धरान्तकं देवं सुदर्शनधरं प्रभुम् ॥४६॥

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य द्विधाभूतं जलन्धरम् ।

प्रयाति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४७ ॥

सुदर्शनप्रदं देवं साक्षात्पूर्वोक्तलक्षणम् । अर्चमानेन देवेन चार्चितं नेत्रपूजया ॥४८॥

कृत्वाभक्त्याप्रतिष्ठाप्य शिवलोकेमहीयते । तिष्ठतोऽथनिकुम्भस्यपृष्ठतश्चरणाम्बुजम्
वामेतरंसुविन्यस्यवामेचालिङ्ग्यचाद्रिजाम् । शूलाग्रेकूर्परंस्थाप्यकिङ्किणीकृतपन्नगम्
सम्प्रेक्ष्य बान्धकं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं स्थितम् ।
रूपं कृत्वा यथान्यायं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
यः कुर्य्याद्देवदेवेशं त्रिपुरान्तकमीश्वरम् । धनुर्बाणसमायुक्तं सोमं सोमार्द्धभूषणम्
रथे सुसंस्थितं देवं चतुराननसारथिम् । तदाकारतया सोऽपि गत्वाशिवपुरंसुखी ॥
क्रीडतेनात्रसन्देहो द्वितीय इव शङ्करः । तत्रभुक्त्वामहाभोगान्यावदिच्छाद्विजोत्तमाः
ज्ञानं विचारितं लब्ध्वा तत्रैव स विमुच्यते । गङ्गाधरं सुखासीनञ्चन्द्रशेखरमेव च ॥
गङ्गया सहितं चैव वामोत्सङ्गेऽम्बिकान्वितम् ।
विनायकं तथा स्कन्दं ज्येष्ठं दुर्गां सुशोभनाम् ॥ ५६ ॥
भास्करञ्च तथा सोमं ब्रह्माणीञ्च महेश्वरीम् । कौमारीं वैष्णवींदेवींवाराहींवरदांतथा
इन्द्राणीञ्चैव चामुण्डां वीरभद्रसमन्विताम् ।
विघ्नेशेन च यो धीमान्शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
लिङ्गमूर्तिं महाज्वालामालासंवृतमव्ययम् । लिङ्गस्य मध्येवैकृत्वा चन्द्रशेखरमीश्वरम्
व्योम्नि कुर्यात्तथा लिङ्गं ब्रह्माणं हंसरूपिणम् ।
विष्णुं वराहरूपेण लिङ्गस्याधस्त्वधोमुखम् ॥ ६० ॥
ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य कृताञ्जलिपुटं स्थितम् ।
मध्ये लिङ्गं महाघोरं महाम्भसि च संस्थितम् ॥ ६१ ॥
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्यशिवसायुज्यमाप्नुयात् । क्षेत्रसंरक्षकं देवंतथा पाशुपतंप्रभुम्
कृत्वा भक्त्या यथान्यायं शिवलोके महीयते ॥ ६३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवमूर्त्तिप्रतिष्ठाफलकथनं नाम
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैः कृतस्य शिवालयस्य वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

लिङ्गप्रतिष्ठापुण्यञ्च लिङ्गस्थापनमेव च । लिङ्गानाञ्चैव भेदाश्च श्रुतं तव मुखादिह ॥
मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैःकृत्वा शिवालयम् । यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं वक्तुमर्हसि ॥

सूत उवाच

यस्यभक्तोऽपिलोकेस्मिन्पुत्रदारगृहादिभिः । बाध्यतेज्ञानयुक्तश्चेन्नचतस्यगृहैस्तुकिम्
तथापि भक्ताः परमेश्वरस्य कृत्वेऽष्टलोष्टैरपि रुद्रलोकम् ।
प्रयान्ति दिव्यं हि विमानवर्य्यं सुरेन्द्रपद्मोद्भववन्दितस्य ॥ ४ ॥
बाल्यात्तु लोष्ठेन शिवञ्च कृत्वा मृदाऽपि वा पांसुभिरादिदेवम् ।
गृहञ्च तादृग्विधमस्य शम्भोः सम्पूज्य रुद्रत्वमवाप्नुवन्ति ॥ ५ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्या भक्तैः शिवालयम् । कर्तव्यं सर्वयत्नेनधर्मकामार्थसिद्धये
केसरं नागरञ्चापि द्राविडं वा तथा परम् ।
कृत्वा रुद्रालयं भक्त्या शिवलोके महीयते ॥ ७ ॥
कैलासाख्यञ्च यःकुर्यात् प्रासादं परमेष्ठिनः । कैलाशशिखराकारैर्विमानैर्मोदते सुखी
मन्दरं वा प्रकुर्वीत शिवाय विधिपूर्वकम् । भक्त्या वित्तानुसारेणउत्तमाधममध्यमम्
मन्दराद्रिप्रतीकाशैर्विमानैर्विश्वतोमुखैः । अप्सरोगणसङ्कीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः ॥ १०॥
गत्वाशिवपुरंरम्यंभुक्त्वाभोगान्यथेप्सितान् । ज्ञानयोगंसमाराध्य गाणपत्यंलभेन्नरः
यः कुर्य्यान्मेरुनामानं प्रासादं परमेष्ठिनः । स यत्फलमवाप्नोति न तत्सर्वमहामखैः॥
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम् । तत्फलं सकलं लब्ध्वा शिववन्मोदते चिरम् ॥
निषधं नाम यःकुर्य्यात्प्रासादंभक्तितःसुधीः । शिवलोकमनुप्राप्यशिववन्मोदतेचिरम्
कुर्य्याद्वा यः शुभं विप्रा ! हिमशैलमनुत्तमम् । हिमशैलोपमैर्यानैर्गत्वा शिवपुरं शुभम्

ज्ञानयोगं समासाद्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ।
नीलाद्रिशिखराख्यं वा प्रासादं यः सुशोभनम् ॥ १६ ॥
कृत्वा वित्तानुसारेण भक्त्याख्यायशम्भवे । यत्फलंलभतेमर्त्यस्तत्फलंप्रवदाम्यहम् ॥
हिमशैले कृते भक्त्या यत्फलंप्राक्तवोदितम् । तत्फलंसकलंलब्ध्वा सर्वदेवनमस्कृतः॥
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्द्धं प्रमोदते । महेन्द्रशैलनामानं प्रासादं रुद्रसम्मतम् ॥ १९
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं प्रवदाम्यहम् । महेन्द्रपर्वताकारैर्विमानैर्वृषसंयुतैः॥२०
गत्वा शिवपुरं दिव्यं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
ज्ञानं विचारितं रुद्रैः सम्प्राप्य मुनिपुङ्गवाः ! ॥ २१ ॥
विषयान्विषवत्त्यक्त्वाशिवसायुज्यमाप्नुयात् । हेम्नायस्तुप्रकुर्वीतप्रासादंरत्नशोभितम्
द्राविडं नागरं वापि केसरं वा विधानतः । कूटं वा मण्डपं वापि समं वा दीर्घमेवच
न तस्य शक्यते वक्तुं पुण्यंशतयुगैरपि । जीर्णं वा पतितं वापि खण्डितं स्फुटितंतथा
पूर्ववत्कारयेद्यस्तु द्वाराद्यैः सुशुभं द्विजाः !। प्रासादं मण्डपं वापिप्राकारंगोपुरंतथा
कर्त्तुरप्यधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः । नृत्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म्म शिवालये
यः सयातिनसन्देहःस्वर्गलोकंसबान्धवः । यश्चात्मभोगसिद्ध्यर्थमपिरुद्रालये सकृत्
कर्म्म कुर्य्यात्तु यत्रि सुखं लब्ध्वा वापि प्रमोदते ।
तस्मादायतनं भक्त्या यः कुर्य्यान्मुनिसत्तमाः ! ॥ २८ ॥
काष्ठेष्टकादिभिर्मर्त्यः शिवलोके महीयते । प्रसादार्थं महेशस्य प्रासादो मुनिपुङ्गवाः
कर्त्तव्यः सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये । अशक्तश्चेन्मुनिश्रेष्ठाः ! प्रासादं कर्त्तमुत्तमम्
सम्मार्जनादिभिर्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
सम्मार्जनं तु यः कुर्य्यान्मार्जन्या मृदु सूक्ष्मया ॥ ३१ ॥
चान्द्रायणसहस्रस्य फलं मासेन लभ्यते । यः कुर्य्याद्वस्त्रपूतेन गन्धगोमयवारिणा॥
आलेपनं यथान्यायं वर्षचान्द्रायणं लभेत् । अर्द्धक्रोशं शिवक्षेत्रंशिवलिङ्गात्समन्ततः
यस्त्यजेद् दुस्त्यजान्प्राणान् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
स्वायम्भुवस्य मानं हि तथा बाणस्य सुव्रताः ! ॥ ३४ ॥

स्वायम्भुवेतदर्द्धं स्यात्स्यादार्षे चतदर्द्धकम् । मानुषेचतदर्द्धंस्यात्क्षेत्रमानंद्विजोत्तमाः
एवं यतीनामावासे क्षेत्रमानं द्विजोत्तमाः !! रुद्रावतारे चाद्यं यच्छिष्येचैवप्रशिष्यके
नरावतारे तच्छिष्ये तच्छिष्येच प्रशिष्यके । श्रीपर्वतेमहापुण्येतस्यप्रान्तेयथाद्विजाः!

तस्मिन्वा यस्त्यजेत्प्राणान्शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
वाराणस्यां तथाप्येवमविमुक्ते विशेषतः ॥ ३८ ॥
केदारे च महाक्षेत्रे प्रयागे च विशेषतः ।
कुरुक्षेत्रे च यः प्राणान्सन्त्यजेद् याति निर्वृतिम् ॥ ३९ ॥

प्रभासेपुष्करेऽवन्त्यांतथाचैवामरेश्वरे । वर्णीशैलाकुलेचैव मृतोयातिशिवात्मताम् ॥
वाराणस्यां मृतो जन्तुर्न जातु जन्तुतां व्रजेत् । त्रिविष्टपेविमुक्ते च केदारेसङ्गमेश्वरे॥
शालङ्के वा त्यजेत्प्राणांस्तथा वै जम्बुकेश्वरे । शुक्रेश्वरेवा गोकर्णेभास्करेशेगुहेश्वरे॥
हिरण्यगर्भे नन्दीशे स याति परमां गतिम् । नियमैःशोष्ययोदेहंत्यजेत्क्षेत्रेशिवस्यतु
सयातिशिवतांयोगीमानुषेदैविकेऽपिवा । आर्षेवापिमुनिश्रेष्ठास्तथास्वायम्भुवेऽपिवा
स्वयं भूते तथा देवे नात्रकार्य्याविचारणा । आधायाग्निंशिवक्षेत्रेसम्पूज्यपरमेश्वरम्

स्वदेहपिण्डं जुहुयाद् यः स याति पराकृतिम् ।
यावत्तावन्निराहारो भूत्वा प्राणान्परित्यजेत् ॥ ४६ ॥

शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः! शिवसायुज्यमाप्नुयात् । छित्वापादद्वयञ्चापिशिवक्षेत्रेवसेत्तुयः
स याति शिवतां चैव नात्रकार्य्याविचारणा । क्षेत्रस्यदर्शनंपुण्यंप्रवेशस्तच्छताधिकः
तस्माच्छतगुणं पुण्यं स्पर्शनं चप्रदक्षिणम् । तस्माच्छतगुणंपुण्यंजलस्नानमतः परम्
क्षीरस्नानंततोविप्राः!शताधिकमनुत्तमम् । दध्नासहस्रमाख्यातंमधुनातच्छताधिकम्
घृतस्नानेन चानन्तं शार्करैतच्छताधिकम् । शिवक्षेत्रसमीपस्थांनदींप्राप्यावगाह्य च॥
त्यजेद्देहं विहायात्रं शिवलोके महीयते । शिवक्षेत्रसमीपस्था नद्यः सर्वाः सुशोभनाः
वापीकूपतडागाश्चशिवतीर्थाइतिस्मृताः । स्नात्वातेषुनरोमर्त्यातीर्थेषुद्विजसत्तमाः!॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः । प्रातःस्नात्वामुनिश्रेष्ठाः! शिवतीर्थेषु मानवः

अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति ।

मध्याह्ने शिवतीर्थेषु स्नात्वा भक्त्या सकृन्नरः ॥ ५९ ॥

गङ्गास्नानसमंपुण्यंलभतेनात्रसंशयः । अस्तङ्गते तथा चार्के स्नात्वागच्छेच्छिवं पदम्
पापकञ्चुकमुत्सृज्य शिवतीर्थेषु मानवः । द्विजाग्निपवणं स्नात्वाशिवतीर्थे सकृन्नरः
शिवसायुज्यमाप्नोतिनात्रकार्याविचारणा । पुराथसूकरःकश्चिच्छ्वानंदृष्ट्वाभयात्पथि
प्रसङ्गाद्द्वारमेकन्ते शिवतीर्थेऽवगाह्यच । मृतः स्वयं द्विजश्रेष्ठा ! गाणपत्यमवाप्तवान्
यःप्रातर्देवदेवेशं शिवं लिङ्गस्वरूपिणम् । पश्येत्सयाति सर्वस्मादधिकां गतिमेव च
मध्याह्ने च महादेवं दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत् । सायाह्ने सर्वयज्ञानां फलं प्राप्य विमुच्यते
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च महत्तरैः । तथोपपातकैश्चैव पापैश्चैवानुपातकैः ॥
सङ्क्रमे देवमीशानंदृष्ट्वा लिङ्गाकृतिप्रभुम् । मासेनयत्कृतंपापंत्यक्त्वायातिशिवंपदम् ॥
अयने चार्द्धमासेन दक्षिणे चोत्तरायणे । विषुवे चैव सम्पूज्य प्रयाति परमाङ्गतिम्

प्रदक्षिणत्रयं कुर्य्यात्तु यः प्रासादं समन्ततः ।
सव्यापसव्यन्यायेन मृदुगत्या शुचिर्नरः ॥ ६५ ॥

पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् । वाचा यस्तुशिवंनित्यंसंरौति परमेश्वरम्
सोऽपि याति शिवं स्थानंप्राप्यंकिंपुनरेवच । कृत्वामण्डलकंक्षेत्रंगन्धगोमयवारिणा
मुक्ताफलमयैश्चूर्णैरिन्द्रनीलमयैस्तथा । पद्मरागमयैश्चैव स्फाटिकैश्च सुशोभनैः ॥
तथा मारकतैश्चैव सौवर्णैं राजतैस्तथा । तद्वर्णैर्लौकिकैश्चैवचूर्णैर्वित्तविवर्जितैः ॥ ६६
आलिख्य कमलं भद्रं दशहस्तप्रमाणतः । सकर्णिकं महाभागा ! महादेवसमीपतः ॥
तत्रावाह्य महादेवं नवशक्तिसमन्वितम् । पञ्चभिश्च तथा षड्भिरष्टाभिश्चेष्टदं परम् ॥
पुनरष्टाभिरीशानं दशारे दशभिस्तथा । पुनर्बाह्येच दशभिःसम्पूज्य प्रणिपत्य च ॥
निवेद्य देवदेवाय क्षितिदानफलं लभेत् । शालिपिष्टादिभिर्वापि पद्ममालिख्यनिर्धनः
पूर्वोक्तमखिलं पुण्यं लभते नात्रसंशयः । द्वादशारं तथालिख्यमण्डले पद्ममुत्तमम् ॥

रत्नचूर्णादिभिश्चूर्णैस्तथा द्वादशमूर्त्तिभिः ।
मण्डलस्य च मध्ये तु भास्करं स्थाप्य पूजयेत् ॥ ७१ ॥

अर्हैश्च सम्वृतं वापि सूर्य्यसायुज्यमुत्तमम् । एवं प्राकृतमप्याध्यांषडश्रं परिकल्प्य च

मध्यदेशे च देवेशीं प्रकृतिब्रह्मरूपिणीम् । दक्षिणे सत्वमूर्त्तिं च वामतश्च रजोगुणम् अग्रतस्तु तमोमूर्त्तिमध्ये देवीं तथाम्बिकाम् । पञ्चभूतानि तन्मात्रापञ्चकञ्चैव दक्षिणे कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च । उत्तरे विधिवत्पूज्य षडश्रेचैव पूजयेत् आत्मानञ्चान्तरात्मानं युगलं बुद्धिमेव च । अहङ्कारञ्च महता सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥

एवं वः कथितं सर्वं प्राकृतं मण्डलं परम् ।

अतो वक्ष्यामि विप्रेन्द्राः ! सर्वकामार्थसाधनम् ॥ ८१ ॥

गोचर्ममात्रमालिख्य मण्डलंगोमयेन तु । चतुरश्रं विधानेन चाद्भिरभ्युक्ष्य मन्त्रवित् अलङ्कृत्य वितानाद्यैश्छत्रैर्वाऽपिमनोरमैः । बुद्बुदैरर्द्धचन्द्रैश्च हैमैरश्वत्थपत्रकैः॥८३ सितैर्विकसितैःपद्मैरक्तै र्नीलोत्पलैस्तथा । मुक्तादामैर्वितानान्तेलम्बितैस्तुसितैर्ध्वजैः सितमृत्पात्रकैश्चैवसुश्लक्ष्णैः पूर्णकुम्भकैः । फलपल्लवमालाभिर्वैजयन्तीभिरंशुकैः ॥ पञ्चाशद्दीपमालाभिर्धूपैः पञ्चविधैस्तथा । पञ्चाशद्दलसंयुक्तमालिखेत्पद्ममुत्तमम् ॥८६ तत्तद्वर्णैस्तथाचूर्णैः श्वेतचूर्णैरथापि वा । एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मविधानतः॥८७ कर्णिकायांन्यसेद्देवंदेव्यादेवेश्वरंभवम् । वर्णानि च न्यसेत्पत्रे रुद्रैः प्रागाद्यनुक्रमात्

प्रणवादिनमोऽन्तानि सर्ववर्णानि सुव्रताः ! ।

सम्पूज्यैवं मुनिश्रेष्ठा ! गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ८९ ॥

ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकम् । अक्षमालोपवीतञ्चकुण्डलञ्च कमण्डलुम् आसनञ्च तथा दण्डमुष्णीषं वस्त्रमेव च । दत्त्वा तेषां मुनीन्द्राणां देवदेवाय शम्भवे महाचरुं निवेद्यैवं कृष्णं गोमिथुनं तथा । अन्ते च देवदेवाय दापयेच्चूर्णमण्डलम् ॥ यागोपयोगद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत् । ओङ्काराद्यं जपेद्धोमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात्

एवमालिख्य यो भक्त्या सर्वमण्डलमुत्तमम् ।

यत् फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समासतः ॥ ९४ ॥

साङ्गान् वेदान् यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकम् ।

इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्यायं ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥ ९५ ॥

ततो विश्वजिदन्तैश्च पुत्रानुत्पाद्यतादृशान । वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सादरःसाग्निरेवच

चान्द्रायणादिकाः सर्वाः कृत्वान्यस्य क्रिया द्विजाः ।
ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमासाद्य यत्नतः ६७ ॥
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्ययोगी यत्काममाप्नुयात् । तत्फलंलभते सर्वं वर्णमण्डलदर्शनात्
येनकेनापि वा मर्त्यःप्रलिप्यायतनाग्रतः । उत्तरेदक्षिणेवापि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः !॥
चतुष्कोणन्तु वा चूर्णैरलङ्कृत्यसमन्ततः । पुष्पाक्षतादिभिःपूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते
यस्तु गर्भगृहं भक्त्या सकृदालिप्य सर्वतः । चन्दनाद्यैः सकर्पूरैर्गन्धद्रव्यैः समन्ततः
विकीर्य्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्धूप्य चतुर्विधैः । प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति ॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पकोटिशतंनरः । स्वदेहगन्धकुसुमैः पूरयञ्छिवमन्दिरम्
क्रमाद् गान्धर्वमासाद्य गन्धर्वैश्च सुपूजितः ।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति वीर्य्यवान् ॥ १०४ ॥
आदिदेवो महादेवः प्रलयस्थितिकारकः । सर्गश्च भुवनाधीशः सर्वव्यापी सदाशिवः
शिवब्रह्मामृतं ग्राह्यं मोक्षसाधनमुत्तमम् ॥ १०५ ॥
व्यक्ताव्यक्तं सदा नित्यमचिन्त्यमर्चयेत् प्रभुम् ॥ १०६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पूर्वभागे उपलेपनादिकथनं नाम सप्तसप्ततिमोऽध्यायः ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

वस्त्रपूतेन तोयेन शिवक्षेत्रोपलेपनवर्णनम्

सूत उवाच

वस्त्रपूतेनतोयेनकार्य्यंचैवोपलेपनम् । शिवक्षेत्रेमुनिश्रेष्ठा ! नान्यथासिद्धिरिष्यते॥१॥
आपःपूताभवन्त्येतावस्त्रपूतासमुद्धृताः । अफेना मुनिशार्दूला ! नादेयाश्च विशेषतः॥
तस्माद्वै सर्वकार्य्याणि दैविकानि द्विजोत्तमाः ।
अद्भिः कार्य्याणि पूताभिः सर्वकार्यप्रसिद्धये ॥ ३ ॥

जन्तुभिर्म्मिश्रिता ह्यापः सूक्ष्माभिस्ताभिहत्य तु ।
यत्पापं सकलं चाब्भिरपूताभिश्चिरं लभेत् ॥ ४ ॥

सम्मार्जने तथा नृणां मार्जने च विशेषतः । अग्नौ कण्डनके चैव पेषणे तोयसंग्रहे ॥ ६
हिंसासदागृहस्थानांतस्माद्धिंसांविवर्जयेत् । अहिंसेयंपरोधर्म्म सर्वेषांप्राणिनां द्विजाः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतंसमाचरेत् । तद्दानमभयं पुण्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥७॥
तस्मात्तुपरिहर्त्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा । मनसाकर्म्मणावाचासर्वदाऽहिंसकं नरम्
रक्षन्तिजन्तवः सर्वे हिंसकं बाधयन्तिच । त्रैलोक्यमखिलं दत्वा यत्फलं वेदपारगे
तत्फलंकोटिगुणितं लभतेऽहिंसकोनरः । मनसा कर्म्मणा वाचा सर्वभूतहितेरताः ॥

दयादर्शितपन्थानो रुद्रलोकं व्रजन्ति च ।
स्वामिवत्परिरक्षन्ति बहूनि विविधानि च ॥ ११ ॥

ये पुत्रपौत्रवत्स्नेहाद्रुद्रलोकं व्रजन्ति ते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन वारिणा ॥
कार्य्यमभ्युक्षणंनित्यंस्नापनञ्चविशेषतः । त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्फलंपरिकीर्त्यते॥
शिवालयेनिहत्यैकमपितत्सकलंलभेत् । शिवार्थंसर्वदाकार्य्यापुष्पहिंसाद्विजोत्तमाः !

यज्ञार्थं पशुहिंसा च क्षत्रियैर्दुष्टशासनम् ।
विहिताविहितंनास्ति योगिनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ १५ ॥
यतस्तस्मान्न हन्तव्या निषिद्धाना निषेवणात् ।
सर्वकर्माणि विन्यस्य सन्न्यस्ताद् ब्रह्मवादिनः ॥ १६ ॥

न हन्तव्याःसदापूज्याःपापकर्म्मरता अपि । पवित्रास्तुस्त्रियःसर्वाअत्रेश्चकुलसम्भवाः
ब्रह्महत्यासमंपापमात्रेयीं विनिहत्य च । स्त्रियः सर्वा न हन्तव्याः पापकर्म्मरताअपि
न यज्ञार्थं स्त्रियो ग्राह्याःसर्वैः सर्वत्र सर्वदा । सर्ववर्णेषु विप्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि

मलिना रूपवत्यश्च विरूपा मलिनाम्बराः ।
न हन्तव्याः सक्ता मर्त्यैः शिवभक्त्या तथा ॥ २० ॥
वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्त्तबहिष्कृताः ।
पाषण्डिन इति ख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः ॥ २१ ॥

न स्प्रष्टव्यानद्रष्टव्या दृष्टामानुं समीक्षते। तथापिते न बध्याश्च नृपैरन्यैश्चजन्तुभिः

प्रसङ्गाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः!।
रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ २३ ॥

भवन्ति दुःखिताःसर्वे निर्दयामुनिसत्तमाः। भक्तिहीनानराः सर्वे भवे परमकारणे॥
ये भक्तादेवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः। भाग्यवन्तोपिमुच्यन्ते भुक्त्वा भोगानिहैवते

पुत्रेषु दारेषु गृहेषु नृणां भक्तं यथा वित्तमथादिदेवे।
सकृत्प्रसङ्गाद्यतितापसानां तेषां न दूरः परमेशलोकः ॥ २६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणेऽहिंसाधर्मवर्णनं नामाऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

शिवार्चनविधिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं पूज्यो महादेवो मर्त्यैर्मन्दैर्महामते!। अल्पायुषैरल्पवीर्य्यैरल्पसत्त्वैः प्रजापतिः॥
संवत्सरसहस्रैश्च तपसा पूज्यशङ्करम्। न पश्यन्ति सुराश्चापि कथंदेवं यजन्ति ते ॥

सूत उवाच

कथितं तथ्यमेवात्र युष्माभिर्मुनिपुङ्गवाः। तथापि श्रद्धयाद्वश्यः पूज्यःसम्भाष्यएवच
प्रसङ्गाच्चैव सम्पूज्य भक्तिहीनैरपि द्विजाः!। भावानुरूपफलदो भगवानितिकीर्तितः

उच्छिष्टः पूजयन् याति पैशाचं तु द्विजाधमः।
संक्रुद्धो राक्षसं स्थानं प्राप्नुयान्मूढधीर्द्विजाः ॥ ५ ॥

अभक्ष्यभक्षी सम्पूज्ययाक्षंप्राप्नोति दुर्जनः। गानशीलश्चगान्धर्वं नृत्यशीलस्तथैव च॥
ख्यातिशीलस्तथाचान्द्रं स्त्रीषुसक्तोनराधमः। मदार्त्तःपूजयन्रुद्रंसोमस्थानमवाप्नुयात्
गायत्र्या देवमभ्यर्च्य प्राजापत्यमवाप्नुयात्। ब्राह्मंहिप्रणवेनैवचैष्णवं चाभिनन्द्य च

श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम् । रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्द्धं प्रमोदते ॥

संशोध्य च शुभं लिङ्गममरासुरपूजितम् ।
जलैः पूतैस्तथा पीठे देवमावाह्य भक्तितः ॥ १० ॥

दृष्ट्वा देवं यथान्यायं प्रणिपत्यच शङ्करम् । कल्पिते चासने स्थाप्य धर्मज्ञानमयेशुभे
वैराग्यैश्वर्य्यसम्पन्ने सर्वलोकनमस्कृते । ओङ्कारपद्ममध्ये तु सोमसूर्य्याग्निसम्भवे ॥

पाद्यमाचमनं चार्घ्यं दत्त्वा रुद्राय शम्भवे ।
स्नापयेद् दिव्यतोयैश्च घृतेन पयसा तथा ॥ १३ ॥

दध्ना च स्नापयेद्रुद्रं शोधयेच्च यथाविधि । ततःशुद्धाम्बुनास्नाप्यचन्दनाद्यैश्चपूजयेत्
रोचनाद्यैश्च सम्पूज्य दिव्यपुष्पैश्च पूजयेत् । बिल्वपत्रैरखण्डैश्च पद्मैर्नानाविधैस्तथा॥
नीलोत्पलैश्च राजीवैर्नन्द्यावर्तैश्च मल्लिकैः । चम्पकैर्जातिपुष्पैश्च बकुलैः करवीरकैः॥
शमीपुष्पैर्बृहत्पुष्पैरुन्मुत्तागस्त्यजैरपि । अपामार्गकदम्बैश्च भूषणैरपि शोभनैः ॥
दत्त्वा पञ्चविधं धूपं पायसं च निवेदयेत् । दधिभक्तं च मध्वाज्यपरिप्लुतमतः परम्
शुद्धान्नं चैव मुद्गान्नं षड्विधं च निवेदयेत् । अथपञ्चविधं वापि सघृतं विनिवेदयेत् ॥
केवलं चापि शुद्धान्नमाढकं तण्डुलं पचेत् । कृत्वा प्रदक्षिणं चान्तेनमस्कृत्यमुहुर्मुहुः
स्तुत्वा च देवमीशानं पुनः सम्पूज्य शङ्करम् । ईशानं पुरुषं चैव अघोरं वाममेव च ॥
सद्योजातं जपंश्चापि पञ्चभिः पूजयेच्छिवम् । अनेन विधिना देवः प्रसीदतिमहेश्वरः

वृक्षाः पुष्पादिपत्राद्यैरुपयुक्ताः शिवार्चने ।
गावश्चैव द्विजश्रेष्ठाः प्रयान्ति परमाङ्गतिम् ॥ २३ ॥

पूजयेद् यः शिवं रुद्रं शर्वं भवमजं सकृत् । स यातिशिवसायुज्यंपुनरावृत्तिवर्जितम्
अर्चितं परमेशानं भवं शर्वमुमापतिम् । सकृत्प्रसङ्गाद्वा दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
पूजितं वा महादेवं पूज्यमानमथापि वा । दृष्ट्वा प्रयाति वै मर्त्यो ब्रह्मलोकं न संशयः
श्रुत्वानुमोदयेच्चापि स याति परमाङ्गतिम् । यो दद्याद्घृतदीपञ्च सकृल्लिङ्गस्य चाग्रतः
स तांगतिमवाप्नोति स्वाश्रमैर्दुर्लभांस्थिराम् । दीपवृक्षंपार्थिवंवादारवंवाशिवालये
दत्त्वा कुलशतं साग्रं शिवलोके महीयते । आयसं ताम्रजं वापि रौप्यंसौवर्णिकंतथा

शिवाय दीपं योदद्याद्विधिनावापिभक्तितः । सूर्य्यायुतसमैःश्लक्ष्णैर्यानैःशिवपुरंव्रजेत्
कार्त्तिके मासि यो दद्याद् घृतदीपं शिवाग्रतः ।
सम्पूज्यमानं वा पश्येद्विधिना परमेश्वरम् ॥ ३१ ॥
सयाति ब्रह्मणो लोकं श्रद्धया मुनिसत्तमाः ।। आवाहनंसुसान्निध्यंस्थापनंपूजनंतथा
संप्रोक्तं रुद्रगायत्र्या आसनं प्रणवेन वै । पञ्चभिः स्नपनं प्रोक्तं रुद्राद्यैश्च विशेषतः ॥
एवं सम्पूजयेन्नित्यं देवदेवमुमापतिम् । ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य प्रणवेन समर्चयेत् ॥३४
उत्तरे देवदेवेशं विष्णुं गायत्रिया यजेत् । वह्नौ हुत्वा यथान्यायं पञ्चभिः प्रणवेन च
स याति शिवसायुज्यमेवं सम्पूज्य शङ्करम् । इति संक्षेपतःप्रोक्तोलिङ्गार्चनविधिक्रमः
व्यासेन कथितः पूर्वं श्रुत्वा रुद्रमुखात्स्वयम् ॥ ३७ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवार्चनविधिर्नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं पशुपतिं दृष्ट्वा पशुपाशविमोक्षणम् । पशुत्वं तत्यजुर्देवास्तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥

सूत उवाच

पुरा कैलासशिखरे भोग्याख्येस्वपुरेस्थितम् । समेत्यदेवाःसर्वज्ञमाजग्मुस्तत्प्रसादतः
हिताय सर्वदेवानां ब्रह्मणा च जनार्दनः । गरुडस्य तथा स्कन्धमारुह्य पुरुषोत्तमः ॥
जगाम देवताभिर्वै देवदेवान्तिकं हरिः । सर्वे सम्प्राप्य देवस्य सार्द्धं गिरिवरं शुभम्
सेन्द्राःससाध्याःसयमा प्रणेमुर्गिरिमुत्तमम् । भगवान्वासुदेवोऽसौगरुडाद्गरुडध्वजः
अवतीर्य्य गिरिं मेरुमारुरोह सुरोत्तमैः ॥ ५ ॥
सकलदुरितहीनं सर्वदं भोगमुख्यं मुदितकुररवृन्दं नादितं नागवृन्दैः ।

मधुरक्वणितगीतं सानुकूलान्धकारं पदरचितवनान्तं कान्तवातान्ततोयम्

भवनशतसहस्रैर्जुष्टमादित्यकल्पैर्ललितगतिविदग्धैर्हंसवृन्दैश्च भिन्नम् ।

धवखदिरपलाशैश्चन्दनाद्यैश्च वृक्षैर्द्विजवरगणवृन्दैःकोकिलाद्यैर्द्विरेफैः ॥७॥

क्वचिदशोकसुरद्रुमसङ्कुलं कुरवकैः प्रियकैस्तिलकैस्तथा ।

बकुलकदम्बतमाललतावृतं गिरिवरं शिखरैर्विविधैस्तथा ॥ ८ ॥

गिरेः पृष्ठे पुरं शार्वं कल्पितं विश्वकर्मणा । क्रीडार्थं देवदेवस्य भवस्य परमेष्ठिनः

अपश्यंस्तत्पुरं देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समाहिताः । प्रणेमुर्दूरतश्चैव प्रभावादेव शूलिनः

सहस्रसूर्य्यप्रतिमं महान्तं सहस्रशः सर्वगुणैश्च भिन्नम् ।

जगाम कैलासगिरिं महात्मा मेरुप्रभागे पुरमादिदेवः ॥ ११ ॥

ततोऽथ नागगजवाजिसङ्कुलं रथैरनेकैरमरारिसूदनः ।

गणैर्गणेशैश्च गिरीन्द्रसन्निभं महापुरद्वारमजो हरिश्च ॥ १२ ॥

अथ जाम्बूनदमयैर्भवनैर्मणिभूषितैः । विमानैर्विविधाकारैः प्राकारैश्च समावृतम् ॥

दृष्ट्वा शम्भोः पुरम्बाह्यं देवैः सब्रह्मकैर्हरिः । प्रहृष्टवदनो भूत्वा प्रविवेश तत पुरम् ॥

हर्म्यप्रासादसम्बाधं महाट्टालसमन्वितम् । द्वितीयं देवदेवस्य चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥

वज्रवैदूर्य्यमाणिक्यमणिजालैः समावृतम् । दोलाविक्षेपसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम्

मृदङ्गमुरजैर्जुष्टं वीणावेणुनिनादितम् । नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैर्भूतसङ्घैश्च संवृतम् ॥

देवेन्द्रभवनाकारैर्भवनैर्दृष्टिमोहनैः ।

प्रासादशृङ्गेष्वथ पौरनार्यः सहस्रशः पुष्पफलाक्षताद्यैः ॥ १८ ॥

स्थिताः करैस्तस्य हरेः समन्तात्प्रचिक्षिपुर्मूर्ध्नि यथा भवस्य ।

दृष्ट्वा नार्य्यस्तदा विष्णुं मदघूर्णितलोचनाः ॥ १९ ॥

विशालजघनाः सद्यो ननृतुर्मुमुदुर्जगुः ।

काश्चिद् दृष्ट्वा हरिं नार्य्यः किञ्चित्प्रहसिताननाः ॥ २० ॥

किञ्चिद्विस्रस्तवस्त्राश्च स्रस्तकाञ्चीगुणा जगुः । चतुर्थं पञ्चमञ्चैव षष्ठं च सप्तमं तथा

अष्टमं नवमञ्चैव दशमञ्च पुरोत्तमम् । अतीत्यासाद्य देवस्यपुरं शम्भोः सुशोभनम्

सुवृत्तं सुतरां शुभ्रं कैलासशिखरे शुभे । सूर्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैश्च विभूषितम् ॥
स्फाटिकैर्मण्डपैः शुभ्रैर्जाम्बूनदमयैस्तथा । नानारत्नमयैश्चैव दिग्विदिक्षु विभूषितम्
गोपुरैर्गोपतेः शम्भोर्नानाभूषणभूषितैः । अनेकैः सर्वतोभद्रैः सर्वरत्नमयैस्तथा ॥
प्राकारैर्विविधाकारैर्द्वाविंशतिभिर्वृतम् । उपद्वारैर्महाद्वारैर्विदिक्षुविविधैर्दृढैः ॥ २६ ॥
गुह्यालयैर्गुह्यगृहैर्गुहस्य भवनैः शुभैः । प्राम्यैरन्यैर्महाभागा मौक्तिकैर्दृष्टिमोहनैः ॥
गणेशायतनैर्दिव्यै. पद्मरागमयैस्तथा । चन्दनैर्विविधाकारैः पुष्पोद्यानैश्च शोभनैः ॥

तडागैर्दीर्घिकाभिश्च हेमसोपानपंक्तिभिः ।
स्त्रीणां गतिजितैर्हंसैः सेविताभिः समन्ततः ॥ २९ ॥

मयूरैश्चैव कारण्डैःकोकिलैश्चक्रवाककैः । शोभिताभिश्चवापीभिर्दिव्यामृतजलैस्तथा॥
संलापालापकुशलैः सर्वाभरणभूषितैः । स्तनभारावनम्रैश्च मदाघूर्णितलोचनैः ॥ ३१॥
गेयनादरतैर्दिव्यैरुद्रकन्यासहस्रकैः । नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैरमरैरपि दुर्लभैः ॥ ३२ ॥
प्रफुल्लाम्बुजवृन्दाद्यैस्तथा द्विजवरैरपि । रुद्रस्त्रीगणसङ्कीर्णैर्जलक्रीडारतैस्तथा ॥ ३३
रतोत्सवरतैश्चैव ललितैश्च पदे पदे । ग्रामरागानुरक्तैश्च पद्मरागसमप्रभैः ॥ ३४ ॥
स्त्रीसङ्घैर्देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नास्तस्थुर्देवाः समन्ततः
तत्रैव ददृशुर्देवा वृन्दं रुद्रगणस्य च । गणेश्वराणां वीराणामपि वृन्दं सहस्रशः ॥
सुवर्णकृतसोपानान्वज्रवैडूर्यभूषितान् । स्फाटिकान्देवदेवस्य ददृशुस्ते विमानकान्
तेषां शृङ्गेषु हृष्टाश्च नार्य्यः कमललोचनाः । विशालजघना यक्षागन्धर्वाप्सरसस्तथा

किन्नर्य्यः किन्नराश्चैव भुजङ्गाः सिद्धकन्यकाः ।
नानावेशधराश्चान्या नानाभूषणभूषिताः ॥ ३९ ॥

नानाप्रभावसंयुक्तानानाभोगरतिप्रियाः । नीलोत्पलदलप्रख्याः पद्मपत्रायतेक्षणाः॥४०
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशैरंशुकैरतिशोभनाः । वलयैर्नूपुरैर्हारैश्छत्रैश्चित्रैस्तथांऽशुकैः ॥४१ ॥

भूषिता भूषितैश्चान्यैर्मण्डिता मण्डनप्रियाः ।
दृष्ट्वाऽथ वृन्दं सुरसुन्दरीणां गणेश्वराणां सुरसुन्दरीणाम् ।
जग्मुर्गणेशस्य पुरं सुरेशाः पुरद्विषः शक्रपुरोगमाश्च ॥ ४२ ॥

दृष्ट्वा च तस्थुः सुरसिद्धसङ्घाः पुरस्य मध्ये पुरुहूतपूर्वाः ।
भवस्य बालार्कसहस्रवर्णं विमानमाद्यं परमेश्वरस्य ॥ ४३ ॥
अथ तस्य विमानस्य द्वारिसंस्थं गणेश्वरम् । नन्दिनंददृशुः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः
तं दृष्ट्वा नन्दिनं सर्वे प्रणम्याहुर्गणेश्वरम् । जयेति देवास्तंदृष्ट्वा सोऽप्याहच गणेश्वरः
भो ! भो ! देवा महाभागाः ! सर्वे निर्धूतकल्मषाः ! ।
सम्प्राप्ताः सर्वलोकेशा वक्तुमर्हथ सुव्रताः ! ॥ ४६ ॥
तमाहुर्वरदं देवं वारणेन्द्रसमप्रभम् । पशुपाशविमोक्षार्थं दर्शयास्मान् महेश्वरम् ॥
पुरा पुरत्रयं दग्धुं पशुत्वं परिभाषितम् । शङ्किताश्च वयं तत्र पशुत्वं प्रति सुव्रत ! ॥
व्रतं पाशुपतं प्रोक्तं भवेन परमेष्ठिना । व्रतेनानेन भूतेश ! पशुत्वं नैव विद्यते ॥ ४६ ॥
अथ द्वादशवर्षं वा मासद्वादशकं तु वा । दिनद्वादशकं वापि कृत्वा तद्व्रतमुत्तमम् ॥
मुच्यन्ते पशवः सर्वे पशुपाशैर्भवस्य तु । दर्शयामास तान्देवान् नारायणपुरोगमान्
नन्दी शिलादतनयः सर्वभूतगणाग्रणीः । तं दृष्ट्वा देवमीशानं साम्बं सगणमव्ययम् ॥
प्रणेमुस्तुष्टुवुश्चैव प्रीतिकण्टकितत्वचः । विज्ञाप्य शितिकण्ठायपशुपाशविमोक्षणम्
तस्थुस्तदग्रतः शम्भोः प्रणिपत्यपुनःपुनः । ततःसम्प्रेक्ष्यतानसर्वान् देवदेवोवृषध्वजः॥
विशोध्य तेषां देवानां पशुत्वं परमेश्वरः । व्रतं पाशुपतं चैव स्वयं देवो महेश्वरः ॥
उपदिश्य मुनीनां च सहास्ते चाम्बया भवः ।
तदाप्रभृति ते देवाः सर्वे पाशुपताः स्मृताः ॥ ५६ ॥
पशूनांच पतिर्यस्मात्तेषां साक्षाद्धि देवताः । तस्मात्पाशुपताःप्रोक्तास्तपस्तेपुश्चतेपुनः
ततो द्वादशवर्षान्ते मुक्तपाशाः सुरोत्तमाः । ययुर्यथागतं सर्वे ब्रह्मणा सह विष्णुना
एतद्वः कथितं सर्वं पितामहमुखाच्छ्रुतम् । पुरा सनत्कुमारेण तस्माद्व्यासेनधीमता
यः श्रावयेच्छुचिर्विप्रान् शृणुयाद्वा शुचिर्नरः । स देहभेदमासाद्य पशुपाशैः प्रमुच्यते

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पाशुपतव्रतमाहात्म्यं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

———

एकाशीतितमोऽध्यायः

द्वादशलिङ्गाख्यपशुपाशविमोक्षणव्रतवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

व्रतमेतत् त्वया प्रोक्तं पशुपाशविमोक्षणम् । व्रतं पाशुपतं लैङ्गं पुरादेवैरनुष्ठितम् ॥१
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं त्वया श्रुतम् ।

सूत उवाच

पुरा सनत्कुमारेण पृष्टः शैलादिरादरात् ॥ २ ॥
नन्दी प्राह वचस्तस्मै प्रवदामि समासतः । देवैर्दैत्यैस्तथा सिद्धैर्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः
मुनिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम् । व्रतं द्वादशलिङ्गाख्यं पशुपाशविमोक्षणम् ॥४
भोगदं योगदं चैव कामदं मुक्तिदं शुभम् । अभियोगकरं पुण्यं भक्तानां भवनाशनम्
षडङ्गसहितान्वेदान् मथित्वातेननिर्मितम् । सर्वदानोत्तमं पुण्यमश्वमेधायुताधिकम्
सर्वमङ्गलदं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् । संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामपि मोक्षदम् ॥
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वज्वरविनाशनम् । देवैरनुष्ठितं पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा ॥
कृत्वाकनीयसंलिङ्गंस्नाप्यचन्दनवारिणा । चैत्रमासादिविप्रेन्द्राः शिवलिङ्गव्रतञ्चरेत्
कृत्वाहैमं शुभं पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् । नवरत्नैश्च खचितमष्टपत्रं यथा विधि ॥
कर्णिकायांन्यसेल्लिङ्गंस्फाटिकंपीठसंयुतम् । तत्रभक्त्यायथान्यायमर्चयेद्बिल्वपत्रकैः
सितैः सहस्रकमलैरक्तैर्नीलोत्पलैरपि । श्वेतार्ककर्णिकारैश्च करवीरैर्बकैरपि ॥ १२ ॥
एतैरन्यैर्यथालाभं गायत्र्या तस्य सुव्रताः । सम्पूज्य चैव गन्धाद्यैर्धूपैर्दीपैश्चमङ्गलैः ॥
नीराजनाद्यैश्चान्यैश्च लिङ्गमूर्त्तिं महेश्वरम् । अगुरुं दक्षिणेदद्यादघोरेण द्विजोत्तमाः !
पश्चिमे सद्यमन्त्रेण दिव्याञ्चैव मनःशिलाम् । उत्तरेवामदेवेन चन्दनं वापि दापयेत्
पुरुषेण मुनिश्रेष्ठा ! हरितालं च पूर्वतः । सिताऽगुरुद्भवं विप्रास्तथाकृष्णागुरूद्भवम् ॥
तथा गुग्गुलधूपञ्च सौगन्धिकमनुत्तमम् । सितारं नाम धूपञ्च दद्यादीशाय भक्तितः ॥

महाचरुर्निवेद्यःस्याद्राढकाजमथापि वा । एवद्वः कथितं पुण्यं शिवलिङ्गमहाव्रतम् ॥
सर्वमासेषु सामान्यं विशेषोऽपि च कीर्त्यते ।
वैशाखे वज्रलिङ्गं च ज्यैष्ठे मारकतं तथा ॥ १६ ॥
आषाढेमौक्तिकंलिङ्गं श्रावणे नीलनिर्मितम् । मासिभाद्रपदे लिङ्गं पद्मरागमयं शुभम्
आश्विने चैव विप्रेन्द्राः ! गोमेदकमयंशुभम् । प्रवालेनैवकार्त्तिक्यां तथावैमार्गशीर्षके
वैदूर्य्यनिर्मितंलिङ्गंपुष्परागेणपुष्यके । माघे च सूर्य्यकान्तेनफाल्गुनेस्फाटिकेन च ॥
सर्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते । अलाभे राजतं वापि केवलं कमलं तु वा ॥
रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा राजतेन वा ।
रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत् ॥ २४ ॥
शैलं वा दारुजंवापि मृण्मयं वा सवेदिकम् । सर्वगन्धमयंवापि क्षणिकंपरिकल्पयेत्
हैमन्तिके महादेवं श्रीपत्रेणैव पूजयेत् । सर्वमासेषु कमलं हैममेकमथापि वा ॥२६ ॥
राजतं वापि कमलं हैमकर्णिकमुत्तमम् । राजतस्याप्यभावे तु विल्वपत्रैःसमर्चयेत् ॥
सहस्रकमलालाभे तदर्द्धेनापि पूजयेत् । तदर्द्धार्द्धेन वा रुद्रमष्टोत्तरशतेन वा ॥ २८ ॥
बिल्पत्रे स्थिता लक्ष्मीर्देवी लक्षणसंयुता ।
नीलोत्पलेऽम्बिका साक्षादुत्पले षण्मुखः स्वयम् ॥ २६ ॥
पद्माश्रितो महादेवः सर्वदेवपतिः शिवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीपत्रं न त्यजेद्बुधः॥
नीलोत्पलञ्चोत्पलञ्च कमलञ्च विशेषतः । सर्ववश्यकरंपद्मं शिला सर्वार्थसिद्धिदा ॥
कृष्णागुरुसमुद्भूतं सर्वपापनिकृन्तनम् । गुग्गुलुप्रभृतीनां च दीपानाञ्च निवेदनम् ॥
सर्वरोगक्षयञ्चैव चन्दनं सर्वसिद्धिजम् । सौगन्धिकं तथाधूपंसर्वकामार्थसाधकम् ॥
श्वेतागुरुद्भवञ्चैव तथा कृष्णागुरुद्भवम् ।
सौम्यं सीतारि धूपञ्च साक्षात् निर्वाणसिद्धिदम् ॥ ३४ ॥
श्वेतार्ककुसुमेसाक्षाच्चतुर्वक्त्रःप्रजापतिः । कर्णिकारस्यकुसुमेमेधासाक्षाद्व्यवस्थिता
करवीरेगणाध्यक्षो बके नारायणः स्वयम् । सुगन्धिषु च सर्वेषु कुसुमेषु नगात्मजा
तस्मादेतैर्यथालाभं पुष्पधूपादिभिः शुभैः । पूजयेद् देवदेवेशम्भक्त्या वित्तानुसारतः

निवेदयेत्ततो भक्त्या पायसं च महाचरुम् । सघृतं सोपदंशञ्च सर्वद्रव्यसमन्वितम् ॥

शुद्धान्नं वापि मुद्गान्नमाढकं वार्द्धकं तु वा ।
चामरं तालवृन्तं च तस्मै भक्त्या निवेदयेत् ॥ ३६ ॥
उपहाराणि पुण्यानि न्यायेनैवार्जितान्यपि ।
नानाविधानि चार्हाणि प्रोक्षितान्यम्भसा पुनः ॥ ४० ॥

निवेदयेच्च रुद्राय भक्तियुक्तेन चेतसा । क्षीराद्यै सर्वदेवानां स्थित्यर्थममृतं ध्रुवम् ॥
विष्णुना जिष्णुना साक्षादन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् । भूतानामन्नदानेन प्रीतिर्भवति शङ्करे
तस्मात्सम्पूजयेद्देवमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । उपहारे तथा तुष्टिर्व्यंजने पवनःस्वयम् ॥
सर्वात्मजोमहादेवोगन्धतोये ह्यपांपतिः । पीठे वै प्रकृतिः साक्षान्महदाद्यैर्व्यवस्थिता
तस्माद्देवंयजेद्भक्त्याप्रतिमासंयथाविधि । पौर्णमास्यांव्रतंकार्य्यं सर्वकामार्थसिद्धये

सत्यं शौचन्दया शान्तिः सन्तोषो दानमेव च ।
पौर्णमास्याममावास्यामुपवासं च कारयेत् ॥ ४६ ॥
संवत्सरान्ते गोदानं वृषोत्सर्गं विशेषतः ।
भोजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या श्रोत्रियान्वेदपारगान् ॥ ४७ ॥

तल्लिङ्गं पूजितंतेन सर्वं द्रव्यसमन्वितम् । स्थापयेद्वा शिवक्षेत्रे दापयेद् ब्राह्मणाय वा
य एवं सर्वमासेषु शिवलिङ्गमहाव्रतम् । कुर्य्याद्भक्तयामुनिश्रेष्ठाः स एव तपतांवरः ॥
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानै रत्नभूषितैः । गत्वा शिवपुरं दिव्यं नेहायाति कदाचन ॥
अथवाह्येकमासं वा चरेदेवं व्रतोत्तमम् । शिवलोकमवाप्नोति नात्रकार्य्याविचारणा

अथवा सकचित्तश्चेयान्यान् सञ्चिन्तयेद्वरान् ।
वर्षमेकं चरेदेवं तांस्तान्प्राप्य शिवं व्रजेत् ॥ ५२ ॥

दैवत्वं वा पितृत्वं वः देवराजत्वमेवच । गाणपत्यपदं वापि भक्तोऽपि लभते नरः ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात् ।
द्रव्यार्थी च निधिं पश्येदायुः कामश्चिरायुषम् ॥ ५४ ॥
यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान्प्राप्येह मोदते ।

एकमासव्रतादेव सोऽन्ते रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
इदं पवित्रं परमं रहस्यं व्रतोत्तमं विश्वसृजाऽपि सृष्टम् ।
हिताय देवासुरसिद्धमर्त्यविद्याधराणां परमं शिवेन ॥ ५६ ॥
सम्पूज्य पूज्यं विधिनैवमीशं प्रणम्य मूर्ध्ना सह भृत्यपुत्रैः ।
व्यपोहनं नाम जपेत्स्तवं च प्रदक्षिणंकृत्य शिवं प्रयत्नात् ॥ ५७ ॥
पुरा कृतं विश्वसृजा स्तवं च हिताय देवेन जगत्त्रयस्य ।
पितामहेनैव सुरैश्च सार्द्धं महानुभावेन महार्घ्यमेतत् ॥ ५८ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे द्वादशलिङ्गाख्यं पशुपाशविमोक्षणव्रतवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

व्यपोहनस्तववर्णनम्

सूत उवाच

व्यपोहनस्तवंवक्ष्येसर्वसिद्धिप्रदंशुभम् । नन्दिनश्च मुखाच्छ्रुत्वा कुमारेणमहात्मना ॥
व्यासाय कथितं तस्माद्बहुमानेनवैमया । नमः शिवाय शुद्धाय निर्मलाय यशस्विने
दुष्टान्तकाय सर्वाय भवाय परमात्मने । पञ्चवक्त्रो दशभुजो ह्यक्षपञ्चदशैर्युतः ॥ ३ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः । सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वोपरिसुसंस्थितः॥
पद्मासनस्थः सोमेशः पापमाशु व्यपोहतु ।
ईशानः पुरुषश्चैव अघोरः सद्यएव च ॥ ५ ॥
वामदेवश्च भगवान्पापमाशु व्यपोहतु । अनन्तः सर्वविद्येशः सर्वज्ञः सर्वदः प्रभुः ॥
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु । सूक्ष्मः सुरासुरेशानोविश्वेशोगणपूजितः
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु । शिवोत्तमो महापूज्यःशिवध्यानपरायणः
सर्वगः सर्वदः शान्तः स मे पापं व्यपोहतु ।

एकात्मा भगवानीशः शिवार्चनपरायणः ॥ ९ ॥
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु । त्रिमूर्तिर्भगवानीशः शिवभक्तिप्रबोधकः॥
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु ।
श्रीकण्ठः श्रीपतिः श्रीमान् शिवध्यानरतः सदा ॥ ११ ॥
शिवार्चनरतः साक्षात् स मे पापंव्यपोहतु । शिखण्डीभगवान्शान्तःशवभस्मानुलेपनः
शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापंव्यपोहतु । त्रैलोक्यनमितादेवी सोल्काकारापुरातनी
दाक्षायणी महादेवी गौरी हैमवती शुभा । एकपर्णाग्रजा सौम्यातथा वै चैकपाटला
अपर्णा वरदा देवी वरदानैकतत्परा । उमाऽसुरहरासाक्षात् कौशिकी वा कपर्दिनी॥
खट्वाङ्गधारिणी दिव्या कराग्रतरुपल्लवा । नैगमेयादिभिर्दिव्यैश्चतुर्भिः पुत्रकैर्वृता ॥
मेनाया नन्दिनी देवी वारिजा वारिजेक्षणा ।
अम्बा या वीतशोकस्य नन्दिनश्च महात्मनः ॥ १७ ॥
शुभावत्या सखी शान्ता पञ्चचूडा वरप्रदा । सृष्ट्यर्थंसर्वभूतानांप्रकृतित्वं गताव्यया
त्रयोविंशतिभिस्तत्त्वैर्महदाद्यैर्विजम्भिता । लक्ष्म्यादिशक्तिभिर्नित्यंनमितानन्दनन्दिनी
मनोन्मनी महादेवमायावी मण्डनप्रिया । मायया या जगत्सर्वं ब्रह्माद्यं सचराचरम्
क्षोभिणी मोहिनी नित्यं योगिनां हृदि संस्थिता ।
एकानेकस्थिता लोके इन्दीवरनिभेक्षणा ॥ २१ ॥
भक्त्या परमया नित्यं सर्वदेवैरभिष्टुता । गणेन्द्राम्भोजगर्भेन्द्रयमवित्तेशपूर्वकैः॥२२॥
संस्तुता जननी तेषां सर्वोपद्रवनाशिनी । भक्तानामार्तिहा भव्या भवभावविनाशिनी
भुक्तिमुक्तिप्रदा दिव्या भक्तानामप्रयत्नतः । सा मे साक्षान्महादेवीपापमाशु व्यपोहतु
चण्डः सर्वगणेशानो मुखाच्छम्भोर्विनिर्गतः । शिवार्चनरतःश्रीमानसमेपापं व्यपोहतु
शालङ्कायनपुत्रस्तु हलमार्गोत्थितः प्रभुः । जामाता मरुतां देवः सर्वभूतमहेश्वरः ॥
सर्वगः सर्वदृक् शर्वः सर्वेशसदृशः प्रभुः । सनारायणकैर्देवैः सेन्द्रचन्द्रदिवाकरैः ॥
सिद्धैश्च यक्षगन्धर्वैर्भूतैर्भूतविधायकैः । उरगैर्ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा च महात्मना ॥२८
स्तुतस्त्रैलोक्यनाथस्तु मुनिरन्तःपुरं स्थितः । सर्वदापूजितःसर्वैर्नन्दीपापं व्यपोहतु ॥

महाकायो महातेजा महादेव इवापरः । शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु ॥
मेरुमन्दारकैलासतटकूटप्रभेदनः । ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैश्च सुपूजितः ॥ ३१ ॥
सप्तपातालपादश्च सप्तद्वीपोरुजङ्घकः । सप्तार्णवांकुशश्चैव सर्वतीर्थोदरः शिवः ॥३२ ॥
आकाशदेहो दिग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः । हतासुरमहावृक्षो ब्रह्मविद्यामहोत्कटः ॥
ब्रह्माद्याधोरणैर्दिव्यैर्योगपाशसमन्वितैः । बद्धो हृत्पुण्डरीकाख्ये स्तम्भेवृत्तिनिरुध्यच

नागेन्द्रवक्त्रो यः साक्षाद् गणकोटिशतैर्वृतः ।
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु ॥ ३५ ॥

भृङ्गीशः पिङ्गलाक्षोऽसौ भसिताशस्तुदेहयुक् । शिवार्चनरतःश्रीमान्समेपापंव्यपोहतु
चतुर्भिस्तनुभिर्नित्यं सर्वासुरनिबर्हणः । स्कन्धःशक्तिधरःशान्तः सेनानीःशिखिवाहनः
देवसेनापतिः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु । भवः शर्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्तथा
उग्रो भीमो महादेवः शिवार्चनरतः सदा । एताः पापं व्यपोहन्तु मूर्तयः परमेष्ठिनः ॥
महादेवः शिवो रुद्रः शङ्करो नीललोहितः । ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः
कपालीशश्च विज्ञेयो रुद्रा रुद्रांशसम्भवाः । शिवप्रणामसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम॥

विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः ।
लोकप्रकाशकश्चैव लोकसाक्षी त्रिविक्रमः ॥ ४२ ॥

आदित्यश्च तथा सूर्यश्चांशुमांश्च दिवाकरः । एते वै द्वादशादित्याव्यपोहन्तुमलंमम
गगनं स्पर्शनं तेजो रसश्च पृथिवी तथा । चन्द्रःसूर्यस्तथात्माचतनवः शिवभाषिताः
पापं व्यपोहन्तु मम भयं निर्नाशयन्तु मे । वासवः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च॥
वरुणो वायुसोमौच ईशानोभगवान् हरिः । पितामहश्चभगवान् शिवध्यानपरायणाः
एते पापं व्यपोहन्तु मनसा कर्मणा कृतम् । नभस्वान्स्पर्शनोवायुरनिलोमारुतस्तथा
प्राणः प्राणेशजीवेशौ मारुतः शिवभाषिताः । शिवार्चनरताःसर्वे व्यपोहन्तु मलं मम
खेचरी वसुचारी च ब्रह्मेशो ब्रह्मब्रह्मधीः । सुषेणः शाश्वतः पुष्टः सुपुष्टश्च महाबलः ॥

एते वै चारणाः शम्भोः पूजयाऽतोषभाविताः ।
व्यपोहन्तु मलं सर्वपापं चैव मया कृतम् ॥ ५० ॥

मन्त्रज्ञोमन्त्रवित्प्राज्ञोमन्त्रराट् सिद्धपूजितः । सिद्धवत्परमःसिद्धःसर्वसिद्धिप्रदायिनः
व्यपोहन्तु मलं सर्वे सिद्धाः शिवपदार्चकाः । यक्षो यक्षेशधनदो जृम्भकोमणिभद्रकः
पूर्णभद्रेश्वरो माली शितिकुण्डलिरेव च । नरेन्द्रश्चैव यक्षेशा व्यपोहन्तु मलं मम ॥
अनन्तः कुलिकश्चैव वासुकीस्तक्षकस्तथा । कर्कोटको महापद्मः शङ्खपालो महाबलः
शिवप्रणामसम्पन्नाः शिवदेहप्रभूषणाः । मम पापं व्यपोहन्तु विषं स्थावरजङ्गमम् ॥
वीणाज्ञः किन्नरश्चैव सुरसेनः प्रमर्दनः । अतीशयः सप्रयोगी गीतज्ञश्चैव किन्नराः ॥
शिवप्रणामसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम । विद्याधरश्च विबुधो विद्याराशिर्विदाम्वरः
विबुद्धो विबुधः श्रीमान् कृतज्ञश्च महायशाः । एतेविद्याधरा सर्वेशिवध्यानपरायणाः
व्यपोहन्तु मलं घोरं महादेवप्रसादतः । वामदेवो महाजम्भः कालनेमिर्महाबलः ॥५६
सुग्रीवो मर्दकश्चैव पिङ्गलो देवमर्दनः । प्रह्लादश्चाप्यनुह्लादः संह्लादः किलबाष्कलौ ॥
जम्भः कुम्भश्चमायावी कार्त्तवीर्यः कृतञ्जयः । एते शूरामहात्मानो महादेवपरायणाः॥
व्यपोहन्तु भयं घोरमासुरं भावमेव च । गरुत्मान्खगतिश्चैव पक्षिराड्नागमर्दनः ॥
नागशत्रुर्हिरण्याङ्गो वैनतेयः प्रभञ्जनः । नागाशीर्विषनाशश्च विष्णुवाहन एव च ॥
एते हिरण्यवर्णाभा गरुडाविष्णुवाहनाः । नानाभरणसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम॥
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च अङ्गिरा भृगुरेव च । काश्यपो नारदश्चैव दधीचश्च्यवनस्तथा
उपमन्युस्तथान्ये च ऋषयः शिवभाविताः । शिवार्चनरताः सर्वे व्योपहन्तु मलं मम

पितरः पितामहाश्च तथैव प्रपितामहाः ।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदस्तथा मातामहादयः ॥ ६७ ॥

व्यपोहन्तु भयं पापंशिवध्यानपरायणः । लक्ष्मीश्च धरणीचैव गायत्री च सरस्वती॥
दुर्गा उषाशची ज्येष्ठामातरःसुरपूजिताः । देवानां मातरश्चैव गणानां मातरस्तथा ॥
भूतानां मातरः सर्वा यत्र या गणमातरः । प्रसादाद्देवदेवस्य व्यपोहन्तु मलं मम ॥
उर्वशीमेनका चैव रम्भारतितिलोत्तमाः । सुमुखी दुर्मुखी चैव कामुकी कामवर्द्धनी॥

तथान्याः सर्वलोकेषु दिव्याश्चाप्सरसस्तथा ।
शिवाय ताण्डवं नित्यं कुर्वन्त्योऽतीवभाविताः ॥ ७२ ॥

देव्यः शिवार्चनरता व्यपोहन्तु मलं मम । अर्कः सोमोऽङ्गारकश्च बुधश्चैवबृहस्पतिः
शुक्रः शनैश्चरश्चैव राहुः केतुस्तथैव च । व्यपोहन्तु भयं घोरं ग्रहपीडां शिवार्चकाः॥
मेषो वृषोऽथ मिथुनस्तथा कर्कटकःशुभः । सिंहश्च कन्याविपुलातुलावैवृश्चिकस्तथा
धनुश्च मकरश्चैव कुम्भो मीनस्तथैव च । राशयो द्वादश ह्येते शिवपूजापरायणाः ॥
व्यपोहन्तु भयंपापं प्रसादात्परमेष्ठिनः । अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा
श्रीमन्मृगशिरश्चार्द्रा पुनर्वसुपुष्यसार्पकाः । मघावै पूर्वफाल्गुन्यउत्तराफाल्गुनीतथा॥
हस्तश्चित्रा तथास्वातीविशाखाचानुराधिका । ज्येष्ठामूलंमहाभागापूर्वाषाढातथैवच
उत्तराषाढिका चैव श्रवणं च श्रविष्ठिका । शतभिषक्पूर्वभद्रा तथा प्रोष्ठपदा तथा ॥

पौष्णञ्च देव्यः सततं व्यपोहन्तु मलं मम ।
ज्वरः कुम्भोदरश्चैव शङ्कुकर्णो महाबलः ॥ ८१ ॥

महाकर्णः प्रभातश्च महाभूतप्रमर्दनः । श्येनजिच्छिवदूतश्च प्रमथाः प्रीतिवर्द्धनाः॥८२॥
कोटिकोटिशतैश्चैव भूतानां मातरः सदा । व्यपोहन्तु भयं पापं महादेवप्रसादतः ॥
शिवध्यानैकसम्पन्नो हिमराडम्बुसन्निभः । कुन्देन्दुसदृशाकारः कुम्भकुन्देन्दुभूषणः ॥
वडवानलशत्रुर्यो वडवामुखभेदनः । चतुष्पादसमायुक्तः क्षीरोदइव पाण्डुरः ॥ ८५ ॥
रुद्रलोकेस्थितो नित्यं रुद्रैः सार्द्धं गणेश्वरैः । वृषेन्द्रोविश्वधृग्देवोविश्वस्यजगतःपिता
वृतोनन्दादिभिर्नित्यं मातृभिर्मखमर्दनः । शिवार्चनरतो नित्यं स मे पापं व्यपोहतु
गङ्गामाता जगन्माता रुद्रलोकेव्यवस्थिता । शिवभक्तातु या नन्दा सामेपापंव्यपोहतु
भद्राभद्रपदा देवी शिवलोके व्यवस्थिता । माता गवां महाभागा सा मेपापंव्यपोहतु

सुरभिः सर्वतो भद्रा सर्वपापप्रणाशनी ।
रुद्रपूजारता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु ॥ ९० ॥

सुशीला शीलसम्पन्ना श्रीप्रदा शिवभाविता । शिवलोकेस्थितानित्यंसामेपापंव्योपहतु
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वकार्य्याभिचिन्तकः । समस्तगुणसम्पन्नः सर्वदेवेश्वरात्मजः ॥
ज्येष्ठःसर्वेश्वरःसौम्योमहाविष्णुतनुःस्वयम् । आर्य्यःसेनापतिःसाक्षाद्गहनोमखमर्दनः
ऐरावतगजारूढः कृष्णकुञ्चितमूर्द्धजः । कृष्णाङ्गो रक्तनयनः शशिपन्नगभूषणः ॥९४ ॥

भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कुष्माण्डैश्च समावृतः । शिवार्चनरतः साक्षात्समेपापंव्यपोहतु
ब्रह्माणीचैव माहेशीकौमारीवैष्णवीतथा । वाराहीचैवमाहेन्द्रीचामुण्डाग्नेयिकातथा
एता वै मातरः सर्वाः सर्वलोकप्रपूजिताः । योगिनीभिर्महापापं व्यपोहन्तुसमाहिताः
वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः । रुद्रस्य तनयो रौद्रः शूलासक्तमहाकरः ॥
सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वायुधधरः स्वयम् । त्रेताग्निनयनो देवस्त्रैलोक्याभयदः प्रभुः ॥
मातॄणां रक्षको नित्यं महावृषभवाहनः । त्रैलोक्यनमितः श्रीमाञ्छिवपादार्चने रतः
यज्ञस्यच शिरश्छेत्तापूष्णोदन्तविनाशनः । वह्नेर्हस्तहरःसाक्षाद् भगनेत्रनिपातनः ॥
पादाङ्गुष्ठेन सोमाङ्गपेषकः प्रभुसंज्ञकः । उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गरक्षकः ॥१०२॥
सरस्वत्या महादेव्या नासिकोष्ठावकर्त्तनः । गणेश्वरो यः सेनानीः समेपापंव्यपोहतु
ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा वराभरणभूषिता । महालक्ष्मीर्जगन्माता सा मे पापं व्यपोहतु
महामोहा महाभागा महाभूतगणैर्वृता । शिवार्चनरता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु
लक्ष्मीः सर्वगुणोपेता सर्वलक्षणसंयुता । सर्वदा सर्वगा देवी सा मे पापं व्योपहतु
सिंहारूढा महादेवीपार्वत्यास्तनयाव्यया । विष्णोर्निद्रा महामायावैष्णवीसुरपूजिता
त्रिनेत्रा वरदा देवी महिषासुरमर्दिनी । शिवार्चनरता दुर्गा सा मे पापं व्यपोहतु ॥
ब्रह्माण्डधारकारुद्राःसर्वलोकप्रपूजिताः । सत्याश्च मानसाः सर्वे व्यपोहन्तु भयं मम

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्माण्डगणनायकाः ।
कूष्माण्डकाश्च ते पापं व्यपोहन्तु समाहिताः ॥ ११० ॥

अनेनदेवाःस्तुत्वातु चान्तेसर्वंसमापयेत् । प्रणम्यशिरसाभूमौ प्रतिमासेद्विजोत्तमाः !
व्यपोहनस्तवं दिव्यं यः पठेच्छृणुयादपि । विधूय सर्वपापानि रुद्रलोके महीयते ॥
कन्यार्थीलभतेकन्यांजयकामोजयंलभेत् । अर्थकामो लभेदर्थं पुत्रकामो बहून्सुतान् ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात् ।
यान्यान् प्रार्थयते कामान् मानवः श्रवणादिह ॥ ११४ ॥

तान्सर्वाञ्छीघ्रमाप्नोति देवानाञ्चप्रियोभवेत् । पठ्यमानमिदंपुण्यं यमुद्दिश्यतु पठ्यते
तस्यरोगानबाधन्ते वातपित्तादिसम्भवाः । नाकाले मरणंतस्य न सर्पैरपि दश्यते ॥

यत्पुण्यंचैवतीर्थानां यज्ञानांचैव यत्फलम् । दानानांचैव यत्पुण्यं व्रतानांच विशेषतः
तत्पुण्यं कोटिगुणितं जप्त्वाचाप्नोतिमानवः । गोघ्नश्चैवकृतघ्नश्च वीरहा ब्रह्महाभवेत्

शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः ।
दुष्टः पापसमाचारो मातृहा पितृहा तथा ॥ ११६ ॥
व्यपोह्य सर्वपापानि शिवलोके महीयते ॥ १२० ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे व्यपोहनस्तववर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

शिवव्रतानां वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

व्यपोहनस्तवंपुण्यं श्रुतमस्माभिरादरात् । प्रसङ्गाल्लिङ्गदानस्य व्रतान्यपि वदस्व नः ॥

सूत उवाच

व्रतानिवः प्रवक्ष्यामि शुभानि मुनिसत्तमाः । नन्दिना कथितानीह ब्रह्मपुत्राय धीमते
तानिव्यासादुपश्रुत्य युष्माकं प्रवदाम्यहम् । अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि
वर्षमेकं तु भुञ्जानो नक्तं यः पूजयेच्छिवम् । सर्वयज्ञफलं प्राप्य स याति परमाङ्गतिम्
पृथिवीं भाजनंकृत्वा भुक्त्वा पर्वसु मानवः । अहोरात्रेणचैकेन त्रिरात्रफलमश्नुते ॥
द्वयोर्मासस्य पञ्चम्योर्द्वयोः प्रतिपदोर्नरः । क्षीरधाराव्रतङ्कुर्यात्सोऽश्वमेधफलंभेत्

कृष्णाष्टम्यान्तु नक्तेन यावत्कृष्णा चतुर्दशी ।
भुञ्जन्भोगानवाप्नोति ब्रह्मलोकञ्च गच्छति ॥ ७ ॥

योऽब्दमेकं प्रकुर्वीत नक्तं पर्वसु पर्वसु । ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवध्यानपरायणः ॥
संवत्सरान्तेविप्रेन्द्रान्भोजयेद्विधिपूर्वकम् । सयातिशाङ्करंलोकंनात्रकार्य्याविचारणा
उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितम् । अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेनवर्त्तयेत्

देवैर्भुक्तं तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा।

अपराह्णे च पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ॥ ११ ॥

सर्ववेलामतिक्रम्य नक्तभोजनमुत्तमम्। हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ॥
अग्निकार्य्यमधःशय्यां नक्तभोजीसमाचरेत्। प्रतिमासं प्रवक्ष्यामि शिवव्रतमनुत्तमम्
धर्म्मकामार्थमोक्षार्थं सर्वपापविशुद्धये। पुष्यमासेच सम्पूज्य यः कुर्य्यान्नक्तभोजनम्
सत्यवादी जितक्रोधःशालिगोधूमगोरसैः। पक्षयोरष्टमीं यत्नादुपवासेन वर्त्तयेत् ॥

भूमिशय्यांश्च मासान्ते पौर्णमास्यां घृतादिभिः।

स्नाप्य रुद्रं महादेवं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥ १६ ॥

यावकं चोदनं दत्त्वा सक्षीरं सघृतं द्विजाः!।

भोजयेद् ब्राह्मणान्शिष्टाञ्जपेच्छान्तिं विशेषतः ॥ १७ ॥

तथागोमिथुनं चैव कपिलं विनिवेदयेत्। भवायदेवदेवाय शिवाय परमेष्ठिने ॥१८॥
सयातिमुनिशार्दूल! वाह्नेयंलोकमुत्तमम्। भुक्त्वासविपुलान्लोकान्तत्रैवसविमुच्यते
माघमासे तु सम्पूज्य यः कुर्य्यान्नक्तभोजनम्। कृशरं घृतसंयुक्तं भुञ्जानः संयतेन्द्रियः
सोपवासश्चतुर्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः। रुद्राय पौर्णमास्यांतु दद्याद्वै घृतकम्बलम् ॥
कृष्णंगोमिथुनं दद्यात्पूजयेच्चैवशङ्करम्। भोजयेद्ब्राह्मणांश्चैव यथा विभवविस्तरम्
याम्यमासाद्य वै लोकं यमेन सह मोदते। फाल्गुनेचैव सम्प्राप्ते कुर्य्याद्वैनक्तभोजनम्
श्यामाकान्नघृतक्षीरैर्जितक्रोधो जितेन्द्रियः। चतुर्दश्यामथाष्टम्यामुपवासञ्च कारयेत्
पौर्णमास्यांमहादेवंस्नाप्य सम्पूज्यशङ्करम्। दद्याद्गोमिथुनं चापि ताम्राभंशूलपाणये

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रार्थयेत्परमेश्वम्।

स याति चन्द्रसायुज्यं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २६ ॥

चैत्रेऽपिरुद्रमभ्यर्च्य कुर्य्याद्वैनक्तभोजनम्। शाल्यन्नंपयसायुक्तं घृतेन च यथासुखम्

गोष्ठशायीमुनिश्रेष्ठाः! क्षितौ निशिमवं स्मरेत्।

पौर्णमास्यां शिवं स्नाप्य दद्याद्गोमिथुनं सितम् ॥ २८ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेच्चैवनिर्ऋतेःस्थानमाप्नुयात्। वैशाखेचतथामासेकृत्वावैनक्तभोजनम्

पौर्णमास्यंभवंस्नाप्यपञ्चगव्यघृतादिभिः । श्वेतं गोमिथुनं दत्त्वासोऽश्वमेधफलंलभेत्
ज्येष्ठेमासेचदेवेशं भवं शर्वमुमापतिम् । सम्पूज्यश्रद्धयाभक्त्याकृत्वावैनक्तभोजनम्

रक्तशाल्यन्नमश्वा च अद्भिः पूतं घृतादिभिः ।

वीरासनो निशार्द्धं च गवां शुश्रूषणे रतः ॥ ३२ ॥

पौर्णमास्यां तु संपूज्य देवदेवमुमापतिम् । स्नाप्यशक्त्यायथान्यायंचरुं दद्याच्चशूलिने
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च यथाविभवविस्तरम् । धूम्रं गोमिथुनं दत्त्वावायुलोकेमहीयते
आषाढे मासि चाप्येवंनक्तभोजनतत्परः । भूरिखण्डाज्यसम्मिश्रंसक्तुमिश्रैवगोरसम्

पौर्णमास्यां घृताद्यैस्तु स्नाप्य पूज्य यथाविधि ।

ब्राह्मणान्भोजयित्वा च श्रोत्रियान्वेदपारगान् ॥३६ ॥

दद्याद्गोमिथुनं गौरं वारुणं लोकमाप्नुयात् । श्रावणेचद्विजामासेकृत्वावैनक्तभोजनम्
क्षीरषष्टिकभक्तेन सम्पूज्यवृषभध्वजम् । पौर्णमास्यांघृताद्यैस्तुस्नाप्यपूज्ययथाविधि
ब्राह्मणान्भोजयित्वाचश्रोत्रियान्वेदपारगान् । श्वेताग्रपादंपौण्ड्रं चदद्याद्गोमिथुनंपुनः
स याति वायुसायुज्यं वायुवत्सर्वगो भवेत् । प्राप्तेभाद्रपदे मासेकृत्वैवं नक्तभोजनम्
हुतशेषञ्च विप्रेन्द्रान्वृक्षमूलाश्रितो दिवा । पौर्णमास्या तुदेवेशंस्नाप्यसम्पूज्यशङ्करम्
नीलस्कन्धंवृषंगांचदत्त्वाभक्त्यायथाविधि । ब्राह्मणान्भोजयित्वाचवेदवेदाङ्गपारगान्
यक्षलोकमनुप्राप्य यक्षराजो भवेन्नरः । ततश्चाश्वयुजे मासि कृत्वैवं नक्तभोजनम्
सघृतंशङ्करंपूज्यपौर्णमास्यांचपूर्ववत् । ब्राह्मणान्भोजयित्वाच शिवभक्तान्सदाशुचीन्

वृषभं नीलवर्णाभमुरोदेशसमुन्नतम् ।

गां च दत्त्वा यथान्यायमैशानं लोकमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥

कार्तिके च तथा मासे कृत्वा वैनक्तभोजनम् । क्षीरोदनेनसाज्येन संपूज्यचभवंप्रभुम्

पौर्णमास्यां च विधिवत्स्नाप्य दत्त्वा चरुं पुनः ।

ब्राह्मणान्भोजयित्वा च यथा विभवविस्तरम् ॥ ४७ ॥

दत्त्वा गोमिथुनं चैव कापिलं पूर्ववद् द्विजाः ।

सूर्य्यसायुज्यमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४८ ॥

मार्गशीर्षे चमासेऽपिकृत्वैवंनक्तभोजनम् । यथाशेनयथान्यायमाज्यक्षीरादिभिःसमम्
पौर्णमास्यांचपूर्वोक्तंकृत्वा शर्वाय शम्भवे । ब्राह्मणान्भोजयित्वाचदरिद्रान्वेदपारगान्
दत्त्वा गोमिथुनञ्चैव पाण्डुरं विधिपूर्वकम् । सोमलोकमनुप्राप्य सोमेन सह मोदते
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं क्षमादया । त्रिःस्नानंचाग्निहोत्रंचभूशय्यानक्तभोजनम्
पक्षयोरुपवासश्च चतुर्दश्यष्टमीषु च । इत्येतदखिलं प्रोक्तं प्रतिमासं शिवव्रतम् ॥५३॥
कुर्य्याद्वर्षं क्रमेणैवव्युत्क्रमेणापिवाद्विजाः । सयातिशिवसायुज्यंज्ञानयोगमवाप्नुयात्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवव्रतकथनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

उमामहेश्वरव्रतवर्णनम्

सूत उवाच

उमामहेश्वरं वक्ष्ये व्रतमीश्वरभाषितम् । नरनार्य्यादिजन्तूनां हिताय मुनिसत्तमाः ॥
पौर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च । नक्तमब्दं प्रकुर्वीतहविष्यं पूजयेद्भवम् ॥२
उमामहेशप्रतिमां हेम्ना कृत्वा सुशोभनाम् । राजतीं वाथवर्षान्तेप्रतिष्ठाप्ययथाविधि
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च दत्त्वा शक्त्या च दक्षिणाम् ।
रथाद्यैर्वापि देवेशं नीत्वा रुद्रालयं प्रति ॥ ४ ॥
सर्वातिशयसंयुक्तैश्छत्रचामरभूषणैः । निवेदयेद्व्रतं चैव शिवाय परमेष्ठिने ॥ ५ ॥
सयाति शिवसायुज्यंनारी देव्या यदि प्रभो । अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनियताब्रह्मचारिणी
वर्षमेकंन भुञ्जीत कन्या वा विधवाऽपि वा । वर्षान्तेप्रतिमांकृत्वापूर्वोक्तविधिनाततः
प्रतिष्ठाप्ययथान्यायं दत्त्वा रुद्रालये पुनः । ब्राह्मणान्भोजयित्वाच भवान्यासहमोदते
यानार्य्येवं चरेदब्दं कृष्णामेकं चतुर्दशीम् । वर्षान्तेप्रतिमांकृत्वायेनकेनापिवाद्विजाः!
पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भवान्या सह मोदते । अमावास्यां निराहाराभवेदब्दंसुयन्त्रिता

शूलञ्च विधिनाकृत्वावर्षान्तेविनिवेदयेत् । स्नाप्येशानंयजेद्भक्त्यासहस्रैःकमलैःसितैः
राजतं कमलं चैव जाम्बूनदसुकर्णिकम् । दत्त्वा भवाय विप्रेभ्यः प्रदद्याद्दक्षिणामपि

कामतोऽपि कृतं पापं भ्रूणहत्यादिकं च यत् ।
तत्सर्वं शूलदानेन भिन्द्याच्चारी न संशयः ॥ १३ ॥
सायुज्यं चैवमाप्नोति भवान्या द्विजसत्तमाः ! ।
कुर्याद्यश्च नरः सोऽपि रुद्रसायुज्यमाप्यात् ॥ १४ ॥

पौर्णमास्याममावास्यां वर्षमेकमतन्द्रिता । उपवासरता नारी नरोऽपिद्विजसत्तमाः !
नियोगादेव तत्कार्य्यं भर्तॄणां द्विजसत्तमाः ! । जपं दानं तपःसर्वमस्वन्त्रायतःस्त्रियः

वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्यां प्रतिमासं निवेदयेत् ।
सा भवान्याश्च सायुज्यं सारूप्यं चापि सुव्रता ॥ १७ ॥
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
कार्त्तिक्यां वा तु या नारी एकभक्तेन वर्त्तते ॥ १८ ॥
क्षमाहिंसादिनियमैः संयुक्ता ब्रह्मचारिणी ।
दद्यात्कृष्णतिलानाञ्च भारमेकमतन्द्रिता ॥ १९ ॥

सघृतं सगुडंचैव ओदनं परमेष्ठिने । दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च यथा विभवविस्तरम् ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासरता च सा । भवान्या मोदतेसार्द्धंसारूप्यं प्राप्यसुव्रता
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वव्रतेष्वयं धर्म्मःसामान्योरुद्रपूजनम्
समासाद्वःप्रवक्ष्यामिप्रतिमासमनुक्रमात् । मार्गशीर्षकमासादिकार्त्तिकान्तंयथाक्रमम्
व्रतं सुविपुलं पुण्यं नन्दिना परिभाषितम् । मार्गशीर्षकमासेऽथ वृषं पूर्णाङ्गमुत्तमम्
अलङ्कृत्य यथान्यायं शिवायविनिवेदयेत् । साच सार्द्धंभवान्यावैमोदतेनात्रसंशयः
पुष्यमासे तु वै शूलं प्रतिष्ठाप्य निवेदयेत् । पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भवान्यासह मोदते
माघमासे रथं कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम् । दद्यात्सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्

सा च देव्या महाभागा मोदते नात्र संशयः ।
फाल्गुने प्रतिमां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि ॥ २८ ॥

राजतेनाऽपि तारेण यथाविभवविस्तरम् । प्रतिष्ठाप्यसमभ्यर्च्यस्थापयेच्छङ्करालये॥
सा च सार्द्धं महादेव्या मोदते नाऽत्रसंशयः । चैत्रे भवं कुमारञ्चभवानींचयथाविधि
ताम्राद्यैर्विधिवत्कृत्वा प्रतिष्ठाप्य यथाविधि । भवान्या मोदतेसार्द्धंदत्त्वारुद्रायशम्भवे
कृत्वाऽऽलयं हि कौबेरं राजतं रजतेन वै । ईश्वरोमासमायुक्तं गणेशैश्च समं ततः ॥
सर्वरत्नसमायुक्तं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि । स्थापयेत्परमेशस्य भवस्याऽऽयतने शुभे ॥
वैशाखे वै चरेदेवं कैलासाख्यव्रतोत्तमम् । कैलासपर्वतं प्राप्य भवान्या सहमोदते
ज्येष्ठे मासि महादेवं लिङ्गमूर्त्तिमुमापतिम् । कृताञ्जलिपुटैनैव ब्रह्मणा विष्णुना तथा
मध्येभवेन संयुक्तं लिङ्गमूर्त्तिं द्विजोत्तमाः !! हंसेनच वराहेणकृत्वाताम्रादिभिः शुभाम्
प्रतिष्ठाप्ययथान्यायंब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । शिवायशिवमासाद्यशिवस्थानेयथाविधि
ब्राह्मणैः सहितां स्थाप्य देव्याः सायुज्यमाप्नुयात् ।
आषाढे च शुभे मासे गृहं कृत्वा सुशोभनम् ॥ ३८ ॥
पक्वेष्टकाभिर्विधिवद् यथाविभवविस्तरम् । सर्वबीजरसैश्चापिसम्पूर्णंसर्वशोभनैः ॥
गृहोपकरणैश्चैव मुसलोलूखलादिभिः । दासीदासादिभिश्चैव शयनैरशनादिभिः ॥
सम्पूर्णंश्च गृहं वस्त्रैराच्छाद्य च समन्ततः । देवं घृतादिभिः स्नाप्यमहादेवमुमापतिम्
ब्राह्मणानांसहस्रंच भोजयित्वायथाविधि । विद्याविनयसम्पन्नं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥
प्रथमाश्रमिणंभक्त्यासम्पूज्यचयथाविधि । कन्यांसुमध्यमांयावत्कालजीवनसंयुताम्
क्षेत्रं गोमिथुनं चैव तद्गृहे च निवेदयेत् । शयनैर्विविधैर्दिव्यैर्मेरुपर्वतसन्निभैः ॥४४॥
गोलोकं समनुप्राप्य भवान्या सह मोदते । भवान्यासदृशीभूत्वासर्वकल्पेषुसाव्यया
भवान्याश्चैव सायुज्यं लभते नात्रसंशयः । सर्वधातुसमाकीर्णंविचित्रध्वजशोभितम्
निवेदयीतशर्वाय श्रावणे तिलपर्वतम् । वितानध्वजवस्त्राद्यैर्धातुभिश्च निवेदयेत् ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वाच पूर्वोक्तमखिलंभवेत् । कृत्वा भाद्रपदेमासिशोभनंशालिपर्वतम्
वितानध्वजवस्त्राद्यैर्धातुभिश्च निवेदयेत् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा च दापयेच्चयथाविधि
सा च सूर्य्यांशुसङ्काशामवान्यासहमोदते । कृत्वाचाश्वयुजेमासिविपुलंधान्यपर्वतम्
सुवर्णवस्त्रसंयुक्तंदत्त्वासम्पूज्यशङ्करम् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा च पूर्वोक्तमखिलं भवेत्

सर्वधान्यसमायुक्तं सर्वबीजरसादिभिः। सर्वधातुसमायुक्तं सर्वरत्नोपशोभितम्॥
शृङ्गैश्चतुर्भिः संयुक्तं वितानच्छत्रशोभितम्।
गन्धमाल्यैस्तथा धूपैश्चित्रैश्चाऽपि सुशोभितम्॥ ५३॥
विचित्रैर्नृत्यगेयैश्च शङ्खवीणादिभिस्तथा। ब्रह्मघोषैर्महापुण्यं मङ्गलैश्च विशेषतः॥
महाध्वजाष्टसंयुक्तं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम्। नगेन्द्रं मेरुनामानं त्रैलोक्याधारमुत्तमम्
तस्यमूर्ध्निशिवंकुर्यान्मध्यतोधातुनैवतु। दक्षिणेचयथान्यायं ब्रह्माणं च चतुर्मुखम्
उत्तरे देवदेवेशं नारायणमनामयम्। इन्द्रादिलोकपालांश्च कृत्वा भक्त्या यथाविधि
प्रतिष्ठाप्य ततः स्नाप्य समभ्यर्च्य महेश्वरम्। देवस्यदक्षिणेहस्तेशूलंत्रिदशपूजितम्
वामे पाशं भवान्याश्च कमलं हेमभूषितम्। विष्णोश्च शङ्खं चक्रं चगदामब्जंप्रयत्नतः
ब्रह्मणश्चाऽक्षसूत्रं च कमण्डलुमनुत्तमम्। इन्द्रस्य वज्रमग्नेश्च शक्त्याख्यंपरमायुधम्
यमस्यदण्डं निर्ऋतेः खड्गं निशिचरस्य तु। वरुणस्य महापाशं नागाख्यं रुद्रमद्भुतम्
वायोर्यष्टिं कुबेरस्य गदां लोकप्रपूजिताम्। टङ्कं चेशानदेवस्य निवेद्यैवं क्रमेण च॥
शिवस्य महतीं पूजां कृत्वा चरुसमन्विताम्। पूजयेत्सर्वदेवांश्च यथाविभवविस्तरम्
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च पूजां कृत्वा प्रयत्नतः। महामेरुव्रतं कृत्वा महादेवाय दापयेत्
महामेरुमनुप्राप्य महादेव्या प्रमोदते। चिरं सायुज्यमाप्नोति महादेव्या न संशयः॥
कार्त्तिक्यामपियानारीकृत्वादेवीमुमांशुभाम्। सर्वाभरणसम्पूर्णांसर्वलक्षणलक्षिताम्
हेमताम्रादिभिश्चैव प्रतिष्ठाप्य विधानतः। देवं चकृत्वा देवेशं सर्वलक्षणसंयुतम्
तयोरग्रे हुताशश्च स्रुवहस्तं पितामहम्। नारायणं च दातारं सर्वाभरणभूषितम्॥
लोकपालैस्तथा सिद्धैः संवृतं स्थाप्य यत्नतः। रुद्रालये व्रतं तस्मै दापयेद्भक्तिपूर्वकम्
सा भवान्यास्तनुं गत्वा भवेन सह मोदते। एकभक्तव्रतं पुण्यं प्रतिमासमनुक्रमात्
मार्गशीर्षकमासादिकार्त्तिकान्तं प्रवर्तितम्। नरनार्यादिजन्तूनांहितायमुनिसत्तमाः!॥
नरःकृत्वाव्रतंचैवशिवसायुज्यमाप्नुयात्। नारी देव्या न सन्देहःशिवेनपरिभाषितम्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे उमामहेश्वरव्रतवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

पञ्चाक्षरमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

सर्वव्रतेषु सम्पूज्य देवदेवमुमापतिम् । जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां विधिनैवद्विजोत्तमाः !
जपादेव न सन्देहोव्रतानांवै विशेषतः । समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पञ्चाक्षरींशुभाम्

ऋषय ऊचुः

कथं पञ्चाक्षरीविद्या प्रभावो वा कथं वद । क्रमोपायं महाभाग!श्रोतुं कौतूहलं हि नः

सूत उवाच

पुरा देवेन रुद्रेण देवदेवेन शम्भुना । पार्वत्याः कथितं पुण्यं प्रवदामि समासतः ॥

श्रीदेव्युवाच

भगवन् देवदेवेश सर्वलोकमहेश्वर !। पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

श्रीभगवानुवाच

पञ्चाक्षरस्यमाहात्म्यंवर्षकोटिशतैरपि । न शक्यं कथितुं देवि ! तस्मात्संक्षेपतःश्रृणु
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे । नष्टे देवासुरे चैव नष्टे चोरगराक्षसे ॥ ७ ॥
सर्वंप्रकृतिमापन्नंत्वयाप्रलयमेष्यति । एकोऽहं संस्थितोदेवि!न द्वितीयोऽस्तिकुत्रचित्

तस्मिन् वेदाश्च शास्त्राणि मन्त्रे पञ्चाक्षरे स्थिताः ।
ते नाशं नैव सम्प्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः ॥ ६ ॥

अहमेको द्विधाऽभ्यासंप्रकृत्यात्मप्रभेदतः । स तु नारायणःशेते देवो मायामयीतनुम्
आस्थाय योगपर्य्यङ्कशयने तोयमध्यगः । तन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः ॥
सिसृक्षमाणोलोकान्वै त्रीनशक्तोसहायवान् । दशब्रह्मासससर्जादौ मानसानमितौजसः
तेषांसृष्टिप्रसिद्ध्यर्थंमांप्रोवाच पितामहः । मत्पुत्राणां महादेव ! शक्तिंदेहिमहेश्वर !
इति तेन समादिष्टः पञ्चवक्त्रधरो ह्यहम् । पञ्चाक्षरान्पञ्चमुखैः प्रोक्तवान्पद्मयोनये ॥

तान्पञ्चवदनैर्गृह्णन्ब्रह्मलोकपितामहः । वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्परमेश्वरम् ॥१५॥
वाच्यः पञ्चाक्षरैर्देवि ! शिवस्त्रैलोक्यपूजितः ।
वाचकः परमो मन्त्रस्तस्य पञ्चाक्षरः स्थितः ॥ १६ ॥
ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धिं लब्ध्वा तथा पञ्चमुखो महात्मा ।
प्रोवाच पुत्रेषु जगद्धिताय मन्त्रं महार्थं किल पञ्चवर्णम् ॥ १७ ॥
तेलब्ध्वा मन्त्ररत्नं हि साक्षाल्लोकपितामहात् । तमाराधयितुंदेवं परात्परतरं शिवम्
ततस्तुतोषभगवान् त्रिमूर्तीनां परः शिवः । दत्तवानखिलंज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम् ॥
तेऽपि लब्ध्वा वरान्विप्रास्तदाराधनकाङ्क्षिणः ।
मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुञ्जवान्नाम पर्वतः ॥ २० ॥
मत्प्रियः सततंश्रीमान्मद्भूतैः परिरक्षितः । तस्याभ्यासेतपस्तीव्रंलोकसृष्टिसमुत्सुकाः
दिव्यवर्षसहस्रन्तु वायुभक्षाः समाचरन् । तिष्ठन्तोऽनुग्रहार्थाय देवि ! ते ऋषयः पुरा
तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम् । पञ्चाक्षरमृषिच्छन्दोदैवतंशक्तिबीजवत्
न्यासंषडङ्गं दिग्बन्धंविनियोगमशेषतः । प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया
तच्छ्रुत्वामन्त्रमाहात्म्यं ऋषयस्तेतपोधनाः । मन्त्रस्यविनियोगञ्चकृत्वासर्वमनुष्ठिताः
तन्माहात्म्यात्तदालोकान्सदेवासुरमानुषान् ।
वर्णान्वर्णविभागांश्च सर्वधर्मांश्च शोभनान् ॥ २९ ॥
पूर्वकल्पसमुद्भूतान् श्रुतवन्तो यथा पुरा । पञ्चाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः ॥
तिष्ठन्तिशाश्वताधर्मादेवाः सर्वमिदंजगत् । तदिदानींप्रवक्ष्यामि श्रृणुचावहिताखिलम्
अल्पाक्षरंमहार्थञ्चवेदसारंविमुक्तिदम् । आज्ञासिद्धमसन्दिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्
नानासिद्धियुतं दिव्यंलोकचित्तानुरञ्जकम् ।
सुनिश्चितार्थं गम्भीरं वाक्यं मे पारमेश्वरम् ॥ ३० ॥
मन्त्रं मुखसुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसाधकम् । तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यंसुशोभनम्
अतिसूक्ष्मं महार्थञ्च ज्ञेयं तद्वटबीजवत् । वेदः स त्रिगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ॥
ओ३मित्येकाक्षरंमन्त्रंस्थितः सर्वगतः शिवः । मन्त्रे (न्त्रे)षडक्षरेसूक्ष्मेपञ्चाक्षरतनुः शिवः

वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः ।
वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान् मन्त्रस्तद्वाचकः स्मृतः ॥ ३४ ॥

वाच्यवाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः । वेदेशिवागमे वाऽपि यत्रयत्र षडक्षरः
मन्त्रस्थितःसदामुख्योलोकेपञ्चाक्षरोमतः । किं तस्यबहुभिर्मन्त्रैःशास्त्रैर्वाबहुविस्तृतैः
यस्यैवं हृदि संस्थोऽयं मन्त्रः स्यात्पारमेश्वरः । तेनाऽधीतंश्रुतंतेनतेन सर्वमनुष्ठितम्
यो विद्वान्वै जपेत्सम्यगधीत्यैव विधानतः । एतावद्धि शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम् ॥

एतावद् ब्रह्मविद्या च तस्मान्नित्यं जपेद् बुधः ।
पञ्चाक्षरैः सप्रणवो मन्त्रोऽयं हृदयं मम ॥ ३६ ॥
गुह्याद् गुह्यतरं साक्षान्मोक्षज्ञानमनुत्तमम् ।
अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि ऋषिश्छन्दोऽधिदैवतम् ॥ ४० ॥

बीजं शक्ति स्वरं वर्ण स्थनञ्चैवाऽक्षरंप्रति । वामदेवोनामऋषिः पङ्क्तिश्छन्दउदाहृतः
देवता शिव एवाऽहं मन्त्रस्याऽस्यवरानने !। नकारादीनिबीजानिपञ्चभूतात्मकानिच
आत्मानंप्रणवंविद्धिसर्वव्यापिनमव्ययम् । शक्तिस्त्वमेव देवेशि ! सर्वदेवनमस्कृते ॥
त्वदीयंप्रणवं किञ्चिन्मदीयं प्रणवं तथा । त्वदीयं देवि ! मन्त्राणां शक्तिभूतंनसंशयः
अकारोकारमकारा मदीये प्रणवे स्थिताः । उकारञ्च मकारञ्च अकारञ्च क्रमेण वै ॥
त्वदीयं प्रणवंविद्धित्रिमात्रंप्लुतमुत्तमम् । ओङ्कारस्य स्वरोदात्त ऋषिर्ब्रह्मासितंवपुः
छन्दो देवी च गायत्री परमात्माधिदेवता । उदात्तः प्रथमस्तद्वच्चतुर्थश्च द्वितीयकः ॥
पञ्चमःस्वरितश्चैव मध्यमो निषधःस्मृतः । नकारः पीतवर्णश्च स्थानं पूर्वमुखं स्मृतम्

इन्द्रोऽधिदेवतं छन्दो गायत्री गौतमो ऋषिः ।
मकारः कृष्णवर्णोऽस्य स्थानं वै दक्षिणा मुखम् ॥ ४६ ॥
छन्दोऽनुष्टुबृषिश्चात्री रुद्रोदैवतमुच्यते ।
शिकारो धूम्रवर्णोऽस्य स्थानं वै पश्चिमं मुखम् ॥ ५० ॥
विश्वामित्रऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुस्तु दैवतम् ।
वाकारो हेमवर्णोऽस्य स्थानञ्चैवोत्तरं मुखम् ॥ ५१ ॥

ब्रह्माधिदैवतं छन्दोबृहतीचाऽङ्गिराऋषिः । यकारोरक्तवर्णश्च स्थानमूर्द्ध्वं मुखंविराट्
छन्दो ह्यृषिर्भरद्वाजःस्कन्दो दैवतमुच्यते । न्यासमस्यप्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरंशुभम्
सर्वपापहरञ्चैव त्रिविधो न्यास उच्यते । उत्पत्तिस्थितिसंहार भेदतस्त्रिविधः स्मृतः

ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनां क्रमशो भवेत् ।
उत्पत्तिर्ब्रह्मचारीणां गृहस्थानां स्थितिः सदा ॥ ५५ ॥

यतीनां संहृतिर्न्यासःसिद्धिर्भवतिनान्यथा । अङ्गन्यासःकरन्यासोदेहन्यासइतित्रिधा
उत्पत्त्यादित्रिभेदेन वक्ष्यते ते वरानने ! । न्यसेत्पूर्वं करन्यासं देहन्यासमनन्तरम् ॥
अङ्गन्यासं ततःपश्चादक्षराणांविधिक्रमात् । मूर्द्धादिपादपर्य्यन्तमुत्पत्तिर्न्यास उच्यते
पादादिमूर्द्धपर्य्यन्तं संहारो भवति प्रिये ! । हृदयास्यगलन्यासस्थितिन्यासउदाहृतः
ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनाञ्चैवशोभने ! । सशिरस्कं ततो देहं सर्वमन्त्रेण संस्पृशेत्
सदेहन्यास इत्युक्तः सर्वेषां मम एव सः । दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठान्त एव हि ॥

न्यस्यते यत्तदुत्पत्तिर्विपरीतस्तु संहृतिः ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यस्य तु हस्तयोर्द्वयोः ॥ ६२ ॥
यतीव भोगदो देवि ! स्थितिन्यासः कुटुम्बिनाम् ।
करन्यासं पुरा कृत्वा देहन्यासमनन्तरम् ॥ ६३ ॥

अङ्गन्यासं न्यसेत्पश्चाद्देवसाधारणोविधिः । ओङ्कारंसम्पुटीकृत्यसर्वाङ्गेषुचविन्यसेत्

करयोरुभयोश्चैव दशाग्राङ्गुलिषु क्रमात् ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ ६५ ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न्यासकर्म समाचरेत् । स्मरेत्पूर्वमृषिश्छन्दोदैवतंबीजमेवच
शक्तिञ्च परमात्मानं गुरुञ्चैव वरानने ! । मन्त्रेण पाणीसम्मृज्य तलयोःप्रणवंन्यसेत्
अङ्गुलीनाञ्च सर्वेषां तथा चाऽऽद्यन्तपर्वसु । सबिन्दुकानि बीजानि पञ्च मध्यमपर्वसु
उत्पत्त्यादि त्रिभेदेन न्यसेदाश्रमतःक्रमात् । उभाभ्यामेवपाणिभ्यामापादतलमस्तकम्
मन्त्रेण संस्पृशेद्देहं प्रणवेनैव सम्पुटम् । मूर्ध्नि वक्त्रे च कण्ठे च हृदये गुह्यके तथा
पादयोरुभयोश्चैव गुह्ये च हृदये तथा । कण्ठे च मुखमध्ये च मूर्ध्नि च प्रणवादिकम्

हृदये गुह्यके चैव पादयो मूर्ध्नि वाचिवा । कण्ठे चैव न्यसेद्देव प्रणवादिन्त्रिभेदतः ॥
कृत्वाऽङ्गन्यासमेवंहिमुखानिपरिकल्पयेत् । पूर्वादि चोदुर्ध्वपर्यन्तंनकारादियथाक्रमम्

षडङ्गानि न्यसेत्पश्चाद्यथास्थानञ्च शोभनम् ।

नमः स्वाहा वषट् हुञ्च वौषट् फट् कारकैः सह ॥ ७४ ॥

प्रणवं हृदयं विद्यान्नकारः शिर उच्यते । शिखामकार आख्यातःशिकारः कवचं तथा
वाकारो नेत्रमस्त्रन्तु यकारः परिकीर्त्तितः । इत्यमङ्गानि विन्यस्यततो वै बन्धयेद्दिशः
विघ्नेशो मातरो दुर्गा क्षेत्रज्ञो देवता दिशः । आग्नेयादिषुकोणेषुचतुर्ष्वपियथाक्रमम्

अङ्गुष्ठतर्जन्याग्राभ्यां संस्थाप्य सुमुखं शुभम् ।

रक्षध्वमिति चोक्त्वा तु नमस्कुर्य्यात् पृथक् पृथक् ॥ ७८ ॥

गले मध्ये तथाऽङ्गुष्ठे तर्जन्याद्याङ्गुलीषु च । अङ्गुष्ठेन करन्यासं कुर्य्यादेवं विचक्षणः
एवं न्यासमिमं प्रोक्तं सर्वपापहरं शुभम् । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वरक्षाकरं शिवम् ॥
न्यस्ते मन्त्रेऽथ सुभगे शङ्करप्रतिमोभवेत् । जन्मान्तरकृतंपापमपि नश्यति तत्क्षणात्
एवं विन्यस्य मेधावी शुद्धकायो दृढव्रतः । जपेत्पञ्चाक्षरंमन्त्रं लब्ध्वाचाऽऽर्यप्रसादतः
अतःपरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रसङ्ग्रहणंशुभे !। यं विना निष्फलंनित्यं येन चासफलंभवेत्
आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनममानसम् । आज्ञतं दक्षिणाहीनंसदाजप्तञ्च निष्फलम्

आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं सुमानसम् ।

एवञ्च दक्षिणासिद्धं मन्त्रं सिद्धं यतस्ततः ॥ ८५ ॥

उपगम्य गुरुं विप्रं मन्त्रं तत्त्वार्थवेदिनम् । ज्ञानिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम्
तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः । वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च ॥
आचार्यं पूजयेच्छिष्यः सर्वदाऽतिप्रयत्नतः । हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणिच गृहाणिच
भूषणानिच वासांसि धान्यानि विविधानिच । एतानिगुरवेदद्याद्भक्त्याचविभवेसति
वित्तशाठ्यंनकुर्वीतयदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । पश्चान्निवेदयेद्देवि!आत्मानंसपरिच्छदम्
एवं सम्पूज्य विधिवद्यथाशक्ति त्ववञ्चयन । आददीत गुरोर्मन्त्रं ज्ञानञ्चैव क्रमेण तु
एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजितं वत्सरोषितम् । शुश्रूषुमनहङ्कारमुपवासकृशं शुचिम् ॥

ज्ञापयित्वा तु शिष्याय ब्राह्मणानपि पूज्य च ।
समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा ॥ ९३ ॥

शुचौ देशे गृहे वाऽपि काले सिद्धिकरे तिथौ । नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदा दोषवर्जिते
अनुगृह्य ततो दद्याच्छिवज्ञानमनुत्तमम् । स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकान्तेऽपि प्रसन्नधीः

उच्चार्योच्चारयित्वा तु आचार्यः सिद्धिदः स्वयम् ।
शिवश्चाऽस्तु शुभश्चाऽस्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति ॥ ९६ ॥

एवं लब्ध्वा परं मन्त्रं ज्ञानञ्चैव गुरोस्ततः । जपेन्नित्यं ससङ्कल्पं पुरश्चरणमेव च ॥
यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् । अनश्नंस्तत्परो भूत्वा स याति परमाङ्गतिम्
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात् । नक्ताशी संयमी यश्च पौरश्चरणिकः स्मृतः ॥
पुरश्चरणजापीवाप्यपि वा नित्यजापकः । अचिरात्सिद्धकाङ्क्षीतु तयोरन्यतरोभवेत्
यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापीभवेन्नरः । तस्यनास्तिसमोलोकेसंसिद्धःसिद्धिदोवशी
आसनं रुचिरं बध्वामौनीचैकाग्रमानसः । प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिजपेन्मन्त्रमनुत्तमम्
आद्यन्तयोर्जपस्याऽपि कुर्याद्वैप्राणसंयमान् । तथाचाऽन्तेजपेद्बीजं शतमष्टोत्तरंशुभम्
चत्वारिंशत्समावृत्ति प्राणानायम्य संस्मरेत् । पञ्चाक्षरस्यमन्त्रस्यप्राणायामउदाहृतः
प्राणायामाद्भवेत् क्षिप्रंसर्वपापपरिक्षयः । इन्द्रियाणावशित्वञ्चतस्मात्प्राणांश्चसंयमेत्
गृहे जपः समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं भवेत् । नद्यां शतसहस्रन्तु अनन्तः शिवसन्निधौ॥
समुद्रतीरे देवह्रदे गिरौ देवालयेषु च । पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपः कोटिगुणो भवेत् ॥
शिवस्य सन्निधानेच सूर्यस्याऽग्रेगुरोरपि । दीपस्य गोर्जलस्याऽपि जपकर्म प्रशस्यते
अङ्गुलीजपसङ्ख्यानमेकमेकं शुभानने ! । रेखैरष्टगुणं प्रोक्तं पुत्रजीवफलैर्दश ॥१०६॥
शतं वै शङ्खमणिभिः प्रवालैश्च सहस्रकम् । स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्ष उच्यते
पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते । कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुण उच्यते ॥
पञ्चविंशति मोक्षार्थं सप्तविंशतिपौष्टिकम् । त्रिंशच्चधनसम्पत्त्यैपञ्चाशच्चाभिचारिकम्
तत्पूर्वाभिमुखं वश्यंदक्षिणञ्चाऽऽभिचारिकम् । पश्चिमंधनदंविद्यादुत्तरंशान्तिकंभवेत्

अङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशनी ।

मध्यमा धनदा शान्ति करोत्येषा ह्यनामिका ॥ ११४ ॥
कनिष्ठा रक्षणीया सा जपकर्मणि शोभने ! । अङ्गुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरङ्गुलिभिः सह
अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं यतः । शृणुष्व सर्वयज्ञेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥
हिंसया ते प्रवर्त्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया । यावन्तः कर्मयज्ञाःस्युःप्रदानानि तपांसि च
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
माहात्म्यं वाचिकस्यैव जपयज्ञस्य कीर्तितम् ॥ ११८ ॥
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः । यदुच्चनीचस्वरितैःशब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः । शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ तु चालयेत् ॥
किञ्चित्कर्णान्तरं विद्यादुपांशुः सजपःस्मृतः । धियायदक्षरश्रेण्यावर्णाद्वर्णंपदात्पदम्
शब्दार्थं चिन्तयेद्भूयःसतूक्तो मानसो जपः । त्रयाणांजपयज्ञानांश्रेयान्स्यादुत्तरोत्तरः
भवेद्यज्ञविशेषेण वैशिष्ट्यं तत्फलस्य च । जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥
प्रसन्ना विपुलान् भोगान् दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्चःग्रहाःसर्वे च भीषणाः । जापिनं नोपसर्पन्ति भयभीताः समन्ततः
जपेन पापं शमयेदशेषं यत्तत्कृतं जन्मपरम्परासु ।
जपेन भोगान् जयते च मृत्युम् जपेन सिद्धिं लभते च मुक्तिम् ॥ १२५ ॥
एवं लब्ध्वा शिवं ज्ञानं ज्ञात्वा जपविधिक्रमम् ॥ १२६ ॥
सदाचारोजपन्नित्यंध्यायन् भद्रंसमश्नुते । सदाचारंप्रवक्ष्यामिसम्यक्धर्मस्यसाधनम्
यस्मादाचारहीनस्य साधनं निष्फलंभवेत् । आचारः परमोधर्म आचारः परमं तपः
आचारः परमा विद्या आचारःपरमागतिः । सदाचारवतां पुंसां सर्वत्राऽप्यभयंभवेत्
तद्वदाचारहीनानां सर्वत्रैव भयम्भवेत् । सदाचारेण देवत्वमृषित्वञ्च वरानने ! ॥
उपयान्ति कुयोनित्वं तद्वदाचारलङ्घनात् । आचारहीनः पुरुषो लोकेभवति निन्दितः
तस्मात्संसिद्धिमन्विच्छन् सम्यगाचारवान्भवेत् ।
दुर्वृत्तो शुद्धिभूयिष्ठो पापीयान् ज्ञानदूषकः ॥ १३२ ॥
वर्णाश्रमविधानोक्तं धर्मं कुर्वीत यत्नतः ॥ १३३ ॥

यस्ययद्विहितंकर्मतत्कुर्वन्मत्प्रियःसदा । सन्ध्योपासनशीलःस्यात्सायंप्रातःप्रसन्नधीः
उदयास्तमयात्पूर्वमारभ्य विधिना शुचिः ।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्सन्ध्यां नातिक्रमेद् द्विजः ॥ १३५ ॥
सन्ध्यातिक्रमणाद्विप्रो ब्राह्मण्यात्पततेयतः । असत्यंनवदेत्किञ्चिन्नसत्यञ्चपरित्यजेत्
यत्सत्यं ब्रह्म इत्याहुरसत्यं ब्रह्मदूषणम् । अनृतं परुषं शाठ्यं पैशून्यं पापहेतुकम् ॥
परदारान् परद्रव्यं परहिंसाञ्च सर्वदा । कचिद्वाऽपि न कुर्वीत वाचा च मनसा तथा
शूद्रान्नं यातयामान्नं नैवेद्यं श्राद्धमेव च । गणान्नं समुदायान्नं राजान्नञ्च विवर्जयेत् ॥
अन्नशुद्धौ सत्वशुद्धिर्न मृदा न जलेन वै । सत्वशुद्धौभवेत्सिद्धिस्ततोऽन्नंपरिशोधयेत्
राजप्रतिग्रहैर्दग्धान्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः । छिन्नानामपि बीजानां पुनर्जन्म न विद्यते ॥
राजप्रतिग्रहोघोरो बुध्वावादी विषोपमः । बुधेन परिहर्त्तव्यः श्वमांसञ्चाऽपि वर्जयेत्
अस्नात्वा न च भुञ्जीयादजपोऽग्निमपूज्य च । पर्णपृष्ठे न भुञ्जीयाद्रात्रौदीपंविना तथा
भिन्नभाण्डे च रथ्यायां पतितानाञ्च सन्निधौ । शूद्रशेषंनभुञ्जीयात्सहान्नं शिशुकैरपि
शुद्धान्नं स्निग्धमश्नीयात्संस्कृतञ्चाऽभिमन्त्रितम् ।
भोक्ता शिव इति स्मृत्वा मौनी चैकाग्रमानसः ॥ १४५ ॥
आस्येन न पिबेत्तोयं तिष्ठन्नञ्जलिनापि वा । वामहस्तेन शय्यायां तथैवान्यंकरेण वा
विभीतकार्ककारञ्जस्नुहिच्छायांनचाश्रयेत् । स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषांप्राणिनांतथा
एको न गच्छेदध्वानं बाहुभ्यां नोत्तरेन्नदीम् । नावरोहेत्कूपादिं नारोहेद्वृक्षपादपान्
सूर्याग्निजलदेवानां गुरूणां विमुखः शुभे ।। न कुर्याद्विहकार्याणि जपकर्मशुभानि वा
अग्नौ न तापयेत् पादौ हस्तं पद्भ्यां न संस्पृशेत् ।
अग्नेर्नोच्छ्रयमासीत नाग्नौ किञ्चिन्मलन्त्यजेत् ॥ १५० ॥
न जलं ताडयेत्पद्भ्यां नाम्भस्यङ्गमलंत्यजेत् । मलंप्रक्षालयेत्तीरेप्रक्षाल्यस्नानमाचरेत्
नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम् । अश्रीकरं मनुष्याणामशुद्धं संस्पृशेद्यदि॥१५२॥
अजाश्वानखुरोष्ट्राणां मार्जनात्सुरेणुकान् । संस्पृशेद्यदि मूढात्मा श्रियंहन्ति हरेरपि
मार्जारश्च गृहे यस्यसोऽप्यन्त्यजसमोनरः । भोजयेद्यस्तुविप्रेन्द्रान्मार्जारसन्निधौयदि

तस्माण्डालसमं ज्ञेयं मात्रकार्याविचारणा । स्फिग्वातंशूर्पवातञ्चवातंप्राणमुखानिलम्
सुकृतानि हरन्त्येते संस्पृष्टाः पुरुषस्यतु । उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशोमलावृतः
अपवित्रकरो शुद्धः प्रलपन्न जपेत्कचित् । क्रोधो मदः क्षुधा तन्द्री निष्ठीवनविजृम्भणे
श्वनीचदर्शनं निद्रा प्रलापास्ते जपद्विषः । एतेषां सम्भवे चापि कुर्यात्सूर्य्यादिदर्शनम्

आचम्य वा जपेच्छेषं कृत्वा वा प्राणसंयमम् ।
सूर्य्योऽग्निचन्द्रमाश्चैव ग्रहनक्षत्रतारकाः ॥ १५६ ॥

एते ज्योतींषि प्रोक्तानि विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा । प्रसार्यपादौनजपेत्कुक्कुटासन एव च
अनासनः शयानोवा रथ्यायांशूद्रसन्निधौ । रक्तभूम्याञ्चखट्वायां न जपेज्जापकस्तथा
आसनस्थो जपेत्सम्यक् मन्त्रार्थगतमानसः । कौशेयंव्याघ्रचर्मंवाचैलंतौलमथापिवा
दारवं तालपर्णं वा आसनंपरिकल्पयेत् । त्रिसन्ध्यन्तुगुरोःपूजाकर्त्तव्याहितमिच्छता

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः ।
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः ॥ १६४ ॥

शिवविद्या गुरोस्तस्माद्भक्त्या च सदृशं फलम् । सर्वदेवमयोदेवि! सर्वशक्तिमयोहिसः
सगुणो निर्गुणोवापितस्याज्ञांशिरसावहेत् । श्रेयोऽर्थीयस्तुगुर्वाज्ञांमनसापिनलङ्घयेत्
गुर्वाज्ञापालकःसम्यग्ज्ञानसम्पत्तिमश्नुते । गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जन्यद्यत्कर्मसमाचरेत्
समक्षं यदि तत्सर्वं कर्त्तव्यं गुर्वनुज्ञया । गुरोर्देवसमक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत् ॥
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद् गृहं देवमन्दिरम् । पापिनाञ्चयथासङ्गात्तत्पापैःपतनं भवेत्
तद्वदाचार्यसङ्गेन तद्धर्मफलभाग् भवेत् । यथैव वह्निसम्पर्कान्मलं त्यजति काञ्चनम् ॥
तथैव गुरुसम्पर्कात्पापं त्यजति मानवः । यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते॥
तथा पापं विलीयेत आचार्यस्य समीपतः । यथाप्रज्वलितोवह्निर्विष्ठां काष्ठञ्चनिर्दहेत्
गुरुस्तुष्टो दहत्येवं पापं तन्मन्त्रतेजसा । ब्रह्मा हरिस्तथा रुद्रो देवाश्च मुनयस्तथा ॥
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः । कर्मणामनसावाचा गुरोःक्रोधं न कारयेत्

तस्य क्रोधेन दह्यन्ते आयुः श्रीर्ज्ञानसत्क्रियाः ।
तत् क्रोधं ये करिष्यन्ति तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ॥ १७५ ॥

जपान्धबिवमाश्रैव नात्र कार्या विचारणा। गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेत्सर्वयत्नतः
वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत्। वित्तेनैव च वित्तेन तथा वाचा च सुव्रताः॥
मिथ्या न कारयेद्देवि क्रियया च गुरोः सदा। दुर्गुणेख्यापितेतस्यनैर्गुण्यशतभाग्भवेत्
गुणे तु स्थापिते तस्य सार्वगुण्यफलं भवेत्। गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टोवानवा सदा
असमक्षं समक्षं वा गुरोः कार्यं समाचरेत्। गुरोर्हितं प्रियं कुर्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः
कुर्वन्पतत्यधो गत्वा तत्रैव परिवर्त्तते। तस्माद् स सर्वदोपास्यो वन्दनीयश्च सर्वदा
समीपस्थोऽप्यनुज्ञाप्य वदेत्तद्विमुखो गुरुम्। एवमाचारवान्भक्तो नित्यं जपपरायणः
गुरुप्रियकरो मन्त्रं विनियोक्तुं ततोऽर्हति। विनियोगंप्रवक्ष्यामि सिद्धमन्त्रप्रयोजनम्
दौर्बल्यं याति तन्मन्त्रं विनियोगमजानतः। यस्य येन वियुञ्जीत कार्येण तु विशेषतः

विनियोगः स विज्ञेय ऐहिकामुष्मिकं फलम्।
विनियोगजमायुष्यमारोग्यं तनुनित्यता॥ १८२॥

राज्यैश्वर्यञ्च विज्ञानं स्वर्गो निर्वाण एव च। प्रोक्षणञ्चाऽभिषेकञ्च अघमर्षणमेव च
स्नाने च सन्ध्ययोश्चैव कुर्यादेकादशेनवै। शुचिः पर्वतमारुह्य जपेल्लक्षमतन्द्रितः॥
महानद्यांत्रिलक्षन्तुदीर्घमायुरवाप्नुयात्। दूर्वाङ्कुरास्तिलावाणी गुडूची घुटिका तथा
तेषान्तु दशसाहस्रं होममायुष्यवर्द्धनम्। अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य जपेल्लक्षद्वयं सुधीः॥
शनैश्चरदिने स्पृष्ट्वा दीर्घायुष्यं लभेन्नरः। शनैश्चरदिनेऽश्वत्थंपाणिभ्यांसंस्पृशेत्सुधीः
जपेदष्टोत्तरशतं सोऽपमृत्युहरो भवेत्। आदित्याभिमुखो भूत्वा जपेल्लक्षमनन्यधीः
अर्कैरष्टशतं नित्यं जुह्वन्व्याधेर्विमुच्यते। समस्तव्याधिशान्त्यर्थं पलाशसमिधैर्नरः॥

हुत्वा दशसहस्रन्तु निरोगी मनुजो भवेत्।
नित्यमष्टशतं जप्त्वा पिबेदम्भोऽर्कसन्निधौ॥ १८३॥

औदर्य्यैर्व्याधिभिः सर्वैर्मासेनैकेन मुच्यते। एकादशेन भुञ्जीयादन्नञ्चैवाऽभिमन्त्रितम्
भक्ष्यञ्चाऽन्यत्तथा पेयं विषमप्यमृतं भवेत्। जपेल्लक्षन्तु पूर्वाह्णे हुत्वावाऽष्टशतेन वै॥
सूर्य्यं नित्यमुपस्थाय सम्यगारोग्यमाप्नुयात्। नदीतोयेनसम्पूर्णघटंसंस्पृश्यशोभनम्
जप्त्वायुतञ्चतत्स्नानाद्रोगाणांभेषजं भवेत्। अष्टाविंशज्जपित्वान्नमश्नीयादन्वहंशुचिः

हुत्वा च तावत्पालाशैरेवं वाऽऽरोग्यमश्नुते ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे पूर्वमुपोष्य विधिना शुचिः ॥ १९८ ॥

यावद्ग्रहणमोक्षन्तु तावन्नद्यां समाहितः । जपेत्समुद्रगामिन्यां विमोक्षे ग्रहणस्य तु अष्टोत्तरसहस्रेण पिबेद् ब्राह्मीरसं द्विजाः ! ऐहिकां लभते मेधां सर्वशास्त्रधरांशुभाम् सारस्वती भवेद्देवी तस्य वागतिमानुषी । ग्रहनक्षत्रपीडासु जपेल्लक्षायुतं नरः ॥ हुत्वा चाऽष्टसहस्रन्तु ग्रहपीडा व्यपोहति । दुःस्वप्नदर्शने स्नात्वा जपेद्वै वाऽयुतं नरः घृतेनाऽष्टशतं हुत्वा सद्यःशान्तिर्भविष्यति । चन्द्रसूर्य्यग्रहे लिङ्गं समभ्यर्च्य यथाविधि यत्किञ्चित्प्रार्थयेद्देवि ! जपेदयुतमादरात् । सन्निधावस्यदेवस्य शुचिः संयतमानसः सर्वान्कामानवाप्नोति पुरुषोनाऽत्रसंशयः । गजानां तुरगाणान्तुगोजातीनांविशेषतः

व्याध्यागमे शुचिर्भूत्वा जुहुयात्समिधाहुतिम् ।
मासमभ्यर्च्य विधिनाऽयुतं भक्तिसमन्वितः ॥ २०६ ॥

तेषामृद्धिश्च शान्तिश्च भविष्यति न संशयः । उत्पाते शत्रुबाधायांजुहुयादयुतंशुचिः

पालाशसमिधैर्देवि ! तस्य शान्तिर्भविष्यति ।
आभिचारिकबाधायामेतद्देवि ! समाचरेत् ॥ २०८ ॥

प्रत्यग्भवतितच्छक्तिःशत्रोःपीडा भविष्यति । विद्वेषणार्थं जुहुयाद्विभीतसमिधाष्टकम् अक्षरप्रातिलोम्येन आर्द्रेण रुधिरेण वा । विषेणरुधिराभ्यक्तो विद्वेषणकरंनृणाम् ॥ प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविशुद्धये । पापशुद्धिर्यथा सम्यक् कर्त्तुमभ्युद्यतोनरः ॥

पापशुद्धिर्य्यतः सम्यग्ज्ञानसम्पत्तिहैतुकी ।
पापशुद्धिर्नचेत्पुंसः क्रियाः सर्वाश्च निष्फलाः ॥ २१२ ॥
ज्ञानञ्च हीयते तस्मात्कर्त्तव्यं पापशोधनम् ।
विद्यालक्ष्मीविशुध्यर्थं मां ध्यात्वाऽञ्जलिना शुभे ! ॥ २१३ ॥

शिवेनैकादशेनाद्भिरभिषिञ्चेत्समं ततः । अष्टोत्तरशतेनैव स्नायात्पापविशुद्धये ॥२१४॥ सर्वतीर्थफलं तच्च सर्वपापहरं शुभम् । सन्ध्योपासनविच्छेदे जपेदष्टशतं नरः॥२१५॥ विड्वराहैश्चचाण्डालैर्दुर्जनैःकुक्कुटैरपि । स्पृष्टमन्नं न भुञ्जीतभुक्त्वा चाऽष्टशतंजपेत्

ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं जपेल्लक्षायुतंनरः । पातकानां तदर्धं स्यान्नाऽत्रकार्य्याविचारणा
उपपातकदुष्टानां तदर्धं परिकीर्त्तितम् । शेषाणामपि पापानां जपेत्पञ्चसहस्रकम् ॥
आत्मबोधपरंगुह्यंशिवबोधप्रकाशकम् । शिवः स्यात्सोजपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षमनाकुलः

पञ्चवायुजयं भद्रे ! प्राप्नोति मनुजः सुखम् ।
जपेच्च पञ्चलक्षन्तु विगृहीतेन्द्रियः शुचिः ॥ २२० ॥

पञ्चेन्द्रियाणां विजयो भविष्यति वरानने ! । ध्यानयुक्तोजपेद्यस्तुपञ्चलक्षमनाकुलः
विषयाणाञ्च पञ्चानां जयं प्राप्नोति मानवः । चतुर्थं पञ्चलक्षन्तु यो जपेद्भक्तिसंयुतः
भूतानामिह पञ्चानां विजयं मनुजो लभेत् । चतुर्लक्षं जपेद्यस्तु मनः संयम्य यत्नतः ॥
सम्यग्विजयमाप्नोति करणानां वरानने ! । पञ्चविंशतिलक्षाणां जपेन कमलानने !॥
पञ्चविंशतितत्वानां विजयं मनुजो लभेत् । मध्यरात्रेऽति निर्वाते जपेदयुतमादरात्
ब्रह्मसिद्धिमवाप्नोति व्रतेनाऽनेन सुन्दरि !। जपेल्लक्षमनालस्यो निर्वाते ध्वनिवर्जिते॥
मध्यरात्रे च शिवयोः पश्यत्येवनसंशयः । अन्धकारविनाशश्च दीपस्येवप्रकाशनम् ॥
हृदयान्तर्बहिर्वाऽपि भविष्यति न संशयः । सर्वसम्पत्समृद्ध्यर्थं जपेदयुतमात्मवान्

सबीजसम्पुटं मन्त्रं शतलक्षं जपेच्छुचिः ।
मत्सायुज्यमवाप्नोति भक्तिमान् किमतः परम् ॥ २२१ ॥

इति ते सर्वमाख्यातंपञ्चाक्षरविधिक्रमम् । यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सयातिपरमांगतिम्
श्रावयेद्वाद्विजान्शुद्धान्पञ्चाक्षरविधिक्रमम् । दैवे कर्मणि पित्र्ये वा शिवलोके महीयते
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पञ्चाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

ध्यानयज्ञवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

जपाच्छ्रेष्ठतमं प्राहुर्ब्राह्मणाद्ग्धकिल्बिषाः । विरक्तानां प्रबुद्धानां ध्यानयज्ञं सुशोभनम्

तस्माद्व वदस्व सूताऽद्य ध्यानयज्ञमशेषतः । विस्तरात्सर्वयत्नेनविरक्तानांमहात्मनाम्

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ।

रुद्रेण कथितं प्राह गुहां प्राप्य महात्मनाम् ॥ २ ॥

संहृत्य कालकूटाख्यं विषं वै विश्वकर्मणा ।

सूत उवाच

गुहां प्राप्य सुखासीनं भवान्या सह शङ्करम् ॥ ४ ॥

मुनयः संशितात्मानः प्रणेमुस्तं गुहाश्रयम् । अस्तुवंश्च ततःसर्वे नीलकण्ठमुमापतिम्
अत्युग्रंकालकूटाख्यंसंहृतंभगवंस्त्वया । अतः प्रतिष्ठितं सर्वं त्वया देव ! वृषध्वज !
तेषान्तद्वचनं श्रुत्वा भगवान्नीललोहितः । प्रहसन्प्राह विश्वात्मा सनन्दनपुरोगमान् ॥
किमनेन द्विजश्रेष्ठा! विषं वक्ष्ये सुदारुणम् । संहरेत्तद्विषं यस्तु स समर्थोह्यनेन किम्
न विषं कालकूटाख्यं संसारो विषमुच्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संहरेतसुदारुणम् ॥

संसारो द्विविधः प्रोक्तः स्वाधिकारानुरूपतः ।

पुंसां सम्मूढचित्तानामसंक्षीणः सुदारुणः ॥ १० ॥

ईषणारागदोषेण सर्गो ज्ञानेन सुव्रताः ! । तद्वशादेव सर्वेषां धर्माधर्मौ न संशयः ॥

असन्निकृष्टे त्वर्थेऽपि शास्त्रं तच्छ्रवणात्सताम् ।

बुद्धिमुत्पादयत्येव संसारे विदुषां द्विजाः ॥ १२ ॥

तस्माद्दृष्टानुश्रविकंदुष्टमित्युभयात्मकम् । सन्त्यजेत्सर्वयत्नेन विरक्तःसोऽभिधीयते
शास्त्रमित्युच्यतेभागंश्रुतेःकर्मसु तद्द्विजाः । मूर्धानंब्रह्मणःसारंऋषीणांकर्मणःफलम्
ननुस्वभावः सर्वेषां कामोद्दृष्टोन चान्यथा । श्रुतिः प्रवर्त्तिकातेषामिति कर्मण्यतद्विदः
निवृत्तिलक्षणो धर्मः समर्थानामिहोच्यते । तस्मादज्ञानमूलोहिसंसारः सर्वदेहिनाम्
कलासंशोषमायाति कर्मणान्यस्वभावतः । सकलस्त्रिविधोजीवोज्ञानहीनस्त्वविद्यया

नारकी पापकृत्स्वर्गी पुण्यकृत्पुण्यगौरवात् ।

व्यतिमिश्रेण वै जीवश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ॥ १८ ॥

उद्भिजः स्वेदजश्चैव अण्डजो वै जरायुजः । एवं व्यवस्थितो देही कर्मणाज्ञोह्यनिर्वृतः

प्रजयाकर्मणामुक्तिर्धनेन च सतां न हि। त्यागेनैकेनमुक्तिःस्यात्तदभावाद्भ्रमत्यसौ
एवमज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च। षट् कौशिकं समुद्भूतं भजत्येष कलेवरम् ॥२१
गर्भदुःखान्यनेकानि योनिमार्गे च भूतले। कौमारे यौवने चैव वार्धके मरणेऽपि वा
विचारतः सतां दुःखं स्त्रीसंगादिभिर्द्विजाः !। दुःखेनैकेनवै दुःखंप्रशाम्यन्तीहदुःखिनः
न जातु कामः कामानां ह्युपभोगेन शाम्यति। हविषाकृष्णावर्त्मेवभूय एवाऽभिवर्धते
तस्माद्विचारतोनास्तिसंयोगादपिवैनृणाम्। अर्थानामर्जनेऽप्येवंपालनेचव्ययेतथा॥

पैशाचे राक्षसे दुःखं याक्षे चैव विचारतः।
गान्धर्वे च तथा चान्द्रे सौम्ये लोके द्विजोत्तमाः ! ॥ २६ ॥

प्राजापत्ये तथा ब्राह्मे प्राकृते पौरुषे तथा। क्षयसातिशयाद्यैस्तुदुःखैर्दुःखानिसुव्रताः!
तानिभाग्यान्यशुद्धानिसन्त्यजेच्चधनानिच। तस्मादष्टगुणंभोगंतथाषोडशधास्थितम्
चतुर्विंशत्प्रकारेण संस्थितञ्चाऽपिसुव्रताः !। द्वात्रिंशद्भेदमनघाश्चत्वारिंशद्गुणंपुनः
तथाऽष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्प्रकारतः। चतुःषष्टिविधञ्चैव दुःखमेव विवेकिनः॥
पार्थिवञ्च तथाऽऽप्यञ्च तैजसञ्चविचारतः। वायव्यञ्च तथाव्यौममानसञ्चयथाक्रमम्
आभिमानिकमप्येवं बौद्धं प्राकृतमेव च। दुःखमेव न सन्देहो योगिनां ब्रह्मवादिनाम्
गौणञ्चणेश्वराणाञ्च दुःखमेव विचारतः। आदौमध्ये तथाचाऽन्ते सर्वलोकेषु सर्वदा

वर्तमानानि दुःखानि भविष्याणि यथातथम्।
दोषदुष्टेषु देशेषु दुःखानि विविधानि च ॥ ३४ ॥

न भावयन्त्यतीतानि ह्यज्ञाने ज्ञानमानिनः। क्षुद्व्याधेः परिहारार्थंनसुखायान्नमुच्यते
यथेतरेषां रोगाणामौषधं न सुखाय तत्। शीतोष्णवातवर्षाद्यैस्तत्तत्कालेषु देहिनाम्

दुःखमेव न सन्देहो न जानन्ति ह्यपण्डिताः।
स्वर्गेऽप्येवं मुनिश्रेष्ठा ह्यविशुद्धक्षयादिभिः ॥ ३७ ॥

रोगैर्नानाविधैर्ग्रस्ता रागद्वेषभयादिभिः। छिन्नमूलतरुर्यद्वद्वशः पतति क्षितौ ॥ ३८॥
पुण्यवृक्षक्षयात्तद्वद्वांपतन्ति दिवौकसः। दुःखाभिलाषनिष्ठानांदुःखभोगादिसम्पदाम्
अस्मात्पततां दुःखं कष्टं स्वर्गाद्दिवौकसाम्। नरकेदुःखमेवाऽत्रनरकाणांनिषेवणात्

विहिताकरणाच्चैव वर्णिनां मुनिपुङ्गवाः! ॥ ४१ ॥
यथा मृगो मृत्युभयस्य भीतो उच्छिन्नवासो न लभेत निद्राम् ।
एवं यतिर्ध्यानपरो महात्मा संसारभीतो न लभेत निद्राम् ॥ ४२ ॥
कीटपक्षिमृगाणाञ्च पशूनां गजवाजिनाम् । दृष्टमेवासुखं तस्मात्त्यजतः सुखमुत्तमम्
वैमानिकानामप्येवं दुःखं कल्पाधिकारिणाम् ।
स्थानाभिमानिनाञ्चैव मन्वादीनाञ्च सुव्रताः ! ॥ ४४ ॥
देवानाञ्चैव दैत्यानामन्योऽन्यविजिगीषया । दुःखमेव नृपाणाञ्च राक्षसानां जगत्त्रये
श्रमार्थमाश्रमश्चापि वर्णानां परमार्थतः । आश्रमैर्न च देवैश्च यज्ञैः साङ्ख्यैर्व्रतैस्तथा
उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्दानैर्नानाविधैरपि । नलभन्तेतथाऽऽत्मानं लभन्ते ज्ञानिनःस्वयम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चरेत्पाशुपतव्रतम् । भस्मशायी भवेन्नित्यं व्रते पाशुपते बुधः ॥
पञ्चार्थज्ञानसम्पन्नः शिवतत्त्वे समाहितः । कैवल्यकरणं योगं विधिकर्मच्छिदं बुधः ॥
पञ्चार्थयोगसम्पन्नो दुःखान्तं व्रजते सुधीः । परया विद्यया वेद्यं विदन्त्यपरया न हि
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा । अपरा तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः!
सामवेदस्तथाऽथर्ववेदः सर्वार्थसाधकः । शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च
ज्योतिषञ्चाऽपरा विद्या पराक्षरमिति स्थितम् । तददृश्यन्तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम्
तदचक्षुस्तदश्रोत्रं तदपाणि अपादकम् । तदजातमभूतञ्च तदशब्दं द्विजोत्तमाः !॥५४॥
अस्पर्शं तदरूपञ्च रसगन्धविवर्जितम् । अव्ययञ्चाप्रतिष्ठञ्च तन्नित्यं सर्वगं विभुम् ॥
महान्तं तद्बृहन्तञ्च तदजञ्चिन्मयं द्विजाः । अप्राणममनस्कञ्च तदस्निग्धमलोहितम् ॥
अप्रमेयन्तदस्थूलमदीर्घन्तदनुल्बणम् । अह्रस्वन्तदपारञ्च तदानन्दं तदच्युतम् ॥ ५७ ॥
अनपावृतमद्वैतं तदनन्तमगोचरम् । असंवृतं तदात्म्यैकं परा विद्या न चान्यथा॥५८॥
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः । अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत् ॥ ५९ ॥
मत्त उत्पद्यते तिष्ठन्मयि मय्येव लीयते ।
मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा ॥ ६० ॥
सर्वमात्मनि सम्पश्येत्सच्चासच्चसमाहितः । सर्वं ह्यात्मनि सम्पश्यन्न बाह्ये कुरुते मनः

अधोदृष्ट्या वितस्त्यान्तुनाभ्यामुपरितिष्ठति। हृदयंतद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनंमहत्
हृदयस्यास्यमध्ये तु पुण्डरीकमवस्थितम्। धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्

ऐश्वर्य्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम्।

छिद्राणि च दिशो यस्य प्राणाद्याश्च प्रतिष्ठिताः॥ ६४॥

प्राणाद्यैश्चैव संयुक्तः पश्यते बहुधा क्रमात्। दशप्राणवहानाड्यः प्रत्येकं मुनिपुङ्गवाः!
द्विसप्ततिसहस्राणिनाड्यःसम्परिकीर्त्तिताः।नेत्रस्थंजाग्रतंविद्यात्कण्ठेस्वप्नंसमादिशेत्
सुषुप्तंहृदयस्थन्तुतुरीयंमूर्धनिस्थितम्। जाग्रेब्रह्मा च विष्णुश्चस्वप्नेचैवयथाक्रमात्
ईश्वरस्तु सुषुप्ते तु तुरीये च महेश्वरः। यदन्त्येवमथाऽन्येऽपि समस्तकरणैः पुमान्
वर्त्तमानस्तदा तस्य जाग्रदित्यभिधीयते। मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तञ्चेति चतुष्टयम्॥
यदाव्यवस्थितस्त्वेते स्वप्नात्यभिधीयते। करणानिविलीनानियदास्वात्मनिसुव्रताः!
सुषुप्तः करणैर्भिन्नस्तुरीयः परिकीर्त्यते। परस्तुरीयातीतोऽसौ शिवः परमकारणम्

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीयञ्चाधिभौतिकम्।

आध्यात्मिकञ्च विप्रेन्द्राश्चाधिदैविकमुच्यते॥ ७२॥

तत्सर्वमहमेवेति वेदितव्यं विजानता। बुद्धीन्द्रियाणिविप्रेन्द्रास्तथा कर्मेन्द्रियाणि च
मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तञ्चेति चतुष्टयम्। अध्यात्मं पृथगेवेदञ्चतुर्दशविधं स्मृतम्॥७४
द्रष्टव्यञ्चैव श्रोतव्यं घ्रातव्यञ्च यथाक्रमम्। रसितव्यं मुनिश्रेष्ठाः! स्पर्शितव्यं तथैव च
मन्तव्यञ्चैव बोद्धव्यमहङ्कर्त्तव्यमेव च। तथा चेतयितव्यञ्च वक्तव्यं मुनिपुङ्गवाः!॥
आदातव्यञ्च गन्तव्यं विसर्गायितमेव च। आनन्दितव्यमित्येते ह्यधिभूतमनुक्रमात्
आदित्योऽपि दिशश्चैव पृथिवी वरुणस्तथा। वायुश्चन्द्रस्तथाब्रह्मारुद्रः क्षेत्रज्ञ एव च
अग्निरिन्द्रस्तथा विष्णुर्मित्रो देवः प्रजापतिः। आधिदैविकमेवंहिचतुर्दशविधंक्रमात्

राज्ञी सुदर्शना चैव जिता सौम्या यथाक्रमम्।

मोघा रुद्रा मृता सत्या मध्यमा च द्विजोत्तमाः!॥ ८०॥

नाडीराशिशुका चैव असुरा चैव कृत्तिका। भास्वती नाड्यश्चैताश्चतुर्दशनिबन्धनाः
वायवो नाडिमध्यस्था वाहकाश्च चतुर्दश। प्राणोव्यानस्त्वपानश्चउदानश्चसमानकः

वैरम्भश्च तथा मुख्यो ह्यन्तर्यामः प्रभञ्जनः। कूर्मकश्च तथाश्येनःश्वेतःकृष्णस्तथानिल.
नाग इत्येव कथिता वायवश्च चतुर्दश। यश्चक्षुष्वथ दृष्टव्ये तथाऽऽदित्येवसुव्रताः!॥
नाड्यां प्राणे च विज्ञानेत्वानन्देचयथाक्रमम्। हृद्याकाशेयएतस्मिन्सर्वस्मिन्नन्तरेपरः
आत्मा एकश्च चरति तमुपासीत मां प्रभुम्। अजरं तमनन्तञ्च अशोकममृतं ध्रुवम् ॥
चतुर्दशविधेष्वेव सञ्चरत्येक एव सः। लीयन्ते तानि तत्रैव यदन्यंनास्ति वै द्विजाः!
एक एव हि सर्वज्ञः सर्वेशस्त्वेक एव सः। एष सर्वाधिपोदेवस्त्वन्तर्यामी महाद्युतिः
उपास्यमानः सर्वस्य सर्वसौख्यः सनातनः। उपास्यतिनचैवेह सर्वसौख्यंद्विजोत्तमाः
उपास्यमानो वेदैश्च शास्त्रैर्नानाविधैरपि। नवैष वेदशास्त्राणि सर्वज्ञो यास्यति प्रभुः
अस्यैवाऽन्नमिदंसर्वं न सोऽन्नंभवतिस्वयम्। स्वात्मनारक्षितश्चाद्यादन्नभूतंनकुत्रचित्
सर्वत्र प्राणिनामन्नं प्राणिनां ग्रन्थिरस्म्यहम्। प्रशस्तानयनञ्चैवपञ्चात्मासविभागशः
अन्नमयोऽसौभूतात्माचाऽयतेह्यन्नमुच्यते। प्राणमयश्चेन्द्रियात्मासङ्कल्पात्मामनोमयः
कालात्मा सोम एवेह विज्ञानमय उच्यते। सदानन्दमयो भूत्वा महेशः परमेश्वरः ॥

सोऽहमेवं जगत्सर्वं मय्येव सकलं स्थितम्।
परतन्त्रं स्वतन्त्रेऽपि तदा भावाद्विचारतः ॥ ६५ ॥

एकत्वमपि नास्त्येव द्वैतं तत्र कुतस्त्वहो। एवं नास्त्यथ मर्त्यश्च कुतोऽमृतमजोद्भवः
नान्तःप्रज्ञो बहिःप्रज्ञो न चोभयगतस्तथा। न प्रज्ञा न घनस्त्वेवं न प्राज्ञो ज्ञानपूर्वकः
विदितं नास्ति वेद्यश्च निर्वाणं परमार्थतः। निर्वाणश्चैव कैवल्यं निःश्रेयसमनामयम्
अमृतश्चाऽक्षरं ब्रह्म!परमात्मा परापरम्। निर्विकल्पं निराभासं ज्ञानं पर्य्यायवाचकम्
प्रसन्नश्च यदैकाग्रं तदा ज्ञानमितिस्मृतम्। अज्ञानमितरत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥
इत्थं प्रसन्नं विज्ञानं गुरुसम्पर्कजं ध्रुवम्। रागद्वेषानृतक्रोधं कामतृष्णादिभिः सदा
अपरामृष्टमद्यैव विज्ञेयं मुक्तिदं त्विदम्। अज्ञानमलपूर्वत्वात्पुरुषो मलिनः स्मृतः ॥

तत्क्षयाद्धि भवेन्मुक्तिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः।
ज्ञानमेकं विना नास्ति पुण्यपापपरिक्षयः ॥ १०३ ॥

ज्ञानमेवाभ्यसेत्तस्मान्मुक्त्यर्थंब्रह्मवित्तमाः!। ज्ञानाभ्यासाद्धिवैपुंसांबुद्धिर्भवतिनिर्मला

तस्मात्सदाभ्यसेज्ज्ञानं तन्निष्ठस्तत्परायणः। ज्ञानेनैकेनतृप्तस्यत्यक्तसङ्गस्ययोगिनः॥

कर्तव्यं नास्ति विप्रेन्द्रा ! अस्ति चेत्तत्त्वविन्न च।
इह लोके परे चापि कर्तव्यं नास्ति तस्य वै॥ १०६॥
जीवन्मुक्तो यतस्तस्माद् ब्रह्मवित्परमार्थतः।
ज्ञानाभ्यासरतो नित्यं ज्ञानतत्त्वार्थवित्स्वयम्॥ १०७॥
कर्तव्याभ्यासमुत्सृज्य ज्ञानमेवाऽधिगच्छति।
वर्णाश्रमाभिमानी यस्त्यक्तक्रोधो द्विजोत्तमाः !॥ १०८॥

अन्यत्र रमते मूढः सोऽज्ञानी नात्र संशयः। संसारहेतुरज्ञानं संसारस्तनुसंग्रहः॥ मोक्षहेतुस्तथाज्ञानंमुक्तःस्वात्मन्यवस्थितः। अज्ञानेसतिविप्रेन्द्राःक्रोधाद्यानात्रसंशयः क्रोधो हर्षस्तथालोभोमोहोदम्भोद्विजोत्तमाः। धर्माधर्मौहितेषाञ्च तद्वशात्तनुसंग्रहः

शरीरे सति वै क्लेशः सोऽविद्यां सन्त्यजेद् बुधः।
अविद्यां विद्यया हित्वा स्थितस्यैव च योगिनः॥ ११२॥

क्रोधाद्या नाशमायान्ति धर्माधर्मौचवैद्विजाः !। तत्क्षयाच्चशरीरेण न पुनःसम्प्रयुज्यते स एवमुक्तः संसाराद्दुःखत्रयविवर्जितः। एवंज्ञानंविनानास्तिध्यानंध्यातुर्द्विजर्षभाः ज्ञानंगुरोर्हिलभ्यर्काश्रवाचपरमार्थतः। चतुर्व्यूहमितिज्ञात्वा ध्यात्वाध्यानंसमभ्यसेत् सहजागन्तुकं पापमस्थिराशुद्धवं तथा। ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवाऽनलः॥ ज्ञानात्परतरं नास्ति सर्वपापविनाशनम्। अभ्यसेच्च सदा ज्ञानं सर्वं सङ्गविवर्जितः॥ ज्ञानिनः सर्वपापानि जीर्यन्ते नाऽत्रसंशयः। क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि ज्ञानंयथातथाध्यानं तस्माद्ध्यानंसमभ्यसेत्। ध्यानंनिर्विषयंप्रोक्तमादौसविषयंतथा षट्प्रकारं समभ्यस्य चतुःषट्दशभिस्तथा। तथा द्वादशधाचैवपुनः षोडशधा क्रमात् द्विधाऽभ्यस्य चयोगीन्द्रोमुच्यतेनात्रसंशयः। शुद्धजाम्बूनदाकारंविधूमाङ्गारसन्निभम् पीतं रक्तं सितं विद्युत्कोटिकोटिसमप्रभम्। अथवा ब्रह्मरन्ध्रस्थंचित्तंकृत्वा प्रयत्नतः न सितं वाऽसितं पीतं न स्मरेद्ब्रह्मविद्भवेत्। अहिंसकःसत्यवादीअस्तेयीसर्वयत्नतः परिग्रहविनिर्मुक्तो ब्रह्मचारी दृढव्रतः। सन्तुष्टः शौचसम्पन्नः स्वाध्यायनिरतः सदा॥

मद्भक्तश्चाऽभ्यसेद् ध्यानं गुल्फस्पर्कजं ध्रुवम् ।
न बुध्यति तथा ध्याता स्थाप्य चित्तं द्विजोत्तमाः ! ॥१२५ ॥
नवाऽभिमन्यतेयोगीनपश्यतिसमन्ततः । नघ्रातिनशृणोत्येवलीनःस्वात्मनियःस्वयम्
न च स्पर्शं विजानाति स वै समरसःस्मृतः । पार्थिवेपटलेब्रह्मावारितत्त्वेहरिःस्वयम्
वाह्नेये कालरुद्राख्यो वायुतत्वे महेश्वरः ।
सुषिरे स शिवः साक्षात्क्रमादेवं विचिन्तयेत् ॥ १२८ ॥
क्षितौशर्वःस्मृतोदेवोह्यपाम्भव इतिस्मृतः । रुद्र एव तथा वह्नौ उग्रोवायौ व्यवस्थितः
भीमः सुषिरनाकेऽसौ भास्करे मण्डले स्थितः ।
ईशानः सोमबिम्बे च महादेव इति स्मृतः ॥ १३० ॥
पुंसां पशुपतिर्देवश्चाऽष्टधाऽहं व्यवस्थितः । काठिन्यं यत्तनौ सर्वं पार्थिवं परिगीयते
आप्यंद्रवमितिप्रोक्तंवर्णाख्यो वह्निरुच्यते । यत्सञ्चरतितद्वायुःसुषिरंयद्द्विजोत्तमाः !
तदाकाशञ्चविज्ञानंशब्दजंव्योमसम्भवम् । तथैवविप्रा! विज्ञानंस्पर्शाख्यंवायुसम्भवम्
रूपं वाह्नेयमित्युक्तमाप्यंरसमयंद्विजाः । गन्धाख्यंपार्थिवं भूयश्चिन्तयेद्भास्करं क्रमात्
नेत्रेचदक्षिणेवामेसोमंहृदि विभुं द्विजाः ! । आजानुपृथिवीतत्वमानाभेर्वारिमण्डलम्
आकण्ठं वह्नितत्वं स्याल्ललाटान्तं द्विजोत्तमाः ।
वायव्यं वै ललाटाद्यं व्योमाख्यं वा शिखाग्रकम् ॥ १३६ ॥
हंसाख्यञ्च ततो ब्रह्म व्योम्नश्चोर्ध्वं ततः परम् ।
व्योमाख्यो व्योममध्यस्थो ह्ययं प्राथमिकः स्मरेत् ॥ १३७ ॥
नजीवःप्रकृतिःसत्वरजश्चाऽथतमःपुनः । महांस्तथाऽभिमानश्चतन्मात्राणीन्द्रियाणिच
व्योमादीनि च भूतानि नैवेह परमार्थतः। व्याप्यतिष्ठद्यतो विश्वंस्थाणुरित्यभिधीयते
उदेति सूर्योभीतश्च पवते वात एव च । द्योतते चन्द्रमा वह्निर्ज्वलत्यापो वहन्ति च
दधातिभूमिराकाशमवकाशं ददाति च ।
तदाज्ञया ततं सर्वं तस्माद्वै चिन्तयेत् द्विजाः ! ॥ १४१ ॥
तेनैवाऽधिष्ठितं तस्मादेतत्सर्वं द्विजोत्तमाः !। सर्वरूपमयः सर्व इति मत्वास्मरेद्ध्रुवम्

संसारविषतप्तानांज्ञानध्यानामृते न वै । प्रतीकारःसमाख्यातोनान्यथा द्विजसत्तमाः!
ज्ञानंधर्मोद्भवंसाक्षाज्ज्ञानाद्वैराग्यसम्भवः । वैराग्यात्परमं ज्ञानं परमार्थप्रकाशकम् ॥
ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य योगसिद्धिर्द्विजोत्तमाः ।
योगसिद्ध्या विमुक्तिः स्यात्सत्वनिष्ठस्य नान्यथा ॥ १४५ ॥
तमोविद्यापदच्छन्नश्छिन्नंयत्पदमव्ययम् । सत्वशक्तिसमास्थायशिवमभ्यर्चयेद्द्विजाः !
यः सत्वनिष्ठो मद्भक्तो मदर्चनपरायणः । सर्वतो धर्मनिष्ठश्च सदोत्साही समाहितः ॥
सर्वद्वन्द्वसहोधीरः सर्वभूतहितेरतः । ऋजुस्वभावः सततं स्वस्थचित्तो मृदुः सदा ॥
अमानी बुद्धिमांश्छान्तस्त्यक्तस्पर्धो द्विजोत्तमाः !
सदा मुमुक्षुर्धर्मज्ञः स्वात्मलक्षणलक्षणः ॥ १४६ ॥
ऋणत्रयविनिर्मुक्तः पूर्वजन्मनिपुण्यभाक् । जरायुकोद्विजोभूत्वाश्रद्धयावगुरोःक्रमात्
अन्यथावापिशुश्रूषांकृत्वाकृत्रिमवर्जितः । स्वर्गलोकमनुप्राप्यभुक्त्वाभोगाननुक्रमात्
आसाद्यभारतंवर्षंब्रह्मविज्ञायते द्विजाः !। सम्पर्काज्ज्ञानमासाद्य ज्ञानिनोयोगविद्भवेत्
क्रमोऽयं मलपूर्णस्य ज्ञानप्राप्तेर्द्विजोत्तमाः ! । तस्मादनेन मार्गेण त्यक्तसङ्गोदृढव्रतः॥
संसारकालकूटाख्यान्मुच्यते मुनिपुङ्गवाः । एवं संक्षेपतःप्रोक्तं मयायुष्माकमच्युतम्
ज्ञानस्यैवेह माहात्म्यं प्रसङ्गादिह शोभनम् ।
एवं पाशुपतं योगं कथितं त्वीश्वरेण तु ॥ १५० ॥
न देयंयस्यकस्यापिशिवोक्तंमुनिपुङ्गवाः ! । दातव्यंयोगिनेनित्यंभस्मनिष्ठायसुप्रियम्
यः पठेच्छृणुयाद्वापिसंसारशमनं नरः । स यातिब्रह्मसायुज्यं नाऽत्रकार्याविचारणा

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे संसारतारणोपायकथने परमशिवतत्त्वप्रतिपादनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शिवशक्तितत्त्वनिरूपणं मुनिमोहशमनम्

सूत उवाच

निशम्य ते महाप्राज्ञाः कुमाराद्या पिनाकिनम् ।
प्रोचुः प्रणम्य वै भीताः प्रसन्नं परमेश्वरम् ॥ १ ॥
एवञ्चेदनया देव्या हैमवत्या महेश्वरम् । क्रीडसे विविधैर्भोगैः कथं वक्तुमिहाऽर्हसि

सूत उवाच

एवमुक्तः प्रहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।
प्राह तामम्बिकां प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितान्द्विजान् ॥ ३ ॥
बन्धमोक्षौनचैवेहममस्वेच्छाशरीरिणः । अकर्ताज्ञः पशुर्जीवोविभुर्भोक्ता ह्यणुःपुमान्
मायी च मायया बद्धः कर्मभिर्युज्यते तु सः ।
ज्ञानं ध्यानञ्च बन्धश्च मोक्षो नास्त्यात्मनो द्विजाः ! ॥ ५ ॥
यदेवंमयिविद्वान्यस्तस्याऽपि न च सर्वतः । एषाविद्याह्यहं वेद्य प्रज्ञैषाच श्रुति स्मृतिः
धृतिरेषा मया निष्ठा ज्ञानशक्तिः क्रिया तथा ।
इच्छाख्या च तथा ह्याज्ञा द्वे विद्ये न च संशयः ॥ ७ ॥
न ह्येषा प्रकृतिर्जैवी विकृतिश्च विचारतः । विकारो नैव मायैषा सदसद्व्यक्तिवर्जिता
पुरा ममाऽऽज्ञा मद्वक्त्रात्समुत्पन्नासनातनी । पञ्चवक्त्रा महाभागा जगतामभयप्रदा
तामाज्ञां सम्प्रविश्याऽहं चिन्तयं जगतां हितम् ।
सप्तविंशत्प्रकारेण सर्वं व्याप्याऽनया शिवः ॥ १० ॥
तदाप्रभृति वै मोक्षप्रवृत्तिर्द्विजसत्तमाः ! ।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा तदाऽपश्यद्भवानीं परमेश्वरः ॥ ११ ॥

भवानी च तमालोक्य मायामहरदव्यया । ते मायामलनिर्मुक्ता मुनयः प्रेक्ष्य पार्वतीम्
प्रीताबभूवुर्मुक्ताश्च तस्मादेषा परा गतिः । उमाशङ्करयोर्भेदो नास्त्येव परमार्थतः ॥
द्विधाऽसौ रूपमास्थाय स्थित एव न संशयः । यदा विज्ञानसङ्गःस्यादाज्ञयापरमेष्ठिनः

तदा मुक्तिः क्षणादेव नान्यथा कर्मकोटिभिः ।
क्रमो विवक्षितो भूतविवृद्धः परमेष्ठिनः ॥ १५ ॥
प्रसादेन क्षणान्मुक्तिः प्रतिज्ञैषा न संशयः ।
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा ॥ १६ ॥

वृद्धोवामुच्यतेजन्तुः प्रसादात्परमेष्ठिनः । अण्डजश्चोद्भिजोवापिस्वेदजोवापिमुच्यते
प्रसादाद्देवदेवस्य नाऽत्रकार्याविचारणा । एष एव जगन्नाथो बन्धमोक्षकरः शिवः
भूर्भुवःस्वर्महश्चैवःजनःसाक्षात्तपःस्वयम्। सत्यलोकस्तथाण्डानांकोटिकोटिशतानिच
विग्रहं देवदेवस्य तथाऽण्डावरणाष्टकम् । सप्तद्वीपेषु सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥२० ॥
समुद्रेषु च सर्वेषु वायुस्कन्धेषु सर्वतः । तथाऽन्येषुच लोकेषु वसन्ति च चराचराः
सर्वेभावांशजा नूनं गतिस्त्वेषां स एव वै । सर्वो रुद्रो नमस्तेऽस्मै पुरुषायमहात्मने
विश्वंभूतंतथाजातं बहुधा रुद्र एव सः । रुद्राज्ञैषा स्थिता देवी ह्यनया मुक्तिरम्बिका

इत्येवं खेचराः सिद्धा जजल्पुः प्रीतिमानसाः ।
यदावलोक्य तान्सर्वान् प्रसादादनयाऽम्बिका ॥ २४ ॥
तदा तिष्ठन्ति सायुज्यं प्राप्तास्ते खेचरा प्रभोः ॥ २५ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे मुनिमोहशमनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

सविस्तरं पाशुपतयोगनिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

केन योगेन वै सूत! गुणप्राप्तिः सतामिह । अणिमादिगुणोपेता भवन्त्येवेह योगिनः

तत्सर्वं विस्तरात् सूत ! वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ १ ॥

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम् । पञ्चधा संस्मरेदादौ स्थाप्यविस्तेसनातनम्
कल्पयेच्चाऽऽसनंपद्मंसोमसूर्याग्निसंयुतम् । षड्विंशच्छक्तिसंयुक्तमष्टधाचद्विजोत्तमाः
ततः षोडशधा चैव पुनर्द्वादशधा द्विजाः । स्मरेच्च तथा मध्ये देव्या देवमुमापतिम्
अष्टशक्तिसमायुक्तमष्टमूर्तिमजं प्रभुम् । तामिश्चाऽष्टविधा रुद्राश्चतुःषष्टिविधाः पुनः ॥
शक्तयश्च तथा सर्वा गुणाष्टकसमन्विताः । एवं स्मरेत्क्रमेणैव लब्ध्वा ज्ञानमनुत्तमम्

एवं पाशुपतं योगं मोक्षसिद्धिप्रदायकम् ।

तस्याऽऽणिमादयो विप्रा ! नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ ७ ॥

तत्राऽष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम् । तत्सर्वं क्रमयोगेन उच्यमानं निबोधत॥८॥
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च । प्राकाम्यञ्चैव सर्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्वतः॥
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता । तच्चाऽपि त्रिविधं ज्ञेयमैश्वर्यंसार्वकामिकम्
सावद्यं निरवद्यञ्च सूक्ष्मञ्चैव प्रवर्त्तते । सावद्यं नाम यत्तत्र पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् ॥
इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च यःस्मृतः । तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तिस्तु पञ्चभूतात्मिका पुनः
इन्द्रियाणि मनश्चित्तबुद्ध्यहङ्कारसञ्ज्ञितम् । तथासर्वमयञ्चैव आत्मस्थाख्यातिरेवच
संयोग एव त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्त्तते । पुनरष्टगुणश्चाऽपि सूक्ष्मेष्वेव विधीयते ॥
तस्यरूपं प्रवक्ष्यामियथाऽऽहभगवान्प्रभुः । त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु यथाऽस्यनियमःस्मृतः
अणिमाद्यं तथा व्यक्तं सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम् । त्रैलोक्ये सर्वभूतानां दुष्प्रापंसमुदाहृतम्
तत्तस्य भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलम् । लङ्घनं प्लवनं लोके रूपमस्य सदा भवेत्
शीघ्रत्वं सर्वभूतेषु द्वितीयन्तु पदं स्मृतम् । त्रैलोक्ये सर्वभूतानां महिम्नाचैववन्दितम्
महित्वञ्चापि लोकेऽस्मिस्तृतीयोयोग उच्यते । त्रैलोक्येसर्वभूतेषु यथेष्टगमनंस्मृतम्

प्राकामान् विषयान् भुङ्क्ते तथा प्रतिहतः क्वचित् ।

त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुखदुःखं प्रवर्त्तते ॥ २० ॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् । वश्यानिचास्यभूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे

इच्छया तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च ।

यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ २२ ॥

शब्दस्पर्शौ रसो गन्धो रूपश्चैव मनस्तथा । प्रवर्त्तन्तेऽस्यचेच्छातोनभवन्तियथेच्छया न जायते न म्रियते छिद्यते न च भिद्यते । न दह्यते न मुह्येत लीयते न च लिप्यते ॥ न क्षीयते न क्षरति खिद्यते न कदाचन । क्रियते वा न सर्वत्र तथा विक्रियते न च॥ अगन्धरसरूपस्तु अस्पर्शः शब्दवर्जित. । अवर्णो ह्यस्वरश्चैव असवर्णस्तु कर्हिचित् ॥ स भुङ्क्ते विषयांश्चैव विषयैर्नच युज्यते । अणुत्वात्तु परः सूक्ष्मः सूक्ष्मत्वादपवर्गिकः व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापकात्पुरुषः स्मृतः । पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्येपरमेस्थितः गुणोत्तरमथैश्वर्यं सर्वतः सूक्ष्ममुच्यते । ऐश्वर्यञ्चाऽप्रतीघातं प्राप्य योगमनुत्तमम् ॥ अपवर्गं ततो गच्छेत्सूक्ष्मं तत्परमंपदम् । एवं पाशुपतं योगं ज्ञातव्यं मुनिपुङ्गवाः !॥ स्वर्गापवर्गफलदं शिवसायुज्यकारणम् । अथवा गतविज्ञानो रागात्कर्म समाचरेत् राजसन्तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव मुच्यते । तथा सुकृतकर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते तस्मात्स्थानात्पुनः श्रेष्ठो मानुष्यमुपपद्यते । तस्माद्ब्रह्मपरंसौख्यंब्रह्मशाश्वतमुत्तमम् ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव हि परं सुखम् । परिश्रमो हि यज्ञानां महतार्थे न वर्त्तते ॥ भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परंसुखम् । अथवाध्यानसंयुक्तोब्रह्मतत्वपरायणः

न तु च्यावयितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ।

दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वतोमुखम् ॥ ३६ ॥

विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वरूपिणम् । विश्वगन्धंविश्वमाल्यंविश्वाम्बरधरंप्रभुम्

गोभिर्मही संपतते पतत्रिणो नैवं भूयो जनयत्येवमेव ।

कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ॥ ३८ ॥

योगेन पश्येन्न च चक्षुषा पुनर्निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम् ।

आलिङ्गिनं निर्गुणश्चेतनश्च नित्यं सदा सर्वगं सर्वसारम् ॥ ३६ ॥

पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलप्रकाशम् तद्भावितास्तेजसा दीप्यमानम् ।

अपाणिपादोदरपार्श्वजिह्वोह्यतीन्द्रियो वाऽपि सुसूक्ष्म एकः ॥ ४० ॥

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णो न चास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति ।
स वेद सर्व न च सर्ववेद्यम् तमाहुरग्र्य पुरुष महान्तम् ॥ ४१ ॥
अचेतनां सर्वगतां सूक्ष्मा प्रसवधर्मिणीम् । प्रकृति सर्वभूताना युक्ताःपश्यन्तियोगिन
सर्वत पाणिपाद तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति
युक्तो योगेन चेशान सर्वतश्च सनातनम् । पुरुष सर्वभूतानां त विद्वान्न विमुह्यति ॥
भूतात्मान महात्मान परमात्मानमव्ययम् । सर्वात्मानपरब्रह्म तद्वै ध्याता न मुह्यति
पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन्सर्वमूर्त्तिषु । पुरि शेते सुदुर्ग्राह्यस्तस्मात्पुरुष उच्यते॥
अथ चेल्लुप्तधर्मा तु सावशेषै स्वकर्मभि । ततस्तु ब्रह्मगर्भे वै शुक्रशोणितसयुते ॥
स्त्रीपुंसो सम्प्रयोगे हि जायते हि तत प्रभु ।
ततस्तु गर्भकालेन कलल नाम जायते ॥ ४८ ॥
कालेन कललश्चाऽपि बुद्बुदसम्प्रजायते । मृत्पिण्डस्तु तथा चक्रे चक्रावर्त्तेनपीडित
हस्ताभ्याक्रियमाणस्तु बिम्बत्वमनुगच्छति । एवमाध्यात्मिकैर्युक्तोवायुनासम्प्रपूरित
यदि योनि विमुञ्चामि तत्प्रपद्ये महेश्वरम् । यावद्धि वैष्णवोवायुर्जातमात्रनसस्पृशेत्
तावत्काल महादेवमर्चयामीति चिन्तयेत् । जायते मानुषस्तत्र यथारूप यथावय ॥
वायु सम्भवते खात्तु वाताद्भवतिवैजलम् । जलात्सम्भवतिप्राण प्राणाच्छुक्रविवर्द्धते
रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशद्रेतो भागाश्चतुर्दश । भागतोऽर्द्धफलङ्कृत्वा ततो गर्भो निषिच्यते
ततस्तु गर्भसयुक्त पञ्चभिर्वायुभिवृत । पितु शरीरात्प्रत्यङ्ग रूपमस्योपजायते॥५५
ततोऽस्य मातुराहारात्पीतलीढप्रवेशनात् ।
नाभिदेशेन वै प्राणास्तेह्याधारा हि देहिनाम् ॥ ५६ ॥
नवमासात्परिक्लिष्ट सवेष्टितशिरोधर । वेष्टित सर्वगात्रैश्च अपर्य्याप्तप्रवेशन ॥५७॥
नवमासोषितश्चापि योनिच्छिद्रादवाङमुख ।
तत स्वकर्मभि पापैर्निरय सम्प्रपद्यते ॥ ५८ ॥
असिपत्रवनञ्चैव शाल्मलिच्छेदनन्तथा । ताडन भक्षणञ्चैव पूयशोणितभक्षणम् ॥५६
यथा ह्यापस्तु सछिन्ना सश्लेषमुपयान्ति वै ।

तथा छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागताः ॥ ६० ॥
एवं जीवास्तु तैः पापैस्तप्यमानाः स्वयंकृतैः । प्राप्नुयुःकर्मभिःशेषैर्दुःखंवायदिवेतरत्
एकेनैव तु गन्तव्यं सर्वमुत्सृज्य वै जनम् । एकेनैव तु भोक्तव्यं तस्मात्सुकृतमाचरेत्
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति । यदनेन कृतं कर्म तदेनमनुगच्छति ॥६३॥
ते नित्यं यमविषयेषु सम्प्रवृत्ताः क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगैः ।
शुष्यन्ते परिगतवेदना शरीरा बह्वीभिः सुभृशमनन्तयातनाभिः ॥ ६४ ॥
कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णंनिषेवते । तदभ्यासोहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत्
अनादिमान्प्रबन्धः स्यात्पूर्वकर्मणि देहिनः । संसारं तामसं घोरं षड्विधं प्रतिपद्यते
मानुष्यात्पशुभावश्चपशुभावान्मृगोभवेत् । मृगत्वात्पक्षिभावश्च तस्माच्चैवसरीसृपः
सरीसृपत्वाद् गच्छेद्वै स्थावरत्वं न संशयः । स्थावरत्वेपुनःप्राप्ते यावदुन्मिलते जनः
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रैव परिवर्त्तते । इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारस्थावरान्तिकः
विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्त्तते । सात्विकश्चापिसंसारो ब्रह्मादिःपरिकीर्त्तितः
पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ।
ब्राह्मं तु केवलं सत्वं स्थावरे केवलं तमः ॥ ७१ ॥
चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः । मर्मसु छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिनः
ततस्तत्परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति । संसारः पूर्वधर्मस्य भावनाभिः प्रणोदितः
मानुषं भजते नित्यंतस्माद्ध्यानंसमाचरेत् । चतुर्दशविधंह्येतद्बुद्ध्वासंसारमण्डलम्
नित्यं समारभेद्धर्मं संसारभयपीडितः । ततस्तरति संसारं क्रमेण परिवर्त्तितः ॥७५॥
तस्माच्च सततं युक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः । तथा समारभेद्योगं यथात्मानं स पश्यति
एष आपः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः । विवृत्या ह्येष सम्भेदाद् भूतानाञ्चैव शाश्वतः
तदेनं सेतुमात्मानमग्निं वै विश्वतोमुखम् । हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत महेश्वरम् ॥
तथाऽन्तःसंस्थितं देवं स्वशक्त्यापरिमण्डितम् । अष्टधाचाष्टधाचैवतथाचाष्टविधेनच
सृष्ट्यर्थं संस्थितं वह्निं संक्षिप्य च हृदि स्थितम् ।
ध्यात्वा यथावद्देवेशं रुद्रं भुवननायकम् ॥ ८० ॥

हुत्वा पञ्चाहुतीः सम्यक् तच्चिन्तागतमानसः। वैश्वानरं हृदिस्थन्तु यथावदनुपूर्वशः
आपःपूताःसकृत्प्राश्यतूष्णींहुत्वाद्युपाविशन्।प्राणायेतिततस्तस्यप्रथमाह्याहुतिःस्मृता
अपानाय द्वितीया च व्यानायेति तथापरा। उदानाय चतुर्थीस्यात्समानायेतिपञ्चमी
स्वाहाकारैः पृथक् हुत्वा शेषंभुञ्जीतकामतः। अपःपुनःसकृत्प्राश्यआचम्यहृदयंस्पृशेत्

प्राणानां ग्रन्थिरस्याऽऽत्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः।
रुद्रो वै ह्यात्मनः प्राण एवमाप्याययेत्स्वयम्॥ ८५॥

प्राणे निविष्टो वै रुद्रस्तस्मात्प्राणमयःस्वयम्। प्राणायचैवरुद्राय जुहोत्यमृतमुत्तमम्
शिवाविशेह मामीश! स्वाहाब्रह्मात्मनेस्वयम्। एवंपञ्चाहुतीश्चैवश्राद्धेकुर्यात्शासनात
पुरुषोऽसि पुरे शेषे त्वमङ्गुष्ठप्रमाणतः। आश्रितश्चैव चाऽङ्गुष्ठमीशः परमकारणम्॥
सर्वस्य जगतश्चैव प्रभुः प्रीणातु शाश्वतः। त्वं देवानामसि ज्येष्ठा रुद्रस्त्वञ्चपुरोवृषा
मृदुस्त्वमन्नमस्मभ्यमेतदस्तु हुतं तव। इत्येवं कथितं सर्वं गुणप्राप्तिविशेषतः ॥९०॥
योगाचारः स्वयं तेन ब्रह्मणा कथितःपुरा। एवं पाशुपतं ज्ञानं ज्ञातव्यञ्च प्रयत्नतः॥
भस्मस्नायीभवेन्नित्यंभस्मलिप्तःसदाभवेत्। यःपठेच्छृणुयाद्वापिश्रावयेद्वाद्विजोत्तमान्

दैवे कर्मणि पित्र्ये वा स याति परमां गतिम्॥ ९३॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पाशुपतज्ञानप्रतिपादनं नामाऽष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

शौचाचारलक्षणम्

सूत उवाच

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिशौचाचारस्यलक्षणम्। यदनुष्ठायशुद्धात्मापरैत्यगतिमाप्नुयात्
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सर्वभूतहिताय वै। सङ्क्षेपात्सर्ववेदार्थं सञ्चयं ब्रह्मवादिनाम्॥
उदयार्थन्तु शौचानांमुनीनामुत्तमंपदम्। यस्तत्राथाप्रमत्तःस्यात् स मुनिर्नावसीदति

मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते । अवमानोऽमृतं तत्र सम्मानो विषमुच्यते॥
गुरोरपि हिते युक्तः स तु सम्वत्सरं वसेत् । नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्
प्राप्याऽनुज्ञां ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम् । अविरोधेन धर्मस्य चरेत पृथिवीमिमाम्
चक्षुः पूतञ्चरेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥

मत्स्यगृह्यस्य यत्पापं षण्मासाभ्यन्तरे भवेत् ।
एकाहं तत्समं ज्ञेयमपूतं यज्जलं भवेत् ॥ ८ ॥

अपूतोदकपाने तु जपेच्च शतपञ्चकम् । अघोरलक्षणं मन्त्रं ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥६
अथवा पूजयेच्छम्भुं घृतस्नानादिविस्तरैः । त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य शुद्ध्यतेनात्रसंशयः
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषुनगच्छेद्योगवित्क्वचित् । एवं ह्यहिंसकोयोगीभवेदितिविचारितम्
वह्नौ विधूमेत्यङ्गारे सर्वस्मिन्भुक्तवर्जने । चरेत्तु मतिमान्भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः॥
अथैनमवमन्यन्ते परे परिभवन्ति च । तथा युक्तं चरेद्भैक्ष्यं सतां धर्ममदूषयन् ॥१३ ॥
भैक्ष्यं चरेद्वनस्थेषु यायावरगृहेषु च । श्रेष्ठा तु प्रथमा ह्रीयं वृत्तिरस्योपजायते ॥
अत ऊर्ध्वं गृहस्तेषु शीलीनेषु चरेद्द्विजाः ॥ श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषुमहात्मसु
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च । भैक्ष्यचर्या हि वर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते
भैक्ष्यं यवागूस्तक्रं वा पयो यावकमेव च । फलमूलादिपक्वं वा कणपिण्याकसक्तवः
इत्येतेवैमयाप्रोक्तायोगिनांसिद्धिवर्द्धनाः । आहारास्तेषुसिद्धेषुश्रेष्ठंभैक्ष्यमितिस्मृतम्
अब्बिन्दुं यःकुशाग्रेणमासिमासिसमश्नुते । न्यायतोयश्चरेद्भैक्ष्यंपूर्वोक्तात्सविशिष्यते
जरामरणगर्भेभ्यो भीतस्य नरकादिषु । एवं दायते तस्मात्सद्भैक्ष्यमिति संस्मृतम् ॥

दधिभक्षाः पयोभक्षाः ये चाऽन्ये जीवक्षीणकाः ।
सर्वे ते भैक्ष्यभक्षस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २१ ॥

भस्मशायी भवेन्नित्यं भिक्षाचारी जितेन्द्रियः । यइच्छेत्परमं स्थानं व्रतंपाशुपतंचरेत्
योगिनाञ्चैव सर्वेषांश्रेष्ठञ्चान्द्रायणं भवेत् । एकंद्वेत्रीणिचत्वारिशक्तितोवासमाचरेत्
अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्च अलोभस्त्याग एव च । व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमात्विह
अक्रोधो गुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् । नित्यंस्वाध्यायइत्येतेनियमाःपरिकीर्त्तिताः

बीजयोनिगुणावस्तु बन्धः कर्मभिरेव च । यथाब्धिप इवाऽरण्ये मनुष्याणांविधीयते

देवैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञाज्जाप्यं ज्ञानमाहुश्च जाप्यात् ।

ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागादपेतन्तस्मिन्प्राते शाश्वतस्योपलम्भः ॥ २७ ॥

दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनञ्चभूतेष्वखिलेषु चाऽऽर्जवम् ।

अतीन्द्रियं ज्ञानमिदं तथा शिवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धबुद्धयः ॥ २८ ॥

समाहितो ब्रह्मपरो प्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः ।

समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः ॥ २९ ॥

प्राप्यतेऽभिमतान्देशानङ्कुशेन निवारितः । एतन्मार्गेण शुद्धेन दग्धबीजोह्यकल्मषः ॥

सदाचाररताः शान्ताः स्वधर्मपरिपालकाः ।

सर्वाँल्लोकान्विनिर्जित्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ ३१ ॥

पितामहेनोपदिष्टो धर्मः साक्षात्सनातनः । सर्वलोकोपकारार्थं शृणुध्वं प्रवदामि वः

गुरूपदेशयुक्तानां वृद्धानां क्रमवर्तिनाम् । अभ्युत्थानादिकं सर्वं प्रणामञ्चैव कारयेत्

अष्टाङ्गप्रणिपातेन त्रिधा न्यस्तेनसुव्रताः !। त्रिः प्रदक्षिणयोगेन वन्द्यो वैब्राह्मणोगुरुः

ज्येष्ठान्येऽपिचतेसर्वेवन्दनीयाविजानता । आज्ञाभङ्गंनकुर्वीतयदीच्छेत्सिद्धिमुत्तमाम्

धातुशून्यबिलक्षेत्रक्षुद्रमन्त्रोपजीवनम् । विषग्रहविडम्बादीन् वर्जयेत्सर्वयत्नतः ॥३६॥

कैतवं वित्तशाठ्यञ्च पैशून्यं वर्जयेत्सदा । अतिहासमवष्टम्भं लीला स्वेच्छाप्रवर्त्तनम्

वर्जयेत्सर्वयत्नेनगुरूणामपि सन्निधौ । तद्वाक्यप्रतिकूलञ्चअयुक्तं वै गुरोर्वचः ॥३८॥

नवदेत्सर्वयत्नेन अनिष्टं न स्मरेत्सदा । यतीनामासनं वस्त्रं दण्डाद्यं पादुके तथा

माल्यञ्च शयनस्थानं पात्रं छायाञ्च यत्नतः ।

यज्ञोपकरणाङ्गञ्च न स्पृश्यद्वै पदेन च ॥ ४० ॥

देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात्सर्वयत्नतः । कृत्वाप्रमादतोविप्राः ! प्रणवस्याऽयुतं जपेत्

देवद्रोहगुरुद्रोहात्कोटिमात्रेण शुध्यति । महापातकशुद्ध्यर्थं तथैव च यथाविधि ॥

पातकी च तदर्धेन शुद्ध्यते वृत्तवान्यदि । उपपातकिनः सर्वे तदर्धेनैव सुव्रताः ! ॥

सन्ध्यालोपे कृते विप्रः त्रिरावृत्त्यैव शुध्यति । आह्निकच्छेदने जाते शतमेकमुदाहृतम्

लशुने समयामान्तुभमक्षस्यचभक्षणे । मवाच्यवाचने चैव सहस्राच्छुद्धिरुच्यते ॥४५
काकोलूककपोतानां पक्षिणामपि घातने । शतमष्टोत्तरं जप्त्वामुच्यते नाऽत्रसंशयः
यःपुनस्तत्त्ववेत्ताचब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः । स्मरणाच्छुद्धिमाप्नोतिनात्रकार्याविचारणा
नैवमात्मविदामस्ति प्रायश्चित्तानिचोदना । विश्वस्यैवहितेशुद्धाब्रह्मविद्याविदोजनाः
योगध्यानैकनिष्ठाश्च निर्लेपाःकाञ्चनंयथा । शुद्धानांशोधननास्तिविशुद्धा ब्रह्मविद्यया
उद्धृतानुष्णफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा । अद्भिः समाचरेत्सर्वं वर्जयेत्कलुषोदकम्

गन्धवर्णरसैर्दुष्टमशुचिस्थानसंस्थितम् ।
पङ्काश्मदूषितञ्चैव सामुद्रं पल्वलोदकम् ॥ ५१ ॥

सशैवालंतथान्यैर्वादोषैर्दुष्टंविवर्जयेत् । वस्त्रशौचान्वितःकुर्यात्सर्वकार्याणिवैद्विजाः!
नमस्कारादिकं सर्वंगुरुशुश्रूषणादिकम् । वस्त्रशौचविहीनात्मा ह्यशुचिर्नात्र संशयः
देवकार्य्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते । इतरेषां हि वस्त्राणां शौचं कार्य्यमलागमे
वर्जयेत्सर्वयत्नेन वासोऽन्यैर्विधृतंद्विजाः !। कौशेयाविकयोरूक्षैःक्षौमाणांगौरसर्षपैः

श्रीफलैरंशुपट्टानां कुतपानामरिष्टकैः ।
चर्मणां विदलानाञ्च वेत्राणां वस्त्रवन्मतम् ॥ ५६ ॥

वल्कलानान्तु सर्वेषां छत्रचामरयोरपि । चैलवच्छौचमाख्यातं ब्रह्मविद्भिर्मुनीश्वरैः
भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यंक्षारेणाऽऽयसमुच्यते । ताम्रमम्लेन वै विप्रास्त्रपुसीसकयोरपि
हैममद्भिःशुभं पात्रं रौप्यपात्रंद्विजोत्तमाः !। मण्यश्मशंखमुक्तानांशौचंतैजसवत्स्मृतम्
अग्नेरपाञ्च संयोगाद्त्यन्तोपहतस्य च । रसानामिह सर्वेषां शुद्धिरुत्प्लवनं स्मृतम् ॥

तृणकाष्ठादिवस्तूनां शुभेनाऽभ्युक्षणं स्मृतम् ।
उष्णेन वारिणा शुद्धिस्तथा स्रुक्स्रुवयोरपि ॥ ६१ ॥

तथैव यज्ञपात्राणां मुशलोलूखलस्य च । शृङ्गास्थिदारुदन्तानां तक्षणेनैव शोधनम् ॥

संहतानां महाभागा ! द्रव्याणां प्रोक्षणं स्मृतम् ।
असंहतानां द्रव्याणां प्रत्येकं शौचमुच्यते ॥ ६३ ॥

अभुक्तराशिधान्यानां एकदेशस्य दूषणे । तावन्मात्रं समुद्धृत्यप्रोक्षयेद्वै कुशाम्भसा

शाकमूलफलादीनां धान्यवच्छुद्धिरिष्यते । मार्जनोन्मार्जनैर्वेश्म पुनः पाकेनमृण्मयम्
उल्लेखनेनाऽञ्जनेन तथा सम्मार्जनेन च । गोनिवासेन वै शुद्धा सेचनेन धरा स्मृता
भूमिस्थमुदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गौर्व्रजेत् । अव्याप्तं यदमेध्येन गन्धवर्णरसान्वितम्
वत्सः शुचिः प्रस्रवणे शकुनिः फलपातने । स्वदाराऽऽस्यं गृहस्थानां रतौ भार्याभिकाङ्क्षया

हस्ताभ्यां क्षालितं वस्त्रं कारुणा च यथाविधि ।

कुशाम्बुना सुसम्प्रोक्ष्य गृह्णीयाद् धर्मवित्तमः ॥ ६१ ॥

पण्यं प्रसारितञ्चैव वर्णाश्रमविभागशः । शुचिराकरजं तेषां श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥
छायावविप्लुषो विप्राः मक्षिकाद्याद्द्विजोत्तमाः !। रजोभूर्वायुरग्निश्चमेध्यानि स्पर्शने सदा

सुप्त्वा भुक्त्वा च वै विप्राः ! क्षुत्वा पीत्वा च वै तथा ।

ष्ठीवित्वाऽध्ययनादौ च शुचिरप्याचमेत्पुनः ॥ ७२ ॥

पादौ स्पृशन्ति ये चापि पराचमनबिन्दवः । ते पार्थिवैः समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्
कृत्वा च मैथुनं स्पृष्ट्वा पतितं कुक्कुटादिकम् । सूकरञ्चैव काकादि श्वानमुष्ट्रं खरं तथा
यूपं चाण्डालकाद्यांश्च स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति । रजस्वलां सूतिकाञ्च न स्पृशेदन्त्यजामपि
सूतिकाशौचसंयुक्तः शावाशौचसमन्वितः । संस्पृशेन्न रजस्वलां स्पृष्ट्वा स्नात्वैव शुध्यति
नैवाशौचं यतीनाञ्च वनस्थब्रह्मचारिणाम् । नैष्ठिकानां नृपाणाञ्च मण्डलीनाञ्च सुव्रताः !॥

ततः कार्यविरोधाद्धि नृपाणां नान्यथा भवेत् ।

वैखानसानां विप्राणां पतितानामसम्भवात् ॥ ७८ ॥

असञ्चयद्विजानाञ्च स्नानमात्रेण नान्यथा । तथा सन्निहितानाञ्च यज्ञार्थं दीक्षितस्य च
एकाहाद्युयज्ञयाजीनां शुद्धिरुक्ता स्वयम्भुवा । ततस्त्वधीतशाखानाञ्चतुर्भिः सर्वदेहिनाम्
सूतकं प्रेतकं नास्ति त्र्यहादूर्ध्वममुत्र वै । अर्वागेकादशाहान्तं बान्धवानां द्विजोत्तमाः !
स्नानमात्रेण वै शुद्धिर्मरणे समुपस्थिते । ततो ऋतुत्रयादर्वाक् एकाहः परिगीयते ॥
सप्तवर्षात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं हि ततः परम् । दशाहं ब्राह्मणानां वै प्रथमेऽहनि वा पितुः

दशाहं सूतिकाशौचं मातुरप्येवमव्ययाः ! ।

अर्वाक्त्रिवर्षात् स्नानेन बान्धवानां पितुः सदा ॥ ८४ ॥

अष्टाब्दादेकरात्रेण शुद्धिः स्याद् बान्धवस्य तु ।
द्वादशाब्दात्ततश्चाऽर्वाक् त्रिरात्रं स्त्रीषु सुव्रता. ! ॥ ८९ ॥

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते । अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ततः सन्निहितो विप्रश्चाऽर्वाक्पूर्वं तदेव वै । संवत्सरे व्यतीतेतुस्नानमात्रेणशुद्ध्यति स्पृष्ट्वा प्रेतं त्रिरात्रेण धर्मार्थं स्नानमुच्यते । दाहकानाञ्च नेतॄणां स्नानमात्रम बान्धवे अनुगम्यचवैस्नात्वाघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति । आचार्य्यमरणे चैव त्रिरात्रं श्रोत्रिये मृते

पक्षिणी मातुलानाञ्च सदाराणाञ्च वा द्विजाः ! ।
भूपानां मण्डलीनाञ्च सद्यो नीराष्ट्रवासिनाम् ॥ ९० ॥

केवलं द्वादशाहेन क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः !। नाभिषिक्तस्य चाशौचंसम्प्रमादेषुवै रणे वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति । इति संक्षेपतः प्रोक्ता द्रव्यशुद्धिरनुत्तमा॥ अशौचञ्चाऽनुपूर्वेण यतीनां नैव विद्यते । ततःप्रभृतिनारीणां मासिमास्यार्त्तवंद्विजाः! कृते सकृद्युगवशाज्ञायन्ते वै सहैव तु । प्रयान्ति च महाभागा भार्य्याभि.कुरवो यथा वर्णाश्रमव्यवस्था च त्रेताप्रभृति सुव्रताः !। भारते दक्षिणे वर्षे व्यवस्था नेतरेष्वथ महावीते सुवीते च जम्बुद्वीपे तथाऽप्सु । शाकद्वीपादिषु प्रोक्तोधर्मो वै भारते तथा रसोल्लासाकृते वृत्तिस्त्रेतायां गृहवृक्षजा । सैवार्त्तवकृताद्दोषाद्रागद्वेषादिभिर्नृणाम् मैथुनात्कामतो विप्रास्तथैव परुषादिभिः । यवाद्याः सम्प्रजायन्तेग्राम्यारण्याश्चतुर्दश

ओषध्यश्च रजोदोषात्स्त्रीणां रागादिभिर्नृणाम् ।
अकालकृष्टा विध्वस्ताः पुनरुत्पादितास्तथा ॥ ९१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेननसम्भाष्यारजस्वला । प्रथमेऽहनिचाण्डालीयथावर्ज्यातथाऽङ्गना द्वितीयेऽहनि विप्रा हि यथा वै ब्रह्मघातिनी । तृतीयेऽह्नि तदर्द्धेन चतुर्थेऽहनिसुव्रताः!

स्नात्वाऽर्धमासात्संशुद्धा ततः शुद्धिर्भविष्यति ।
आषोडशात्ततस्त्रीणां मूत्रवच्छौचमिष्यते ॥ १०२ ॥

पञ्चरात्रं तथास्पृश्या रजसा वर्त्तते यदि । सा विंशद्दिवसादूर्ध्वं रजसा पूर्ववत्तथा ॥ स्नानं शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा । यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतञ्चैवाऽनुलेपनम् ॥

दिवास्वप्नं विशेषेण तथा वै दन्तधावनम् । मैथुनं मानसं वापिवाचिकंदेवतार्चनम्
वर्जयेत्सर्वयत्नेन नमस्कारं रजस्वला । रजस्वलाङ्गनास्पर्शसम्भाषे च रजस्वला॥
सन्त्यागश्चैव वस्त्राणां वर्जयेत्सर्वयत्नतः । स्नात्वाऽन्यपुरुषं नारी न स्पृशेत्तु रजस्वला
ईक्षयेद्भास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत् । केवलं पञ्चगव्यं वा क्षीरं वा वाऽऽत्मशुद्धये

चतुर्थ्यां स्त्री न गम्या तु गतोऽल्पायुः प्रसूयते ।
विद्याहीनं व्रतभ्रष्टं पतितं पारदारिकम् ॥ १०६ ॥

दारिद्र्यार्णवमग्नञ्च तनयं सम्प्रसूयते । कन्यार्थिनैव गन्तव्या पञ्चम्यां विधिवत्पुनः
रक्ताधिक्याद्भवेन्नारी शुक्राधिक्येभवेत्पुमान् । समेनपुंसकञ्चैवपञ्चम्यांकन्यकाभवेत्
षष्ठ्यांगम्यामहाभागासत्पुत्रजननी भवेत् । पुत्रत्वं व्यञ्जयेत्तस्य जातपुत्रो महाद्युतिः
पुमिति नरकस्याऽऽख्या दुःखञ्च नरकं विदुः । पुंसत्राणान्वितं पुत्रं तथाभूतं प्रसूयते
सप्तम्याञ्चैव कन्यार्थी गच्छेत्सैव प्रसूयते । अष्टम्यां सर्वसम्पन्नं तनयं सम्प्रसूयते ॥

नवम्यां दारिकायार्थी दशम्यां पण्डितो भवेत् ।
एकादश्यां तथा नारीं जनयेत्सैव पूर्ववत् ॥ ११५ ॥

द्वादश्यां धर्मतत्वज्ञं श्रौतस्मार्त्तप्रवर्त्तकम् । त्रयोदश्यांजडांनारीं सर्वसङ्करकारिणीम्
जनयत्यङ्गना यस्मान्नगच्छेत्सर्वयत्नतः । चतुर्दश्यां यदा गच्छेत्सापुत्रजननी भवेत् ॥

पञ्चदश्यांञ्च धर्मिष्ठां षोडश्यां ज्ञानपारगम् ।
स्त्रीणां वै मैथुने काले वामपार्श्वे प्रभञ्जनः ॥ ११८ ॥

चरेद्यदिभवेन्नारी पुमांसं दक्षिणे लभेत् । स्त्रीणां मैथुनकाले तु पापग्रहविवर्जिते ॥
उक्तकालेशुचिर्भूत्वाशुद्धांगच्छेच्छुचिस्मिताम् । इत्येवं सम्प्रसङ्गेन यतीनां धर्मसंग्रहे
सर्वेषामेव भूतानां सदाचारः प्रकीर्तितः । यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सदाचारं शुचिर्नरः

श्रावयेद्वा यथान्यायं ब्राह्मणान्दग्धकिल्बिषान् ।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते ॥ १२२ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सदाचारकथनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

यतीनां पापशोधनप्रायश्चित्तवर्णनम्

सूत उवाच

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामियतीनामिहनिश्चितम् । प्रायश्चित्तं शिवप्रोक्तं यतीनांपापशोधनम्
पापंहित्रिविधंज्ञेयंवाङ्मनःकायसम्भवम् । सततं हि दिवारात्रौ येनेदंवेष्ट्यते जगत्
तत्कर्मणाविनाऽप्येषतिष्ठतीतिपराश्रुति. । क्षणमेकंप्रयोऽयन्तुआयुष्यन्तुविधारणम्
भवेद्योगो प्रमत्तस्य योगोऽहि परमंबलम् । नहियोगात्परं किञ्चिन्नराणांदृश्यतेशुभम्
तस्माद्योगंप्रशंसन्तिधर्मयुक्तामनीषिण' । अविद्या विद्ययाजित्वाप्राप्यैश्वर्य्यमनुत्तमम्
दृष्ट्वा परावरं धीराः परंगच्छन्ति तत्पदम् । व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च

एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तम्विधीयते ।

उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत ॥ ७ ॥

प्राणायामसमायुक्तं चरेत्सान्तपनं व्रतम् । ततश्चरति निर्देशात्कृच्छ्राऽन्तेसमाहितः
पुनराश्रममागत्य चरेद् भिक्षुरतन्द्रितः । न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः ॥१॥
तथापि न च कर्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः । अहोरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा॥
असद्वादो न कर्तव्यो यतिनाधर्मलिप्सुना । परमापद्गतेनाऽपि न कार्य्यं स्तेयमप्युत
स्तेयादभ्यधिकःकश्चिन्नास्त्यधर्मइतिश्रुतिः । हिंसाह्येषापरासृष्टास्तैन्यंवैकथितं तथा

यदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चरा' ।

स तस्य हरते प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥ १३ ॥

एवं कृत्वासुदुष्टात्माभिन्नवृत्तोव्रताच्च्युतः । भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणंव्रतम् ॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन सम्वत्सरमितिश्रुतिः । तत.संवत्सरस्याऽन्तेभूयःप्रक्षीणकल्मषः

पुनर्निर्वेदमापन्नश्चरेद् भिक्षुरतन्द्रितः ॥ १५ ॥

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा । अकामादपिहिंसेत यदिभिक्षुःपशून्कृमीन्

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ।
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥ १७ ॥

तेनधारयितव्या वै प्राणायामास्तुषोडश । दिवास्कन्नस्यविप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते
त्रिरात्रमुपवासाश्चप्राणायामशतंतथा । रात्रौस्कन्नःशुचिःस्नात्वा द्वादशैवतु धारणा
प्राणायामेनशुद्धात्माविरजाजायतेद्विजाः ! । एकान्नं मधुमांसञ्चा अश्रुतानां तथैवच
अभोज्यानियतीनान्तुप्रत्यक्षलवणानि च । एकैकातिक्रमात्तेषां प्रायश्चित्तम्विधीयते
प्राजापत्येनकृच्छ्रेण ततःपापात्प्रमुच्यते । व्यतिक्रमाश्च ये केचिद्वाङ्मनःकायसम्भवाः

सद्भिः सह विनिश्चित्य यद् ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥ २३ ॥
चरेद्विशुद्धः समलोष्ठ(ष्ट)काञ्चनः समस्तभूतेषु च सत्समाहितः ।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययन्तु परं हि गत्वा न पुनर्हि जायते ॥ २४ ॥
इति श्रीलैङ्गे यतिप्रायश्चित्तं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

योगिनांस्वलक्ष्यप्राप्तौसमागतारिष्टानांमृत्युसूचकानांनिरूपणम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानिनिबोधत । येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यन्तियोगिनः
अरुन्धतींध्रुवञ्चैवसोमच्छायांमहापथम् । योनपश्येन्नजीवेत् स नरः संवत्सरात्परम्
अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवन्तञ्चपावकम् । यःपश्यति न जीवेद्वै मासादेकादशात्परम्
वमेन्मूत्रं पुरीषञ्च सुवर्णं रजतं तथा । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति ॥४॥

रुक्मवर्णं द्रुमं पश्येद्गन्धर्वनगराणि च ।
पश्येत् प्रेतपिशाचांश्च नवमासान् स जीवति ॥ ५ ॥

अकस्माच्च भवेत्स्थूलोह्यकस्माच्चकृशो भवेत् । प्रकृतेश्चनिवर्त्तेतचाष्टौमासांश्चजीवति

अग्रतः पृष्ठतो वापि खण्डं यस्य पदं भवेत् । पांशुके कर्दमेवाऽपिसप्तमासान्स जीवति
काकःकपोतोगृध्रोवानिलीयेद्यस्यमूर्धनि । क्रव्यादोवाखगोयस्यषण्मासान्नातिवर्त्तते
गच्छेद्वायसपंक्तीभिःपांसुवर्षेणवापुनः । स्वच्छायांविकृतांपश्येच्चतुःपञ्च स जीवति

अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमास्थिताम् ।

उदके धनुरैन्द्रं वा त्रीणि द्वौ वा स जीवति ॥ १० ॥

अप्सुवायदिवादर्शेयोह्यात्मानं न पश्यति । अशिरस्कं तथा पश्यन्मासादूर्ध्वनजीवति
शवगन्धि भवेद्गात्रं वसागन्धमथापिवा । मृत्युर्ह्युपागतस्तस्य अर्धमासान्नजीवति ॥
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयंपरिशुष्यति । धूमं वा मस्तकात्पश्येद्दशाहान्न स जीवति
सम्भिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानानिकृन्तति । अद्भिःस्पृष्टोन हृष्येततस्यमृत्युरुपस्थितः
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशाञ्चदक्षिणाम् । गायन्नृत्यन्व्रजेत्स्वप्नेविद्यान्मृत्युरुपस्थितः

कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाऽप्यथाङ्गना ।

यं नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥ १६ ॥

छिद्रंवाम्बस्यकण्ठस्यस्वप्नेयोवीक्षतेनरः । नग्नंवाश्रमणंदृष्ट्वाविद्यान्मृत्युमुपस्थितम्
आमस्तकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे । दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति
भस्माङ्गारांश्चकेशांश्चनदींशुष्कांभुजङ्गमान् । पश्येद्योदशरात्रन्तु न स जीवति तादृशः
कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो नस जीवति
सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवः । क्रोशन्त्यभिमुखं प्रेत्य स गतायुर्भवेन्नरः॥
यस्य वा स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् । जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत्

भूयोभूयस्त्रसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा ।

दीपगन्धञ्च नाऽऽघ्राति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ २३ ॥

रात्रौ चेन्द्रधनुः पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम् । परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति
नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्चभ्रश्यतः । वक्रा च नासा भवतिविज्ञेयोगतजीवितः
यस्यकृष्णाखराजिह्वापद्माभासञ्चवैमुखम् । गण्डेवापिपिडकारक्तेतस्यमृत्युरुपस्थितः
मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन्नृत्यंश्च योनरः । याम्यामभिमुखंगच्छेत्तदन्तं तस्यजीवितम्

यस्य श्वेतघनाभासा श्वेतसर्षपसन्निभा । श्वेताचमूर्तिर्हंसकस्तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

उष्ट्रा वा रासभा वाऽभियुक्ताः स्वप्ने रथे शुभाः ।

यस्य सोऽपि न जीवेत्तु दक्षिणाभिमुखो गतः ॥ २६ ॥

ह्रे वाऽथ परमेऽरिष्टे एकीभूतः परं भवेत् । घोषंन शृणुयात्कर्णे ज्योतिर्नेत्रेन पश्यति
श्वभ्रे यो निपतेत्स्वप्नेद्वारञ्चापिपिधीयते । नचोत्तिष्ठतियःश्वभ्रात्तदन्तंतस्यजीवितम्

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्नच सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्त्तमाना ।

मुखस्य शोषः सुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥ ३२ ॥

दिवा वा यदिवारात्रौ प्रत्यक्षंयो निहन्यते । हन्तारं नच पश्येच्च स गतायुर्न जीवति
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः । स्मृतिनोपलभेच्चापितदन्तंतस्य जीवितम्
यस्तुप्रावरणंशुक्लं स्वकं पश्यतिमानवः । कृष्णं रक्तमपिस्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः
अरिष्टे सूचिते देहे तस्मिन्कालउपस्थिते । त्यक्त्वाखेदं विषादञ्च उपेक्षेद्बुद्धिमान्नरः

प्राचीम्वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः ।

समेति स्थावरे देशे विविक्ते जन्तुवर्जिते ॥ ३७ ॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थश्चाऽऽचान्त एव च ।

स्वस्तिकेनोपविष्टन्तु नमस्कृत्वा महेश्वरम् ॥ ३८ ॥

समकायशिरोग्रीवो धारयन्नाऽवलोकयेत् । यथादीपोनिवातस्थोनेङ्गतेसोपमास्मृता
प्रागुदक्प्रवणे देशे तथा युञ्जीतशास्त्रवित् । कामं वितर्कं प्रीतिञ्च सुखदुःखे उभे तथा
निगृह्य मनसा सर्वं शुक्लं ध्यानमनुस्मरेत् । घ्राणेच रसनेनित्यं चक्षुषी स्पर्शने तथा
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तत्र वक्षसि धारयेत् । कालकर्माणिविज्ञायसमूहेऽवेषनित्यशः
द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते । शतमर्द्धशतम्वापि धारणां मूर्ध्नि धारयेत्
स्विन्नस्य धारणायोगाद्वायुरूर्ध्वं प्रवर्त्तते । ततश्चाऽऽपूरयेद्देहमोङ्कारेण समन्वितः ॥

तथोङ्कारमयो योगी अक्षरे त्वक्षरी भवेत् ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओङ्कारप्राप्तिलक्षणम् ॥ ४५ ॥

एषत्रिमात्रोविज्ञेयो व्यञ्जनञ्चाऽत्रचेश्वरः । प्रथमा विद्युतीमात्राद्वितीयातामसीस्मृता

तृतीयांनिर्गुणाञ्चैवमात्रामक्षरगामिनीम् । गान्धारीचैवविज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा
पिपीलिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते । यथा प्रयुक्त ओङ्कारःप्रतिनिर्यातिमूर्द्धनि
तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरीत्वक्षरीभवेत् । प्रणवो धनुःशरह्यात्माब्रह्मलक्षणमुच्यते
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् । ओमित्येकाक्षरं ह्येतद्गुहायां निहितं पदम् ॥

ओमित्येतत्त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रयोऽग्नयः ।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च ॥ ५१ ॥
मात्रा चाऽर्धञ्च तिस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ।
तत्प्रयुक्तस्तु यो योगी तस्य सालोक्यमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

अकारोह्यक्षरो ज्ञेय उकारः सहितः स्मृतः । मकारसहितोङ्कारस्त्रिमात्र इति सञ्ज्ञितः
अकारस्त्वेष भूर्लोक उकारो भुव उच्यते । सव्यञ्जनो मकारस्तु स्वर्लोक इतिगीयते
ओङ्कारस्तु त्रयोलोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम् । भुवनाङ्गञ्चतत्सर्वं ब्राह्मंतत्पदमुच्यते
मात्रापादो रुद्रलोको ह्यमात्रन्तु शिवं पदम् । एवं ज्ञानविशेषेण तत्पदं समुपास्यते
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रंहि तदक्षरम् । उपास्यंहि प्रयत्नेन शाश्वतं सुखमिच्छता
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घात्वनन्तरम् । ततःप्लुतवतीचैव तृतीयाचोपदिश्यते
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः। यावदेव तु शक्यन्ते धार्य्यन्ते तावदेव हि ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिं ध्यायन्नात्मनि यः सदा ।
अर्धं तन्मात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ॥ ६० ॥

मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । तेनयत्प्राप्यतेपुण्यं मात्रयातदवाप्नुयात्
न तदा तपसोग्रेणनयज्ञैर्भूरिदक्षिणैः । यत्फलं प्राप्यतेसम्यक्(ङ्)मात्रयातदवाप्नुयात्
तत्रचैषातुयामात्राप्लुतानामोपदिश्यते । एषाएवभवेत्कार्या गृहस्थानान्तुयोगिनाम्
एषाञ्चैवविशेषेण ऐश्वर्य्ये ह्यष्टलक्षणे । अणिमाद्येतु विज्ञेया तस्माद्युञ्जीत तां द्विजाः
एवंहियोगसंयुक्तःशुचिर्दान्तोजितेन्द्रियः । आत्मानंविन्दतेयस्तुस सर्वं विन्दतेद्विजाः!

तस्मात्पाशुपतैर्योगैरात्मानं चिन्तयेद्बुधः ।
आत्मानं जानते ये तु शुचयस्ते न संशयः ॥६६ ॥

ऋचोयजूंषिसामानिवेदोपनिषदस्तथा । योगज्ञानादवाप्नोतिब्राह्मणोऽध्यात्मचिन्तकः
सर्वदेवमयोभूत्वा अभूतःसतुजायते । योनिसङ्क्रमणंत्यक्त्वा याति वै शाश्वतम्पदम्

यथा वृक्षात्फलं पक्वं पवनेन समीरितम् ।
नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति ॥ ६६ ॥

यत्र रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवः । अन्यदेवनमस्काराम्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥
तस्मात्त्रिः प्रवणं योगी उपासीतमहेश्वरम् । दशविस्तारकं ब्रह्म तथाच ब्रह्मविस्तरैः
एवंध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यःपरित्यजेत् । स यातिशिवसायुज्यंसमुद्धृत्यकुलत्रयम्
अथवाऽरिष्टमालोक्य मरणेसमुपस्थिते । अविमुक्तेश्वरं गत्वा वाराणस्यान्तुशोभनम्
येन केनाऽपिवादेहंसन्त्यजेन्मुच्यतेनरः । श्रीपर्वते वा विप्रेन्द्राः! सन्त्यजेत्स्वतनुं नरः

स याति शिवसायुज्यं नाऽत्र कार्य्या विचारणा ।
अविमुक्तं परं क्षेत्रं जन्तूनां मुक्तिदं सदा ॥ ७५ ॥
सेवेत सततं धीमान् विशेषान्मरणान्तिके ॥ ७६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अरिष्टकथनं नाम एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

अविमुक्तक्षेत्रवाराणसीमाहात्म्यवर्णने श्रीशैलमाहात्म्यप्रतिपादनम्

ऋषय ऊचुः

एवं वाराणसी पुण्यायदि सूत महामते !। वक्तुमर्हसिचाऽस्माकंतत्प्रभावंहिसाम्प्रतम्
क्षेत्रस्यास्यचमाहात्म्यमविमुक्तस्यशोभनम् । विस्तरेणयथान्यायं श्रोतुंकौतूहलंहिनः

सूत उवाच

वक्ष्ये संक्षेपतःसम्यग्वाराणस्याः सुशोभनम् ।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं यथाऽऽह भगवान् भवः ॥ ३ ॥

विस्तरेण मया चक्तुं ब्रह्मणा च महात्मना । शक्यते नैव विप्रेन्द्रा ! वर्षकोटिशतैरपि
देवःपुरा कृतोद्वाहः शङ्करो नीललोहितः । हिमवच्छिखराद्देव्या हैमवत्या गणेश्वरैः ॥
वाराणसीमनुप्राप्य दर्शयामास शङ्करः । अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं वासं तत्र चकार सः ॥
वाराणसीकुरुक्षेत्रश्रीपर्वतमहालये । तुङ्गेश्वरे च केदारे तत्स्थाने यो यतिर्भवेत् ॥७ ॥
योगे पाशुपते सम्यक्दिनमेकं यतिर्भवेत् । तस्मात्सर्वं परित्यज्य चरेत्पाशुपतं व्रतम्
देवोद्याने वसेत्तत्र शर्वोद्यानमनुत्तमम् । मनसा निर्ममे रुद्रो विमानञ्च सुशोभनम् ॥९
दर्शयामास च तदादेवोद्यानमनुत्तमम् । हैमवत्याः स्वयं देवः सनन्दी परमेश्वरः॥१०
क्षेत्रस्याऽस्यच माहात्म्यमविमुक्तस्यशङ्करः । उक्तवान्परमेशानः पार्वत्या प्रीतये भवः

प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानादिमनोहरं बहिः ।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥ १२ ॥
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिर्निकामपुष्पैर्वकुलैश्च सर्वतः ।
अशोकपुन्नागशतैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥ १३ ॥
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितैर्विहङ्गमैश्चाऽनुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसचक्रवाकैः प्रमत्तदात्यूहवरैश्च सर्वतः ॥ १४ ॥
क्वचिच्च केकारुतनादितं शुभं क्वचिच्च कारण्डवनादनादितम् ।
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतं मदाकुलाभिर्भ्रमराङ्गनादिभिः ॥ १५ ॥
निषेवितञ्चारुसुगन्धिपुष्पकैः क्वचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैः ।
लतोपगूढैस्तिलकैश्च गूढं प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणम् ॥ १६ ॥
प्रवृत्तनृत्यानुगताप्सरोगणं प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम् ।
प्रवृत्तहारीतकुलोपनादितं मृगेन्द्रनादाकुलमत्तमानसैः ॥ १७ ॥
क्वचित्क्वचिद्गन्धकदम्बकैर्मृगैर्विलूनदर्भाङ्कुरपुष्पसञ्चयम् ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैःसरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित ॥ १८ ॥
विटपनिचयलीनं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गप्राप्तनादाभिरामम् ॥
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितं प्रांशुशाखम् ॥

क्वचिद्मदन्तक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिनीभिर्निषेवितं किम्पुरुषाङ्गनाभिः ॥ २० ॥
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गैरभ्रङ्कषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकरप्रविभक्तहंसैर्विभ्राजितं त्रिदशदिव्यकुलैरनेकैः ॥ २१ ॥
फुल्लोत्पलाम्बुजवितानसहस्रयुक्तं तोयाशयैः समनुशोभितदेवमार्गम् ।
मार्गान्तराकलितपुष्पविचित्रपङ्क्तिसम्बद्धगुल्मविटपैर्विविधैरुपेतम् ॥२२॥
तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पैस्तबकभरनतप्रांशुशाखैरशोकै-
र्दोलाप्रान्तान्तनीलश्रुतिसुखजनकैर्भासितान्तं मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ॥ २३ ॥
हंसानां पक्षवातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं
तोयानां तीरजातप्रचकितकदली चाटु नृत्यन्मयूरम् ।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदवनिगतैरञ्जितक्ष्माप्रदेशं
देशे देशे विलीनप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृन्दम् ॥ २४ ॥
सारङ्गैः क्वचिदुपशोभितप्रदेशं प्रच्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः ।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नराङ्गनाभिर्वीणाभिः सुमधुरगीतनृत्यकण्ठम् ॥२५॥
संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम् ।
आमूलात्फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरुत्तुङ्गैः पनसमहीरुहैरुपेतम् ॥ २६ ॥
फुल्लातिमुक्तकलतागृहलीनसिद्धसिद्धाङ्गना कनकनूपुररावरम्यम् ।
रम्यं प्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं भृङ्गावलीकवलिताम्रकदम्बपुष्पम् ॥ २७ ॥
पुष्पोत्करानिलविघूर्णितवारिरम्यं रम्यद्विरेफविनिपातितमञ्जुगुल्मम् ।
गुल्मान्तरप्रसभभीतमृगीसमूहं वातेरितं तनुभृतामपवर्गदातृ ॥ २८ ॥
चन्द्रांशुजालशबलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
चामीकरद्युतिसमैरथ कर्णिकारैः पुष्पोत्करैरुपचितं सुविशालशाखैः ॥२९

क्वचिदञ्जनचूर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः । क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ॥

पुन्नागेषु द्विजशतविरुतं रक्ताशोकस्तबकभरनतम् ।
रम्यापान्तद्रुमहरभवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम् ॥ ३१ ॥
सकलभुवनभर्त्ता लोकनाथस्तदानीं तुहिनशिखरपुत्र्या सार्धमिष्टैर्गणेशैः ।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्टैरुपवनमतिरम्यं दर्शयामास देव्याः ॥३२
पुष्पैर्वन्यैः शुभशुभतमैः कल्पितैर्दिव्यभूषै-
र्देवीं दिव्यामुपवनगतां भूषयामास शर्वः ।
सा चाप्येनन्तुहिनगिरिसुता शङ्करं देवदेवं
पुष्पैर्दिव्यैः शुभतरतमैर्भूषयामास भक्त्या ॥ ३३ ॥
सम्पूज्य पूज्यं त्रिदशेश्वराणां सम्प्रेक्ष्य चोद्यानमतीव रम्यम् ।
गणेश्वरैर्नन्दिमुखैश्च सार्धमुवाच देवं प्रणिपत्य देवी ॥ ३४ ॥

श्रीदेव्युवाच

उद्यानं दर्शितं देव ! प्रभया परया युतम् । क्षेत्रस्य च गुणान्सर्वान्पुनर्मे वक्तुमर्हसि ॥
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य सर्वथा । वक्तुमर्हसि देवेश ! देवदेव वृषध्वज !

सूत उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वरप्रभुः । आघ्रायवदनाम्भोजं तदाह गिरिजां हसन्

श्रीभगवानुवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम । सर्वेषामेव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥
अस्मिन्सिद्धाः सदा देवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ३६ ॥

अभ्यस्यन्तिपरंयोगंयुक्तात्मानोजितेन्द्रियाः । नानावृक्षसमाकीर्णेनानाविहगशोभिते
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते । अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे
रोचते मे सदा वासो येनकार्य्येणतच्छृणु । मन्मना मम भक्तश्चमयिनित्यार्पितक्रियः
यथा मोक्षमवाप्नोति अन्यत्रनतथाक्वचित् । कामंह्यत्रमृतोदेवि ! जन्तुर्मोक्षायकल्पते

एतन्ममपुरं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतमं महत् । ब्रह्मादयो विजानन्ति ये च सिद्धा मुमुक्षवः
अतः परमिदं क्षेत्रं परा चेयं गतिर्मम । विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन
मम क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम् । नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे
स्नानात्संसेवनाद्वाऽपि न मोक्षः प्राप्यते यतः ।
इह सम्प्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते ॥ ४७ ॥
प्रयागेवाभवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् । प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादविमुक्तमिदंशुभम्
धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषच्छमः । क्षेत्रतीर्थोपनिषदं न विदुर्बुधसत्तमाः ॥
कामं भुञ्जन्स्वपन्क्रीडन्कुर्वन्हि विविधाः क्रियाः ।
अविमुक्ते त्यजेत्प्राणाञ्जन्तुर्मोक्षाय कल्पते ॥ ५० ॥
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरंनृणाम् । न तु शक्रसहस्रत्वंस्वर्गेकाशीपुरींविना
तस्मात्संसेवनीयं हि अविमुक्तं हि मुक्तये । जैगीषव्यः परां सिद्धिं गतोयत्रमहातपा
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावितः ।
जैगीषव्यगुहा श्रेष्ठा योगीनां स्थानमिष्यते ॥ ५३ ॥
ध्यायन्तस्तत्र मां नित्यंयोगाग्निर्दीप्यतेभृशम् । कैवल्यंपरमंयान्तिदेवानामपिदुर्लभम्
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिःसर्वसिद्धान्तवेदिभिः । इहसम्प्राप्यतेमोक्षोदुर्लभोऽन्यत्रकर्हिचित्
तेभ्यश्चाऽहंप्रवक्ष्यामि योगैश्वर्यमनुत्तमम् । आत्मनश्चैवसायुज्यमीप्सितंस्थानमेवच
कुबेरोऽत्र मम क्षेत्रे मयि सर्वार्पितक्रियः । क्षेत्रसंसेवनादेव गणेशत्वमवाप ह ॥५७॥
सम्वर्त्तो भविता यश्चसोऽपिभक्तोममैवतु । इहैवाराध्यमांदेवि!सिद्धियास्यत्यनुत्तमाम्
पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः । ममभक्तो भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्त्तकः
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन्मुनिपुङ्गवः ।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वाऽपि दिवाकरः ॥ ६० ॥
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः । उपासतेमहात्मानःसर्वेमामिहसुव्रते !
अन्येपियोगिनोदिव्याश्छन्नरूपामहात्मनः (?)। अनन्यमनसोभूत्वामामिहोपासतेसदा
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः । इह क्षेत्रे मृतः सोऽपिसंसारे न पुनर्भवेत्

येपुनर्निर्ममाधीराःसत्वस्थाविजितेन्द्रियाः । व्रतिनश्चनिरारम्भाःसर्वेतेमयिभाविताः
देवदेवं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः । गता इहपरं मोक्षं प्रसादान्ममसुव्रते !॥६५
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्र योगीसमाप्नुयात् । तमिहैव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते !॥
गोप्रेक्षकमिदं क्षेत्रं ब्रह्मणा स्थापितं पुरा । कैलासभवनश्चाऽत्र पश्य दिव्यं वरानने!
गोप्रेक्षकमथागम्य दृष्ट्वा मामत्र मानवः । न दुर्गतिमवाप्नोति कल्मषैश्च विमुच्यते ॥
कपिलाह्रदमित्येवं तथा वै ब्रह्मणा कृतम् । गवां स्तन्यजतोयेन तीर्थं पुण्यतमं महत्

अत्राऽपि स्वयमेवाऽहं वृषध्वज इति स्मृतः ।

सान्निध्यं कृतवान्देवि ! सदाऽहं दृश्यते त्वया ॥ ७० ॥

भद्रतोयश्च पश्येह ब्रह्मणा च कृतं ह्रदम् । सर्वैर्देवैरहं देवि ! अस्मिन्देशे प्रसादितः ॥
गच्छोपशममीशेतिउपशान्तःशिवस्तथा । अत्राऽहंब्रह्मणाऽऽनीय स्थापित.परमेष्ठिना

ब्रह्मणा चाऽपि संगृह्य विष्णुना स्थापितः पुनः ।

ब्रह्मणाऽपि ततो विष्णुः प्रोक्तः सम्विग्नचेतसा ॥ ७३ ॥

मयाऽऽनीतमिदंलिङ्गंकस्मात्स्थापितवानसि । तमुवाचपुनर्विष्णुर्ब्रह्माणंकुपिताननम्
रुद्रे देवे ममाऽत्यन्तं पराभक्तिर्महत्तरा । मयैव स्थापितं लिङ्गं तव नाम्ना भविष्यति
हिरण्यगर्भ इत्येवं ततोऽत्राहं समास्थितः । दृष्ट्वैनमपि देवेशं मम लोकं व्रजेन्नरः ॥
ततः पुनरपि ब्रह्मा ममलिङ्गमिदं शुभम् । स्थापयामास विधिवद्भक्त्या परमया युतः
स्वर्लीनेश्वर इत्येवमत्राऽहं स्वयमागतः । प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न पुनर्जायतेक्वचित्
अनन्यासागतिस्तस्ययोगिनाञ्चैव या स्मृता । अस्मिन्नपिमयादेशेदैत्योदैवतकण्टकः
व्याघ्ररूपंसमास्थायनिहतोदर्पितो बली । व्याघ्रेश्वरइतिख्यातोनित्यमत्राऽहमास्थितः
न पुनर्दुर्गतियाति दृष्ट्वैनंव्याघ्रमीश्वरम् । उत्पलो विदलश्चैवयौदैत्यौ ब्रह्मणा पुरा ॥
स्त्रीवध्यौदर्पितौ दृष्ट्वा त्वयैव निहतौ रणे । सावज्ञं कन्दुकेनाऽत्र तस्येदंदेहमास्थितम्
आदावत्राऽहमागम्यप्रस्थितो गणपैः सह । ज्येष्ठस्थानमिदं तस्मादेतन्मे पुण्यदर्शनम्
देवैः समन्तादेतानि लिङ्गानिस्थापितान्यतः । दृष्ट्वाऽपिनियतोमर्त्योदेहभेदेगणोभवेत्
पितामहे शैलराजेनपुरा हिमवता स्वयम् । ममप्रियहितं स्थानं ज्ञात्वालिङ्गंप्रतिष्ठितम्

शैलेश्वरमिति ख्यातंदृश्यतामिह चाऽऽदरात् । दृष्ट्वैतन्मनुजोदेवि! न दुर्गतिमतो व्रजेत्
नद्येषा वरुणा देवि ! पुण्यापापप्रमोचनी । क्षेत्रमेतदलङ्कृत्य जाह्नव्या सह सङ्गता ॥
स्थापितं ब्रह्मणा चाऽपिसङ्गमेलिङ्गमुत्तमम् । सङ्गमेश्वरमित्येवख्यातंजगतिदृश्यताम्
सङ्गमे देवनद्या हि यः स्नात्वामनुजः शुचिः । अर्चयेत्सङ्गमेशानं तस्यजन्मभयंकुतः ?

इदं मन्ये महाक्षेत्रं निवासो योगिनां परम् ।

क्षेत्रमध्ये च यत्राऽहं स्वयं भूत्वाऽग्रमास्थितः ॥ ६० ॥

मध्यमेश्वरमित्येवं ख्यातः सर्वसुरासुरैः । सिद्धानां स्थानमेतद्धिमदीयव्रतधारिणाम्
योगिनां मोक्षलिप्सूनां ज्ञानयोगरतात्मनाम् । दृष्ट्वैनं मध्यमेशानंजन्म प्रतिन शोचति
स्थापितं लिङ्गमेतत्तु शुक्रेण भृगुसूनुना । नाम्ना शुक्रेश्वरं नाम सर्वसिद्धामरार्चितम्
दृष्ट्वैनं नियत सद्यो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः । मृतश्च न पुनर्जन्तुः संसारे तु भवेन्नरः
पुरा जम्बूकरूपेण असुरो देवकण्टकः । ब्रह्मणो हि वरं लब्ध्वा गोमायुर्बन्धशङ्कितः
निहतो हिमवत्पुत्रि ! जम्बूकेशस्ततोह्ययम् । अद्यापिजगतिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम्
दृष्ट्वैनमपि देवेशं सर्वान्कमानवाप्नुयात् । ग्रहैः शुक्रपुरोगैश्च एतानि स्थापितानि वै
पश्य पुण्यानि लिङ्गानिसर्वकामप्रदानितु । एवमेतानिपुण्यानि मन्निवासानि पार्वति
कथितानिममक्षेत्रेगुह्यञ्चाऽन्यदिदं शृणु । चतुः क्रोशश्चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ॥
योजनं विद्धिचार्वङ्गि!मृत्युकालेऽमृतप्रदम् । महालयगिरिस्थंमांकेदारेचव्यवस्थितम्
गणत्वं लभते दृष्ट्वा ह्यस्मिन्मोक्षोह्यवाप्यते । गाणपत्यंलभेद्यस्माद्यतःसामुक्तिरुत्तमा
ततो महालयात्तस्मात्केदारान्मध्यमादपि । स्मृतं पुण्यतमं क्षेत्रमविमुक्तं वरानने!
केदारंमध्यमंक्षेत्रं स्थानञ्चैव महालयम् । मम पुण्यानि भूर्लोके तेभ्यः श्रेष्ठतमं त्विदम्

यतः सृष्टास्त्विमे लोकास्ततः क्षेत्रमिदं शुभम् ।

कदाचिन्न मया मुक्तमविमुक्तं ततोऽभवत् ॥ १०४ ॥

अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं मम दृष्ट्वेह मानवः । सद्यः पापविनिर्मुक्तः पशुपाशैर्विमुच्यते॥१०५
शैलेशं सङ्गमेशञ्च स्वर्लीनं मध्यमेश्वरम् । हिरण्यगर्भमीशानं गोप्रेक्षं वृषभध्वजम् ॥
उपशान्तं शिवञ्चैव ज्येष्ठस्थाननिवासिनम् । शुक्रेश्वरञ्चविख्यातंव्याघ्रेशंजम्बुकेश्वरम्

दृष्ट्वा न जायते मर्त्यः संसारे दुःखसागरे ।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा महादेवो दिशः सर्वा व्यलोकयत् ॥ १०८ ॥

विलोक्य संस्थिते पश्चाद्देवदेवे महेश्वरे । अकस्मादभवत्सर्वः सदेशोज्ज्वलितो यथा॥
ततः पाशुपताः सिद्धा भस्माभ्यङ्गसितप्रभाः । माहेश्वरामहात्मानस्तथावै नियतव्रताः
बहवः शतशोऽभ्येत्य नमश्चक्रुर्महेश्वरम् । पुनर्निरीक्ष्य योगेशं ध्यानयोगश्च कृत्स्नशः॥
तस्थुरात्मानमास्थाय लीयमाना इवेश्वरे । स्थितानां स तदा तेषां देवदेव उमापतिः
स बिभ्रत्परमां मूर्ति बभूव पुरुषः प्रभुः । कृत्स्नं जगदिहैकस्थं कर्तुमन्त इव स्थितः
तस्य तां परमां मूर्त्तिमास्थितस्य जगत्प्रभोः । न शशाकपुनर्द्रष्टुं हृष्टरोमागिरीन्द्रजा
ततस्त्वदृष्टमाकारं बुध्वा सा प्रकृतिस्थितम् । प्रकृतेर्मूर्त्तिमास्थाय योगेन परमेश्वरी॥
तं शशाक पुनर्द्रष्टं हरस्य च महात्मनः । ततस्ते लयमाधाय योगिनः पुरुषस्य तु ॥
विविशुर्हृदयं सर्वे दग्धसंसारबीजिनः । पञ्चाक्षरस्य वै बीजं संस्मरन्तः सुशोभनम्
सर्वपापहरं दिव्यं पुरा चैव प्रकाशितम् । नीललोहितमूर्त्तिस्थं पुनश्चक्रे वपुः शुभम्
तं दृष्ट्वा शैलजा प्राह हृष्टसर्वतनूरुहा । स्तुवती चरणौ नत्वा क इमे भगवन्निति ॥

तामुवाच सुरश्रेष्ठस्तदा देवी गिरीन्द्रजाम् ।

श्रीभगवानुवाच

मदीयं व्रतमाश्रित्य भक्तिमद्भिर्द्विजोत्तमैः ॥ १२० ॥

यैर्यैर्योगा इहाभ्यस्तास्तेषामेकेनजन्मना । क्षेत्रस्याऽस्यप्रभावेणभक्तयाचममभामिनि!
अनुग्रहो मया ह्येवं क्रियते मूर्त्तितः स्वयम् । तस्मादेतन्महत्क्षेत्रं ब्रह्माद्यैः सेवितं तथा
श्रुतिमद्भिश्च विप्रेन्द्रैः संसिद्धैश्च तपस्विभिः । प्रतिमासंतथाष्टम्यांप्रतिमासंचतुर्दशीम्
उभयोः पक्षयोर्देवि ! वाराणस्यामुपास्यते । शशिभानूपरागेचकार्त्तिक्याञ्चविशेषतः
सर्वपर्वसु पुण्येषु विषुवेष्वयनेषु च । पृथिव्यां सर्वतीर्थानि वाराणस्यान्तु जाह्नवीम्

उत्तरप्रवहां पुण्यां मम मौलिविनिःसृताम् ।

पितुस्ते गिरिराजस्य शुभां हिमवतः सुताम् ॥ १२६ ॥

पुण्यस्थानस्थितांपुण्यांपुण्यदिक्प्रवहांसदा । भजन्तेसर्वतोऽभ्येत्ययेताञ्छृणुवरानने
सन्निहत्य कुरुक्षेत्रं सार्धं तीर्थशतैस्तथा । पुष्करं निमिषञ्चैव प्रयागञ्च पृथूदकम् ॥
द्रुमक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं नैमिषं तीर्थसंयुतम् । क्षेत्राणि सर्वतो देवि ! देवता ऋषयस्तथा ॥
सन्ध्या च ऋतवश्चैव सर्वा नद्यःसरांसिच । समुद्राःसप्तचैवाऽत्रदेवतीर्थानि कृत्स्नशः
भागीरथीं समेष्यन्ति सर्वपर्वसु सुव्रते !! अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा चैव त्रिविष्टपम् ॥
कालभैरवमासाद्य धूतपापानि सर्वशः । भवन्ति हि सुरेशानि ! सर्वपर्वसु पर्वसु ॥

पृथिव्यां यानि पुण्यानि महत्यायतनानि च ।
प्रविशन्ति सदाऽभ्येत्य पुण्यं पर्वसु पर्वसु ॥ १३३ ॥

अविमुक्तं क्षेत्रवरं महापापनिवर्हणम् । केदारे चैव यल्लिङ्गं यच्च लिङ्गं महालये॥१३४॥
मध्यमेश्वरसञ्ज्ञञ्च तथा पाशुपतेश्वरम् । शङ्कुकर्णेश्वरञ्चैव गोकर्णावपि तथाह्युभौ ॥
द्रुमचण्डेश्वरं नाम भद्रेश्वरमनुत्तमम् । स्थानेश्वरं तथैकाम्रं कालेश्वरमजेश्वरम् ॥१३६
भैरवेश्वरमीशानं तथोङ्कारकसञ्ज्ञितम् । अमरेशं महाकालं ज्योतिषं भस्मगात्रकम् ॥

यानि चाऽन्यानि पुण्यानि स्थानानि मम भूतले ।
अष्टषष्टिसमाख्यानि रुद्रान्यन्यानि कृत्स्नशः ॥ १३८ ॥

तानि सर्वाण्यशेषाणि वाराणस्यांविशन्तिमाम् । सर्वपर्वसुपुण्येषु गुह्यञ्चैतदुदाहृतम्
तेनेह लभते जन्तुर्मृतो दिव्यामृतं पदम् । स्नातस्य चैव गङ्गायां दृष्टेन च मया शुभे!
सर्वयज्ञफलैस्तुल्यमिष्टैः शतसहस्रशः । सद्य एव समाप्नोति किं ततः परमाद्भुतम् ॥
सर्वायतनमुख्यानि देवि ! भूमौ गिरिष्वपि । परात्परतरं देवि!बुध्यस्वेतिमयोदितम्
अविशब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः । तेन मुक्तं मया जुष्टमविमुक्तमतोच्यते ॥
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रः सर्वलोकमहेश्वरः । सुदृष्टं कुरु देवेशि! अविमुक्तं गृहं मम ॥

इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तया सार्द्धमुमापतिः ।
दर्शयामास भगवान् श्रीपर्वतमनुत्तमम् ॥ १४५ ॥

अविमुक्तेश्वरे नित्यमवसच्च सदा तथा । सर्वगत्वाच्च सर्वत्वात्सर्वात्मा सदसन्मयः
श्रीपर्वतमनुप्राप्य देव्या देवेश्वरो हरः । क्षेत्राणि दर्शयामास सर्वभूतपतिर्भवः ॥१४७

कुण्डीप्रभश्च परमं दिव्यं वै श्रवणेश्वरम् । आशालिङ्गञ्च देवेशं दिव्यं यत्र बलेश्वरम्
रामेश्वरञ्च परमं विष्णुना यत प्रतिष्ठितम् । दक्षिणद्वारपार्श्वे तु कुण्डलेश्वरमोश्वरम्
पूर्वद्वारसमीपस्थं त्रिपुरान्तकमुत्तमम् । विवृद्धं गिरिणा सार्द्धं देवदेवनमस्कृतम् ॥
मध्यमेश्वरमित्युक्तं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । अमरेश्वरञ्च वरदं देवैः पूर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
गोचर्मेश्वरमीशानं तथेन्द्रेश्वरमद्भुतम् । कर्मेश्वरञ्च विपुलं कार्यार्थं ब्रह्मणा कृतम् ॥
श्रीमत्सिद्धवटञ्चैव सदावासो ममाऽव्यये । अजेन निर्मितं दिव्यंसाक्षादजबिलंशुभम्
तत्रैव पादुके दिव्ये मदीये च बिलेश्वरे । तत्र शृङ्गाटकाकारं शृङ्गाटाचलमध्यमे ॥

शृङ्गाटकेश्वरं नाम श्रीदेव्या तु प्रतिष्ठितम् ।
मल्लिकार्जुनकञ्चैव मम वासमिदं शुभम् ॥ १५५ ॥

रजेश्वरञ्च पर्य्याये रजसा सुप्रतिष्ठितम् । गजेश्वरञ्च वै शार्वं कपोतेश्वरमव्ययम् ॥
कोटीश्वरं महातीर्थं रुद्रकोटिगणैः पुरा । सेवितं देवि!पश्याऽद्य सर्वस्मादधिकंशुभम्
त्रिदेवकुलसञ्ज्ञञ्च ब्रह्मणा दक्षिणे शुभम् । उत्तरे स्थापितञ्चैव विष्णुना चैव शैलजम्
महाप्रमाणलिङ्गञ्च मया पूर्वं प्रतिष्ठितम् । पश्चिमे पर्वते पश्य ब्रह्मेश्वरमलेश्वरम् ॥
अलङ्कृतंत्वयाब्रह्मन् पुरस्तान्मुनिभिःसह । इत्युक्त्वातद्गृहेतिष्ठदलंगृहमिति स्मृतम्
तत्रापि तीर्थं तीर्थज्ञे! व्योमलिङ्गञ्च पश्य मे । कदम्बेश्वरमेतद्धि स्कन्देनैव प्रतिष्ठितम्
गोमण्डलेश्वरञ्चैव नन्दाद्यैः सुप्रतिष्ठितम् । देवैः सर्वैस्तु शक्राद्यैः स्थापितानिवरानने
श्रीमद्देवहदप्रान्ते स्थानानीमानि पश्य मे । तथा हारपुरे देवि ! तव हारे निपातिते॥
त्वया हिताय जगतां हारकुण्डमिदं कृतम् । शिवरुद्रपुरे चैव तत्कायोपरि सुव्रते ! ॥
तत्र पित्रा सुशीलेन स्थापितं त्वचलेश्वरम् । अलङ्कृतंमया ब्रह्म पुरस्तान्मुनिभिःसह

चण्डिकेश्वरकं देवि ! चण्डिकेशा तवाऽऽत्मजा ।
चण्डिकानिर्मितं स्थानमम्बिकातीर्थमुत्तमम् ॥ १६६ ॥

रुचिकेश्वरकञ्चैव धारेषा कपिला शुभा । एतेषु देवि! स्थानेषु तीर्थेषु विविधेषु च ॥
पूजयेन्मां सदाभक्त्या मयासार्धं स मोदते । श्रीशैलेसन्त्यजेद्देहंब्राह्मणोदग्धकिल्बिषः
मुच्यते नाऽत्र सन्देहो ह्यविमुक्ते यथा शुभम् । महास्नानञ्चयःकुर्याद्घृतेनविधिनैव तु

स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते !। स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः ॥
पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्त्तितम् । स्नाप्य लिङ्गं मदीयन्तु गव्येनैव घृतेन च
विशोध्य सर्वद्रव्यैस्तु वारिभिरभिषिञ्चति । सम्मार्जा शतयज्ञानां स्नानेन प्रयुतं तथा

पूजया शतसाहस्रमनन्तं गीतवादिनाम् ।
महास्नाने प्रसक्ते तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम् ॥ १७३ ॥

जलेन केवलेनैव गन्धतोयेन भक्तितः । अनुलेपनन्तु तत्सर्वं पञ्चविंशत्पलेन वै॥१७४॥
शमीपुष्पञ्च विधिनाबिल्वपत्रञ्चपङ्कजम् । अन्यान्यपिचपुष्पाणिबिल्वपत्रंनसन्त्यजेत्

चतुर्द्रोणैर्महादेवमष्टद्रोणैरथाऽपि वा ।
दशद्रोणैस्तु नैवेद्यमष्टद्रोणैरथाऽपि वा ॥ १७६ ॥

शतद्रोणसमं पुण्यमाढकेऽपि विधीयते । वित्तहीनस्य विप्रस्य नात्रकार्य्याविचारणा
भेरीमृदङ्गमुरजतिमिरापटहादिभिः । वादित्रैर्विविधैश्चाऽन्यैर्विनादैर्विविधैरपि॥१७८॥
जागरंकारयेद्यस्तु प्रार्थयेच्चयथाक्रमम् । सभृत्यपुत्रदारैश्चतथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥

सार्धं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेल्लिङ्गमुत्तमम् ।
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं सुरेश्वर ! ॥ १८० ॥

कृतम्वा नकृतम्वापि हन्तुमर्हसि शङ्कर !। इत्युक्त्वा वै जपेद् रुद्रं त्वरितं शान्तिमेवच
जपित्वैवं महाबीजं तथा पञ्चाक्षरस्य वै । स एवं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥
तत्फलं समवाप्नोति वाराणस्यां यथा मृतः । तथैव मम सायुज्यंलभतेनाऽत्रसंशयः

मत्प्रियार्थमिदं कार्य्यं भक्तैर्विधिपूर्वकम् ।
ये न कुर्वन्ति ते भक्ता न भवन्ति न संशयः ॥ १८४ ॥

सूत उवाच

निशम्य वचनं देवी गत्वा वाराणसीं पुरीम् । अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं पयसा चघृतेनच
अर्चयामासदेवेशं रुद्रं भुवननायकम् । अविमुक्ते च तपसा मन्दरस्यमहात्मनः॥१८६
कल्पयामास वै क्षेत्रं मन्दरे चारुकन्दरे । तत्राऽन्धकं महादैत्यं हिरण्याक्षसुतं प्रभुः॥
अनुगृह्य गणत्वञ्च प्रापयामास लीलया । एतद्वःकथितं सर्वं कथासर्वस्वमादरात् ॥

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपिक्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । सर्वक्षेत्रेषुयत्पुण्यं तत्सर्वंसहसालभेत्
श्रावयेद्वाद्विजान्सर्वान्कृतशौचान्जि(त्रि)तेन्द्रियान् ।
स एव सर्वयज्ञस्य फलं प्राप्नोतिः मानवः ॥ १६० ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्यकथनं नाम
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अन्धकरक्षःकृते गाणपत्यप्रदानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

अन्धकोनाम दैत्येन्द्रो मन्दरे चारुकन्दरे । दमितस्तु कथं लेभे गाणपत्यं महेश्वरात्
वक्तुमर्हसि चाऽस्माकं यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।

सूत उवाच

अन्धकानुग्रहश्चैव मन्दरे शोषणं तथा ॥ २ ॥
वरलाभमशेषञ्च प्रवदामि समासतः । हिरण्याक्षस्य तनयो हिरण्यनयनोपमः ॥ ३॥
पुरान्धक इति ख्यातस्तपसा लब्धविक्रमः । प्रसादाद्ब्रह्मणःसाक्षादवध्यत्वमवाप्यच
त्रैलोक्यमखिलं भुक्त्वाजित्वाचेन्द्रपुरंपुरा । लीलयाचाऽप्रयत्नेनत्रासयामासवासवम्
बाधितास्ताडिता बद्धा पातितास्तेनतेसुराः । विविशुर्मन्दरंभीतानारायणपुरोगमाः
एवं सम्पीड्य वै देवानन्धकोऽपि महासुरः । यदृच्छया गिरिंप्राप्तोमन्दरञ्चारुकन्दरम्
ततस्ते समस्ताः सुरेन्द्राः ससाध्याः सुरेशं महेशं पुरेत्याहुरेवम् ।
द्रुतश्चाल्पवीर्य्यप्रभिन्नाङ्गभिन्ना वयं दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृत्ताः ॥ ८ ॥
इतीदमखिलं श्रुत्वा दैत्यागममनौपमम् । गणेश्वरैश्च भगवानन्धकाभिमुखं ययौ ॥
तत्रेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे ।

जयेति वाचा भगवन्तमूचुः किरीटबद्धाञ्जलयः समन्तात् ॥ १० ॥
अथाशेषसुरांस्तस्य कोटिकोटिशतैस्ततः । भस्मीकृत्यमहादेवोनिर्बिभेदाऽन्धकन्तदा
शूलेन शूलिना प्रोतन्दग्धकल्मषकञ्चुकम् । दृष्ट्वाऽन्धकं ननादेशं प्रणम्य सपितामहः
तन्नादश्रवणान्नेदुर्देवा देवं प्रणम्य तम् । ननृतुर्मुनयः सर्वे मुमुदुर्गणपुङ्गवाः ॥ १३ ॥
ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवाः शम्भोस्तदोपरि । त्रैलोक्यमखिलं हर्षान्ननन्द च ननाद च

दग्धोऽग्निना च शूलेन प्रोतः प्रेत इवाऽन्धकः ।
सात्विकं भावमास्थाय चिन्तयामास चेतसा ॥ १५ ॥

जन्मान्तरेऽपिदेवेनदग्धोयस्माच्छिवेनवै । आराधितोमयाशम्भुः पुरासाक्षान्महेश्वरः
तस्मादेतन्मया लब्धमन्यथा नोपपद्यते । यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणान्तेसकृदेव वा ॥
स याति शिवसायुज्यंकिं पुनर्बहुशःस्मरन् । ब्रह्माचभगवान्विष्णुसर्वेदेवाःसवासवाः
शरणंप्राप्यतिष्ठन्तितमेवशरणंव्रजेत् । एवंसञ्चिन्त्यतुष्टात्मासोऽन्धकश्चान्धकार्दनम्
सगणं शिवमीशानमस्तुवत्पुण्यगौरवात् । प्रार्थितस्तेन भगवान्परमार्त्तिहरो हरः ॥
हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वरः । प्रोवाच दानवं प्रेक्ष्य घृणया नीललोहितः ॥
तुष्टोऽस्मिवत्स! भद्रन्तेकामंकिंकरवाणिते । वरान्वरयदैत्येन्द्र! वरदोऽहन्तवाऽन्धक!

श्रुत्वा वाक्यं तदा शम्भोर्हिरण्यनयनात्मजः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाचेदं महेश्वरम् ॥ २३ ॥

भगवन्देवदेवेश ! भक्तार्तिहर ! शङ्कर !। त्वयि भक्तिः प्रसीदेश यदि देयो वरश्च मे ॥
श्रुत्वा भवोऽपि वचनं अन्धकस्य महात्मनः । प्रददौदुर्लभांशुद्धांदैत्येन्द्रायमहाद्युतिः
गाणपत्यं च दैत्यायप्रददौ चाऽवरोप्यतम् । प्रणेमुस्तंसुरेन्द्राद्यागाणपत्ये प्रतिष्ठितम्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अन्धकगाणपत्यात्मको नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

वराहेण हिरण्याक्षद्वारासागरनिमज्जितायाःपृथिव्याःसमुद्धारणम्

ऋषय ऊचुः

कथमस्य पितादैत्योहिरण्याक्षःसुदारुणः । विष्णुनासूदितोविष्णुर्वाराहत्वंकथंगतः
तस्य शृङ्गं महेशस्य भूषणत्वं कथं गतम् । एतत्सर्वं विशेषेण सूत ! वक्तुमिहाऽर्हसि

सूत उवाच

हिरण्यकशिपोर्भ्राताहिरण्याक्षइतिस्मृतः । पुराऽन्धकासुरेशस्यपिताकालान्तकोपमः

देवाञ्जित्वाऽथ दैत्येन्द्रो बध्वा च धरणीमिमाम् ।
नीत्वा रसातलञ्चक्रे बन्दीमिन्दीवरप्रभाम् ॥ ४ ॥

ततः सब्रह्मका देवाःपरिम्लानमुखश्रियः । बाधितास्ताडिता बध्वा हिरण्याक्षेणतेनवै
बलिना दैत्यमुख्येन क्रूरेणसुदुरात्मना । प्रणम्य शिरसा विष्णुं दैत्यकोटिविमर्दनम्
सर्वे विज्ञापयामासुर्धरणीबन्धनं हरेः । श्रुत्वैतद्भगवान्विष्णुर्धरणीबन्धनं हरिः ॥
भूत्वायज्ञवराहोऽसौ यथा लिङ्गोद्भवेतथा । दैत्यैश्चसार्धन्दैत्येन्द्रंहिरण्याक्षंमहाबलम्
दंष्ट्राग्रकोट्या हत्वैनं रेजे दैत्यान्तकृत्प्रभुः । कल्पादिषु यथापूर्वं प्रविश्य च रसातलम्
आनीय वसुधां देवीमङ्कस्थामकरोद्विभुः । ततस्तुष्टाव देवेशं देवदेवः पितामहः ॥
शक्राद्यैः सहितो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा । शाश्वताय वराहाय दंष्ट्रिणे दण्डिने नमः
नारायणाय सर्वाय ब्रह्मणे परमात्मने । कर्त्रे धर्त्रे धरायास्तु हर्त्रे देवारिणां स्वयम्

कर्त्रे नेत्रे सुरेन्द्राणां शास्त्रे च सकलस्य च ॥ १२ ॥
त्वमष्टमूर्त्तिस्त्वमनन्तमूर्त्तिस्त्वमादिदेवस्त्वमनन्तवेदितः ।
त्वया कृतं सर्वमिदं प्रसीद सुरेश ! लोकेश ! वराह ! विष्णो ! ॥ १३ ॥
तथैकदंष्ट्राग्रमुखाग्रकोटिभागैकभागार्द्धतमेन विष्णो ! ।
हताः क्षणात्कामददैत्यमुख्याः स्वदंष्ट्रकोट्या सह पुत्रभृत्यैः ॥ १४ ॥

त्वयोद्धृता देव ! धरा धरेश ! धरा धराकार ! धृताग्रदंष्ट्रे ।
धराधरैः सर्वजनैः समुद्रैः सुरासुरैः सेवितचन्द्रवक्त्र ! ॥ १५ ॥
त्वयैव देवेश ! विभो ! कृतश्च जयः सुराणामसुरेश्वराणाम् ।
अहो प्रदत्तस्तु वरः प्रसीद वाग्देवता वारिजसम्भवाय ॥ १६ ॥
तव रोम्णि सकलामरेश्वरा नयनद्वये शशिरवी पदद्वये ।
निहिता रसातलगता वसुन्धरा तव पृष्ठतः सकलतारकादयः ॥ १७ ॥
जगतां हिताय भवता वसुन्धरा भगवन् ! रसातलपुटं गता तदा ।
अबलोद्धृता च भगवंस्त्वयैव सकलं त्वयैवहि धृतं जगद्गुरो ! ॥१८ ॥
इति वाक्पतिर्बहुविधैस्तवार्चनैः प्रणिपत्य विष्णुममरैः प्रजापतिः ।
विविधान्वरान्हरिमुखात्तु लब्धवान्हरिनाभिवारिजदेहभृत्स्वयम् ॥ १९ ॥
अथतामुद्धृतां तेन धरां देवा मुनीश्वराः । मूर्ध्न्यारोप्यनमश्चक्रुश्चक्रिणःसन्निधौतदा
अनेनैव वराहेण चोद्धृताऽसि वरप्रदे !। कृष्णेनाऽक्लिष्टकार्येण शतहस्तेन विष्णुना
धरणि ! त्वं महाभोगे ! भूमिस्त्वं धेनुरव्यये ! ।
लोकानां धारणी त्वं हि मृत्तिके ! हर पातकम् ॥ २२ ॥
मनसा कर्मणा वाचा वरदे ! वारिजेक्षणे !। त्वया हतेन पापेन जीवामस्त्वत्प्रसादतः
इत्युक्तासातदादेवी धरा देवैरथाब्रवीत् । वराहदंष्ट्रा भिन्नायां धरायांमृत्तिकांद्विजाः!
मन्त्रेणानेनयोबिभ्रत्मूर्ध्निपापात्प्रमुच्यते । आयुष्मान्बलवान्धन्यःपुत्रपौत्रसमन्वितः
क्रमाद्भुवि दिवम्प्राप्य कर्मान्ते मोदते सुरैः । अथदेवे गते त्यक्त्वावराहेक्षीरसागरम्
वाराहरूपमनघश्चचाल च धरा पुनः । तस्य दंष्ट्रा भराक्रान्ता देवदेवस्य धीमतः ॥
यदृच्छया भवः पश्यञ्जगाम जगदीश्वरः । दंष्ट्रां जग्राह दृष्ट्वा तां भूषणार्थमथाऽऽत्मनः
दधार च महादेवः कूर्चान्ते वै महोरसि । देवाश्च तुष्टुवुः सेन्द्रा देवदेवस्य वै भवम्
धरा प्रतिष्ठिता ह्येवं देवदेवेन लीलया । भूतानां सम्प्लवेचाऽपि विष्णोश्चैव कलेवरम्
ब्रह्मणश्च तथाऽन्येषां देवानामपि लीलया ।
विभुरङ्गविभागेन भूषितो न यदि प्रभुः ॥ ३१ ॥

कथं विमुक्तिर्विप्राणां तस्माद् दंष्ट्री महेश्वरः ॥ ३२ ॥

इति श्रीलिङ्गे महापुराणे वराहप्रादुर्भावो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

नारसिंहे विष्णौ प्रह्लादस्याऽविचलाभक्तिवर्णनसहितं हिरण्यकशिपुवधवर्णनं भगवता शिवेन देवप्रार्थनया शरभरूपमास्थाय नृसिंहलीलासम्वरणवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

नृसिंहेन हतः पूर्वं हिरण्याक्षाग्रजः श्रुतम्। कथं निषूदितस्तेन हिरण्यकशिपुर्वद ॥१॥

सूत उवाच

हिरण्यकशिपोःपुत्रः प्रह्लाद इति विश्रुतः। धर्मज्ञःसत्यसम्पन्नस्तपस्वी चाभवत्सुधीः

जन्मप्रभृति देवेशं पूजयामास चाऽव्ययम्। सर्वज्ञं सर्वगं विष्णुं सर्वदेवभवोद्भवम् ॥

तमादिपुरुषं भक्त्या परब्रह्मस्वरूपिणम्। ब्रह्मणोऽधिपतिं सृष्टिस्थितिसंहारकारणम्

सोऽपि विष्णोस्तथाभूतं दृष्ट्वा पुत्रं समाहितम्।

नमो नारायणायेति गोविन्देति मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥

स्तुवन्तं प्राह देवारिः प्रदहन्निव पापधीः। न मां जानासि दुर्बुद्धे! सर्वदैत्यामरेश्वरम्

प्रह्लाद ! वीर ! दुष्पुत्र ! द्विजदेवार्त्तिकारणम्।

को विष्णुः पद्मजो वाऽपि शक्रश्चवरुणोऽथवा ॥ ७ ॥

वायुःसोमस्तथेशानःपावकोमम यः समः। मामेवाऽर्चय भक्त्यावस्वलंनारायणंसदा

प्रह्लाद ! जीविते वाञ्छा तवैषा शृणु चाऽस्ति चेत्।

श्रुत्वाऽपि तस्य वचनं हिरण्यकशिपोः सुधीः ॥ ९ ॥

प्रह्लादः पूजयामास नमो नारायणेति च। नमोनारायणायेति सर्वदैत्यकुमारकान् ॥

अध्यापयामास च तां ब्रह्मविद्यां सुशोभनाम्।

दुर्लङ्घ्याश्चाऽऽत्मनो दृष्ट्वा शक्रादिभिरपि स्वयम् ॥ ११ ॥

पुत्रेण लङ्घितामाज्ञां हिरण्यः प्राह दानवान् । एतंनानाविधैर्वध्यं दुष्पुत्रं हन्तुमर्हथ ॥
एवमुक्तास्तदा तेन दैत्येन सुदुरात्मना । निजघ्नुर्देवदेवस्य भृत्यं प्रह्लादमव्ययम् ॥
नत्र तत्प्रतिकृतं तदा सुरैर्दैत्यराजतनयं द्विजोत्तमाः ! ।
क्षीरवारिनिधिशायिनः प्रभोर्निष्फलं त्वथ बभूव तेजसा ॥ १४ ॥
तदाऽथगर्वभिन्नस्यहिरण्यकशिपोःप्रभुः । तत्रैवाऽऽविरभूद्धन्तुं नृसिंहाकृतिमास्थितः
जघान च सुतं प्रेक्ष्य पितरं दानवाधमम् । बिभेद तत्क्षणादेव करजैर्निशितैःशतैः ॥
ततो निहत्य तं दैत्यं सबान्धवमघापहः । पीडयामास दैत्येन्द्रं युगान्ताग्निरिवाऽपरः
नादैस्तस्यनृसिंहस्यघोरैर्वित्रासितंजगत् । आब्रह्मभुवनाद्विप्राः प्रचचालच सुव्रताः !
दृष्ट्वा सुरासुरमहोरगसिद्धसाध्यास्तस्मिन्क्षणे हरिविरञ्चिमुखा नृसिंहम् ।
धैर्यंबलञ्च समवाप्य ययुर्विसृज्य आदिङ्मुखान्तमसुरक्षणतत्पराश्च ॥२०
ततस्तैर्गतैः सैष देवो नृसिंहः सहस्राकृतिः सर्वपात्सर्वबाहुः ।
सहस्रेक्षणः सोमसूर्याग्निनेत्रस्तदा संस्थितः सर्वमावृत्य मायी ॥ २० ॥
तन्तुष्टुवुः सुरश्रेष्ठा लोकालोकाचले स्थिताः ।
सब्रह्मकाः ससिद्धाश्च सयमाः समरुद्गणाः ॥ २१ ॥
परात्परतरं ब्रह्म तत्वात्तत्वतमं भवान् । ज्योतिषान्तुपरञ्ज्योतिःपरमात्मा जगन्मयः
स्थूलं सूक्ष्मं सुसूक्ष्मञ्च शब्दब्रह्ममयःशुभः । वागतीतोनिरालम्बो निर्द्वन्द्वोनिरुपप्लवः
यज्ञभुग्यज्ञमूर्त्तिस्त्वं यज्ञिनां फलदः प्रभुः ।
भवान्मत्स्याकृतिः कौर्ममास्थाय जगति स्थितः ॥ २४ ॥
वाराहीञ्चैवत्वंसैंहीमास्थायेह व्यवस्थितः । देवानांराज्यरक्षार्थं निहत्य दितिजेश्वरम्
द्विजशापच्छलेनैवमवतीर्णोऽसि लीलया । न दृष्टं यत्त्वदन्यं हि भवान्सर्वञ्चराचरम्
भवान्विष्णुर्भवान्रुद्रो भवानेव पितामहः । भवानादिर्भवानन्तो भवानेव वयं विभो!
भवानेव जगत्सर्वं प्रलापेन किमीश्वर ! । मायया बहुधा संस्थमद्वितीयमयं प्रभो !॥
स्तोष्यामस्त्वां कथं भासि देवदेव ! मृगाधिप ! ।
स्तुतोऽपि विविधैस्तुत्यैर्भावैर्नानाविधैः प्रभुः ॥ २६ ॥

न जगाम द्विजाः ! शान्तिं मानयन्योनिमात्मनः ।
यो नृसिंहस्तवं भक्त्या पठेद्वाऽर्थं विचारयेत् ! ॥ ३० ॥
श्रावयेद्वा द्विजान्सर्वान्विष्णुलोकेमहीयते । तदन्तरेशिवंदेवाःसेन्द्राःसब्रह्मकाःप्रभुम् ॥
सम्प्राप्य तुष्टुवुः सर्वं विज्ञाप्यमृगरूपिणः । ततो ब्रह्मादयस्तूर्णं संस्तूय परमेश्वरम् ॥
आत्मत्राणाय शरणं जग्मुः परमकारणम् । मन्दरस्थं महादेवं क्रीडमानं सहोमया ॥
सेवितं गणगन्धर्वैः सिद्धैरप्सरसांगणैः । देवताभिः सह ब्रह्मा भीतभीतः सगद्गदम् ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम् ।

ब्रह्मोवाच

नमस्ते कालकालाय नमस्ते रुद्रमन्यवे । नमः शिवाय रुद्राय शङ्कराय शिवाय ते ॥
उग्रोऽसि सर्वभूतानां नियन्ताऽसि शिवोऽसि नः ।
नमः शिवाय सर्वाय शङ्करायाऽऽर्त्तिहारिणे ॥ ३६ ॥
मयस्कराय विश्वाय विष्णवे ब्रह्मणे नमः । अन्तकाय नमस्तुभ्यमुमायाः पतये नमः॥
हिरण्यबाहवे साक्षात् हिरण्यपतये नमः । शर्वाय सर्वरूपाय पुरुषाय नमो नमः ॥३८
सदसद्व्यक्तिहीनाय महतः कारणाय ते । नित्याय विश्वरूपाय जायमानाय ते नमः
जाताय बहुधा लोके प्रभूताय नमोनमः । रुद्राय नीलरुद्रायःकद्रुद्राय प्रचेतसे ॥ ४०॥
कालाय कालरूपाय नमः कालाङ्गहारिणे । मीढुष्टमाय देवाय शितिकण्ठाय ते नमः
महीयसे नमस्तुभ्यं हन्त्रे देवारिणां सदा । ताराय च सुताराय तारणाय नमो नमः
हरिकेशाय देवाय शम्भवे परमात्मने । देवानां शम्भवे तुभ्यं भूतानां शम्भवे नमः ॥
शम्भवे हैमवत्याश्च मन्यवे रुद्ररूपिणे । कपर्दिने नमस्तुभ्यं कालकण्ठाय ते नमः ॥
हिरण्याय महेशाय श्रीकण्ठाय नमो नमः ।
भस्मदिग्धशरीराय दण्डमुण्डीश्वराय च ॥ ४५ ॥
नमो ह्रस्वाय दीर्घाय वामनाय नमो नमः । नम उग्रत्रिशूलाय उग्राय च नमो नमः ॥
भीमाय भीमरूपाय भीमकर्मरताय ते । अग्रे वधाय वै भूत्वा नमो दूरे वधाय च ॥
धन्विने शूलिने तुभ्यङ्गदिने हलिने नमः । चक्रिणे वर्मिणे नित्यं दैत्यानां कर्म्मभेदिने

सद्याय सद्यरूपाय सद्योजाताय ते नमः । वामाय वामरूपाय वामनेत्राय ते नमः ॥
अघोररूपाय विकटाय विकटशरीराय ते नमः ।
पुरुषरूपाय पुरुषैकतत्पुरुषाय वै नमः ॥ ५० ॥
पुरुषार्थप्रदानाय पतये परमेष्ठिने । ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमो नमः ॥ ५१ ॥
ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय नमः साक्षाच्छिवाय ते । सर्वविष्णुनृसिंहस्य रूपमास्थायविश्वकृत्
हिरण्यकशिपुं हत्वा करजैर्निशितैः स्वयम् । दैत्येन्द्रैर्बहुभिःसार्धं हितार्थं जगताम्प्रभुः
सैन्द्रीं समानयन्योनिं बाधते निखिलं जगत् ।
यत् कृत्यमत्र देवेश ! तत्कुरुष्व भवानिह ॥ ५४ ॥
उग्रोऽसिसर्वदुष्टानांनियन्तासिशिवोऽसिनः । कालकूटादिवपुषात्राहिनःशरणागतान्
शक्रन्तु वृत्तं विशेश! क्रीडा वै केवलंवयम् । तवोन्मेषनिमेषाभ्यामस्माकम्प्रलयोदयौ
उन्मीलये त्वयि ब्रह्मन् ! विनाशोऽस्ति न ते शिव ! ।
सन्तप्ताः स्मो वयं देव ! हरिणाऽमिततेजसा ॥ ५७ ॥
सर्वलोकहितायैनं तत्वं संहर्त्तुमिच्छसि ।

सूत उवाच

विज्ञापितस्तथा देवः प्रहसन्प्राह तान्सुरान् ॥ ५८ ॥
अभयञ्च ददौतेषांहनिष्यामीतितं प्रभुः । सोऽपि शक्रःसुरैःसार्द्धं प्रणिपत्य यथागतम्
जगामभगवान्ब्रह्मातथान्येचसुरोत्तमाः । अथोत्थाय महादेवः शारभं रूपमास्थितः ॥
ययौ प्रान्ते नृसिंहस्य गर्वितस्य मृगाशिनः । अपहृत्य तदाप्राणान्शरभःसुरपूजितः ॥
सिंहात्ततो नरो भूत्वा जगाम च यथाक्रमम् ।
एवं स्तुतस्तदा देवैर्जगाम स यथाक्रमम् ॥ ६२ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि संस्तवं शार्वमुत्तमम् । रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे नारसिंहे हिरण्यकशिपुवधानन्तरं शक्रादिदेवप्रार्थनया-
शिवेनशरभरूपमास्थायनृसिंहोपसंहरणवर्णनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

शिवेन शरभरूपं बिभ्रता नृसिंहसम्वादः शिवतेजसाऽपास्तसमस्तविक्रमो नृसिंहःशिवस्तवंकरोतीतिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं देवो महादेवो विश्वसंहारकारकः । शरभाख्यं महाघोरं विकृतं रूपमास्थितः ॥
किं किं धैर्यं कृतं तेन ब्रूहि सर्वमशेषतः ।

सूत उवाच

एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिश्चक्रे कृपालयः ॥ २ ॥
यत्तेजस्तु नृसिंहाख्यं संहर्तुं परमेश्वरः । तदर्थं स्मृतवान्रुद्रो वीरभद्रं महाबलम् ॥३॥
आत्मनो भैरवं रूपं महाप्रलयकारकम् । आजगाम पुरा सद्यो गणानामग्रतो हसन् ॥
साट्टहासैर्गणवरैरुत्पतद्भिरितस्ततः । नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिः परिवारितः ॥ ५ ॥
तावद्भिरमितोवीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः । क्रीडद्भिश्च महाधीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव
अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः । कल्पान्तज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः ॥
आत्तशस्त्रो जटाजूटे ज्वलद् बालेन्दु मण्डितः ।
बालेन्दु द्वितयाकारतीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरद्वयः ॥ ८ ॥
आखण्डलधनुः खण्डसन्निभभ्रूलतायुतः । महाप्रचण्डहुङ्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः॥९ ॥
नीलमेघाञ्जनाकारोभीषणश्मश्रुरद्भुतः । वादखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः॥
वीरभद्रोऽपिभगवान्वीरशक्तिविजृम्भितः । स्वयंविज्ञापयामासकिमत्र स्मृतिकारकम्
आज्ञापय जगत्स्वामिन् ! प्रसादः क्रियतां मयि !

श्रीभगवानुवाच

अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम् ॥ १२ ॥
ज्वलितःसन्नृसिंहाग्निः शमयैनंदुरासदम् । सान्त्वयन्बोधयादौतंतेनकिं नोपशाम्यति

ततोमत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय । सूक्ष्मं सूक्ष्मेण संहृत्य स्थूलं स्थूलेन तेजसा ॥
वक्त्रमानयकृत्यञ्च वीरभद्र! ममाऽऽज्ञया । इत्यादिष्टोगणाध्यक्षःप्रशान्तवपुरास्थितः
जगाम रंहसा तत्र यत्राऽऽस्ते नरकेसरी । ततस्तं बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम्
उवाच वाक्यमीशानः पितुः पुत्रमिवौरसम् ।

श्रीवीरभद्र उवाच

जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोऽसि माधव ! ॥ १७ ॥
स्थित्यर्थे न च युक्तोऽसि परेण परमेष्ठिना । जन्तुचक्रं भगवता रक्षितंमत्स्यरूपिणा
पुच्छेनैवं समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा । बिभर्षि कूर्मरूपेण वाराहेणोद्धृता मही ॥
अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः । वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः ॥२० ॥
त्वमेव सर्वभूतानां प्रभावः प्रभुरव्ययः । यदा यदा हि लोकस्य दुःखंकिञ्चित्प्रजायते
तदातदावतीर्णस्त्वंकरिष्यसिनिरामयम् । नाधिकस्त्वत्समोऽप्यस्ति!हरेशिवपरायण
त्वयाधर्माश्च वेदाश्च शुभे मार्गे प्रतिष्ठिताः । यदर्थमवतारोऽयं निहतःसोऽपि केशव!
अत्यन्तघोरं भगवन्नरसिंहवपुस्तव । उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्निधौ ॥२४ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शान्तयागिरा । ततोऽधिकं महाघोरं कोपंप्रज्वालयद्धरिः

श्रीनृसिंह उवाच

आगतोऽसियतस्तत्र गच्छ त्वं मा हितं वद । इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम्
संहर्त्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा ।
शासितं मम सर्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते ॥ २७ ॥
मत्प्रसादेन सकलं समर्यादं प्रवर्त्तते । अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ॥ २८॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष ! ममतेजोविजृम्भितम्
देवता परमार्थज्ञा ममैव परमं विदुः । मदंशाः शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयः सुराः ॥
मन्नाभिपङ्कजाज्जातः पुरा ब्रह्मा चतुर्मुखः । तल्ललाटसमुत्पन्नो भगवान्वृषभध्वजः ॥
रजसाऽधिष्ठितः स्रष्टारुद्रस्तामसउच्यते । अहं नियन्ता सर्वस्य मत्परं नास्तिदैवतम्

विश्वाधिकः स्वतन्त्रश्च कर्त्ता हर्त्ताखिलेश्वरः । इदन्तुमत्परंतेजःकःपुन श्रोतुमिच्छति
अतो मां शरणं प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः । अवेहि परमं भावमिदं भूतमहेश्वरः
कालोऽस्म्यहं कालविनाशहेतुर्लोकान्समाहर्त्तुमहं प्रवृत्तः ।
मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीरभद्र ! जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः ॥ ३७ ॥

सूत उवाच

साहङ्कारमिदं श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः । विहस्योवाच सावज्ञं ततो विस्फुरिताधरः

श्रीवीरभद्र उवाच

किं न जानासिविश्वेशंसंहर्तारंपिनाकिनम् । असद्वादोविवादश्चविनाशस्त्वयिकेवलः
तवान्योऽन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम् ।
कृतानि येन केनाऽपि कथाशेषो भविष्यति ॥ ३८ ॥

दोषं त्वं पश्य यतस्त्वमवस्थामीदृशीं गतः । तेन संहारदक्षेण क्षणात्संक्षयमेष्यसि
प्रकृतिस्त्वंपुमान्रुद्रस्त्वयिवीर्यंसमाहितम् । त्वन्नाभिपङ्कजाज्जात पञ्चवक्त्र पितामहः
सृष्ट्यर्थेन जगत्पूर्व शङ्करं नीललोहितम् । ललाटे चिन्तयामास तपस्युग्रे व्यवस्थितः
तल्ललाटादभूच्छम्भो सृष्ट्यर्थ तन्न दूषणम् । अंशोऽहं देवदेवस्य महाभैरवरूपिणः ॥
त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च । एवं रक्षोविदार्यैव त्वंशक्तिकलयायुतः
अहङ्कारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्द्रितः । उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम् ॥४४॥
यदि सिंहमहेशानं स्वपुनर्भूतमन्यसे । न त्वं स्रष्टा न संहर्ता न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित्
कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोऽसि पिनाकिना ।
अद्याऽपि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः ॥ ४६ ॥

हरहारलतामध्ये मुग्ध! कस्मान्न बुध्यसे । विस्मृतं किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पाटनपीडितः ॥
वाराहविग्रहस्तेऽद्य साक्रोशन्तारकारिणा ।
दग्धोऽसि यस्य शूलाग्रे विष्वक्सेनच्छलाद्भवान् ॥ ४८ ॥

दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया ते यज्ञरूपिणः । अद्याऽपि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः
छिन्नं तमेनाभिसन्धन्तदंशं तस्य तद्बलम् । निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरुद्गणः

कण्डूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतं त्वया । चक्रं विक्रमतो यस्यचक्रपाणे!तव प्रियम्
कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वयातदपिविस्मृतम् । तेमयासकलालोकागृहीतास्त्वंपयोनिधौ
निद्रापरवशःशेषेसकथंसात्त्विकोभवान् । त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशक्तिविजृम्भितम्
शक्तिमानिभितस्त्वञ्चअनलस्त्वञ्चमोहितः । तत्तेजसोऽपिमाहात्म्यंयुवांद्रष्टुंनहिक्षमौ
स्थूला ये हि प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
द्यावापृथिव्या इन्द्राग्नि यमस्य वरुणस्य च ॥ ५९ ॥
ध्वान्तोदरेशशाङ्कस्यजनितवापरमेश्वरः । कालोऽसित्वंमहाकालःकालकालोमहेश्वरः
अतस्त्वमुग्रकलयामृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि । स्थिरधन्वाक्षयोवीरोवीरोविश्वाधिकःप्रभुः
उपहस्ता ज्वरं भीमोमृगपक्षिहिरण्मयः । शास्ताशेषस्य जगतो न त्वं नैव चतुर्मुखः
इत्थं सर्वं समालोक्यसंहराऽऽत्मानमात्मना । नोचेदिदानींक्रोधस्यमहाभैरवरूपिणः
वज्राशनिरिव स्थाणोस्त्वेवं मृत्युः पतिष्यति ।

सूत उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः ॥ ६० ॥
ननाद तनुवेगेन तं गृहीतुं प्रचक्रमे । अत्रान्तरे महाघोरं विपक्षभयकारणम् ॥ ६१॥
गगनव्यापिदुर्धर्षशैवतेजः समुद्भवम् । वीरभद्रस्य तद्रूपं तत्क्षणादेव दृश्यत ॥ ६२ ॥
न तद्धिरण्मयं सौम्यं न सौरं नाऽग्निसम्भवम् । न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यं महेश्वरम्
तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिल्लीनानिशाङ्करे । ततोव्यक्तोमहातेजाव्यक्तेसम्भवतस्ततः
रुद्रसाधारणञ्चैव चिह्नितं विकृताकृति । ततः संहाररूपेण सुव्यक्तः परमेश्वरः ॥६५॥
पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमङ्गलैः । सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ६६ ॥
स मृगार्धशरीरेणपक्षाभ्यां चञ्चुना द्विजाः !। अतितीक्ष्णमहादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः
कण्ठेकालोमहाबाहुश्चञ्चुष्पादुपहिसम्भवः । युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिःस्वनः
समं कुपितवृत्ताग्निव्यावृत्तनयनत्रयः । स्पष्टदंष्ट्रोऽधरोष्ठश्च हुङ्कारेण युतो हरः ॥६९॥
हरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः । बिभ्रद्दौर्म्यं सहस्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम् ॥७०॥
अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादेऽभ्युदारयन् ।

पादावाबध्य पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमण्डलम् ॥ ७१ ॥
भिदन्नुरसि बाहुभ्यां निजग्राह हरो हरिम् । ततो जगाम गगनं देवैः सह महर्षिभिः
सहसैवभयाद्विष्णुंविहगश्चयथोरगम् । उत्क्षिप्योत्क्षिप्यसंगृह्यनिपात्यचनिपात्यच
उड्डीयोड्डीय भगवान पक्षाघातविमोहितम् । हरिं हरन्तं वृषभंविश्वेशानंतमीश्वरम् ॥
अनुयान्ति सुराः सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः । नीयमानः परवशो दीनवक्त्रःकृताञ्जलिः
तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः ।

श्रीनृसिंह उवाच

नमो रुद्राय शर्वाय महाग्रासाय विष्णवे ॥ ७६ ॥
नम उग्राय भीमाय नमः क्रोधाय मन्यवे । नमो भवाय शर्वाय शङ्कराय शिवाय ते ॥
कालकालाय कालाय महाकालाय मृत्यवे । वीराय वीरभद्राय क्षयद्वीराय शूलिने
महादेवाय महते पशूनाम्पतये नमः । एकाय नीलकण्ठाय श्रीकण्ठाय पिनाकिने ॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्युमन्यवे । पराय परमेशाय परात्परतराय ते ॥ ८०
परात्पराय विश्वाय नमस्ते विश्वमूर्त्तये । नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे॥
कैवर्त्ताय किराताय महाव्याधाय शाश्वते । भैरवाय शरण्याय महाभैरवरूपिणे ॥
नमोनृसिंहसंहर्त्रे कामकालपुरारये । महापाशौघसंहर्त्रे विष्णुमायान्तकारिणे ॥ ८३॥
त्र्यम्बकाय त्र्यक्षराय शिपिविष्टाय मीढुषे । मृत्युञ्जयाय शर्वाय सर्वज्ञाय मखारये ॥
मखेशाय वरेण्याय नमस्ते वह्निरूपिणे । महाघ्राणाय जिह्वाय प्राणापानप्रवर्त्तिने ॥
त्रिगुणाय त्रिशूलाय गुणातीताय योगिने ।
संसाराय प्रवाहाय महायन्त्रप्रवर्त्तिने ॥ ८६ ॥
नमश्चन्द्राग्निसूर्य्याय मुक्तिवैचित्र्यहेतवे । वरादायाऽवताराय सर्वकारणहेतवे ॥८७॥
कपालिने करालाय पतये पुण्यकीर्त्तये । अमोघायाऽग्निनेत्राय नकुलीशाय शम्भवे ॥
भिषक्तमाय मुण्डाय दण्डिने योगरूपिणे । मेघवाहाय देवाय पार्वतीपतये नमः ॥८६
अव्यक्ताय विशोकाय स्थिरायस्थिरधन्विने । स्थाणवेकृत्तिवासायनमःपञ्चार्थहेतवे
वरदायैकपादाय नमश्चन्द्रार्द्धमौलिने । नमस्तेऽध्वरराजाय वयसां पतये नमः ॥६१॥

योगीश्वराय नित्याय सत्याय परमेष्ठिने । सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सर्वेश्वराय ते
एकद्वित्रिचतुःपञ्चकृत्वस्तेऽस्तु नमोनमः । दशकृत्वस्तु साहस्रकृत्वस्ते च नमो नमः
नमोऽपरिमितं कृत्वाऽनन्तकृत्वो नमोनमः । नमो नमो नमोभूयः पुनर्भूयो नमो नमः

सूत उवाच

नाम्नामष्टशतेनैवं स्तुत्वाऽमृतमयेन तु । पुनस्तु प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम् ॥
यदा यदा ममाज्ञानमत्यहङ्कारदूषितम् । तदातदापनेतव्यं त्वयैव परमेश्वर ! ॥९६ ॥
एवं विज्ञापयन्प्रीतः शङ्करं नरकेसरी । नन्वशक्तोभवान्विष्णो ! जीवितान्तंपराजितः
तद्वक्त्रशेषमात्रान्तं कृत्वा सर्वस्य विग्रहम् । शुक्तिशिल्पं तदा मङ्गं वीरभद्रःक्षणात्ततः

देवा ऊचुः

अथ ब्रह्मादयः सर्वे वीरभद्र ! त्वया दृशा । जीविताः स्मो वयं देवाःपर्जन्येनैवपादपाः
यस्य भीषादहत्यग्निरुदेतिचरविःस्वयम् । वातोवातिचसोऽसित्वंमृत्युर्धावतिपञ्चमः
यदव्यक्तं परं व्योम कलातीतं सदाशिवम् । भगवंस्त्वामेव भवं वदन्ति ब्रह्मवादिनः
के वयं एव धातुक्ये वेदने परमेश्वरः । न विद्धि परमं धाम रूपलावण्यवर्णने॥१०२॥
उपसर्गेषु सर्वेषुत्रायस्वाऽस्मन्गणाधिप !। एकादशात्मन् ! भगवान्वर्ततेरूपवानहरः

इदृशान्तेऽवताराणि दृष्ट्वा शिववहूंस्तमः ।
कदाचित्सन्दिहेन्नास्मांस्त्वच्चिन्तास्तमया तथा ॥ १०४ ॥

गुञ्जागिरिवरतटामितरूपाणि सर्वशः । अभ्यसंहर गम्यं ते न नीतव्यं परापरा ॥
द्वे तनू तव रुद्रस्यवेदज्ञा ब्राह्मणाःविदुः । घोराऽप्यन्याशिवाऽप्यन्यातेप्रत्येकमनेकधा
इहाऽस्मान्पाहिभगवन् ! नित्याहतमहाबलः । भवता हि जगत्सर्वं व्याप्तंस्वेनैवतेजसा
ब्रह्मविष्णवीन्द्रचन्द्रादि वयञ्चप्रमुखाःसुराः । सुरासुराःसम्प्रसूतास्त्वत्तःसर्वमहेश्वरः !
ब्रह्मा च इन्द्रो विष्णुश्चयमाद्या न सुरासुरान् । ततो निगृह्य च हरिंसिंहहत्युपचेतसम्

यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा ।
अतोऽस्मान्पाहिभगवन् ! सुरान्दानैरभीप्सितैः ॥ ११० ॥

उवाचतान्सुरान्देवो महर्षींश्च पुरातनान् । यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरं क्षीरे घृतं घृते॥

एकएव तदा विष्णुः शिवलीनो न चान्यथा । एव एव नृसिंहात्मा सदर्पश्चमहाबलः
जगत्संहारकारेण प्रवृत्तो नरकेसरी । याजनीयो नमस्तस्मैमद्भक्तिसिद्धिकाङ्क्षिभिः
एतावदुक्त्वा भगवान्वीरभद्रो महाबलः । अपश्यन्सर्वभूतानां तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥

नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शङ्करः ।

वक्त्रं तन्मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम् ॥ ११५ ॥

ततो देवानिरातङ्काःकीर्त्तयन्तःकथामिमाम् । विस्मयोत्फुल्लनयनाजग्मुःसर्वेयथागतम्
य इदं परमाख्यानं पुण्यं देवैः समन्वितम् । पठित्वा शृणुते चैव सर्वदुःखविनाशनम्
धान्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुष्टिवर्धनम् । सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥
अपमृत्युप्रशमनं महाशान्तिकरं शुभम् । अरिचक्रप्रशमनं सर्वाधिप्रविनाशनम् ॥११६
ततो दुःस्वप्रशमनं सर्वभूतनिवारणम् । विषग्रहक्षयकरं पुत्रपौत्रादिवर्धनम् ॥ १२० ॥
योगसिद्धिप्रदंसम्यक्शिवज्ञानप्रकाशकम् । शेषलोकस्यसोपानंवाञ्छितार्थैकसाधनम्
विष्णुमायानिरसनं देवतापरमार्थदम् । वाञ्छासिद्धिप्रदश्चैव ऋद्धिप्रज्ञादिसाधनम्
इदन्तु शरभाकारं परं रूपं पिनाकिनः । प्रकाशितव्यं भक्तेषु चिरैवृद्यमितेषु च ॥१२३
तैरेव पठितव्यश्च श्रोतव्यश्च शिवात्मभिः । शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥

पठेत् प्रतिष्ठाकालेषु शिवसन्निधिकारणम् ।

चोरव्याघ्राहिसिंहान्तकृतो राजभयेषु च ॥ १२५ ॥

अत्राऽन्योत्पातभूकम्पदावाग्निपांसुवृष्टिषु । उल्कापातेमहावातेविनावृष्ट्याऽतिवृष्टिषु
अतस्तत्र पठेद्विद्वान् शिवभक्तो दृढव्रतः । यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि स्तव सर्वमनुत्तमम्

स रुद्रत्वं समासाद्य रुद्रस्याऽनुचरो भवेत् ॥१२८॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शरभप्रादुर्भावो नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवेनजलन्धरयुद्धे जलन्धरवधवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

जलन्धरं जटामौलिः पुरा जम्भारिविक्रमम्। कथं जघान भगवान् भगनेत्रहरो हरः॥
वक्तुमर्हसि चाऽस्माकं रोमहर्षण ! सुव्रत ! ।

सूत उवाच

जलन्धर इति ख्यातो जलमण्डलसम्भवः ॥ २ ॥
आसीदन्तकसङ्काशस्तपसा लब्धविक्रमः । तेन देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः॥
निर्जिताः समरे सर्वे ब्रह्मा च भगवानजः । जित्वैव देवसङ्घातं ब्रह्माणं वै जलन्धरः॥
जगाम देवदेवेशं विष्णुं विश्वहरं गुरुम् । तयोः समभवद् युद्धं दिवारात्रमविश्रमम् ॥
जलन्धरेशयोस्तेन निर्जितो मधुसूदनः । जलन्धरोऽपि तं जित्वा देवदेवं जनार्दनम्॥
प्रोवाचेदं दितेः पुत्रान् न्यायधीर्जेतुमीश्वरम् ।
सर्वे जिता मया युद्धे शङ्करो ह्यजितो रणे ॥ ७ ॥
तं जित्वा सर्वमीशानंगणपैर्नन्दिना क्षणात् । अहमेव भवत्वञ्च ब्रह्मत्वं वैष्णवं तथा
वासवत्वञ्च युष्माकं दास्ये दानवपुङ्गवाः !। जलन्धरवचः श्रुत्वा सर्वे ते दानवाधमाः
जगर्जुरुच्चैः पापिष्ठा मृत्युदर्शनतत्पराः । दैत्यैरेतैस्तथाऽन्यैश्च रथनागतुरङ्गमैः॥१०॥
सन्नद्धैः सह सन्नध्य सर्वं प्रति ययौ बली । भवोऽपि दृष्ट्वा दैत्येन्द्रं मेरुकूटमवस्थितम्
अवध्यत्वमपि श्रुत्वा तथाऽन्यैर्भगनेत्रहा । ब्रह्मणो वचनं रक्षन् रक्षको जगतां प्रभुः
साम्बः सुनन्दी सगणः प्रोवाच प्रहसन्निव । किं कृत्यमसुरेशान!युद्धेनानेन साम्प्रतम्
मद्बाणैर्भिन्नसर्वाङ्गो मर्त्तुमभ्युद्यतेमुदा । जलन्धरोऽपि तद्वाक्यंश्रुत्वाश्रोत्रविदारणम्
सुरेश्वरमुवाचेदं सुरेतरबलेश्वरः । वाक्येनाऽलं महाबाहो ! देवदेव ! वृषध्वज !॥१५॥
चन्द्रांशुसन्निभैःशस्त्रैर्हर! योद्धुमिहागतः । निशम्याऽस्य वचःशूलीपादाङ्गुष्ठेनलीलया

महाम्भसि चकाराऽऽशु रथाङ्गं रौद्रमायुधम् ॥ १६ ॥

कृत्वार्णवाम्भसि सितम्भगवान्रथाङ्गं स्मृत्वा जगत्त्रयमनेन हताः सुराश्च।

दक्षान्धकान्तकपुरत्रययज्ञहर्त्ता लोकत्रयान्तककरः प्रहसंस्तदाह ॥१७॥

पादेन निर्मितं दैत्य! जलन्धरमहार्णवे । बलवान् यदि चोद्धर्तुं तिष्ठयोद्धुं न चान्यथा

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः । प्रदहन्निव नेत्राभ्यांप्राहाऽऽलोक्यजगत्त्रयम्

जलन्धर उवाच

गदामुद्धृत्य हत्वा च नन्दिनं त्वाञ्च शङ्कर! ।

हत्वा लोकान् सुरैः सार्धं डुण्डुभान् गरुडो यथा ॥ २० ॥

हन्तुञ्चराचरं सर्वं समर्थोऽहं सवासवम् । को महेश्वर! मद्बाणैरच्छेद्यो भुवनत्रये ॥

बालभावे च भगवान्तपसैव विनिर्जितः । ब्रह्मा बली यौवने वै मुनयः सुरपुङ्गवैः ॥

दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यंसचराचरम् । तपसा किं त्वया रुद्र! निर्जितोभगवानपि

इन्द्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः । न सेहिरे यथा नागा गन्धं पक्षिपतेरिव ॥२४

न लब्धा दिवि भूमौच बाहवो मम शङ्कर!। समस्तान्पर्वतान्प्राप्यघर्षिताश्चगणेश्वर!

गिरीन्द्रो मन्दरः श्रीमान्नीलो मेरुःसुशोभनः । घर्षितोबाहुदण्डेन कण्डूनोदार्थमापतत्

गङ्गा निरुद्धाबाहुभ्यांलीलार्थंहिमवद्गिरौ । नारीणांमम भृत्यैश्चबन्धोबद्धोदिवौकसाम्

वडवाया मुखं भग्नं गृहीत्वा वै करेण तु । तत्क्षणादेव सकलञ्चैकार्णवमभूदिदम् ॥

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिन्धुजलोपरि । सरथोभगवानिन्द्रःक्षिप्तश्चशतयोजनम्

गरुडोऽपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना ।

उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहान्तरम् ॥ ३० ॥

कथञ्चिल्लब्धवान् शक्रःशर्चामेकांप्रणम्यमाम् । मांनजानासिदैत्येन्द्रं जलन्धरमुमापते!

सूत उवाच

एवमुक्तो महादेवः प्रादहद्वै रथं तदा । तस्य नेत्राग्निमार्गैककलार्द्धार्द्धेन चाऽऽकुलम् ॥

दैत्यानामतुलबलैर्हयैश्च नागैर्दैत्येन्द्रास्त्रिपुररिपोर्निरीक्षणेन ।

नागाद्वैशसमनुसंवृतश्च नागैर्देवेशं वचनमुवाच चाऽल्पबुद्धिः ॥ ३३ ॥

किं कार्यं मम युधि देवदैत्यसङ्घैर्हन्तुं यत्सकलमिदं क्षणात्समर्थः ।
यत्तस्माद्भयमिह नास्ति योद्‌धुमीश! वाञ्छैषा विपुलतरा न संशयोऽत्र॥
तस्मात्त्वं मम मदनारिदक्षशत्रो ! यज्ञारे ! त्रिपुररिपो ! ममैव वीरैः ।
भूतेन्द्रैर्हरिवदनेन देवसङ्घैर्योद्‌धुं ते बलमिह चाऽस्ति चेद्धि तिष्ठ ॥३५॥
इत्युक्तवाऽथ महादेवं महादेवारिनन्दनः । न चचाल सस्मार निहतान्बान्धवान्युधि
दुर्मदेनाविनीतात्मा दोर्भ्यामास्फोट्यदोर्बलात् । सुदर्शनाख्यंयच्चक्रं तेन हन्तुं समुद्यतः
दुर्धरेणे रथाङ्गेनह्यक्रेणाऽपिद्विजोत्तमाः ।। स्थापयामासवै स्कन्धे द्विधाभूतश्चतेन वै
कुलिशेन यथा छिन्नो द्विधा गिरिवरो द्विजाः ! ।
पपात दैत्यो बलवानञ्जनाद्रिरिवाऽपरः ॥ ३६ ॥
तस्य रक्तेन रौद्रेण सम्पूर्णमभवत्क्षणात् । तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च ॥
महारौरवमासाद्य रक्तकुण्डमभूद्दहो ! । जलन्धरं हतं दृष्ट्वा देवगन्धर्वपार्षदाः ॥ ४१ ॥
सिंहनादं महत्कृत्वा साधु देवेति चाऽब्रुवन् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि जलन्धरविमर्दनम्
श्रावयेद्वा यथान्यायं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे जलन्धरवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

विष्णुकृत शिवसहस्रनामवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन वै सूत ! देवदेवान्महेश्वरात् । सुदर्शनाख्यं वै लब्धं वक्तुमर्हसि विष्णुना॥

सूत उवाच

देवानामसुरेन्द्राणामभवच्च सुदारुणः । सर्वेषामेव भूतानां विनाशकरणो महान् ॥२
ते देवाः शक्तिमुशलैः सायकैर्नतपर्वभिः । प्रभिद्यमानाः कुन्तैश्च दुद्रुवुर्भयविह्वलाः ॥

पराजितास्तदा देवा देवदेवेश्वरं हरिम् । प्रणमुस्तं सुरेशानं शोकसन्दिग्धमानसाः ॥
तान्समीक्ष्याऽथ भगवान्देवदेवेश्वरो हरिः । प्रणिपत्य स्थितान्देवानिदं वचनमब्रवीत्
वत्साः ! किमिति वै देवाश्च्युतालङ्कारविक्रमाः ।
समागताः ससन्तापा वक्तुमर्हथ सुव्रताः ! ॥ ६ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तथाभूता सुरोत्तमाः । प्रणम्याहुर्यथावृत्तं देवदेवाय विष्णवे ॥
भगवन् देवदेवेश! विष्णो! जिष्णो!जनार्दन !। दानवैःपीडिताःसर्वेवयं शरणमागताः
त्वमेव देवदेवेश ! गतिर्नः पुरुषोत्तम ! । त्वमेव परमात्मा हि त्वं पिता जगतामपि
त्वमेव भर्ता हर्ता च भोक्ता दाता जनार्दन !। हन्तुमर्हसितस्मात्त्वं दानवान्दानवार्दन!
दैत्याश्च वैष्णवैर्ब्राह्मै रौद्रैर्याम्यैः सुदारुणैः । कौबेरैश्चैवसौम्यैश्च नैर्ऋत्यैर्वारुणैर्दृढैः
वायव्यैश्च तथाऽऽग्नेयैरैशानैर्वार्षिकैःशुभैः । सौरैरौद्रैस्तथा भीमैः कम्पनैर्जृम्भणैर्दृढैः
अवध्या वरलाभात्ते सर्वे वारिजलोचन ! । सूर्यमण्डलसम्भूतं त्वदीयश्चक्रमुद्यतम् ॥
कुण्ठितं हि दधीचेन च्यावनेन जगद्गुरो ! ।
दण्डं शार्ङ्गं तवाऽस्त्रञ्च लब्धं दैत्यैः प्रसादतः ॥ १४ ॥
पुरा जलन्धरं हन्तुं निर्मितं त्रिपुरारिणा । रथाङ्गंसुऽशितं घोरं तेन तान् हन्तुमर्हसि
तस्मात्तेन निहन्तव्या नान्यैः शस्त्रशतैरपि । ततो निशम्य तेषां वै वचनं वारिजेक्षणः
वाचस्पतिमुखानाह स हरिश्चक्रभृत् स्वयम् ।

श्रीविष्णुरुवाच

भो भो ! देवा ! महादेवं सर्वैर्देवैः सनातनैः ॥ १७ ॥
सम्प्राप्य साम्प्रतं सर्वंकरिष्यामिदिवौकसाम् । देवा!जलन्धरंहन्तुंनिर्मितंहिपुरारिणा
लब्ध्वा रथाङ्गं तेनैव निहत्यच महासुरान् । सर्वान्धुन्धुमुखान्दैत्यानष्टषष्टिशतान्सुरान्
सबान्धवान् क्षणादेव युष्मान् सन्तारयाम्यहम् ।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठान् सुरश्रेष्ठमनुस्मरन् ॥ २० ॥
सुरश्रेष्ठस्तदा श्रेष्ठं पूजयामास शङ्करम् । लिङ्गं स्थाप्य यथान्यायं हिमवच्छिखरेशुभे

मेरुपर्वतसङ्काशं निर्मितं विश्वकर्मणा । त्वरिताख्येन रुद्रेण रौद्रेण च जनार्दनः॥२२॥
स्थाप्य सम्पूज्य गन्धाद्यैर्ज्वालाकारं मनोरमम् । तुष्टावचतदारुद्रंसम्पूज्याग्नौप्रणम्यच
देवं नाम्नां सहस्रेण भवाद्येन यथाक्रमम् । पूजयामासच शिवं प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्
देवं नाम्नां सहस्रेण भवाद्येन महेश्वरम् । प्रतिनाम स पद्मेन पूजयामास शङ्करम् ॥
अग्नौ च नामभिर्देवं भवाद्यैःसमिदादिभिः । स्वाहान्तैर्विधिवद्धुत्वाप्रत्येकमयुतंप्रभुम्
तुष्टाव च पुनः शम्भुं भवाद्यैर्भवमीश्वरम् ।

श्रीविष्णुरुवाच

भवः शिवो हरो रुद्रः पुरुषः पद्मलोचनः ॥ २७ ॥
अर्थितव्यः सदाचारः सर्वशम्भुर्महेश्वरः । ईश्वरः स्थाणुरीशान सहस्राक्षः सहस्रपात्
वरीयान्वरदो वन्द्यः शङ्करः परमेश्वरः । गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैकप्रयोजनः ॥ २१ ॥
सर्वज्ञ सर्वदेवादिगिरिधन्वा जटाधरः । चन्द्रपीडश्चन्द्रमौलिर्विद्वान् विश्वामरेश्वरः॥
वेदान्तसारसन्दोहः कपालीनीललोहितः । ध्यानाधारोपरिच्छेद्योगौरीभर्त्तागणेश्वरः
अष्टमूर्त्तिर्विश्वमूर्त्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः । ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः ॥
वामदेवो महादेवः पाण्डुः परिदृढो दृढः । विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशःशुचिरन्तरः
सर्वप्रणयसम्वादी वृषाङ्को वृषवाहनः । ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः ॥
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्माङ्गहृज्जटी । कालकालः कृत्तिवासाःसुभगःप्रणवात्मकः
उन्मत्तवेषश्चक्षुष्यो दुर्वासा स्मरशासनः । दृढायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परायणः॥
अनादिमध्यनिधनो गिरिशो गिरिबान्धवः ।
कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमोत्तमः ॥ ३७ ॥
सामान्यदेवः कोदण्डीनीलकण्ठःपरश्वधी । विशालाक्षोमृगव्याधःसुरेशःसूर्य्यतापनः
धर्मकर्माक्षमः क्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित् । उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्य प्रियभक्तः प्रियम्वदः
दान्तो दयाकरो दक्षः कपर्दीकामशासनः । श्मशाननिलयःसूक्ष्मःश्मशानस्थोमहेश्वरः
लोककर्त्ता भूतपतिः महाकर्त्ता महौषधी । उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः॥
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी ।

सोमपोऽमृतपः सोमो महानीतिर्महामतिः ॥ ४२ ॥
अजातशत्रुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः । लोककारो वेदकारः सूत्रकारः सनातनः
महर्षिः कपिलाचार्य्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सदा ॥ ४३ ॥
त्रिधामा सौभगःसर्वःसर्वज्ञःसर्वगोचरः । ब्रह्मधृग्विश्वसृक्स्वर्गःकर्णिकारःप्रियःकविः
शाखो विशाखो गोशाखः शिवो नैकः क्रतुः समः ।
गङ्गाप्लवोदको भावः सकलः स्थपतिः स्थिरः ॥ ४६ ॥
विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः । सगणोगणकार्यश्चसुकीर्त्तिश्छिन्नसंशयः
कामदेवःकामपालोभस्मोद्धूलितविग्रहः । भस्मप्रियोभस्मशायीकामीकान्तःकृतागमः
समायुक्तो निवृत्तात्मा धर्मयुक्तः सदाशिवः । चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः ॥
दुर्गमो दुर्लभो दुर्गः सर्वायुधविशारदः । अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्द्धनः ॥
शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशोऽमृताशनः । भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः
हिरण्यरेतास्तरणिर्मरीचिर्महिमालयः । महाह्रदो महागर्भः सिद्धवृन्दारवन्दितः॥५२॥
व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधिः । अमृताङ्गोऽमृतवपुः पञ्चयज्ञः प्रभञ्जनः॥
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः पारिजातः परावरः । सुलभः सुव्रतः शूरो वाङ्मयैकनिधिर्निधिः ॥
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः । आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलाचलः ॥
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः । धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः ॥५६
अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः । अभिवाद्योमहाचार्यो विश्वकर्मा विशारदः
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वीभूतभावनः। उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोजितप्रियः
कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः । तपस्वी तारको धीमान्प्रधानप्रभुरव्ययः
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः ।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो नियमाश्रयः ॥ ६० ॥
चन्द्रः सूर्य्यः शनिः केतुर्विरामो विद्रुमच्छविः । भक्तिगम्यःपरंब्रह्ममृगबाणार्पणोऽनघः
अद्रिराजालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः। सर्वकर्माचलस्त्वष्टा मङ्गल्योमङ्गलावृतः

महातपा दीर्घतपाःस्थविष्ठःस्थविरो ध्रुवः । अहःसंवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः
संवत्सरकरो मन्त्रः प्रत्ययः सर्वदर्शनः । अजः सर्वेश्वरः स्निग्धो महारेता महाबलः॥

योगी योग्यो महारेताः सिद्धः सर्वादिरग्निदः ।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ६५ ॥

अमृतः शाश्वतःशान्तोबाणहस्तःप्रतापवान् । कमण्डलुधरोधन्वीवेदाङ्गोवेदविन्मुनिः
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनेतादुराधरः । अतीन्द्रियोमहामायःसर्वावासश्चतुष्पथः
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः । महाबुद्धिर्महावीर्य्यो भूतचारी पुरन्दरः
निशाचरःप्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः । अनिर्देश्यवपुःश्रीमान्सर्वहार्य्यमितोगतिः ॥
बहुश्रुतो बहुमयो नियतात्मा भवोद्भवः । ओजस्तेजोद्युतिकरो नर्तकः सर्वकामकः ॥

नृत्यप्रियो नृत्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
बुद्धस्पष्टाक्षरो मन्त्रः सम्मानः सारसम्प्लवः ॥ ७१ ॥
युगादिकृद् युगावर्त्तो गम्भीरो वृषवाहनः ।
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शरभः शरभो धनुः ॥ ७२ ॥

अपांनिधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित् । प्रतिष्ठितःप्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः
विरोचनःसुरगणोविद्येशोविबुधाश्रयः । बालरूपो बलोन्माथी विश्ववर्त्तो गहनोगुरुः
करणं कारणं कर्त्ता सर्वबन्धविमोचनः । विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्त्ता निशाकरः

व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ।
दुन्दुभो ललितो विश्वो भवात्मात्मनि संस्थितः ॥ ७६ ॥

वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरहा वीरभृद् विराट् । वीरचूडामणिर्वेत्ता तीव्रनादो नदीधरः
आज्ञाधारस्त्रिशूलीचशिपिविष्टशिवालयः । वालखिल्योमहाचापस्तिग्मांशुर्निधिरव्ययः
अभिरामःसुशरणःसुब्रह्मण्यःसुधापतिः । मघवान्कौशिकोगोमान्विश्रामः सर्वशासनः
ललाटाक्षोविश्वदेहःसारःसंसारचक्रभृत् । अमोघदण्डीमध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी
परमार्थः परमयः शम्बरो व्याघ्रकोऽनलः । रुचिर्वररुचिर्वन्द्यो वाचस्पतिरहर्पतिः ॥

रविर्विरोचनः स्कन्धः शास्ता वैवस्वतो जनः ।

युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शान्तरागः पराजयः ॥ ८२ ॥
कैलासपतिकामारिः सविता रविलोचनः । विद्वत्तमो वीतभयो विश्वहर्त्ताનिवारितः
नित्यो नियतकल्याणःपुण्यश्रवणकीर्त्तनः । दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः
उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहो भयः ।
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ॥ ८५ ॥
विश्वगोप्ता विश्वभर्त्ता सुधीरोरुचिराङ्गदः । जननोजनजन्मादिःप्रीतिमान्नीतिमान्नयः
विशिष्टःकाश्यपोभानुर्भीमो भीमपराक्रमः । प्रणवः सप्तधाचारो महाकायो महाधनुः
जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः । तत्त्वातत्त्वविवेकात्मा विभूष्णुर्भूतिभूषणः
ऋषिर्ब्राह्मणविज्जिष्णुर्जन्ममृत्युजरातिगः । यज्ञोयज्ञपतिर्यज्वा यज्ञान्तोऽमोघविक्रमः
महेन्द्रो दुर्भरः सेनी यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः । पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः ॥
आत्मयोनिरनाद्यन्तो षड्विंशत्सप्तलोकधृक् ।
गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः ॥ ९१ ॥
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा । अमोघोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वरः॥
स्वयंज्योतिरनुज्योतिरात्मज्योतिरचञ्चलः । पिङ्गलःकपिलश्मश्रुःशास्त्रनेत्रस्त्रयोऽतनुः
ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानी निरुत्पत्तिरुपप्लवः ।
भवो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो बृहस्पतिः ॥ ९४ ॥
उदारकीर्त्तिरुद्योगी सद्योगी सदसम्भवः । नक्षत्रमाली राकेशः साधिष्ठानः षडाश्रयः
पवित्रपाणिःपापारिर्मणिपूरोमनोगतिः । हृत्पुण्डरीकमासीनःशुक्लः शान्तो वृषाकपिः
विष्णुर्ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः । अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः ॥९७
ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥९८॥
हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतधरो ध्वनिः ।
अरोगो नियमाध्यक्षो विश्वामित्रो द्विजोत्तमः ॥ ९९ ॥
बृहज्ज्योतिः सुधामा च महाज्योतिरनुत्तमाः ।
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥ १०० ॥

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः । निरावरणधर्मज्ञो विरिञ्चो विष्टरश्रवाः
आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिज्ञानमूर्त्तिर्महायशाः । लोकचूडामणिर्वीरः चण्डसत्यपराक्रमः ॥
व्यालकल्पोमहाकल्पोमहावृक्षःकलाधरः । अलङ्करिष्णुस्त्वचलोरोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः
आशुशब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः । असंसृष्टोऽतिथिःशक्रःप्रमाथी पापनाशनः
वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः । जप्यो जराधिशमनो लोहितश्च तनूनपात्
पृषदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा । निदाघस्तपनो मेघः पक्षः परपुरञ्जयः ॥
मुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः ।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥ १०७ ॥
अङ्गिरामुनिरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः । पावनःपुरुजिच्छक्रस्त्रिविद्यो नरवाहनः ॥
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः । तेजोनिधिर्ज्ञाननिधिर्विपाको विघ्नकारकः ॥
अधरोऽनुत्तरो ज्ञेयो ज्येष्ठो निश्रेयसालयः । शैलोनगस्तनुर्दोहो दानवारिररिन्दमः ॥
चारुधीर्जनकश्चारु विशल्यो लोकशल्यकृत् । चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥१११
आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः । बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥
न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो निरञ्जनः । सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः ।
पिङ्गलाक्षोऽथ हर्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥ ११४ ॥
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकभृत् । पद्मासनः परंज्योतिः परावरपरंफलम् ॥
पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः । परावरज्ञो बीजेशः सुमुखः सुमहास्वनः ॥
देवासुरगुरुर्देवो देवदेवासुर नमस्कृतः । देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः ॥११७॥
देवादिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः । देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ॥ ११८ ॥
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः ।
ईड्योऽनीशः सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः ॥ ११९ ॥
विबुधाग्रवरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः । शिवज्ञानरतः श्रीमान् शिखिश्रीपर्वतप्रियः ॥
वज्रहस्तः सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः । ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ॥

नन्दीनन्दीश्वरोनग्नोनग्नव्रतधरःशुचिः। लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगावहः

स्ववशः सर्वशः स्वर्गस्वरः स्वरमयः स्वनः ।

बीजाध्यक्षो बीजकर्त्ता धनकृद्धर्मवर्द्धनः ॥ १२३ ॥

दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वरः । श्मशाननिलयस्तिष्यः सेतुरप्रतिमाकृतिः॥

लोकेसरस्फुटा लोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः । अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः

वीतदोषो क्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तहृत् । धूर्जटिः खण्डपरशुःसकलोनिष्फलोऽनघः

आधारः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः । पूर्णःपूरयिता पुण्यःसुकुमारसुलोचनः

सामगेयः प्रियकरः पुण्यकीर्त्तिरनामयः । मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ॥

जीवितान्तकरोनित्यो वसुरेतावसुप्रियः । सद्गतिःसत्कृतिःसक्तः कालकण्ठःकलाधरः

मानी मान्यो महाकालः सद्भूतिः सत्परायणः ।

चन्द्रः सञ्जीवनः शास्ता लोकगूढोऽमराधिपः ॥ १३० ॥

लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृत्तिभूषणः । अनपाय्यक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतांवरः॥

तेजोमयो द्युतिधरोलोकमायोऽग्रणीरणुः । शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः

ज्योतिर्मयोनिराकारोजगन्नाथोजलेश्वरः । तुम्बवीणीमहाकायोविशोकःशोकनाशनः

त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः शुद्धः शुद्धिरथाक्षजः ।

अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशाम्पतिः ॥ १३४ ॥

वरशीलोवरतुलो मानो मानधनो मयः । ब्रह्मा विष्णुःप्रजापालो हंसो हंसगतिर्यमः

वेधा धाता विधाता च अत्ता हर्त्ता चतुर्मुखः ।

कैलासशिखरावासी सर्वावासी सतां गतिः ॥ १३६ ॥

हिरण्यगर्भो हरिणः पुरुषः पूर्वजःपिता । भूतालयो भूतपतिर्भूतिदो भुवनेश्वरः ॥१३७

संयोगी योगविद् ब्रह्मा ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः । देवप्रियोदेवनाथो देवज्ञोदेवचिन्तकः

विषमाक्षः कलाध्यक्षो वृषाङ्को वृषवर्धनः । निर्मदो निरहङ्कारो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥

दर्पहा दर्पितो दृप्तः सर्वर्त्तुपरिवर्त्तकः । सहजिह्वः सहस्रार्चिः स्निग्धः प्रकृतिदक्षिणः ॥

भूतभव्य भवन्नाथः प्रभवो भ्रान्तिनाशनः । अर्थोऽनर्थोमहाकोशःपरकार्य्यैकपण्डितः

निकण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ।
सत्यवान् सात्त्विकः सत्यकीर्तिस्तम्भकृतागमः ॥ १४२ ॥
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणोऽनलः ॥ १४३ ॥
स्कन्धः स्कन्धरो धुर्य्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः । अपराजितः सर्वसहोविदग्धःसर्ववाहनः
अधृतः स्वधृतः साध्यः पूर्तमूर्तिर्यशोधरः । वराहशृङ्गधृतग्वागुर्बलवानेकनायकः ॥
श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेकधृक् । श्रीवल्लभशिवारम्भः शान्तभद्रः समञ्जसः ॥
भूशयोभूतिकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः । अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी कलावपुः
सत्यव्रतमहात्यागी निष्ठा शान्तिपरायणः । परार्थवृत्तिर्वरदो विविक्तः श्रुतिसागरः
अनिर्विण्णो गुणग्राही कलङ्काङ्कःकलङ्कहा । स्वभावरुद्रोमध्यस्थःशत्रुघ्नो मध्यनाशकः
शिखण्डी कवचीशूलीचण्डीमुण्डीचकुण्डली । मेखलीकवचीखड्गीमायीसंसारसारथिः
अमृत्युः सर्वदृक्सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्य्यवान्कार्य्यकोविदः ॥ १५१ ॥
वेद्यो वेदार्थविद्गोप्ता सर्वाचारो मुनीश्वरः । अनुत्तमोदुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः ॥
सुरेशः शरणं सर्वः शब्द ब्रह्म सतां गतिः । कालभक्षः कलङ्कारिःकङ्कणीकृतवासुकिः
महेष्वासोमहीभर्त्तानिष्कलङ्कोविशृङ्खलः । द्युमणिस्तरणिर्धन्यःसिद्धिदःसिद्धिसाधनः
निवृत्तः सम्वृतःशिल्पो व्यूढोरस्कोमहाभुजः । एकज्योतिर्निरातङ्कोनरोनारायणप्रियः
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः ।
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्त्तिरनाकुलः ॥ १५६ ॥
निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरविक्रमः । प्रशान्तबुद्धिरक्षुद्रःक्षुद्रहा नित्यसुन्दरः॥१५७
धैर्याग्र्यधुर्य्यो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः । परमार्थगुरुर्दृष्टिर्गुरुराश्रितवत्सलः ॥
रसो रसज्ञः सर्वज्ञः सर्वसत्त्वावलम्बनः ।

सूत उवाच

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ १५६ ॥

स्नापयामास च विभुः पूजयामास पङ्कजैः । परीक्षार्थं हरेः पूजा कमलेषु महेश्वरः ॥
गोपयामास कमलं तदेकं भुवनेश्वरः । हृतपुष्पो हरिस्तत्र किमिदं त्वभ्यचिन्तयत्
ज्ञात्वा स्वनेत्रमुद्धृत्यसर्वसत्त्वावलम्बनम् । पूजयामास भावेन नाम्नातेनजगद्गुरुम्
ततस्तत्र विभुर्दृष्ट्वा तथाभूतं हरो हरिम् । तस्मादवततारा ऽऽशुमण्डलात्पावकस्य च
कोटिभास्करसङ्काशं जटामुकुटमण्डितम् । ज्वालामालावृतंदिव्यंतीक्ष्णदंष्ट्रं भयङ्करम्
शूलटङ्कगदाचक्रकुतपाशधरं हरम् । वरदाभयहस्तञ्च द्वीपिचर्मोत्तरीयकम् ॥ १६५ ॥
इत्थम्भूतं तदा दृष्ट्वा भवं भस्मविभूषितम् । हृष्टो नमश्चकाराऽऽशु देवदेवं जनार्दनः
दुद्रुवुस्तं परिक्रम्य सेन्द्रा देवास्त्रिलोचनम् । चचाल ब्रह्मभुवनं चकम्पे च वसुन्धरा॥

ददाह तेजस्तच्छम्भोः प्रान्तं वै शतयोजनम् ।
अधस्ताच्चोर्ध्वतश्चैव हाहेत्यकृत भूतले ॥ १६८ ॥

तदाप्राहमहादेवः प्रहसन्निव शङ्करः । सम्प्रेक्ष्य प्रणयाद्विष्णुंकृताञ्जलिपुटं स्थितम् ॥
ज्ञातं मयेदमधुनादेवकार्य्यं जनार्दन ! । सुदर्शनाख्यं चक्रञ्च ददामि तव शोभनम् ॥
यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकभयङ्करम् । हिताय तव यत्नेन तव भावाय सुव्रत ! ॥

शान्तं रणाजिरे विष्णो देवानां दुःखसाधनम् ।
शान्तस्य चाऽस्त्रं शान्तः स्याच्छान्तेनाऽस्त्रेणकिम्फलम् ॥ १७२ ॥

शान्तस्यसमरेचास्त्रंशान्तिरेवतपस्विनाम् । योद्धुःशान्त्यावलच्छेदःपरस्यबलवृद्धिदः
देवैरशान्तैर्यद्रूपं मदीयं भावयाव्ययम् । किमायुधेनकार्य्यम्वै योद्धुं देवारिसूदन !॥
क्षमा युधि न कार्य्या वै योद्धुंदेवारिसूदन ! । अनागतेव्यतीतेचदौर्बल्येस्वजनोत्करे
अकालिके त्वधर्मे च अनर्थे वाऽरिसूदन ! । एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्य्यायुतसमप्रभम्
नेत्रञ्च नेता जगतां प्रभुर्वैपद्मसन्निभम् । तदाप्रभृति तं प्राहुः पद्माक्षमिति सुव्रतम् ॥
दत्त्वैनं नयनञ्चक्रं विष्णवेनीललोहितः । पस्पर्श च कराभ्यां वै सुशुभाभ्यामुवाच ह
वरदोऽहं वरश्रेष्ठ ! वरान्वरय चेप्सितान् । भक्त्यावशीकृतो नूनं त्वयाऽहं पुरुषोत्तम!
इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् । त्वयि भक्तिर्महादेव ! प्रसीद वरमुत्तमम् ॥

नान्यमिच्छामि भक्तानामार्त्तयो नास्ति यत्प्रभो ! ।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दयावाननुत्तरां भवः ॥ १८१ ॥
पस्पर्श च ददौ तस्मै श्रद्धां शीतांशुभूषणः । प्राह चैवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्
मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः । भविष्यसिनसन्देहोमत्प्रसादात्सुरोत्तम !
यदा सती दक्षपुत्री विनिन्द्यैव सुलोचना । मातरं पितरं दक्षं भविष्यति सुरेश्वरी
दिव्याहैमवती विष्णो! तदा त्वमपिसुव्रत ! । भगिनींतवकल्याणीदेवीहैमवतीमुमाम्
नियोगाद्ब्रह्मणः साध्वीं प्रदास्यसि ममैव ताम् ।
मत्सम्बन्धी च लोकानां मध्ये पूज्यो भविष्यसि ॥ १८६ ॥
मां दिव्येनच भावेन तदाप्रभृति शङ्करम् । द्रक्ष्यसे च प्रसन्नेन मित्रभूतमिवाऽऽत्मना
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे रुद्रो भगवान्नीललोहितः । जनार्दनोऽपिभगवान्देवानामपिसन्निधौ
अयाचत महादेवं ब्रह्माणं मुनिभिःसमम् । मया प्रोक्तं स्तवं दिव्यंपद्मयोने !सुशोभनम्
यःपठेच्छृणुयाद्वापिश्रावयेद्वाद्विजोत्तमान्।प्रतिनाम्निहिरण्यस्यतद्दत्तस्यफलमाप्नुयात्
अश्वमेधसहस्रेण फलं भवति तस्य वै । घृताद्यैः स्नापयेद्रुद्रं स्थाल्या वै कलशैः शुभैः
नाम्नां सहस्रेणाऽनेनश्रद्धयाशिवमीश्वरम् । सोऽपि यज्ञसहस्रस्य फलंलब्ध्वासुरेश्वरैः
पूज्योभवति रुद्रस्य प्रीतिर्भवतितस्य वै । तथाऽस्त्वितितथा प्राह पद्मयोनेर्जनार्दनम्
जग्मतुः प्रणिपत्यैनं देवदेवं जगद्गुरुम् । तस्मान्नाम्नां सहस्रेण पूजयेदनघो द्विजाः॥
जपेन्नाम्नां सहस्रञ्च स याति परमां गतिम् ॥ १९५ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विष्णुचक्रलाभो नामाऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

नवनवतितमोऽध्यायः

शिवेन दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सम्भवः सूचितोदेव्यास्त्वयासूत! महामते !। सविस्तरं वदस्वाद्यसतीत्वेचयथातथम्

मेनाजत्वं महादेव्या दक्षयज्ञविमर्दनम् । विष्णुना च कथं दत्ता देवदेवाय शम्भवे ॥
कल्याणंवाकथंतस्यवक्तुमर्हसिसाम्प्रतम् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः
सम्भवञ्च महादेव्याः प्राह तेषां महात्मनाम् ।

सूत उवाच

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं दण्डिने तत्सुविस्तरम् ॥ ४ ॥
युष्माभिर्वै कुमाराय तेन व्यासाय धीमते ॥ तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवदामि सुविस्तरम्
वचनाद्वो महाभागाः ! प्रणम्योमां तथा भवम् ।
सा भगाख्या जगद्धात्री लिङ्गमूर्तेस्त्रिवेदिका ॥ ६ ॥
लिङ्गस्तु भगवान्द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमाः ।
लिङ्गमूर्त्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरि स्थितः ॥ ७ ॥
लिङ्गवेदिसमायोगादर्द्धनारीश्वरोऽभवत् । ब्रह्माणं विदधे देवमग्रे पुत्रञ्चतुर्मुखम् ॥८॥
प्राहिणोतिस्मतस्यैवज्ञानंज्ञानमयोहरः । विश्वाधिकोऽसौ भगवानर्द्धनारीश्वरोविभुः
हिरण्यगर्भं तं देवो जायमानमपश्यत । सोऽपि रुद्रं महादेवं ब्रह्माऽपश्यत शङ्करम् ॥
तं दृष्ट्वा संस्थितं देवमर्द्धनारीश्वरं प्रभुम् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं वारिजोद्भवः ॥
विभजस्वेति विश्वेशं विश्वात्मानमजो विभुः ।
ससर्ज देवीं वामाङ्गात्पत्नीञ्चैवाऽऽत्मनः समाम् ॥ १२ ॥
श्रद्धाह्यस्य शुभा पत्नी ततः पुंसः पुरातनी । सैवाऽऽज्ञयाविभोर्देवी दक्षपुत्री बभूव ह
सतीसञ्ज्ञातदा सा वै रुद्रमेवाश्रिता पतिम् । दक्षं विनिन्द्यकालेनदेवीमैना ह्यभूत्पुनः
नारदस्यैव दक्षोऽपि शापादेवं विनिन्द्य च । अवज्ञादुर्मदो दक्षो देवदेवमुमापतिम् ॥
अनादृत्यकृतिंज्ञात्वासतीदक्षेणतत्क्षणात् । भस्मीकृत्वाऽऽत्मनोदेहंयोगमार्गेणसापुनः
बभूव पार्वती देवी तपसा च गिरेः प्रभोः । ज्ञात्वैतद्भगवान्भर्गो ददाह रुषितः प्रभुः॥
दक्षस्य विपुलं यज्ञं च्यावनेर्वचनादपि । च्यवनस्य सुतो धीमान्दधीच इति विश्रुतः॥
विजित्य विष्णुं समरे प्रसादात्त्र्यम्बकस्य च ।
विष्णुना लोकपालांश्च सशाप च मुनीश्वरः ॥ १६ ॥

रुद्रस्य क्रोधजेनैव वह्निना हविषा सुराः । विनाशो वै क्षणादेव मायया शङ्करस्य वै
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे देवीसम्भवो नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः

शिवेन दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

विजित्य विष्णुना सार्धं भगवान्परमेश्वरः । सर्वान्दधीचवचनात्कथं भेजे महेश्वरः॥

सूत उवाच

दक्षयज्ञे सुविपुले देवान्विष्णुपुरोगमान् । ददाह भगवान्रुद्रः सर्वान्मुनिगणानपि ॥
रुद्रो नाम गणस्तेन प्रेषितः परमेष्ठिना । विप्रयोगेन देव्या वै दुःसहेनैव सुव्रताः ! ॥
सोऽसृजद्वीरभद्रश्च गणेशान्रोमजांञ्छुभान् । गणेश्वरैः समारुह्य रथं भद्रः प्रतापवान्
गन्तुश्चक्रे मतिं यस्य सारथिर्भगवानजः । गणेश्वराश्च ते सर्वे विविधायुधपाणयः ॥
विमानैर्विश्वतोभद्रैस्तमन्वयुरथो सुराः । हिमवच्छिखरे रम्ये हेमशृङ्गे सुशोभने ॥६॥
यज्ञवाटस्तथातस्य गङ्गाद्वारसमीपतः । तद्देशे चैव विख्यातं शुभं कनखलं द्विजाः !॥
दग्धुं वै प्रेषितश्चाऽसौभगवान् परमेष्ठिना । तदोत्पातो बभूवाऽथ लोकानांभयशंसनः
पर्वताश्च व्यशीर्य्यन्त प्रचकम्पे वसुन्धरा । मरुतश्चाऽप्यघूर्णन्त चुक्षुभे मकरालयः॥९

अग्नयो नैव दीप्यन्ति न च दीप्यति भास्करः ।
ग्रहाश्च न प्रकाश्यन्ते न देवा न च दानवाः ॥ १० ॥

ततः क्षणात्प्रविश्यैव यज्ञवाटं महात्मनः । रोमजैः सहितो भद्रःकालाग्निरिव चाऽपरः
उवाच भद्रो भगवान्दक्षञ्चाऽमिततेजसम् । सम्पर्कादेव दक्षाद्यमुनीन्देवान्पिनाकिना
दग्धुं सम्प्रेषितश्चाऽहं भवन्तं समुनीश्वरैः । इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुङ्गवः॥
गणेश्वराश्चसंक्रुद्धायूपानुत्पाट्यचिक्षिपुः । प्रस्तोत्रा सह होत्रा च दग्धश्चैवगणेश्वरैः॥

गृहीत्वा गणपाः सर्वान्गङ्गास्रोतसि चिक्षिपुः।
वीरभद्रो महातेजाः शक्रस्योद्यच्छतः करम्॥ १५॥

व्यष्टम्भयद्दीनात्मातथान्येषांदिवौकसाम्। भगस्यनेत्रे चोत्पाट्यकरजाग्रेणलीलया
निहत्य मुष्टिनादं तान्पूष्णश्चैवं न्यपातयत्। तथा चन्द्रमसंदेवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया
घर्षयामास भगवान्वीरभद्रः प्रतापवान्। चिच्छेद च शिरस्तस्य शक्रस्यभगवान्प्रभोः
वह्नेर्हस्तद्वयं छित्वा जिह्वामुत्पाट्यलीलया। जघानमूर्ध्नि पादेन वीरभद्रो महाबलः॥
यमस्य दण्डं भगवान्प्रचिच्छेद स्वयंप्रभुः। जघान देवमीशानं त्रिशूलेन महाबलम्॥
त्रयस्त्रिंशत्सुरानेवं विनिहत्याऽप्रयत्नतः। त्रयश्च त्रिशतं तेषां त्रिसाहस्रञ्च लीलया॥

त्रयश्चैव सुरेन्द्राणां जघान च मुनीश्वरान्।
अन्यांश्च देवान्देवोऽसौ सर्वान्युद्धाय संस्थितान्॥ २२॥

जघान भगवान्रुद्रः खड्गमुष्ट्यादिसायकैः। अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्यमूर्च्छितः
युयोध भगवांस्तेन रुद्रेण सह माधवः। तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥

विष्णोर्योगबलात्तस्य दिव्यदेहाः सुदारुणाः॥ २५॥

शङ्खचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे। तान्सर्वानपि देवोऽसौ नारायणसमप्रभान्
निहत्य गदया विष्णुं ताडयामास मूर्द्धनि। ततश्चोरसि तं देवं लीलयैव रणाजिरे॥
पपात च तदा भूमौ विसञ्ज्ञः पुरुषोत्तमः। पुनरुत्थाय तं हन्तुञ्चक्रमुद्यम्य स प्रभुः॥
क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् तिष्ठत्पुरुषर्षभः। तस्य चक्रञ्च यद्रौद्रं कालादित्यसमप्रभम्॥
व्यष्टम्भयद्दीनात्माकरस्थं न चचाल सः। अतिष्ठत्स्तम्भितस्तेन शृङ्गवानिवनिश्चलः

त्रिभिश्च धर्षितं शार्ङ्गं त्रिधाभूतं प्रभोस्तदा।
शार्ङ्गकोटिप्रसङ्गाद्वै चिच्छेद च शिरः प्रभोः॥ ३१॥

छिन्नञ्च निपपाताऽऽशु शिरस्तस्य रसातले। वायुना प्रेरितश्चैव प्राणजेनपिनाकिना
प्रविवेश तदाचैव तदीयाहवनीयकम्। तत्प्रविध्वस्तकलशं भग्नयूपं सतोरणम्॥३३॥
प्रदीपितमहाशालं दृष्ट्वा यज्ञोऽपि दुद्रुवे। तं तदा मृगरूपेण धावन्तं गगनम्प्रति॥३४
वीरभद्रःसमाधायविशिरस्कमथाऽकरोत्। ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपञ्च जगद्गुरुम्

अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्रं मुनीश्वरम् । मुनिमङ्गिरसञ्चैव कृष्णाश्वञ्च महाबलः॥३६॥
जघान मूर्ध्निपादेन दक्षञ्चैवयशस्विनम् । चिच्छेदचशिरस्तस्यददाहाग्नौ द्विजोत्तमाः!
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च । निकृत्यकराग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ॥
तस्थौ श्रियावृतो मध्ये प्रेतस्थाने यथाभवः । एतस्मिन्नेवकालेतु भगवान्पद्मसम्भव-
भद्रमाह महातेजाः प्रार्थयन्प्रणतः प्रभुः । अलं क्रोधेन वै भद्र ! नष्टाश्चैव दिवौकसः॥
प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैः सह सुव्रत ! । सोऽपि भद्रः प्रभावेण ब्रह्मणः परमेष्ठिनः
शमं जगाम शनकैः शान्तस्तस्थौ तदाज्ञया । देवोऽपि तत्र भगवानन्तरिक्षे वृषध्वजः
सगणः सर्वदः शर्वः सर्वलोकमहेश्वरः । प्रार्थितश्चैव देवेन ब्रह्मणा भगवान् भवः ॥
हतानाञ्च तदा तेषां प्रददौ पूर्ववत्तनुम् । इन्द्रस्य च शिरस्तस्य विष्णोश्चैवमहात्मनः
दक्षस्य च मुनीन्द्रस्य तथाऽन्येषां महेश्वरः । वागीश्याश्चैव नासाग्रं देवमातुस्तथैवच

नष्टानां जीवितञ्चैव वराणि विविधानि च ।

दक्षस्य ध्वस्तवक्त्रस्य शिरसा भगवान् प्रभुः ॥ ४६ ॥

कल्पयामासवैवक्त्रं लीलयाच महान्भवः । दक्षोऽपिलब्धसञ्ज्ञश्चसमुत्थायकृताञ्जलिः
तुष्टाव देवदेवेशं शङ्करं वृषभध्वजम् । स्तुतस्तेन महातेजाः प्रदाय विविधान्वरान् ॥
गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाऽक्लिष्टकर्मणे । देवाश्च सर्वे देवेशं तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥
नारायणश्च भगवान् तुष्टाव च कृताञ्जलिः । ब्रह्मा च मुनयः सर्वे पृथक्पृथगजोद्भवम्
तुष्टुवुर्देवदेवेशं नीलकण्ठं वृषध्वजम् । तान्देवाननुगृह्यैव भवोऽप्यन्तरधीयत ॥५१ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवेनदक्षयज्ञविध्वंसनो नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मदनदहनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं हिमवतः पुत्री बभूवाऽम्बा सती शुभा । कथं वा देवदेवेशमवाप पतिमीश्वरम्

सूत उवाच

सा मेना तनुमाश्रित्य स्वेच्छयैव वराङ्गना । तदा हैमवती जज्ञे तपसा च द्विजोत्तमाः
जातकर्मादिकाः सर्वाश्चकार च गिरीश्वरः । द्वादशे च तदा वर्षे पूर्णे हैमवती शुभा
तपस्तेपे तया सार्धमनुजा च शुभानना । अन्या च देवीह्यनुजा सर्वलोकनमस्कृता
ऋषयश्च तदा सर्वे सर्वलोकमहेश्वरीम् । तुष्टुवुस्तपसा देवीं समावृत्य समन्ततः ॥
ज्येष्ठा ह्यपर्णा ह्यनुजा चैकपर्णा शुभानना । तृतीया च वरारोहा तथा चैवैकपाटला
तपसा च महादेव्याः पार्वत्याः परमेश्वरः । वशीकृतो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः ॥७॥
एतस्मिन्नेव काले तु तारको नाम दानवः । तारात्मजो महातेजा बभूव दितिनन्दनः

तस्य पुत्रास्त्रयश्चाऽपि तारकाक्षो महासुरः ।
विद्युन्माली च भगवान् कमलाक्षश्च वीर्य्यवान् ॥ ९ ॥

पितामहस्तथा चैषां तारो नाममहाबलः । तपसा लब्धवीर्य्यश्च प्रसादाद्ब्रह्मणःप्रभो
सोऽपि तारोमहातेजास्त्रैलोक्यंसचराचरम् । विजित्य समरेपूर्वंविष्णुञ्चजितवानसौ
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु दिवारात्रमविश्रमम् ॥
सरथं विष्णुमादाय चिक्षेप शतयोजनम् । तारेण विजितः संख्ये दुद्राव गरुडध्वजः
तारो वरान् शतगुणं लब्ध्वा शतगुणं बलम् । पितामहाज्जगत्सर्वमवाप दितिनन्दनः
देवेन्द्रप्रमुखाञ्जित्वा देवान्देवेश्वरेश्वरः । वारयामास तैर्देवान सर्वलोकेषु मायया ॥

देवताश्च सहेन्द्रेण तारकाद् भयपीडिताः ।
न शान्ति लेभिरे शूराः शरणं वा भयार्दिताः ॥ १६ ॥

तदाऽमरपतिः श्रीमान् सन्निपत्यामरप्रभुः । उवाचाऽङ्गिरसं देवो देवानामपिसन्निधौ
भगवंस्तारको नाम तारजो दानवोत्तमः । तेन सन्निहता युद्धे वत्सा गोपतिनायथा
भयात्तस्मान्महाभाग ! बृहद्युद्धे बृहस्पते !। अनिकेता भ्रमन्त्येते शकुन्ता इव पञ्जरे॥
अस्माकं यान्यमोघानिआयुधान्यङ्गिरोवर !। तानि मोघानिजायन्तेप्रभावादमरद्विषः
दशवर्षसहस्राणि द्विगुणानि बृहस्पते ! । विष्णुना योधितोयुद्धे तेनाऽपि नचसूदितः
यस्तेनानिर्जितो युद्धेविष्णुनाप्रभविष्णुना । कथमस्मद्विधैस्तस्य स्थास्यतेसमरेऽग्रतः

एवमुक्तन्तु शक्रेणजीवःसार्धंसुराधिपैः । सहस्राक्षेणचविभुं सम्प्राप्याऽऽहकुशध्वजम्

सोऽपि तस्य मुखात् श्रुत्वा प्रणयात्प्रणतास्तिहा ।
देवैरशेषैः सेन्द्रैस्तु जीवमाह पितामहः ॥ २४ ॥
जाने वोऽस्ति सुरेन्द्राणां तथापि शृणु साम्प्रतम् ।
विनिन्द्य दक्षं या देवी सती रुद्राङ्गसम्भवा ॥ २५ ॥

उमा हैमवती जज्ञे सर्वलोकनमस्कृता । तस्याश्चैवेह रूपेण यूयं देवाः सुरोत्तमाः ॥ विभोर्यतध्वमाकष्टुं रुद्रस्याऽस्य मनोमहत् । तयोर्योगेनसम्भूतःस्कन्दःशक्तिधरःप्रभुः षडास्यो द्वादशभुजः सेनानीःपावकिःप्रभुः । स्वाहेयः कार्तिकेयश्चगाङ्गेयःशरधामजः देवः शाखो विशाखश्च नैगमेशश्चवीर्यवान् । सेनापतिःकुमाराख्यः सर्वलोकनमस्कृतः लीलयैव महासेनः प्रबलं तारकासुरम् । बालोऽपिविनिहत्यैको देवान्सन्तारयिष्यति एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना । बृहस्पतिस्तथा सेन्द्रैर्देवैर्देवं प्रणम्य तत् ॥ मेरोः शिखरमासाद्य स्मरं सस्मार सुव्रतः । स्मरणाद्देवदेवस्य स्मरोऽपिसहभार्यया रत्या समं समागम्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः । सशक्रमाहतंजीवंजगज्जीवोद्विजोत्तमाः!

स्मृतो यद्भवता जीव ! सम्प्राप्तोऽहं तवाऽन्तिकम् ।
ब्रूहि यन्मे विधातव्यं तमाह सुरपूजितः ॥ ३४ ॥

तमाह भगवान् शक्रःसम्भाव्यमकरध्वजम् । शङ्करेणाऽम्बिकामद्यसंयोजययथासुखम् तया स रमते येन भगवान् वृषभध्वजः । तेन मार्गेण मार्गस्व पत्न्यारत्याऽनया सह सोऽपितुष्टोमहादेवःप्रदास्यतिशुभाङ्गतिम् । विप्रयुक्तस्तयापूर्वंलब्ध्वातांगिरिजामुमाम् एवमुक्तो नमस्कृत्य देवदेवं शचीपतिम् । देवदेवाश्रमं गन्तुं मतिश्चक्रे तया सह ॥३८ गत्वा तदाश्रमे शम्भोः सह रत्या महाबलः । वसन्तेन सहायेन देवं योक्तुमनाभवत् ततः सम्प्रेक्ष्य मदनं हसन्देवस्त्रियम्बकः । नयनेन तृतीयेन सावज्ञं तमवैक्षत ॥ ४० ॥ ततोऽस्य नेत्रजोवह्निः मदनं पार्श्वतःस्थितम् । अदहत्तत्क्षणादेव ललाप करुणं रतिः रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः । कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य च॥ अमूर्तोऽपि ध्रुवं भद्रे! कार्यं सर्वं पतिस्तव । रतिकाले ध्रुवं भद्रे! करिष्यतिन संशयः

यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवो महायशाः । शापाद्भृगोर्महातेजाःसर्वलोकहितायवै
तदा तस्य सुतो यश्चसपतिस्त्वेभविष्यति । सा प्रणम्य तदारुद्रं कामपत्नीशुचिस्मिता
जगाम मदनं लब्ध्वा वसन्तेन समन्विता ॥ ४६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे मदनदाहो नाम एकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

उमातपस्यावर्णनम्

सूत उवाच

तपसा च महादेव्याः पार्वत्या वृषभध्वज !। प्रीतश्चभगवान्शर्वो वचनाद्ब्रह्मणस्तदा
हिताय चाऽऽश्रमाणाञ्च क्रीडार्थंभगवान्भवः । तदा हैमवतीं देवीमुपयेमे यथाविधि
जगाम स स्वयंब्रह्मा मरीच्याद्यैर्महर्षिभिः । तपोवनं महादेव्याः पार्वत्याः पद्मसम्भवः
प्रदक्षिणीकृत्य च तां देवींसजगतोऽरणीम् । किमर्थंतपसालोकान्सन्तापयसिशैलजे !

त्वया सृष्टं जगत्सर्वं मातस्त्वं मा विनाशय ।

त्वं हि सन्धारयेल्लोकानिमान्सर्वान्स्वतेजसा ॥ ५ ॥

सर्वदेवेश्वरः श्रीमान्सर्वलोकपतिर्भवः । यस्य वै देवदेवस्य वयं किङ्करवादिनः ॥ ६॥
स एव परमेशानः स्वयञ्चवरयिष्यति । वरदे! येन सृष्टाऽसिन विना यस्त्वयाऽम्बिके
वर्त्ततेनाऽत्रसन्देहस्तवभर्त्ता भविष्यति । इत्युक्त्वातां नमस्कृत्यमुहुःसम्प्रेक्ष्यपार्वतीम्
गते पितामहे देवोभगवान्परमेश्वरः । जगामाऽनुग्रहं कर्त्तुं द्विजरूपेण चाऽऽश्रमम् ॥
सा च दृष्ट्वा महादेवं द्विजरूपेण संस्थितम् । प्रतिभावैः प्रभुंज्ञात्वाननामवृषभध्वजम्
सम्पूज्य वरदं देवं ब्राह्मणच्छद्मनागतम् । तुष्टाव परमेशानं पार्वती परमेश्वरम् ॥११॥

अनुगृह्य तदा देवीमुवाच प्रहसन्निव ।

कुलधर्माश्रयं रक्षन्भूधरस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

क्रीडार्थश्च सतां मध्ये सर्वैर्देवपतिर्भवः । स्वयंवरेमहादेवि ! तव दिव्ये सुशोभने ॥
आस्थायरूपंयत्सौम्यंसमेष्येऽहसह त्वया । इत्युक्तवातांसमालोक्यदेवोदिव्येनचक्षुषा
जगामेष्टं तदा दिव्यं स्वपुरं प्रययौ च सा । दृष्ट्वा हृष्टस्तदादेवीं मेनया तुहिनाचलः

आलिङ्ग्याऽऽघ्राय सम्पूज्य पुत्रीं साक्षात्तपस्विनीम् ।
दुहितुर्देवदेवेन न जानन्नभिमन्त्रितम् ॥ १६ ॥

स्वयम्बरंतदादेव्याःसर्वलोकेष्वघोषयत् । अथब्रह्माचभगवान्विष्णुःसाक्षाज्जनार्दनः ॥
शुक्रश्चभगवान्वह्निर्भास्करो भग एवच । त्वष्टाऽर्यमा विवस्वांश्च यमो वरुण एवच
वायुः सोमस्तथेशानोरुद्राश्चमुनयस्तथा । अश्विनौद्वादशादित्यागन्धर्वागरुडस्तथा॥

यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किं पुरुषोरगाः ।
समुद्राश्च नदा वेदा मन्त्रास्तोत्रादयः क्षणाः ॥ २० ॥

नागाश्च पर्वताः सर्वे यज्ञाः सूर्य्यादयो ग्रहाः । त्रयस्त्रिंशच्च देवानां त्रयश्च त्रिशतंतथा
त्रयश्च त्रिसहस्रञ्च तथाऽन्ये बहवः सुराः । जग्मुर्गिरीन्द्रपुर्य्यास्तु स्वयंवरमनुत्तमम्
अथ शैलसुता देवी हैममारुह्य शोभनम् । विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलङ्कृतम् ॥
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिः सर्वाभरणभूषितैः । गन्धर्वसिद्धैर्विविधैः किन्नरैश्च सुशोभनैः
बन्दिभिस्तूयमाना च स्थिता शैलसुता तदा । सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितञ्चाऽवहत्तथा

मालिनी गिरिपुर्य्यास्तु सन्ध्या पूर्णेन्दुमण्डलम् ।
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्च सम्वृता ॥ २६ ॥

मालां गृह्य जया तस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम् । विजया व्यजनंगृह्यस्थितादेव्यासमीपगा
मालां प्रगृह्य देव्यान्तु स्थितायां देवसंसदि । शिशुर्भूत्वामहादेवः क्रीडार्थवृषभध्वजः
उत्सङ्गतलसंसुप्तोबभूव भगवान्भवः । अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्या उत्सङ्गवर्त्तिनम् ॥
कोऽयमत्रेति सम्मन्त्य चुक्षुभुश्च समागताः । वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्य वृत्रहा ॥
स बाहुरुद्यमस्तस्य तथैव समुपस्थितः । स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन लीलया ॥
वज्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहुञ्चालयितुंतथा । वह्निः शक्तिं तथा क्षेप्तुं नशशाकतथास्थितः
यमोऽपि दण्डं खड्गञ्च निर्ऋतिर्मुनिपुङ्गवाः ! वरुणो नागपाशञ्चध्वजयष्टिं समीरणः

सोमो गदां धनेशश्च दण्डं दण्डभृतां वरः ।
ईशानश्च तथा शूलं तीव्रमुद्यम्य संस्थितः ॥ ३४ ॥

रुद्राश्च शूलमादित्या मुशलं वसवस्तथा । मुद्गरं स्तम्भिताः सर्वे देवेनाशु दिवौकसः
स्तम्भिता देवदेवेन तथान्येच दिवौकसः । शिरः प्रकम्पयन्विष्णुश्चक्रमुद्यम्यसंस्थितः
तस्याऽपि शिरसो बालः स्थिरत्वंप्रचकार ह । चक्रं क्षेप्तुं न शशाकबाहुंश्चालयितुंनच
पूषादन्तान्दशन्दन्तैर्बालमैक्षत मोहितः । तस्यापि दशनाः पेतुर्दृष्टमात्रस्य शम्भुना ॥
बलं तेजश्च योगञ्च तथैवाऽस्तम्भयद्विभुः । अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सुसुरेष्वपि
ब्रह्मा परमसंविग्नो ध्यानमास्थायशङ्करम् । बुबुधे देवमीशानमुमोत्सङ्गे तमास्थितम्
स बुद्ध्वा देवमीशानं शीघ्रमुत्थायविस्मितः । ववन्दे चरणौशम्भोरस्तुवच्चपितामहः
पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः । स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्त्तकः

बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानां अहङ्कारस्त्वमीश्वरः ।
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च त्वमेवेश प्रवर्त्तकः ॥ ४३ ॥

तवाऽहं दक्षिणाद्धस्तात्सृष्टः पूर्वं पुरातनः । वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणःप्रभुः
इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण ! । पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ॥
नमस्तुभ्यं महादेव! महादेव्यै नमोनमः । प्रसादात्तव देवेश! नियोगाच्च मया प्रजाः ॥
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः । कुरुप्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे

सूत उवाच

विज्ञाप्यैवं तदा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम् । संस्तम्भितांस्तदा तेन भगवानाह पद्मजः ॥
मूढास्थ देवताः सर्वा नैव बुध्यत शङ्करम् । देवदेवमिहाऽऽयान्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥
गच्छध्वं शरणं शीघ्रं देवाः शक्रपुरोगमाः । सनारायणकाः सर्वे मुनिभिःशङ्करं प्रभुम्
सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमीश्वरम् । अनया हैमवत्या च प्रकृत्या सह सत्तमम् ॥
तत्र ते स्तम्भितास्तेन तथैव सुरसत्तमाः । प्रणेमुर्मनसा सर्वे सनारायणकाः प्रभुम्
अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवस्त्रियम्बकः । यथापूर्वं चकाराऽऽशु वचनाद्ब्रह्मणः प्रभुः॥
तत एवं प्रसन्ने तु सर्वदेवनिवारणम् । वपुश्चकार देवेशस्त्र्यक्षं परममद्भुतम् ॥ ५४ ॥

तेजसा तस्य देवास्तेसेन्द्रचन्द्रदिवाकराः । सब्रह्मका ससाध्याश्चसनारायणकास्तथा
सयमाश्च सरुद्राश्च चक्षुरप्रार्थयन्विभुम् ।
तेभ्यश्च परमं चक्षुः सर्वदृष्टौ च शक्तिमत् ॥ ५६ ॥
रुद्रावम्बापतिः शर्वो भवान्याश्चवलम्यच । लब्ध्वाचक्षुस्तदादेवाइन्द्रविष्णुपुरोगमाः
सब्रह्मकाः सशक्राश्च तमपश्यन्महेश्वरम् । ब्रह्माद्या नेमिरे तूर्णं भवानी च गिरीश्वरः
मुनयश्च महादेवं गणेशाः शिवसम्मताः । ससर्जुःपुष्पवृष्टिश्च खेचराः सिद्धचारणाः
देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुर्मुनयः प्रभुम् । जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाऽऽप्सरोगणाः
मुमुहुर्गणपाः सर्वे मुमोदाऽम्बाच पार्वती । तस्य देवी तदाहृष्टासमक्षंत्रिदिवौकसाम्
पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगन्धिनीम् ।
साधुसाध्विति सम्प्रोच्य तया तत्रैवचाऽर्चितम् ॥ ६२ ॥
सहदेव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः । सर्वे सब्रह्मका देवाः सयक्षोरगराक्षसाः
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे उमास्वयम्बरो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

शङ्करद्वारा शक्तिमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथ ब्रह्मा महादेवमभिवन्द्य कृताञ्जलिः । उद्वाहः क्रियतां देव ! इत्युवाच महेश्वरम्
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । यथेष्टमिति लोकेशं प्राह भूतपतिः प्रभुः ॥
उद्वाहार्थं महेशस्य तत्क्षणादेव सुव्रताः ! । ब्रह्मणा कल्पितं दिव्यं पुरं रत्नमयं शुभम्
अथादितिर्दितिः साक्षाद्दनुः कद्रुःसुकालिका । पुलोमासुरमाचैवसिंहिकाविनतातथा
सिद्धर्माया क्रिया दुर्गा देवी साक्षात्सुधा स्वधा ।
सावित्री वेदमाता च रजनी दक्षिणाद्युतिः ॥ ५ ॥

स्वाहा स्वधामतिर्बुद्धिर्ऋद्धिवृद्धि सरस्वती । राकाकुहू सिनीवालीदेवीअनुमतीतथा
धरणी धारणी वेला शची नारायणी तथा । एताश्चान्याश्चदेवानामातर पत्नयस्तथा

उद्वाह शङ्करस्येति जग्मु सर्वा मुदान्विता ।

उरगा गरुडा यक्षा गन्धर्वा किन्नरा गणा ॥ ८ ॥

सागरागिरयोमेघामासा सवत्सरास्तथा । वेदामन्त्रास्तथायज्ञास्तोमाधर्माश्चसर्वश
हुङ्कार प्रणवश्चैव प्रतिहारा सहस्रश । कोटिरप्सरसो दिव्यास्तासाञ्चपरिचारिका
याश्च सर्वेषु द्वीपेषु देवलोकेषु निम्नगा । ताश्च स्त्रीविग्रहा सर्वा सञ्जग्मुर्हृष्टमानसा
गणपाश्चमहाभागा सर्वलोकनमस्कृता । उद्वाह शङ्करस्येतितत्राऽऽजग्मुर्मुदान्विता ॥
अभ्ययु शङ्खवर्णाश्च गणकोट्यो गणेश्वरा । दशभि केकराक्षश्चविद्युतोऽष्टाभिरेवच

चतु षष्ट्या विशाखश्च नवभि पारयात्रिक ।

षड्भि सर्वान्तक श्रीमान्तथैव विकृतानन ॥ १४ ॥

ज्वालाकेशो द्वादशभि कोटिभिर्गणपुङ्गव । सप्तभि समद श्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेवच
पञ्चभिश्चकपालीश षड्भि सन्दारक शुभ । कोटिकोटिभिरेवेहकण्डक कुम्भकस्तथा
विष्टम्भोऽष्टाभिरेवेह गणप सर्वसत्तम । पिप्पलश्च सहस्रेण सन्नादश्च तथा द्विजा
आवेष्टनस्तथाऽष्टाभि॰ सप्तभिश्चन्द्रतापन । महाकेश सहस्रेण कोटीना गणपो वृत
कुण्डी द्वादशभिर्वीरस्तथा पर्वतक शुभ । कालश्च कालकश्चैव महाकाल शतेन वै

आग्निक शतकोट्या वै कोट्याऽग्निमुख एव च ।

आदित्यमूर्धा कोट्या च तथा चैव धनावह ॥ २० ॥

सन्नामश्चशतेनैवकुमुद कोटिभिस्तथा । अमोघ कोकिलश्चैवकोटिकोट्यासुमन्त्रका
काकपादोपर षष्ट्याषष्ट्यासन्तानक प्रभु । महाबलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च पिङ्गल ॥
नीलो नवत्या देवेश पूर्णभद्रस्तथैव च । कोटीनाञ्चैव सप्तत्याचतुर्वक्त्रो महाबल ॥
कोटिकोटिसहस्राणा शतैर्विंशतिभिवृता । तत्राजग्मुस्तथा देवास्ते सर्वे शङ्करभवम्
भूतकोटिसहस्रेण प्रथम कोटिभिस्त्रिभि । वीरभद्रश्चतु षष्ट्या रोमजाश्चैवकोटिभि
करणश्चैर्वविंशत्या नवत्या केवल शुभ । पञ्चाक्ष शतमन्युश्च मेघमन्युस्तथैव च ॥

काष्ठकूटश्चतुः षष्ट्या सुकेशोवृषभस्तथा । विरूपाक्षश्चभगवान्चतुःषष्ट्यासनातनः॥
तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्चसनातनः । सम्बर्त्तकस्तथाचैत्रो लकुलीशःस्वयम्प्रभुः
लोकान्तकश्च दीप्तास्यो तथा दैत्यान्तकः प्रभुः ।
मृत्युहृत्कालहा कालो मृत्युञ्जयकरस्तथा ॥ ३६ ॥
विषादो विषदश्चैव विद्युतःकान्तकः प्रभुः । देवो भृङ्गीरिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा
अशनिर्भासकश्चैवचतुःषष्ट्यासहस्रपात । एतेचान्ये च गणपा असंख्यातामहाबलाः
सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः । चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः । ब्रह्मेन्द्रविष्णुसङ्काशा अणिमादिगुणैर्वृताः ॥३३
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः । पातालचारिणश्चैव सर्वलोकनिवासिनः
तुम्बरुर्नारदो हाहा हूहूश्चैव तु सामगाः । रत्नान्यादाय वाद्यांश्च तत्राजग्मुस्तदापुरम्
ऋषयः कृत्स्नशस्तत्र देवगीतास्तपोधनाः । पुण्यान्वैवाहिकान्मन्त्रान् जपुर्हृष्टमानसाः
तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वतश्च समागमे । गिरिजां तामलङ्कृत्य स्वयमेव शुचिस्मिताम्
पुरं प्रवेशयामास स्वयमादाय केशवः । सदस्याह च देवेशं नारायणमजो हरिम् ॥
भवानग्रे समुत्पन्नो भवान्या सहदैवतैः । वामाङ्गादस्य रुद्रस्य दक्षिणाङ्गादहं प्रभो !
मन्मूर्त्तिस्तुहिनाद्रीशो यज्ञार्थ सृष्ट एव हि । एषा हैमवती जज्ञे मायया परमेष्ठिनः ॥
श्रौतस्मार्त्त प्रवृत्त्यर्थं मुद्वाहार्थमिहागतः । अतोऽसौजगतांधात्रीधाता तव ममापिच
अस्य देवस्य रुद्रस्य मूर्त्तिभिर्विहितं जगत् ।
क्ष्मावह्नि खेन्दुसूर्य्यात्मपवनात्मा यतो भवः ॥ ४२ ॥
तथापि तस्मैदातव्या वचनाच्च गिरेर्मम । एषा ह्यजा शुक्लकृष्णा लोहिताप्रकृतिर्भवान्
श्रेयोऽपि शैलराजेन सम्बन्धोऽयं तवाऽपि च ।
तव पाद्मे समुद्भूतः कल्पे नाभ्यम्बुजादहम् ॥ ४४ ॥
मदंशस्यास्य शैलस्य ममापि च गुरुर्भवान् ।

सूत उवाच

बाढमित्यजमाहासौ देवदेवो जनार्दनः ॥ ४५ ॥

देवाश्च मुनयः सर्वे देवदेवश्च शङ्करः । ततश्चोत्थाय विद्वान्स पद्मनाभः प्रणम्यताम्
पादौ प्रक्षाल्य देवस्य कराभ्यां कमलेक्षणः । अभ्युक्ष्य दात्मनो मूर्ध्नि ब्रह्मणश्च गिरेस्तथा
त्वदीयैषा विवाहार्थमेनजाह्यनुज्ञा मम । इत्युक्त्वा सोदकं दत्त्वा देवी देवेश्वरायताम्
स्वात्मानमपि देवाय सोदकं प्रददौ हरिः । अथ सर्वे मुनिश्रेष्ठाः सर्ववेदार्थपारगाः ॥
ऊचुर्दाता गृहीता च फलं द्रव्यं विचारतः । स्वयं देवो हरो नूनं मायया हि ततो जगत्
इत्युक्त्वा तं प्रणेमुश्च प्रीतिकण्टकितत्वचः । ससृजुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः । वेदाश्च मूर्त्तिमन्तस्ते प्रणेमुस्तं महेश्वरम् ॥ ८२

ब्रह्मणा मुनिभिः सार्धं देवदेवमुमापतिम् ।

देवोऽपि देवीमालोक्य सलज्जां हिमशैलजाम् ॥ ८३ ॥

न तृप्यत्यनवद्याङ्गीसा च देवं वृषध्वजम् । वरदोऽस्मीति तं प्राह हरिसोप्याहशङ्करम्
त्वयि भक्तिः प्रसीदेतिब्रह्माख्याञ्च ददौ तु सः । ततस्तु पुनरेवाह ब्रह्माविज्ञापयन्प्रभुम्
हविर्जुहोमि वह्नौ तु उपाध्यायपदे स्थितः । ददासिममयद्याज्ञां कर्त्तव्योह्यकृतो विधिः
तमाह शङ्करो देवः देवदेवो जगत्पतिः । यद्यदिष्टं सुरश्रेष्ठ ! तत्कुरुष्व यथेप्सितम् ॥
कर्त्तास्मि वचनं सर्वं देवदेव ! पितामह ! । ततः प्रणम्य हृष्टात्मा ब्रह्मालोकपितामहः
हस्तं देवस्य देव्याश्च युयोज परमः प्रभुः । ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥
श्रौतैरेतैर्महामन्त्रैर्मूर्त्तिमद्भिरुपस्थितैः । यथोक्तविधिना हुत्वा लाजानपि यथाक्रमम्

आनीतान् विष्णुना विप्रान् सम्पूज्य विविधैर्वरैः ।

त्रिश्च तं ज्वलनं देवं कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥ ९१ ॥

मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितैः सर्वदैवतैः । सुरैश्च मानवैः सर्वैः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥
ननाम भगवान्ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम् । ततः पाद्यं तयोर्दत्वा शम्भोराचमनं तथा ॥
मधुपर्कं तथागाञ्च प्रणम्यवपुनः शिवम् । अतिष्ठद्भगवान्ब्रह्मा देवैरिन्द्रपुरोगमैः ॥ ९४
भृग्वाद्या मुनयः सर्वे चाक्षतैस्तिलतण्डुलैः । सूर्य्यादयः समभ्यर्च्य तुष्टुवुर्वृषभध्वजम्
शिवं समाप्य देवोक्तवह्निमारोप्यचात्मनि । तथा समागतोरुद्रः सर्वलोकहिताय च

यः पठेच्छृणुयाद्वापि भवोद्वाहं शुचिस्मितः ।

श्रावयेद्वा द्विजान्शुद्धान्वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ ६७ ॥

स लब्ध्वा गाणपत्यञ्च भवेन सहमोदते । यत्राय कीर्त्यते विप्रैस्तावदास्ते तदा भव

तस्मात्सम्पूज्य विधिवत् कीर्त्तये नान्यथा द्विजा ! ।

उद्वाहे च द्विजेन्द्राणा क्षत्रियाणा द्विजोत्तमा ! ॥ ६६ ॥

कार्त्तनीयमिद सव भवोद्वाहमनुत्तमम् । कृतोद्वाहस्तदा देव्या हैमवत्या वृषध्वज ॥

सगणानन्दिनासाद्धसर्वदेवगणैवृत । पुरी वाराणसीदिव्या आजगाम महाद्युति ॥

अविमुक्त सुखासीन प्रणम्य वृषभध्वम् । अपृच्छत्क्षेत्रमाहात्म्य भवानी हर्षितानना

अथाहार्द्धेन्दुतिलक क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । अविमुक्तस्यमाहात्म्यविस्तराच्छवयतेनहि

वक्तुमयासुरेशानि ! ऋषिसङ्घाभिपूजितम् । किमयावर्ण्यते देवि ! ह्यविमुक्तफलोदय

पापिना यत्र मुक्ति स्यान्मृतानामेकजन्मना ।

अन्यत्र तु कृत पाप वाराणस्या व्यपोहति ॥ ७५ ॥

वाराणस्याकृतपापपैशाच्यनरकावहम् । कृत्वापापसहस्राणि पिशाचत्व वर नृणाम्

न तु शक्रसहस्रत्वस्वर्गेकाशीपुरींविना । यत्र त्रिविशिष्टपोदेवो यत्र विश्वेश्वरोविभु

ओङ्कारेश कृत्तिवासाभूतानानपुनर्भव । उक्त्वाक्षत्रस्यमाहात्म्यसङ्क्षेपाच्छशिशेखर

दर्शयामास चोद्यानपरित्यज्य गणेश्वरान् । तत्रैव भगवान्जातोगजवक्त्रोविनायक

दैत्याना विघ्नरूपार्थमविघ्नाय दिवौकसाम् ।

एतद्व कथित सव कथासर्वस्वमुत्तमम् ॥ ८० ॥

यथा श्रुत मया सर्वं प्रसादाद्व सुशोभनम् ॥ ८१ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे उमास्वयम्वरवर्णन नाम त्र्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

देवस्तुतिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं विनायकोजातो गजवक्त्रो गणेश्वरः । कथं प्रभावस्तस्यैवं सूत! वक्त मिहार्हेसि

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरेदेवाःसेन्द्रोपेन्द्रासमेत्यते । धर्मविघ्नंतदा कर्तुं दैत्यानाममवद्द्विजाः !
असुरायातुधानाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः । तामसाश्चतथा चान्ये राजसाश्चतथाभुवि
अविघ्नं यज्ञदानाद्यैःसमभ्यर्च्य महेश्वरम् । ब्रह्माणञ्च हरि विप्रा लब्धेप्सितवरा यतः

ततोऽस्माकं सुरश्रेष्ठाः सदा विजयसम्भवः ।

तेषां ततस्तु विघ्नार्थम् अविघ्नाय दिवौकसाम् ॥ ५ ॥

पुत्रार्थञ्चैव नारीणां नराणां कर्मसिद्धये । विघ्नेशं शङ्करं स्रष्टुं गणपं स्तोतुमर्हथ ॥
इत्युक्त्वान्योऽन्यमनघंतुष्टुवुःशिवमीश्वरम् । नमःसर्वात्मनेतुभ्यं सर्वज्ञानपिनाकिने
अनघाय विरिञ्चाय देव्याःकार्य्यार्थदायिने । अकायायार्थकायाय हरेः कायापहारिणे
कायान्तस्थामृताधारमण्डलावस्थिताय ते । कृतादिभेदकालाय कालवेगायते नम ॥
कालाग्निरुद्ररूपाय धर्माद्यष्टपदाय च । कालीविशुद्धदेहाय कालिका कारणाय ते ॥
कालकण्ठाय मुख्याय वाहनाय वराय ते । अम्बिकापतये तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥
हिरण्यरेतसे चैव नमः सर्वाय शूलिने । कपालदण्डपाशासिचर्माङ्कुशधराय च ॥१२॥
पतये हैमवत्याश्च हेमशुक्लाय ते नमः । पीतशुक्लाय रक्षार्थं सुराणां कृष्णवर्त्मने ॥१३

पद्मनाय महापद्मयज्ञिनां फलदाय च ।

पञ्चास्यफणिहाराय पञ्चाक्षरमयाय ते ॥ १४ ॥

पञ्चधा पञ्चकैवल्यदेवैरर्चितमूर्त्तये । पञ्चाक्षरदृशे तुभ्यं परात्परतराय ते ॥ १५ ॥
षोडशस्वरवज्राङ्ग वक्त्रायाक्षयरूपिणे । कादिपञ्चकहस्ताय चादिहस्ताय ते नमः ॥

टादिपादाय रुद्राय तादिपादाय ते नमः । पादिमेढ्राय यद्यङ्गधातुसप्तकधारिणे॥१७॥
सान्तात्मरूपिणे साक्षात्क्षदन्तक्रोधिने नमः । लवरैफहलाङ्गाय निरङ्गाय च ते नमः
सर्वेषामेव भूतानां हृदि निःस्वनकारिणे । भ्रुवोरन्ते सदा सद्भिर्दृश्यायात्यन्तभानवे ॥
भानुसोमाग्निनेत्राय परमात्मस्वरूपिणे । गुणत्रयोपरिस्थाय तीर्थपादाय ते नमः ॥
तीर्थं तत्त्वाय साराय तस्मादपि पराय ते ।
ऋग्यजुः सामवेदाय ओङ्काराय नमो नमः ॥ २१ ॥
ओङ्कारे त्रिविधं रूपमास्थायोपरिवासिने । पीताय कृष्णवर्णाय रक्तायात्यन्ततेजसे
स्थानापञ्चकसंस्थायपञ्चधाण्डबहिः क्रमात् । ब्रह्मणे विष्णवेतुभ्यंकुमाराय नमोनमः
अम्बायाः परमेशाय सर्वोपरिचराय ते । मूलसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्माय ते नमः ॥
सर्वसङ्कल्पशून्यायसर्वस्माद्रक्षितायते । आदिमध्यान्तशून्याय चित्संस्थाय नमोनमः
यमाग्निवायुरुद्राम्बुसोमशक्रनिशाचरैः ।
दिङ्मुखे दिङ्मुखे नित्यं सगणैः पूजिताय ते ॥ २६ ॥
सर्वेषु सर्वदा सर्वमार्गे सम्पूजिताय ते । रुद्राय रुद्रनीलाय कद्रुद्राय प्रचेतसे ॥
महेश्वराय धीराय नमः साक्षात् शिवाय ते ॥ २७ ॥
अथ शृणु भगवंस्तव च्छलेन कथितमजेन्द्रमुखैः सुरासुरेशैः ।
मखमदनयमाग्निदक्षयज्ञक्षपणविचित्रविचेष्टितं क्षमस्व ॥ २८ ॥

सूत उवाच

यः पठेत्तु स्तवं भक्त्या शक्राग्निप्रमुखैः सुरैः ।
कीर्त्तितं श्रावयेद्विद्वान् स याति परमां गतिम् ॥ २९ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे देवस्तुतिर्नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

विनायकोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

यदा स्थिताःसुरेश्वराःप्रणम्यचैवर्माश्वरम् । तदाम्बिकापतिर्भवःपिनाकधृक् महेश्वरम्
ददौ निरीक्षणंक्षणाद्भवःस तान् सुरोत्तमान् । प्रणेमुरादाङ्ग्रं सुरा मुदार्द्रलोचना॥२॥
भवः सुधामृतोपमैर्निरीक्षणैर्निरीक्षणात् । तदाह भद्रमस्तु वः सुरेश्वरान्महेश्वरः॥३॥
वरार्थमीश ! वीक्ष्यते सुराग्रहं गतास्त्विमे । प्रणम्य चाह वाक्पतिं निरीक्ष्य निर्भयः॥
सुरेतरादिभिः सदा ह्यविघ्नमर्थितोभवान् । समस्तकर्मसिद्धये सुरापकारकारिभिः
ततः प्रसीदताद्भवान्सुविघ्नकर्मकारणम् । सुरापकारकारिणामिहैष एव नो वरः ॥
ततस्तदा निशम्य वै पिनाकधृक् सुरेश्वरः । गणेश्वरं सुरेश्वरं वपुर्दधार सः शिवः ॥
गणेश्वराश्च तुष्टुवुः सुरेश्वरा महेश्वरम् । समस्तलोकसम्भवं भवार्तिहारिणं शुभम्
इभाननाश्रितं वरं त्रिशूलपाशधारिणम् । समस्तलोकसम्भवं गजाननं तदाम्बिका

ददुः पुष्पवर्षं हि सिद्धा मुनीन्द्रास्तथा खेचरा देवसङ्घास्तदानीम् ।
तदा तुष्टुवुश्चेष्टदं तं सुरेशाः प्रणेमुर्गणेशं महेशं वितन्द्राः ॥ १० ॥

तदातयोर्विनिर्गतः सुभैरवः स मूर्त्तिमान् । स्थितो ननर्त्त बालकः समस्तमङ्गलालयः
विचित्रवस्त्रभूषणैरलंकृतो गजाननः । महेश्वरस्य पुत्रकोऽभिवन्द्य तातमम्बिकाम् ॥
जातमात्रं सुतंदृष्ट्वाचकारभगवान्भवः । गजाननाय कृत्यांस्तु सर्वान् सर्वेश्वरः स्वयम्
आदायचकराभ्याञ्चसुसुखाभ्यांभवःस्वयम्।आलिङ्ग्याघ्रायमूर्धानंमहादेवोजगद्गुरुः
तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज !। देवानामुपकारार्थंद्विजानांब्रह्मवादिनाम्
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः कृतो येन महीतले । तस्य धर्मस्य विघ्नश्च कुरुस्वर्गपथे स्थितः ॥

अध्यापनञ्चाध्ययनं व्याख्यानं कर्मएव च ।
योऽन्यायतःकरोत्यस्मिंस्तस्यप्राणान् सदाहर ॥ १७ ॥

वर्णाच्च्युतानां नारीणां नराणांनरपुङ्गव !। स्वधर्मरहितानाञ्च प्राणानपहर प्रभो ! ॥
यान्नियस्त्वांसदाकालंपुरुषाश्चविनायक !। यजन्तितासांतेषाञ्चत्वत्साम्यंदातुमर्हसि
त्वं भक्तान्सर्वयत्नेन रक्ष बाल गणेश्वर !। यौवनस्थांश्च वृद्धांश्च इहामुत्र च पूजितः ॥
जगत्रयेऽत्र सर्वत्र त्वंहिविघ्नगणेश्वरः। सम्पूज्यो वन्दनीयश्च भविष्यसि न संशयः
माञ्च नारायणंवापि ब्रह्माणमपि पुत्रक !। यजन्ति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि

त्वामनभ्यर्च्यकल्याणं श्रौतंस्मार्तञ्चलौकिकम्।

कुरुते तस्य कल्याणंअकल्याणंभविष्यति ॥ २१ ॥

ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैःशूद्रैश्चैवगजानन !। संपूज्यःसर्वसिद्ध्यर्थंभक्ष्यभोज्यादिभिःशुभैः
त्वां गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्यजगत्रये। देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित्
अभ्यर्चयन्तियेलोकामानवास्तुविनायकम्। तेचार्चनीयाःशक्राद्यैर्भविष्यन्तिन संशयः
अजं हरिञ्चनां वापिशक्रमन्यान्सुरानपि। विघ्नैर्बाधयसित्वाञ्चेन्नार्चयन्तिफलार्थिनः
ससर्ज च तदा विघ्नगणं गणपतिः प्रभुः। गणैः सार्द्धंनमस्कृत्वाप्यतिष्ठत्तस्यचाग्रतः
तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिन्पूजयन्ति गणेश्वरम्। दैत्यानां धर्मविघ्नंचचकारासौगणेश्वरः
एतद्वः कथितं सर्वं स्कन्दाग्रजसमुद्भवम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा सुखीभवेत्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विनायकोत्पत्तिर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

शिवताण्डववर्णनम्

ऋषय ऊचुः

नृत्यारम्भःकथंशम्भो!किमर्थंवायथातथम्। वक्तुमर्हसिचास्माकंश्रुतस्कन्दाग्रजोद्भवः

सूत उवाच

दारुको सुरसम्भूतस्तपसा लब्धविक्रमः। सूदयामासकालाग्निरिव देवान्द्विजोत्तमान्

दारुकेण तदा देवास्ताडिताः पीडिता भृशम् । ब्रह्माणञ्च तथेशानं कुमारंविष्णुमेवच
यममिन्द्रमनुप्राप्य स्त्रीवध्य इति चासुरः । स्त्रीरूपधारिभिस्तुत्यैर्ब्रह्माद्यैर्युधिसंस्थिते
बाधितास्तेन ते सर्वे ब्रह्माणं प्राप्य वै द्विजाः ।
विज्ञाप्य तस्मै तत्सर्वं तेन सार्धमुमापतिम् ॥ ५ ॥
सम्प्राप्यतुष्टुवुः सर्वे पितामहपुरोगमाः । ब्रह्मा प्राप्य च देवेशं प्रणम्य बहुधा नतः
दारुणो भगवन् ! दारुःपूर्वं तेनविनिर्जिताः । निहत्य दारुकं दैत्यंस्त्रीवध्यंत्रातुमर्हसि
विज्ञप्तिं ब्रह्मणः श्रुत्वा भगवान्भगनेत्रहा । देवीमुवाच देवेशो गिरिजां प्रहसन्निव ॥
भवतींप्रार्थयाम्यद्य हिताय जगतां शुभे !! वधार्थं दारुकस्यास्य स्त्रीवध्यस्यवरानने !
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः । विवेश देहं देवस्य देवेशो जन्मतत्परा
एकेनांशेन देवेशं प्रविष्टा देवसत्तमम् । न विवेद तदा ब्रह्मा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥
गिरिजां पूर्ववच्छम्भोर्दृष्ट्वा पार्श्वस्थितां शुभाम् ।
मायया मोहितस्तस्याः सर्वज्ञोऽपि चतुर्मुखः ॥ १२ ॥
सा प्रविष्टा तनुं तस्य देवदेवस्य पार्वती । कण्ठस्तेन विषेणास्य तनुञ्चक्रे तदात्मनः
ताञ्च ज्ञात्वा तथाभूतां तृतीयेनेक्षणेन वै ।
ससर्ज कालीं कामारिः कालकण्ठीं कपर्दिनीम् ॥ १४ ॥
जाता यदा कालिमकालकण्ठी जाता तदानीं विपुला जयश्रीः ।
देवेतरोणामजयस्त्वसिद्ध्यातुष्टिर्भवान्याः परमेश्वरस्य ॥ १५ ॥
जातां तदानीं सुरसिद्धसङ्घा दृष्ट्वा भयाद् दुद्रुवुरग्निकल्पाम् ।
कालीं गरालङ्कृतकालकण्ठीं उपेन्द्रपद्मोद्भवशक्रमुख्याः ॥ १६ ॥
तथैव जातं नयनं ललाटे सितांशुलेखा च शिरस्युदग्रा ।
कण्ठे करालं निशितं त्रिशूलं करे करालश्च विभूषणानि ॥ १७ ॥
सार्द्धंदिव्याम्बरादेव्याःसर्वाभरणभूषिताः । सिद्धेन्द्रसिद्धाश्चतथापिशाचाजज्ञिरेपुनः॥
आज्ञयां दारुकं तस्याः पार्वत्याः परमेश्वरी । दानवं सूदयामास सूदयन्तंसुराधिपान्
संरम्भातिप्रसङ्गाद्धि तस्याः सर्वमिदंजगत् । क्रोधाग्निनाचविप्रेन्द्राः!सम्बभूवतदातुरम्

भवोऽपि बालरूपेण श्मशाने प्रेतसङ्कुले । रुरोद मायया तस्याःक्रोधाग्निं पातुमीश्वरः
तं दृष्ट्राबालमीशानांमाययातस्यमोहिता । उत्थाप्याघ्रायवक्षोजंस्तनंसाप्रददौद्विजाः!
स्तनजेनतदासार्द्धं कोपमस्याः पपौपुनः । क्रोधेनानेन वै बालःक्षेत्राणांरक्षकोऽभवत्
मूर्तयोऽष्टौ च तस्यापि क्षेत्रपालस्य धीमतः । एवंवैतेनबालेनकृतासाक्रोधमूर्च्छिता
कृतमस्याः प्रसादार्थं देवदेवेन ताण्डवम् । सन्ध्यायां सर्वभूतेन्द्रैः प्रेतैः प्रीतेन शूलिना
पीत्वा नृत्यामृतं शम्भोराकण्ठं परमेश्वरी । ननर्त सा योगिन्यःप्रेतस्थानेयथासुखम्
तत्र सब्रह्मकादेवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समन्ततः । प्रणेमुस्तुष्टुवुः कालीं पुनर्देवीञ्चपार्वतीम्
एवं सङ्क्षेपतःप्रोक्तं ताण्डवं शूलिनःप्रभोः । योगानन्देनचविभोस्ताण्डवञ्चेतिचापरे

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवताण्डवकथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

उपमन्युचरितवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

पुरोपमन्युना सूत ! गाणपत्यं महेश्वरात् । क्षीरार्णवःकथं लब्धोवक्तुमर्हसिसाम्प्रतम्

सूत उवाच

एवं कालीमुपालभ्य गते देवे त्रियम्बके । उपमन्युःसमभ्यर्च्य तपसा लब्धवान्फलम्
उपमन्युरिति ख्यातो मुनिश्च द्विजसत्तमाः !। कुमार इवतेजस्वीक्रीडमानोयदृच्छया
कदाचित्क्षीरमल्पञ्च पीतवान्मातुलाश्रमे । ईर्ष्यया मातुलसुतो ह्यपिबत्क्षीरमुत्तमम्
पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा प्रोवाचमातरम् । मातर्मातर्महाभागे!ममदेहितपस्विनि!
गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं नमाम्यहम् ।

सूत उवाच

उपलालितैवं पुत्रेणपुत्रमालिङ्ग्य सादरम् ॥ ६ ॥

स्मृत्वा स्मृत्वा पुनःक्षीरमुपमन्युरपिद्विजाः !। देहिदेहीतितामाह रोदमानोमहाद्युतिः
उञ्छवृत्त्यार्जितान्बीजान्स्वयं पिष्ट्वा च सा तदा ।
बीजपिष्टं तदालोक्या तोयेन कलभाषिणी ॥ ८ ॥
एह्येहि ममपुत्रेति सामपूर्वं ततः सुतम् । आलिङ्ग्यादाय दुखार्त्ता प्रददौ कृत्रिमंपयः
पीत्वा च कृत्रिमंक्षीरंमात्रादत्तंद्विजोत्तमाः ! । नैतत्क्षीरमितिप्राह मातरश्चातिविह्वलः
दुःखिता सा तदा प्राहसम्प्रेक्ष्याघ्रायमूर्धनि । सम्मार्ज्यनेत्रेपुत्रस्यकराभ्यां कमलायते
तटिनी रत्नपूर्णास्ते स्वर्गपातालगोचराः । भाग्यहीना नपश्यन्ति भक्तिहीनाश्चयेशिवे
राज्यंस्वर्गञ्चमोक्षञ्चभोजनंक्षीरसम्भवम् । न लभन्तेप्रियाण्येषां नो तुष्यतिसदाभवः
भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेव प्रसादजम् । अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमन्ति च ॥
क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं महादेवो न पूजितः ।
पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत ! ॥ १५ ॥
तदेव लभ्यं नान्यत्तु विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् । निशम्य वचनं मातुरुपमन्युर्महाद्युतिः ॥
बालोऽपि मातरं प्राह प्रणिपत्य तपस्विनीम् ।
त्यज शोकं महाभागे ! महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित् ॥ १७ ॥
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ।

सूत उवाच

तां प्रणम्यैव मुक्त्वा स तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ १८ ॥
तमाह माता सुशुभं कुर्विति सुतरां सुतम् । अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे सुदुस्तरम्
हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः । तपसा तस्य विप्रस्य विधूपितमभूज्जगत्
प्रणम्याहुस्तु तत्सर्वं हरये देवसत्तमाः । श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः
किमिदन्त्विति सञ्चिन्त्य ज्ञात्वातत्कारणञ्चसः । जगाम मन्दरं तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया
दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः । भगवन् ! ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरितिश्रुतः
क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तं निवारय । एतस्मिन्नन्तरे देवः पिनाकी परमेश्वरः ।
शक्ररूपं समास्थाय गन्तुञ्चक्रे मतिं तदा ॥ २४ ॥

अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदाशिवः ।
सह सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः ॥ २५ ॥
सहैव चारुह्य तदा द्विपन्तं प्रगृह्य बालव्यजनं विवस्वान् ।
वामेन शच्या सहितं सुरेन्द्रं करेण चान्येन सितातपत्रम् ॥ २६ ॥

रराज भगवान्सोमः शक्ररूपी सदाशिवः । सितातपत्रेण यथा चन्द्रबिम्बेन मन्दरः ॥
आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः । जगामानुग्रहं कर्त्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥
तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम् । प्रणम्य शिरसा प्राह मुनिर्मुनिवराः ! स्वयम्
पावितश्चाश्रमश्चायं ममदेवेश्वरः स्वयम् । प्राप्तः शक्रो जगन्नाथो भगवान्भानुनाप्रभुः
एवमुक्त्वा स्थितं वीक्ष्य कृताञ्जलिपुटं द्विजम् । प्राहगम्भीरया वाचा शक्ररूपधरोहरः

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत ! ।
ददामि चेप्सितान् सर्वान् धौम्याग्रज ! महामते ! ॥ ३२ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिसत्तमः । वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥
ततो निशम्य वचनं मुनेः कुपितवत्प्रभुः । प्राह स व्यग्रमीशानः शक्ररूपधरः स्वयम्
मां न जानासि देवर्षे ! देवराजानमीश्वरम् । त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम्
मद्भक्तो भव विप्रर्षे ! मामेवार्चय सर्वदा । ददामि सर्वं भद्रन्ते त्यज रुद्रञ्च निर्गुणम्
ततः शक्रस्य वचनं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम् । उपमन्युरिदं प्राह जपन्पञ्चाक्षरं शुभम्
मन्ये शक्रस्य रूपेण नूनमत्रागतः स्वयम् । कर्तुं दैत्याधमः कश्चिद्धर्मविघ्नञ्चनान्यथा
त्वयैव कथितं सर्वं भवनिन्दारतेन वै । प्रसङ्गाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः ॥३६
बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत् । भवान्तरकृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य तु॥

श्रुत्वा निन्दां भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत् ।
स्वदेहं तं निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ॥ ४१ ॥

योवाचोत्पाटयेज्जिह्वांशिवनिन्दारतस्य तु । त्रिः सप्तकुलमुद्धृत्यशिवलोकंसगच्छति
आस्तांतावन्ममेच्छायाक्षीरंप्रतिसुराधमम्।निहत्यत्वांशिवास्त्रेणत्यजाम्येतत्कलेवरम्
पुरा मात्रा तु कथितं तथ्यमेव न संशयः । पूर्वजन्मनि चास्माभिरपूजित इति प्रभुः

एवमुक्त्वा तु तं देवमुपमन्युरभीतवत् । शक्रञ्चके मतिं हन्तुं अथर्वास्त्रेण मन्त्रवित् ॥
भस्माधारात् महातेजा भस्ममुष्टिं प्रगृह्य च । अथर्वास्त्रं ततस्तस्मै ससर्ज च ननाद च
दग्धुं स्वदेहमाग्नेयीं ध्यात्वा वै धारणांतदा । अतिष्ठच्च महातेजाःशुष्केन्धनमिवाव्ययः
एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा । वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः
अथर्वास्त्रं तदा तस्य संहृतं चन्द्रकेण तु । कालाग्निसदृशञ्चेदस्त्रियोगान्नन्दिनस्तथा ॥
स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः । दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ॥५०॥
क्षीरधारासहस्रञ्च क्षीरोदार्णवमेव च । दध्यादेरर्णवञ्चैव घृतोदार्णवमेव च ॥ ५१ ॥
फलार्णवञ्च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा । अपूपगिरयश्चैव तथा तिष्ठन्समन्ततः ॥

उपमन्युमुवाच सस्मितो भगवान् बन्धुजनैः समावृतम् ।
गिरिजामवलोक्य सस्मितां सघृणं प्रेक्ष्य तु तं तदा घृणी ॥ ५३ ॥
भुङ्क्ष्व भोगान् यथा कामं बान्धवैः पश्य वत्स ! मे ।
उपमन्यो ! महाभाग ! तवाम्बैषा हि पार्वती ॥ ५४ ॥

मया पुत्रीकृतोऽस्यद्य हातः क्षीरोदधिस्तथा । मधुनश्चार्णवश्चैव दध्नश्चार्णव एव च॥
आज्योदवार्णवश्चैव फललेहार्णवस्तथा । अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवः पुनः ॥
पिता तव महादेवः पिता वै जगतांमुने !। माता तव महाभागा जगन्माता न संशयः
अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यञ्च शाश्वतम् । वरान्वरयदास्यामि नात्रकार्याविचारणा
एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम् । आघ्राय मूर्धनि विभुर्ददौ देव्यास्तदा भवः
देवी तनयमालोक्य ददौ तस्मै गिरिन्द्रजा । योगैश्वर्यंतदा तुष्टा ब्रह्मविद्यांद्विजोत्तमाः
सोऽपि लब्ध्वा वरं तस्याः कुमारत्वञ्च सर्वदा । तुष्टाव च महादेवं हर्षगद्गदयागिरा
वरयामास च तदा वरेण्यं विरजेक्षणम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य पुनः पुनः॥
प्रसीद देवदेवेश ! त्वयि चाव्यभिचारिणी । श्रद्धा चैव महादेव ! सान्निध्यञ्चैवसर्वदा
एवमुक्तस्तदा तेन प्रहसन्निव शङ्करः । दत्वेप्सितं हि विप्राय तत्रैवान्तरधीयत ॥६४॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे श्रीउपमन्युचरितं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । धौम्याग्रजस्ततोलब्धं दिव्यं पाशुपतंव्रतम्
कथं लब्धं तदा ज्ञानं तस्मात्कृष्णेन धीमता । वक्तुमर्हसितांसूत!कथांपातकनाशिनीम्

सूत उवाच

स्वेच्छया ह्यवतीर्णोऽपि वासुदेवः सनातनः । निन्दयन्नेव मानुष्यं देहशुद्धिञ्चकारसः
पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम च । आश्रमञ्चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम्
नमश्चकारतं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः !। बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिःकृत्वावैप्रदक्षिणम्
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः । नष्टमेवमलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा॥६॥
भस्मनोद्धूलनंकृत्वाउपमन्युर्महाद्युतिः । तमग्निरितिविप्रेन्द्रा!वायुरित्यादिभिःक्रमात्
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानंप्रददौप्रीतमानसः । मुनेःप्रसादान्मान्योऽसौकृष्णःपाशुपतेद्विजाः!
तपसा त्वेकवर्षान्ते दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् । साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसितव्रताः । दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुःसंवृत्यसर्वदा
अन्यञ्चकथयिष्यामिमुक्त्यर्थंप्राणिनांसदा । सौवर्णीमेखलांकृत्वाआधारंदण्डधारणम्
सौवर्णं पिण्डिकञ्चापि व्यजनं दण्डमेवच । नरैःस्त्रियाथवाकार्यं मषीभाजनलेखनीम्
क्षुरा कर्त्तरिका वापि अथ पात्रमथापि वा । पाशुपताय दातव्यंभस्मोद्धूलितविग्रहैः
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं वाथ निवेदयेत् । आत्मवित्तानुसारेणयोगिनं पूजयेद्बुधः
ते सर्वे पापनिर्मुक्ताः समस्तकुलसंयुताः । यान्तिरुद्रपदं दिव्यं नात्रकार्या विचारणा
तस्मादनेन दानेन गृहस्थो मुच्यतेभवात् । योगिनां सम्प्रदानेन शिवः क्षिप्रं प्रसीदति
राज्यं पुत्रं धनं भव्यं अश्वंयानमथापिवा । सर्वस्वंवापिदातव्यंयदीच्छेन्मोक्षमुत्तमम्
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं साध्यं प्रयत्नतः । भव्यं पाशुपतं नित्यं संसारार्णवतारकम् ॥
एतद्वः कथितं सर्वं सङ्क्षेपान्न च संशयः । यःपठेच्छृणुयाद्वापि शिवलोकंसगच्छति
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पाशुपतव्रतवर्णनं नाम अष्टाधिकशततमोऽध्याय. ॥ १०८ ॥

इति श्रीलिङ्गपुराणे पूर्वार्धं समाप्तम्

* श्रीगणेशायनमः *

लिङ्ग पुराणस्य

उत्तरार्धम्

———०*०———

प्रथमोऽध्यायः

कौशिकेन नारायणमहिमावर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कृष्णस्तुष्यति केनेहसर्वदेवेश्वरेश्वरः । वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत ! सर्वार्थविद्भवान्

सूत उवाच

पुरा पृष्टो महातेजा मार्कण्डेयो महामुनिः । अम्बरीषेण विप्रेन्द्रास्तद्वदामि यथातथम्

अम्बरीष उवाच

मुने ! समस्तधर्माणांपारगस्त्वंमहामते ! । मार्कण्डेय!पुराणोऽसिपुराणार्थविशारदः

नारायणानां दिव्यानां धर्माणां श्रेष्ठमुत्तमम् । तत्किब्रूहि महाप्राज्ञ!भक्तानामिहसुव्रत!

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा समुत्थाय कृताञ्जलिः । स्मरन्नारायणं देवं कृष्णमच्युतमव्ययम्

मार्कण्डेय उवाच

शृणु भूप ! यथा न्यायंपुण्यंनारायणात्मकम् । स्मरणंपूजनञ्चैवप्रणामोभक्तिपूर्वकम्

प्रत्येकमश्वमेधस्य यज्ञस्य समुच्यते । य एकः पुरुषः श्रेष्ठः परमात्मा जनार्दनः ॥७॥

यस्मात्ब्रह्मा ततः सर्वं समाश्रित्यैषमुच्यते । धर्ममेकं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टंविदितंमया

पुरा त्रेतायुगे कश्चित्कौशिको नाम वैद्विजः । वासुदेवपरो नित्यं सामगानरतःसदा
भोजनासनशय्यासु सदा तद्गतमानसः । उदारचरितं विष्णोर्गायमानः पुनः पुनः ॥
विष्णोः स्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम् । अगायत हरिंतत्रतालवर्णलयान्वितम्
मूर्च्छना स्वरयोगेन श्रुतिभेदेन भेदितम् । भक्तियोगं समापन्नो भिक्षामात्रं हि तत्र वै
तत्रैनं गायमानञ्च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा । पद्माख्य इति विख्यातस्तस्मैचान्नंददौतदा
सकुटुम्बो महातेजा ह्युष्णमन्नं हि तत्र वै । कौशिकोहि तदाहृष्टोगायन्नास्तेहरिंप्रभुम्

श्रृण्वन्नास्ते स पद्माख्यः काले काले विनिर्गतः ।
कालयोगेनसम्प्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च ॥ १५ ॥

सप्तराजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसम्भवाः । ज्ञानविद्याधिकाःशुद्धावासुदेवपरायणाः
तेषामपि तथान्नाद्यं पद्माक्षःप्रददौस्वयम् । शिष्यैश्चसहितोनित्यंकौशिकोहृष्टमानसः
विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्तेगायन्यथाविधि । तत्रैवमालवोनामवैश्योविष्णुपरायणः
दीपमालां हरेर्नित्यं करोति प्रीति मानसः । मालवीनाममार्य्याचतस्यनित्यंपतिव्रता
गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समन्ततः । भर्त्रा सहास्ते सुप्रीताश्रृण्वतीगानमुत्तमम्
कुशस्थलात्समापन्ना ब्राह्मणाः शंसितव्रताः । पञ्चाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः

साधयन्तो हि कार्य्याणि कौशिकस्य महात्मनः ।
ज्ञानविद्यार्थतत्वज्ञाः श्रृण्वन्तोह्यवसंस्तुते ॥ २२ ॥
ख्यातमासीत्तदातस्य गानं वै कौशिकस्य तत् ।
श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कलिङ्गोवाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

कौशिकाद्य गणैः सार्धं गायस्वेह च मांपुनः । श्रृणुध्वञ्चतथायूयंकुशस्थलजनाअपि
तच्छ्रुत्वाकौशिकः प्राहराजानंसान्त्वयागिरा । नजिह्वामेमहाराजा!वाणीचममसर्वदा
हरेरन्य मर्पान्द्रं वा स्तौति नैव चवक्ष्यति । एवमुक्तेतुतच्छिष्योवासिष्ठोगौतमोहरिः
सारस्वतस्तथा चित्रश्चित्रमाल्यस्तथाशिशुः । ऊचुस्तेपार्थिवंतद्वद्यथाप्राहचकौशिकः
श्रावकान्तेतथाप्रोचुःपार्थिवंविष्णुतत्पराः । श्रोत्राणीमानिश्रृण्वन्तिहरेरण्यंनपार्थिव
गानकीर्तिवयंतस्यश्रृणुमोन्यानचस्तुतिम् ।तच्छ्रुत्वापार्थिवोरुष्टोगायतामितिचाब्रवीत्

स्वभृत्यान्ब्राह्मणाह्येते कीर्ति शृण्वन्ति मे यथा ॥ २९ ॥

न शृण्वन्ति कथं तस्माद्गायमाने समन्ततः ॥ ३० ॥

एवमुक्तास्तदा भृत्या जगुःपार्थिवमुत्तमम् । निरुद्धमार्गाविप्रास्तेगानेवृत्तेतुदुःखिताः
काष्ठशङ्कुभिरन्योऽन्यंश्रोत्राणपिदधुर्द्विजाः। कौशिकाद्याश्चतांज्ञात्वामनोवृत्तिनृपस्यवै

प्रसह्यास्मांस्तुगायेतस्वगानेऽसौ नृपःस्थितः।

इतिविप्राः सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुःकरैः ॥ ३३ ॥

ततो राजासुसंक्रुद्धः स्वदेशात्तान्व्यवासयत् । आदाय सर्वंवित्तञ्चततस्तेजग्मुरुत्तराम्
दिशमासाद्य कालेनकालधर्मेणयोजिताः । तानागतान् यमोदृष्ट्वाकिंकर्त्तव्यमितिस्मह
चेष्टितंतन्क्षणेराजन्!ब्रह्माप्राहसुराधिपान्। कौशिकादीन्द्विजानद्यवासयध्वंयथासुखम्
गानयोगेन येनित्यं पूजयन्ति जनार्दनम् । तानानयत भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ ॥
इत्युक्त्वा लोकपालास्ते कौशिकेति पुनःपुनः । मालवेतितथाकेचित्पद्माक्षेतितथापरे
क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा । ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्त्तेनैवतेसुराः
कौशिकादींस्ततो दृष्ट्वाब्रह्मालोकपितामहः । प्रत्युद्गम्ययथान्यायंस्वागतेनाभ्यपूजयत्
ततः कोलाहलमभूदतिगौरवमुल्वणम् । ब्रह्मणाचरितं दृष्ट्वा देवानां नृपसत्तम ! ॥
हिरण्यगर्भोभगवांस्तान्निवार्यसुरोत्तमान् । कौशिकादीन्समादायमुनीन्देवैःसमावृतः
विष्णुलोकं ययौशीघ्रं वासुदेवपरायणः । तत्र नारायणोदेवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः
ज्ञानयोगेश्वरः सिद्धैर्विष्णुभक्तैः समाहितैः । नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरैः शुभैः ॥
विष्णुचिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषैः । अष्टाशीतिसहस्रैश्च सेव्यमानो महाजनैः ॥
अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः । भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः
सेव्यमानोऽथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृते । सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे ॥
विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः । लोककार्य्ये प्रसक्तानां दत्तदृष्टिश्च माधवः
तस्मिन्कालेऽथभगवान्कौशिकाद्यैश्चसंवृतः । आगम्यपाणिपत्याग्रेतुष्टावगरुडध्वजम्

ततो विलोक्य भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः ।

कौशिकेत्याह सम्प्रीत्या तान् सर्वांश्च यथाक्रमम् ॥ ५० ॥

जयघोषोमहानासीन्महाश्चर्य्येसमागते। ब्रह्माणमाहविश्वात्माश्शृणुब्रह्मन्! मयोदितम्
कौशिकस्य इमे विप्रा साध्यसाधनतत्परा । हितायसम्प्रवृत्तावैकुशस्थलनिवासिनः
मत्कीर्त्तिश्रवणेयुक्ताज्ञानतत्वार्थकोविदाः । अनन्यदेवताभक्ताःसाध्यादेवाभवन्त्विमे
मत्समीपे तथान्यत्र प्रवेशं देहि सर्वदा। एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधव ॥

स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ ! द्विजबन्धो ! भव मे सदा ।
गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं त्वं समास्व वै ॥ ५५ ॥

मालवं मालवीञ्चैवं प्राहदामोदरोहरि । ममलोके यथाकामं भार्य्यया सह मालव !॥
दिव्यरूपधरःश्रीमाञ्छृणवन्गानमिहाधिपः। आस्वनित्यंयथाकामंयावल्लोकाभवन्त्विवै
पद्माक्षमाह भगवान्धनदो भव माधवः । धनानामीश्वरो भूत्वा यथाकालंहि मांपुनः
आगम्यद्रष्टा मां नित्यं कुरुराज्यंयथासुखम् । एवमुक्त्वाहरिर्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्

कौशिकस्यास्य गानेन योगनिद्रा च मे गता।
विष्णुस्थले च मां स्तौति शिष्यैरेष समन्ततः ॥ ६० ॥

राज्ञा निरस्तः क्रूरेण कलिङ्गेन महीयसा। सजिह्वा छेदनं कृत्वा हरेरन्यं कथञ्चन ॥
नस्तोष्यामीतिनियतःप्राप्तोऽसौममलोकताम् । एतेचविप्रानियताममभक्तायशस्विनः
श्रोत्रच्छिद्रमथाहत्य शङ्कुभिर्वै परस्परम् । श्रोष्यामो नैव चान्यद्वैहरेःकीर्तिमितिस्मह
एते विप्राश्च देवत्व मम साान्निध्यमेव च । मालवो भार्य्ययासार्धं मत्क्षेत्रंपरिमृज्य वै

दीपमालादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सततं हि माम् ।
गानं शृणोति नियतो मत्कीर्ति रचिता न्वितम् ॥ ६५ ॥

तेनासौप्राप्तवाँल्लोकं ममब्रह्मसनातनम् । पद्माक्षोऽसौददौभोज्यंकौशिकस्यमहात्मन
धनेशत्वमवाप्तोऽसौममसान्निध्यमेवच । एवमुक्त्वाहरिस्तत्र समाजे लोकपूजितः ॥
तस्मिन्क्षणे समापन्ना मधुराक्षरपेशलैः । विपञ्चीगुणतत्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः ॥६८
मन्दंमन्दस्मितादेवीविचित्राभरणान्विता । गायमानासमायातालक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहा
वृता सहस्रकोटीभिरङ्गनाभिः समन्ततः । ततो गणाधिपा दृष्ट्वा भुशुण्डीपरिघायुधाः
ब्रह्मादींस्तर्जयन्तस्ते मुनीन्देवान्समन्ततः । उत्सारयन्तः संहृष्टाधिष्ठिताः पर्वतोपमाः

सर्वेषयंहिनिर्याताः सार्द्धं वै ब्रह्मणासुरैः। तस्मिन्क्षणे समाहूतस्तुम्बरुर्मुनिसत्तमः॥
प्रविवेशसमीपं वै देव्या देवस्य चैव हि। तत्रासीनोयथायोगंनानामूर्च्छासमन्वितत्
जगौकलपदं हृष्टो विपञ्चीञ्चाभ्यवादयत्। नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैराभरणोत्तमैः॥७४
दिव्यमाल्यैस्तथाशुभ्रैःपूजितोमुनिसत्तमः। निर्गुणस्तुम्बरुर्हृष्टो अन्ये च ऋषयः सुराः
दृष्ट्वा सम्पूजितंयान्तं यथायोगमरिन्दम !। नारदोऽथ मुनिर्दृष्ट्वा तुम्बरोःसत्क्रियांहरेः
शोकाविष्टेन मनसा सन्तप्तहृदयेक्षणः। चिन्तामापेदिवांस्तत्रशोकमूर्च्छाकुलात्मकः
केनाहं हि हरेर्यास्ये योगं देवीसमीपतः। अहोतुम्बरुणाप्राप्तंधिङ्मांमूढंविचेतसम्॥
योऽहंहरेः सन्निकाशंभूतैर्निर्यातितः कथम्। जीवन्यास्यामिकुत्राहमहोतुम्बरुणाकृतम्
इतिसञ्चिन्तयन्विप्रस्तपआस्थितवान्मुनिः। दिव्यंवर्षसहस्रन्तुनिरुच्छ्वाससमन्वितः

ध्यायन् विष्णुमथाध्यास्ते तुम्बरोः सत्क्रियां स्मरन्।
रोदमानोमुहुर्विद्वान्धिङ्मामिति च चिन्तयन्॥ ८१॥
तत्र यत्कृतवान विष्णुस्तत् शृणुष्व नराधिप !॥ ८२॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे कौशिकवृत्तकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो नारायणो देवस्तस्मै सर्वं प्रदाय वै।
कालयोगेन विश्वात्मा समञ्चक्रेऽथ तुम्बरोः॥ १॥
नारदं मुनि शार्दूलमेवं वृत्तमभूत्पुरा। नारायणस्य गीतानां गानं श्रेष्ठं पुनः पुनः॥
गानेनाराधितो विष्णुः सत्कीर्ति ज्ञानवर्चसी।
ददाति तुष्टिं स्थानञ्च यथासौ कौशिकस्य वै॥ ३॥

पश्चाक्षप्रभृतीनाञ्चसंसिद्धिप्रददौ हरिः। तस्मात्त्वया महाराज! विष्णुक्षेत्रे विशेषतः
अर्चनं गाननृत्याद्यं वाद्योत्सव समन्वितम्। कर्त्तव्यं विष्णुभक्तैर्हि पुरुषैरनिशं नृप!

श्रोतव्यश्च सदा नित्यं श्रोतव्योऽसौहरिस्तथा।
विष्णुक्षेत्रे तु यो विद्वान् कारयेत्भक्ति संयुतः॥ ६॥

गाननृत्यादिकञ्चैवविष्णवाख्यानंकथांतथा। जातिस्मृतिश्चमेधाश्चतथैवोपरमेस्मृतिम्

प्राप्नोति विष्णुसायुज्यं सत्यमेतन्नृपाधिप!।
एतत्ते कथितं राजन्! यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ८॥
किं वदामि च ते भूयो वद धर्मभृतां वर!॥ ९॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विष्णुमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

नारदेन उलूकस्य गानविद्याप्राप्तिवर्णनम्

अम्बरीष उवाच

मार्कण्डेय! महाप्राज्ञ! केन योगेन लब्धवान्।
गानविद्यां महाभाग! नारदो भगवान्मुनिः॥ १॥

तुम्बरोश्चसमानत्वंकस्मिन्कालउपेयिवान्। एतदाचक्ष्वमेसर्वं सर्वज्ञोऽसिमहामते!॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतो मयायमर्थो वै नारदाद्देवदर्शनात्। स्वयमाह महातेजा नारदोऽसौ महामतिः॥
सन्तप्यमानोभगवान्दिव्यंवर्षसहस्रकम्। निरुच्छ्वासेन संयुक्तस्तुम्बरोर्गौरवंस्मरन्
तताप च महाघोरं तपोराशिस्तपःपरम्। अथान्तरिक्षे शुश्राव नारदोऽसौ महामुनिः

वाणीं दिव्यां महाघोषामद्भुतामशरीरिणीम्।
किमर्थं मुनिशार्दूल! तपस्तपसि दुश्चरम्॥ ६॥

उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गानेरतामतिः । मानसोत्तर शैलेतु गानबन्धुरितिस्मृतः
गच्छशीघ्रश्चपश्यैनंगानवित्त्वंभविष्यसि । इत्युक्तोविस्मयाविष्टो नारदोवाग्विदांवरः
;मानसोत्तरशैलेतु गानबन्धुं जगाम वै । गन्धर्वाःकिन्नरायक्षास्तस्थावाप्सरसांगणाः
समासीनास्तु परितो गानबन्धुं ततस्ततः ।
गानविद्यां समापन्नाः शिक्षितास्तेन पक्षिणा ॥ १० ॥
स्निग्धकण्ठस्वरास्तत्रसमासीनामुदान्विताः । ततो नारदमालोक्य गानबन्धुरुवाच ह
प्रणिपत्य यथान्यायंस्वागतेनाभ्यपूजयत् । किमर्थंभगवानत्र चागतोऽसि महामते !
किं कार्य्यं हि मया ब्रह्मन् ! ब्रूहि किं करवाणि ते ।

नारद उवाच

उलूकेन्द्र ! महाप्राज्ञ ! शृणु सर्वं यथातथम् ॥ १३ ॥
ममवृत्तंप्रवक्ष्यामि पुराभूतंमहाद्भुतम् । अतीते हि युगेविद्वन् ! नारायणसमीपगम् ॥
मां विनिर्धूयसंहृष्टःसमाहूयचतुम्बरुम् । लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरशृणोत्गानमुत्तमम्
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे निरस्ताः स्थानतोऽच्युताः ।
कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम् ॥ १६ ॥
एवमाराध्य सम्प्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम् । तेनाहमतिदुःखार्त्तस्तपस्तप्तुमिहागतः
यद्दत्तं यद्धुतञ्चैव यथा वा श्रुतमेव च । यदधीतं मया सर्वं कलांनार्हतिषोडशीम् ॥
विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्यगानयोगस्यवैततः । सञ्चिन्त्याहंतपोघोरंतदर्थंतप्तवान्द्विज !॥
दिव्यवर्ष सहस्रं वै ततोह्यश्रृणवं पुनः । वाणीमाकाशसम्भूतां त्वामुद्दिश्य विहङ्गम !
उलूकं गच्छदेवर्षे ! गानबन्धुंमतिर्यदि । गानेचेद्वर्ततेब्रह्मन् ! तत्रत्वंवेत्स्यसेचिरात्
इत्यहंप्रेरितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः । किंकरिष्यामिशिष्योऽहंतवमांपालयाव्यय !

गानबन्ध उवाच

शृणुनारद ! यद्वृत्तं पुरामम महामते ! । अत्याश्चर्य्यं समायुक्तं सर्वपापहरं शुभम् ॥
भुवनेश ! इति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा । अश्वमेधसहस्रेश्च वाजपेयायुतेन च ॥
गवां कोट्यर्बुदं चैव सुवर्णस्य तथैव च । वाससां रथहस्तीनां कन्याश्वानां तथैवच

दत्त्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं प्रतिपालयन् ।
निवारयन्स्वके राज्ये गेययोगेन केशवम् ॥ २६ ॥

अन्यंचागेययोगेन गायन्यदि समे भवेत् । वध्यः सर्वात्मनातस्माद्वेदैरीड्यःपरःपुमान्
गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायन्तु नित्यशः । सूतमागधसङ्घाश्च गीतं ते कारयन्तु वै
इत्याज्ञाप्यमहातेजाराज्यं वै पर्य्य पालयत् । तस्यराज्ञःपुराभ्यासे हरिमित्र इतिश्रुतः
ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्व द्वन्द्वविवर्जितः । नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमाञ्च हरेःशुभाम्
अभ्यर्च्य च यथान्यायं घृतदध्युत्तरं बहु । मिष्टान्नं पायसं दत्वा हरेरावेद्य पूपकम् ॥

प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः ।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम् ॥ ३२ ॥

अतीवस्नेहसंयुक्तस्तद्गतेनान्तरात्मना । ततो राज्ञः समादेशाच्चारास्तत्र समागताः ॥
तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समन्ततः । ब्राह्मणं तंगृहीत्वा ते राज्ञे सम्यक्न्यवेदयन्
ततोराजाद्विजःश्रेष्ठंपरिभर्त्स्यसुदुर्मतिः । राज्यान्निर्य्यातयामासहृत्वासर्वधनादिकम्
प्रतिमाञ्च हरेश्चैव म्लेच्छा हृत्वा ययुः पुनः । ततःकालेन महता कालधर्म मुपेयिवान् ॥
स राजा सर्वलोकेषु पूज्यमानः समन्ततः । क्षुधार्त्तश्च तथाखिन्नो यममाहसुदुःखितः
क्षुत्तृट्च वर्त्तते देव ! स्वर्गतस्यापिमेसदा । मयापापंकृतंकिंवाकिं करिष्यामिवै यम!

यम उवाच

त्वया हि सुमहत्पापंकृतमज्ञानमोहतः । हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेवपरायणम् ॥३९॥
हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु । तेनपापेन सम्प्राप्तः क्षुद्रोगस्त्वां सदा नृप !
दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप ! । गीतवाद्यसमोपेतं गायमानं महामतिम् ॥
हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम् । उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ॥४२

तव भृत्यैस्तदा लुप्तं पापंश्चकृस्त्वदाज्ञया ।
हरेः कीर्ति विना चान्यद् ब्राह्मणेन नृपोत्तम ! ॥ ४३ ॥

न गेययोगे गातव्यं तस्मात्पापं कृतंत्वया । नष्टस्ते सर्वलोकोऽद्यगच्छपर्वतकोटरम्
पूर्वोत्सृष्टंस्वदेहंतंखादन्नित्यंनिकृत्यवै । तस्मिन्कालेत्विमंदेहंखादन्नित्यंक्षुधान्वितः

महानिरयसंस्थस्त्वं यावन्मन्वन्तरं भवेत् । मन्वन्तरे ततोऽतीते भूम्यां त्वञ्च भविष्यसि
ततः कालेन संप्राप्य मानुष्यमवगच्छसि ।
गानबन्धु रुवाच
एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४७ ॥
हरिमित्रो विमानेन स्तूयमानो गणाधिपैः । विष्णुलोकं गतः श्रीमान्संगृह्य गणबान्धवान्
भुवनेशो नृपोह्यस्मिन्कोटरे पर्वतस्य वै । खादमानः शवं नित्यमास्ते क्षुत्तृट्समन्वितः
अद्राक्षन्तं नृपं तत्र सर्वमेतन्ममोक्तवान् । समालोक्याहमाज्ञाय हरिमित्रं समेयिवान् ॥
विमानेनार्कवर्णेन गच्छन्तममरैर्वृतम् । इन्द्रद्युम्नप्रसादेन प्राप्तं मे ह्यायुरुत्तमम् ॥५१॥
तेनाहं हरिमित्रं वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ! ।
तदैश्वर्य प्रभावेण मनो मे समुपागतम् ॥ ५२ ॥
गानविद्यां प्रति तदा किन्नरैः समुपाविशम् । षष्टिवर्ष सहस्राणां गानयोगेन मे मुने !
जिह्वाप्रसादितास्पष्टा ततो गानमशिक्षयम् । ततस्तु द्विगुणेनैव कालेनाभूदियं मम ॥
गानयोगसमायुक्ता गता मन्वन्तरा दश । गानाचार्योऽभवं तत्र गन्धर्वाद्याः समागताः
एते किन्नरसङ्घा वै मामाचार्य्यमुपागताः । तपसानैव शक्या वै गानविद्या तपोधन !
तस्माच्छ्रुतेन संयुक्तो मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि । एवमुक्तो मुनिस्तं वै प्रणिपत्य जगौ तदा
तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ ! वासुदेवं नमस्य तु ।
मार्कण्डेय उवाच
उलूकेनैव मुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः ॥ ५८ ॥
शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षयत् । गानबन्धुस्तदाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना ॥
उलूक उवाच
स्त्रीसङ्गमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसङ्गमे । व्यवहारे तथाहारे त्वर्थानाञ्च समागमे ॥
आयेव्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत् । न कुञ्चितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः
हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि । निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं हि कथञ्चन ॥
न गायेदूर्ध्वबाहुत्वे नोर्द्ध्वदृष्टिः कथञ्चन । स्वाङ्गं निरीक्षमाणेन परं सम्प्रेक्षता तथा

सङ्कृष्टे च तथोत्थाने कटिस्थाने न शस्यते ।
हासो रोषस्तथा कम्पस्तथान्यत्र स्मृतिः पुनः ॥ ६४ ॥
नैतानि शस्तरूपाणि गानयोगे महामते !। नैकहस्तेन शक्यं स्यात्तालसङ्घट्टनं मुने !॥
क्षुधार्त्तेन भयार्त्तेन तृष्णार्त्तेन तथैव च । गानयोगो न कर्त्तव्यो नान्धकारे कथञ्चन॥
एवमादीनि चान्यानि न कर्त्तव्यानि गायता ।

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्तः स भगवांस्तेनोक्तैर्विधिलक्षणैः । अशिक्षयत्तथा गीतं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥
ततःसमस्तसम्पन्नो गीतप्रस्तारकादिषु । विपञ्च्यादिषु सम्पन्नःसर्वस्वरविभागवित्
अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ।
स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः ॥ ६६ ॥
ततो गन्धर्वसङ्घाश्च किन्नराणां तथैव च । मुनिनासह संयुक्ता प्रीतियुक्ताभवन्तिते ॥
गानबन्धुं मुनिःप्राह प्राप्यगानमनुत्तमम् । त्वांसमासाद्य सम्पन्नस्त्वंहिगीतविशारदः
ध्वांक्ष शत्रो ! महाप्राज्ञ ! किमाचार्य्यं ! करोमि ते ।

गानबन्धुरुवाच

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् ! मनवस्तु चतुर्दश ॥ ७२ ॥
ततस्त्रैलोक्यसम्प्लावो भविष्यतिमहामुने !। तावन्मे त्वायुषो भावस्तावन्मेपरमंशुभम्
मनसा ध्यायितं मे स्याद्दक्षिणामुनिसत्तम ! ।

नारद उवाच

अतीतकल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि ॥ ७४ ॥
स्वस्ति तेऽस्तु महाप्राज्ञ ! गमिष्यामि प्रसीद माम् ।

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा जगामाथ नारदोऽपि जनार्दनम् ॥ ७५ ॥
श्वेतद्वीपे हृषीकेशं गापयामास गीतकान् । तत्र श्रुत्वा तु भगवान्नारदं प्राह माधवः
तुम्बरोर्नविशिष्टोऽसिगीतैरद्यापिनारद !। यदाविशिष्टोभविता तं कालं प्रवदाम्यहम्

गानबन्धुंसमासाद्य गानार्थज्ञो भवानसि । मनोर्वैवस्वतस्याह अष्टाविंशतिमे युगे ॥
द्वापरान्ते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः । देवक्यां वसुदेवस्यकृष्णोनाम्नामहामते !॥
तदानीं मां समासाद्यस्मारयेथाययातथम् । तत्रत्वां गीतसम्पन्नंकरिष्यामिमहाव्रतम्
तुम्बरोश्च समनश्चैव तथातिशय संयुतम् । तावत्कालं यथा योगं देवगन्धर्वयोनिषु
शिक्षयस्व यथा न्यायमित्युक्त्वान्तरधीयत । ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादनतत्पर
देवर्षिदेवसङ्काशः सर्वाभरण भूषितः । तपसां निधिरत्यन्तं वासुदेवपरायणः ॥८३ ॥
स्कन्धे विपञ्चीमासाद्य सर्वलोकांश्चचार सः । वारुणं याममाग्नेयं ऐन्द्रं कौबेरमेवच
वायव्यञ्च तथेशानं संसदं प्राप्य धर्मवित् । गायमानो हरिंसम्यग्वीणावादविचक्षणः
गन्धर्वाप्सरसांसङ्घैःपूज्यमानस्ततस्ततः । ब्रह्मलोकंसमासाद्यकस्मिंश्चित्कालपर्य्यये
हाहा हूहूश्च गन्धर्वौगीतवाद्यविशारदौ । ब्रह्मणोगायकोदिव्यौ नित्यौ गन्धर्वसत्तमौ

तत्र ताभ्यां समासाद्य गायमानो हरिं प्रभुम् ।
ब्रह्मणा च महातेजाः पूजितो मुनिसत्तमः ॥ ८८ ॥

तं प्रणम्य महात्मानं सर्वलोकपितामहम् । चचार च यथाकामं सर्वलोकेषु नारदः ॥
ततः कालेन महता गृहं प्राप्य च तुम्बरोः । वीणामादाय तत्रस्थोह्यगायतमहामुनिः
स्वरकल्पास्तु तत्रस्थाःषड्जाद्याःसप्तवैमताः । क्रीडतोभगवान्दृष्ट्वानिर्गतश्चसुसत्वरम्
शिक्षयामास बहुशस्तत्र तत्र महामतिः । श्रमयोगेन संयुक्तो नारदोऽपि महामुनिः

सप्तस्वराङ्गनाः पश्यन्गानविद्याविशारदः ।
आसीद्वीणा समायोगे न ता स्तन्व्यः प्रपेदिरे ॥ ९३ ॥

ततो रैवतके कृष्णं प्रणिपत्य महामुनिः । विज्ञापयदशेषन्तु श्वेतद्वीपे तु यत्पुरा ॥
नारायणेन कथितं गानयोगमनुत्तमम् । तच्छ्रुत्वा प्राहसन्कृष्णः प्राह जाम्बवतीं मुदा
एवं मुनिवरं भद्रे शिक्षयस्वयथाविधि । वीणागानसमायोगेतथेत्युक्त्वावसा हरिम्
प्रहसन्तौ यथा योगं शिक्षयामास तं मुनिम् । ततः संवत्सरे पूर्णेपुनरागम्यमाधवम्
प्रणिपत्याग्रतस्तस्थौ पुनराह स केशवः । सत्यासमीपमागच्छ शिक्षयस्व यथाविधि
तथेत्युक्त्वा सत्यभामांप्रणिपत्यजगौमुनिः । तया सशिक्षितोविद्वान्पूर्णेसंवत्सरे पुनः

वासुदेवनियुक्तोऽसौ रुक्मिणीसदनं गतः। अङ्गनाभिस्ततस्ताभिर्दासीभिर्मुनिसत्तमः
उक्तोऽसौ गायमानोऽपि न स्वरं वेत्सि वै मुने !
ततः श्रमेण महता वत्सरत्रयसंयुतम् ॥ १०१ ॥
शिक्षितोऽसौ तदा देव्या रुक्मिण्यापि जगौ मुनिः।
ततः स्वराङ्गनाः प्राप्य तन्त्रीयोगं महामुने ॥ १०२ ॥
आहूय कृष्णो भगवान्स्वयमेव महामुनिम्। अशिक्षयदमेयात्मागानयोगमनुत्तमम् ॥
ततोऽतिशयमापन्नस्तुम्बरोर्मुनिसत्तमः। ततो ननर्त्त देवर्षिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥
उवाच च हृषीकेशः सर्वज्ञस्त्वं महामुने !। प्रहस्यज्ञानयोगेन गायस्व मम सन्निधौ ॥
एतत्ते प्रार्थितं प्राप्तं ममलोके तथैव च। नित्यं तुम्बरुणा सार्धं गायस्वच यथातथम्
एवमुक्तो मुनिस्तत्र यथायोगञ्चचार सः। यदा सम्पूजयन्कृष्णो रुद्रं भुवननायकम्
तदा जगौ हरेस्तस्य नियोगाच्छङ्कराय वै।
रुक्मिण्या सह सत्या च जाम्बवत्या महामुनिः ॥ १०८ ॥
कृष्णेन च नृपश्रेष्ठ !श्रुतिजाति विशारदः। एव वो मुनिशार्दूलाः!प्रोक्तोगीतक्रमोमुनेः
ब्राह्मणो वासुदेवाख्यां गायमानो भृशं नृप !।
हरेः सालोक्यमाप्नोति रुद्रगानोऽधिको भवेत् ॥ ११० ॥
अन्यथा नरकं गच्छेद्गायमानोऽन्यदेव हि। कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवपरायणः
गायन्श्रृण्वंस्तमाप्नोति तस्माद्गेयं परं विदुः ॥ ११२ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे वैष्णवगीतकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

विष्णुभक्तकथनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वैष्णवा इति ये प्रोक्ता वासुदेवपरायणाः। कानि चिह्नानि तेषां वै तन्नोब्रूहिमहामते

तेषां वा किं करोत्येष भगवान्भूतभावनः । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूत! सर्वार्थवित्तम !

सूत उवाच

अम्बरीषेण वै पृष्टो मार्कण्डेय पुरा मुनिः । युष्माभिरद्ययत्प्रोक्तंतद्वदामियथातथम्

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्! यथा न्यायं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ! ।

यत्रास्ते विष्णुभक्तस्तु तत्र नारायण स्थितः ॥ ४ ॥

विष्णुरेव हि सर्वत्र येषां वै देवता स्मृता । कीर्त्यमाने हरौनित्यंरोमाञ्चोयस्यवर्त्तते
कम्पःस्वेदस्तथाश्रेषुदृश्यन्तेजलबिन्दवः । विष्णुभक्तिसमायुक्ताञ्छ्रौतस्मार्त्तप्रवर्त्तकान्
प्रीतो भवतियोदृष्ट्वा वैष्णवोऽसौप्रकीर्त्तितः । नान्यदाच्छादयेद्वस्त्रंवैष्णवोजगतोरणे
विष्णुभक्तमथायान्तं यो दृष्ट्वा सन्मुखस्थितः । प्रणामादिकरोत्येवंवासुदेवेयथातथा
स वै भक्त इति ज्ञेयः स जयीस्याज्जगत्रये । रूक्षाक्षराणिशृण्वन्वै तथा भागवतेरितः
प्रणामपूर्वंक्षान्त्यावैयोवदेद्वैष्णवोहि सः । गन्धपुष्पादिकं सर्वंशिरसावोहिधारयेत्

हरेः सर्वमितीत्येवं मत्वासौ वैष्णवः स्मृतः ।

विष्णुक्षेत्रे शुभान्येव करोति स्नेहसंयुतः ॥ ११ ॥

प्रतिमाञ्च हरेर्नित्यं पूजयेत्प्रयतात्मवान् । विष्णुभक्तः सविज्ञेयःकर्मणा मनसा गिरा
नारायणपरो नित्यं महाभागवतो हि सः । भोजनाराधनं सर्वं यथाशक्त्याकरोतियः
विष्णुभक्तस्य च सदा यथान्यायंहिकथ्यते । नारायणपरोविद्वान्यस्यान्नंप्रीतमानसः
अश्नाति तद्धरेरास्यं गतमन्नं न संशयः । स्वार्चनादपि विश्वात्माप्रीतोभवतिमाधवः
महाभागवते तञ्च दृष्ट्वासौ भक्तवत्सलः । वासुदेव परं दृष्ट्वा वैष्णवं दग्धकिल्विषम्

देवापि भीतास्तं यान्ति प्रणिपत्य यथागतम् ।

श्रूयतां हि पुरावृत्तं विष्णुभक्तस्य वै भवम् ॥ १७ ॥

दृष्ट्वायमोऽपिवैभक्तंवैष्णवंदग्धकिल्विषम् । उत्थाय प्राञ्जलिर्भूत्वाननाम भृगुनन्दनम्

तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या वैष्णवान्विष्णुवन्नरः ।

स याति विष्णुसामीप्यं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १९ ॥

अन्य भक्तसहस्रेभ्योविष्णुभक्तोविशिष्यते । विष्णुभक्तसहस्रेभ्योरुद्रभक्तो विशिष्यते
रुद्रभक्तात्परतरो नास्तिलोके न संशयः ॥ २० ॥
तस्मात्तु वैष्णवञ्चापि रुद्रभक्तमथापि वा । पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थ मुक्तये ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विष्णुभक्तकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीमत्याख्यानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

ऐक्ष्वाकुरम्बरीषो वै वासुदेवपरायणः । पालयामासपृथिवींविष्णो राज्ञा पुरःसरः
श्रुतमेतन्महाबुद्धे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि । नित्यं तस्य हरेश्चक्रं शत्रुरोगभयादिकम् ॥ २॥
हन्तीति श्रूयतेलोके धार्मिकस्य महात्मनः । अम्बरीषस्य चरितं तत्सर्वं ब्रूहि सत्तम !
महात्म्यमनुभावनञ्च भक्तियोगमनुत्तमम् । यथावच्छ्रोतुमिच्छामः सूत! वक्तुंत्वमर्हसि

सूत उवाच

श्रूयतां मुनिशार्दूलाश्चरितं तस्य धीमतः । अम्बरीषस्य माहात्म्यं सर्व पापहरं परम्
त्रिशङ्कोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता । अम्बरीषस्यजननी नित्यं शौचसमन्विता
योगनिद्रासमारूढं शेषपर्यङ्कशायिनम् । नारायणं महात्मानं ब्रह्माण्डकमलोद्भवम् ॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् ।
सत्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ८ ॥
अर्चयामास सततं वाङ्मनः कायकर्मभिः । माल्यदानादिकं सर्वं स्वयमेवमचीकरत् ॥
गन्धादिपेषणञ्चैव धूपद्रव्यादिकं तथा । भूमेरालेपनादीनि हविषां पचनं तथा ॥१०॥
तत्कौतुकसमाविष्टा स्वयमेव चकार सा । शुभा पद्मावतीनित्यं वाचानारायणेति वै
अनन्तेत्येव सा नित्यं भाषमाणा पतिव्रता । दशवर्षसहस्राणि तत्परेणान्तरात्मना ॥

अर्चयामास गोविन्दं गन्धपुष्पादिभिः शुचिः ।
विष्णुभक्तान्महाभागान् सर्वपापविवर्जितान् ॥ १३ ॥
दानमानार्चनैर्नित्यं धनैरत्नैरतोषयत् । ततः कदाचित्सा देवी द्वादशीं समुपोष्य वै॥
हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह । तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः ॥१५
किमिच्छसि वरं भद्रे ! मत्तस्त्वं ब्रूहि भामिनि ! ।
सा दृष्ट्वा तु वरं वव्रे पुत्रो मे वैष्णवो भवेत् ॥ १६ ॥
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः । तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यैफलमेकं जनार्दनः
सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं न्यवेदयत् । भक्षयामास संहृष्टा फलं तद्गतमानसा ॥
ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्धनम् । असूत सा सदाचारं वासुदेवपरायणम् ॥
शुभलक्षणसम्पन्नं चक्राङ्कितनूरुहम् । जातंदृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै ॥
अम्बरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः । पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तो महामुनिः॥
मन्त्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रञ्चकार सः । ससम्वत्सरसहस्रंवैजपन्नारायणं प्रभुम्
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं सूर्यमण्डलमध्यतः । शङ्खचक्रगदापद्म धारयन्तं चतुर्भुजम् ॥
शुद्धजाम्बूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं प्रभुम् ॥
श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम् । ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥ २५ ॥
आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः । ऐरावतमिवाचिन्त्यं कृत्वावैगरुडंहरिः
स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम् । इन्द्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि वरञ्च ते
सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः ।

अम्बरीष उवाच

नाहं त्वामभिसन्धाय तप आस्थितवानिह ॥ २८ ॥
त्वयादत्तञ्चनेष्यामि गच्छ शक्र!यथासुखम् । ममनारायणोनाथस्तंनमामिजगत्पतिम्
गच्छेन्द्र! मा कृथास्तत्र मम बुद्धिविलोपनम् । ततः प्रहस्य भगवान्स्वरूपमकरोद्धरिः
शार्ङ्गचक्रगदापाणिः खड्गहस्तो जनार्दनः । गरुडोपरि सर्वात्मा नीलाचल इवापरः ॥
देवगन्धर्वसङ्घैश्च स्तूयमानः समन्ततः । प्रणम्य स च सन्तुष्टस्तुष्टावगरुडध्वजम् ॥

प्रसीद लोकनाथेश! मम नाथ! जनार्दन !। कृष्ण! विष्णो! जगन्नाथ! सर्वलोकनमस्कृत
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनन्तः पुरुषः प्रभुः । अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविन्दः कमलेक्षणः
महेश्वराङ्गजो मध्ये पुष्करः खगमः खगः । कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभञ्जनः
आदिदेवः क्रियानन्दः परमात्मात्मनिस्थितः। त्वांप्रपन्नोऽस्मिगोविन्द! जयदेवकिनन्दन
जयदेव ! जगन्नाथ ! पाहि मां पुष्करेक्षण ! ॥ ३६ ॥
नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वमेव शरणं मम ।

सूत उवाच

तमाह भगवान् विष्णुः किं ते हृदि चिकीर्षितम् ॥ ३७ ॥
तत्सर्वं ते प्रदास्यामि भक्तोऽसि ममसुव्रत !। भक्तिप्रियोऽहंसततंतस्माद्दातुमिहागत.

अम्बरीष उवाच

लोकनाथ! परानन्द! नित्यं मे वर्त्तते मतिः । वासुदेवपरोनित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः॥
यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः । तथा भवाम्यहं विष्णो! तव देव! जनार्दन!
पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवंजगत् । यज्ञहोमार्चनैश्चैवतर्पयामिसुरोत्तमान्
वैष्णवान्पालयिष्यामि निहनिष्यामिशात्रवान् । लोकतापभयेभीतइतिमेधीयते मतिः

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु यथेच्छं वै चक्रमेतत्सुदर्शनम् । पुरा रुद्रप्रसादेन लब्धं वै दुर्लभं मया ॥४३॥
ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा । निहनिष्यति ते नित्यमित्युक्त्वान्तरधीयत

सूत उवाच

ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणम्प्रभुम् । प्रविश्यनगरींरम्यामयोध्यां पर्यपालयत्
ब्राह्मणादींश्चवर्णांश्चस्वस्वकर्मण्ययोजयत् । नारायणपरोनित्यंविष्णुभक्तानकल्मषान्
पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः । अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतेन च ॥
पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम् । गृहे गृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहे गृहे
नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च । अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यं प्रशासति ॥
नासस्यानाः तृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता । रोगहीनाःप्रजानित्यंसर्वोपद्रववर्जिताः

अम्बरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् । तस्यैवं वर्त्तमानस्यकन्याकमललोचना
श्रीमतीनाम विख्याता सर्वलक्षणसंयुता । प्रदानसमयं प्राप्ता देवमायेव शोभना ॥
तस्मिन् काले मुनिः श्रीमान्नारदोऽभ्यागतश्च वैः ।
अम्बरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महामतिः ॥ ५३ ॥
तावुभावागतो दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि । अम्बरीषो महातेजाः पूजयामासतावृषी
कन्यां तां रममाणां वै मेघमध्ये शतह्रदाम् । प्राहतांप्रेक्ष्यभगवान्नारदः सस्मितस्तदा
केयं राजन् ! महाभाग कन्यासुरसुतोपमा । ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ ! सर्वलक्षणशोभिता
राजोवाच
दुहितेयं मम विभो ! श्रीमती नाम नामतः । प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषणे शुभा ॥
इत्युक्तोमुनिशार्दूलस्तामैच्छन्नारदोद्विजाः !। पर्वतोऽपिमुनिस्तांवै चकमेमुनिसत्तमाः!
अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् । रहस्याहूयधर्मात्मानमदेहिसुतामिमाम्
पर्वतो हि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुः । तावुभौ स च धर्मात्माप्रणिपत्यभयार्दितः
उभौभवन्तौ कन्यां मे प्रार्थयानौ कथंत्वहम् । करिष्यामिमहाप्राज्ञ!श्रृणुनारद!मेवचः
त्वञ्च पर्वत ! मेवाक्यंश्रृणुवक्ष्यामियत्प्रभो !। कन्येयं युवयोरेकंवरयिष्यतिचेच्छुभा
तस्मैकन्यांप्रयच्छामिनान्यथाशक्तिरस्तिमे । तथेत्युक्त्वाततोभूयःश्वोयास्यावइतिस्मह
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतिमानसौ ।
वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानविदांवरौ ॥ ३४ ॥
विष्णुलोकं ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः । प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह॥
श्रोतव्यमस्ति भगवन्नाथ ! नारायण ! प्रभो !। रहसित्वांप्रवक्ष्यामिनमस्तेभुवनेश्वर!
ततः प्रहस्य गोविन्दः सर्वानुत्तमार्य्य तं मुनिम् ।
ब्रूहीत्याह च विश्वात्मामुनिराह च केशवम् ॥ ६७ ॥
त्वदीयो नृपतिःश्रीमानम्बरीषोमहीपतिः । तस्यकन्याविशालाक्षीश्रीमतीनामनामतः
परिणेतुमनास्तत्र गतोऽस्मिववनं श्रृणु । पर्वतोऽयंमुनिःश्रीमांस्तवभृत्यस्तपोनिधिः
तामैच्छत्सोऽपि भगवन्नावामाहजनाधिपः । अम्बरीषो महातेजाःकन्येयंयुवयोर्वरम्

लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम् । इत्याहवान्नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाहमागतः॥

आगमिष्यामि ते राजन् ! श्वः प्रभाते गृहन्त्विति ।

आगतोऽहं जगन्नाथ ! कर्त्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥ ७२ ॥

वानराननवद्भाति पर्वतस्य मुखं यथा । तथा कुरु जगन्नाथ ! ममचेदिच्छसिप्रियम्॥ तथेत्युक्त्वासगोविन्दःप्रहस्यमधुसूदनः । त्वयोकञ्चकरिष्यामिगच्छसौम्य!यथागतम् एवमुक्त्वा मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्यजनार्दनम् । मन्यमानःकृतात्मानंतथायोध्यांजगामसः गते मुनिवरे तस्मिन्पर्वतोऽपि महामुनिः । प्रणम्य माधवं हृष्टो रहस्येनमुवाच ह ॥ वृत्तं तस्यनिवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पते !। गोलाङ्गूलमुखं यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तञ्चकरोमिवै । गच्छशीघ्रमयोध्यांवैमावेदीर्नारदस्यवै त्वया मे संविदं तत्र तथेत्युक्त्वा जगाम सः । ततो राजाममाज्ञायप्राप्तौमुनिवरौतदा

माङ्गल्यैर्विविधैः सर्वामयोध्यां ध्वजमालिनीम् ।

मण्डयामास पुष्पैश्च लाजैश्चैव समन्ततः ॥ ८० ॥

अम्बुसिक्तगृहद्वारां सिक्तापणमहापथाम् । दिव्यगन्धरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः कृत्वाचनगरींराजा मण्डयामासतांसभाम् । दिव्यैर्गन्धैस्तथाधूपैरत्नैश्चविविधैस्तथा

अलङ्कृतां मणिस्तम्भैर्नानामाल्योपशोभिताम् ।

परार्ध्यास्तरणोपेतैर्दिव्यैर्भद्रासनैर्वृताम् ॥८३॥

कृत्वा नृपेन्द्रस्तां कन्यांआदाय प्रविवेशह । सर्वाभरणसम्पन्नां श्रीरिवायतलोचनाम् करसम्मितमध्याङ्गींपञ्चस्निग्धांशुभाननाम्। स्त्रीभिःपरिवृतांदिव्यांश्रीमतींसंश्रितांतदा

सभा च सा भूमिपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।

न्यस्तासना माल्यवती सुबद्धा तामाययुस्तेन रराज वर्गाः ॥ ८६ ॥

अथापरो ब्रह्मवरात्मजो हि त्रैविद्यविद्यो भगवान्महात्मा ।

सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो महामुनिर्नारद आजगाम ॥ ८७ ॥

तावागतो समीक्ष्याथराजासम्भ्रान्तमानसः । दिव्यमासनमादाय पूजयामासतावुभौ उभौ देवर्षिसिद्धौ तौ उभौज्ञानविदांवरौ । समासीनौमहात्मानौकन्यार्थंमुनिसत्तमौ

तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम् ।
सुतां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम् ॥ ९० ॥
अनयोर्य्यं वरं भद्रे ! मनसा त्वमिहेच्छसि । तस्मैमालामिमांदेहिप्रणिपत्ययथाविधि
एव मुक्तातुसा कन्या स्त्रीभिःपरिवृतातदा । मालांहिरण्मयींदिव्यांआदायशुभलोचना
यत्रासीनौ महात्मानौ तत्रागम्यस्थितातदा । वीक्ष्यमाणामुनिश्रेष्ठौपर्वतंनारदं तथा
शाखामृगाननं दृष्ट्वा नारदं पर्वतं तथा । गोलाङ्गूलमुखं कन्याकिञ्चित्त्राससमन्विता
सम्भ्रान्तमनसा तत्र प्रवातकदलीयथा । तस्थौतामाहराजासौवत्से!किंत्वंकरिष्यसि
अनयोरेकमुद्दिश्य देहिमालामिमां शुभे ! । सा प्राहपितरं त्रस्ता इमौ तौ नरवानरौ
मुनिश्रेष्ठं न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा । अनयोर्मध्यतस्त्वेकमूनषोडशवार्षिकम् ॥
सर्वाभरणसम्पन्नमतसीपुष्पसन्निभम् । दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुङ्गोरस्थलमुत्तमम् ॥
रेखाङ्कितकटिग्रीवंरक्तान्तायतलोचनम् । नम्रचापानुकरणपटुभ्रू युगशोभितम् ॥९९॥
विभक्तत्रिवली व्यक्तं नाभि व्यक्तशुभोदरम् । हिरण्याम्बरसम्वीतं तुङ्गरत्ननखं शुभम्
पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम् ॥ १०० ॥
सुनासं पद्महृदयं पद्मनाभं श्रियावृतम् । दन्तपंक्तिभिरत्यर्थं कुन्दकुड्मलसन्निभैः ॥
हसन्तं मां समालोक्यदक्षिणञ्च प्रसार्य्य वै । पाणिस्थितममुंतत्रपश्यामिशुभमूर्धजम्
सम्भ्रान्तमानसां तत्र वेपती कदलीमिव
स्थितां तामाह राजा सौ वत्से ! किं त्वं करिष्यसि ॥ १०३ ॥
एवमुक्ते मुनिः प्राह नारदः संशयंगतः । कियन्तो बाहवस्तस्य कन्ये! ब्रूहि यथातथम्
बाहुद्वयञ्च पश्यामीत्याह कन्या शुचिस्मिता । प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्यवक्षस्थलेशुभे
किं पश्यसि च मे ब्रूहि करे किं वास्य पश्यसि ।
कन्या तमाह मालां वै पञ्चरूपामनुत्तमाम् ॥ १०६ ॥
वक्षस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकान् । एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ
मनसा चिंतयन्तौतौ मायेयं कस्यचिद्भवेत् । मायावी तस्करो नूनंस्वयमेवजनार्दनः
आगतोनयथाकुर्यात्कथमस्मन्मुखंत्विदम् । गोलाङ्गूलत्वमित्येवंचिन्तयामासनारदः

पर्वतोऽपियथान्यायं वानरत्वं कथं मम । प्राप्तमित्येव मनसा चिन्तामापेदिवांस्तथा
ततो राजा प्रणम्यासौ नारदं पर्वतं तथा । भवद्भ्यां किमिदं तत्रकृतंबुद्धिविमोहजम्
स्वस्थौ भवन्तो तिष्ठेतां यथा कन्यार्थमुद्यतौ । एवमुक्तौमुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्बणौ
त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथञ्चन । आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव मा चिरम् ॥
ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्येष्टदेवताम् । मानमादायतिष्ठन्तंतयोर्मध्ये समाहितम्
सर्वाभरणसंयुक्तमतसीपुष्पसन्निभम् । दीर्घबाहुंसुपुष्टाङ्गं कर्णान्तायतलोचनम् ॥११५

पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा मालां तस्मै ददौ हि सा ।
अनन्तरं हि सा कन्या न दृष्टा मनुजैः पुनः ॥ ११६ ॥

ततोनादः समभवत्किमेतदितिविस्मितौ । तामादायगतोविष्णुःस्वस्थानंपुरुषोत्तमः
पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वराङ्गना । श्रीमती सा समुत्पन्नासा गताचतथा हरिम्
तावुभौ मुनिशार्दूलो धिक्कृतावतिदुःखितौ । वासुदेवं प्रति तदा जग्मतुर्भवनं हरेः ॥
तावागतौ समीक्ष्याह श्रीमतीं भगवानहरिः । मुनिश्रेष्ठौसमायातौगूहस्वात्मानमत्रवै

तथेत्युक्त्वा च सा देवी प्रहसन्ती चकार ह ।
नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम् ॥ १२१ ॥

प्रियं हि कृतवानद्य मम त्वं पर्वतस्य हि । त्वमेवनूनं गोविन्द! कन्यां तां हृतवानसि
विमोह्यावांस्वयंबुद्ध्याप्रताप्यसुरसत्तम !। इत्युक्तःपुरुषो विष्णुःपिधायश्रोत्रमच्युतः

पाणिभ्यां प्राह भगवान् भवद्भ्यां किमुदीरितम् ॥ १२३ ॥
कामवानपि भावोऽयं मुनिवृत्तिरहो किल ! ।
एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः ॥ १२४ ॥

कर्णमूले मम कथं गोलाङ्गूलमुखन्त्विति । कर्णमूले तमाहेदं वानरत्वं कृतं मया ॥
पर्वतस्यमयाविद्वन् ! गोलाङ्गूलमुखं तव । मयातवकृतं तत्र प्रियार्थं नान्यथात्विति
पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः । शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरोवचः
प्रियंभवद्भ्यांकृतवान्सत्येनात्मानमालभे । नारदः प्राहधर्मात्माआवयोर्मध्यतःस्थितः

धनुष्मान्पुरुषः कोऽत्र तां हृत्वा गतवान्किल ।

तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह तौ मुनिसत्तमौ ॥ १२६ ॥

मायाविनो महात्मानो बहवः सन्तिसत्तमाः । तत्रसाश्रीमतीनूनमदृष्ट्वा मुनिसत्तमौ !
चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरितिस्थितः । तांतथानाहमैक्षंवैभवद्भ्यांविदितंहि तत्

इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीतिमानसौ ।

कोऽत्र दोषस्तव विभो ! नारायण ! जगत्पते ! ॥ १३२ ॥

दौरात्म्यं तन्नृपस्यैवमायाहि कृतवानसौ । इत्युक्त्वाजग्मतुस्तस्मात्मुनीनारदपर्वतौ
अम्बरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत् । नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ ॥
आहूयपश्चादन्यस्मैकन्यांत्वंदत्तवानसि । मायायोगेन तस्मात्वां तमोह्यभिभविष्यति
तेनचात्मानमत्यर्थं यथावत्त्वं न वेत्स्यसि । एवं शापे प्रदत्ते तु तमोराशिरथोत्थितः

नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोः प्रादुरभूत्क्षणात् ।

चक्रवित्रासितं घोरं तावुभौ तम अभ्यगात् ॥ १३७ ॥

ततः सन्त्रस्तसर्वाङ्गौ धावमानौ महामुनी । पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं दुरासदम्
कन्यासिद्धिरहोप्राप्ताह्यावयोरितिवेगितौ । लोकालोकान्तमनिशंधावमानौभयार्दितौ

त्राहि त्राहीति गोविन्दं भाषमाणौ भयार्दितौ ।

विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण ! जगत्पते ! ॥ १४० ॥

वासुदेव ! हृषीकेश ! पद्मनाभ ! जनार्दन ! ।

त्राह्यावांपुण्डरीकाक्ष ! नाथोसिपुरुषोत्तम ! ॥ १४१ ॥

ततोनारायणश्चिन्त्यः श्रीमान् श्रीवत्सलाञ्छनः ।

निवार्य्य चक्रं ध्वान्तश्च भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ १४२ ॥

अम्बरीषश्च मद्भक्तस्तथैतौ मुनिसत्तमौ । अनयोरस्य च तथा हितं कार्य्यं मयाधुना
आहूय सत्तमः श्रीमान्गिरा प्रह्लादयनहरिः । प्रोवाचभगवान्विष्णु श्रृणुतांमे इदं वचः
ऋषिशापो न चैवासीदन्यथा च वरो मम । दत्तो नृपायरक्षार्थंनास्तितस्यान्यथापुनः
अम्बरीषस्यपुत्रस्य नप्तुःपुत्रो महायशाः । श्रीमान्दशरथोनाम राजाभवति धार्मिकः
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामनामा भवाम्यहम् । तत्रमेदक्षिणोबाहुर्भरतो नाम वै भवेत् ॥

शत्रुघ्नो नाम सव्यश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्मृतः ।
तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना ॥ १४८ ॥

मुनिश्रेष्ठौचहित्वा त्वं इतिस्माह च माधवः । एवमुक्तंतमोनाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै
निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत । मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥
निर्गतौ शोकसन्तप्तौ ऊचतुस्तौ परस्परम् । अद्यप्रभृतिदेहान्तमावां कन्या परिग्रहम्
न करिष्यावइत्युक्त्वाप्रतिज्ञायचतावृषी । योगध्यानपरौशुद्धौ यथापूर्वंव्यवस्थितौ॥
अम्बरीषश्चराजासौपरिपाल्यच मेदिनीम् । सभृत्यज्ञातिसम्पन्नो विष्णुलोकंजगामवै
मानार्थमम्बरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः । रामोदाशरथिर्भूत्वा नात्मवेदीश्वरोऽभवत्

मुनयश्च तथा सर्वे भृग्वाद्या मुनिसत्तमाः ।
माया न कार्य्या विद्वद्भिरित्याहुः प्रेक्ष्य तं हरिम् ॥ १५५ ॥

नारदः पर्वतश्चैव चिरं ज्ञात्वा विचेष्टितम् । मायांविष्णोर्विनिन्द्यैव रुद्रभक्तौबभूवतुः
एतद्धिकथितंसर्वं मयायुष्माकमद्य वै । अम्बरीषस्य माहात्म्यं मायाचित्वञ्च वै हरेः
यः पठेच्छृणुयाद्वापिश्रावयेद्वापिमानवः । मायां विसृज्यपुण्यात्मारुद्रलोकंसगच्छति
इदं पवित्रं परमं पुण्यं वेदैरुदीरितम् । सायंप्रातःपठेन्नित्यं विष्णोःसायुज्यमाप्नुयात्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे श्रीमत्याख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

अलक्ष्मीवृत्तवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

मायावित्वं श्रुतंविष्णोर्देवदेवस्य धीमतः । कथंज्येष्ठा समुत्पत्तिर्देवदेवात्जनार्दनात्
वक्तुमर्हसि चास्माकं लोमहर्षण ! तत्त्वतः ।

सूत उवाच

अनादिनिधनः श्रीमान् धाता नारायणः प्रभुः ॥ २ ॥

जगद्द्वैधमिदञ्चक्रे मोहनाय जगत्पतिः । विष्णुर्वैब्राह्मणान्वेदान्वेदधर्मान्सनातनान् ॥

श्रियंपद्मां तथा श्रेष्ठां भागमेकमकारयत् । ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यान्नराधमान्

अधर्मञ्च महातेजा भागमेकमकल्पयत् । अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः ॥

ज्येष्ठातेनसमाख्याता अलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः । अमृतोद्भवबेलायां विषानन्तरमुत्थणात्

अशुभा सा तथोत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुतम् ।

ततः श्रीश्च समुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहः ॥ ७ ॥

दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमे शुभांतथा । ज्येष्ठांतांपरिपूर्णोऽसौमनसावीक्ष्यधिष्ठितान्

लोकंचचारहृष्टात्मा तयासह मुनिस्तदा । यस्मिन्घोषोहरेश्चैव हरस्य च महात्मनः॥

वेदघोषस्तथाविप्रा! होमधूमस्तथैव च । भस्माङ्गिनो वा यत्रासंस्तत्र तत्र भयार्दिता

पिधायकर्णौसंयाति धावमाना इतस्ततः । उज्ज्येष्ठामेवंविधां दृष्ट्वा दुःसहोमोहमागतः

तया सह वनं गत्वा चचार स महामुनिः । तपोमहद्वनेघोरे यातिकन्या प्रतिगृहम् ॥

न करिष्यामि चेत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तामृषिः ।

योगज्ञानपरः शुद्धो यत्र योगीश्वरो मुनिः ॥ १३ ॥

तत्रायान्तं महात्मानं मार्कण्डेयमपश्यत । प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत्

भार्य्येयं भगवन्! मह्यं न स्थास्यति कथञ्चन ।

किं करोमीति विप्रर्षे! ह्यनया सह भार्य्यया ॥ १५ ॥

प्रविशामि तथा कुत्र कुतो न प्रविशाम्यहम् ।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु दुःसह! सर्वत्र अकीर्त्तिरशुभान्विता ॥ १६ ॥

अलक्ष्मीरतुलाचेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता । नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः ॥

रुद्रभक्तामहात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः । स्थिता यत्रजनानित्यंमाविशेथाकथञ्चन

नारायण! हृषीकेश! पुण्डरीकाक्ष! माधव ।

अच्युतानन्द गोविन्द ! वासुदेव जनार्दन ! ॥ १६ ॥
रुद्र रुद्रेति रुद्रेति शिवाय च नमोनमः । नमः शिवतरायेति शङ्करायेति सर्वदा ॥२०॥
महादेव ! महादेव ! महादेवेति कीर्त्तयेत् । उमायाः पतये चैव हिरण्य पतये सदा ॥
हिरण्यबाहवे तुभ्यं वृषाङ्काय नमो नमः । नृसिंह वामनाचिन्त्य माधवेति च ये जनाः
वक्ष्यन्तिसततंहृष्टाब्राह्मणाःक्षत्रियास्तथा । वैश्याःशूद्राश्च ये नित्यं तेषां धनगृहादिषु
आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेथाः कथञ्चन ॥ २३ ॥
ज्वाला माला करालञ्च सहस्रादित्यसन्निभम् ।
चक्रं विष्णोरतीवोग्रं तेषां हन्ति सदा शुभम् ॥ २४ ॥
स्वाहाकारोवषट्कारोगृहेयस्मिन्हिवर्त्तते। तद्धित्वावान्यमागच्छसामघोषोऽथयत्रवा
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणा । वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान् विसर्जयेत् ॥
अग्निहोत्रं गृहे येषां लिङ्गार्चा या गृहेषु च । वासुदेवतनुर्वापि चण्डिका यत्र तिष्ठति
दूरतो व्रजतान् हित्वा सर्वपाप विवर्जितान् । नित्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजन्ति च महेश्वरम्
तान्हित्वाव्रजवान्यत्र दुःसहत्वंसहानया । श्रोत्रियाब्राह्मणागावोगुरवोऽथितयःसदा
रुद्रभक्ताश्च पूज्यन्ते यैर्नित्यं तान्विवर्जयेत् ।

दुःसह उवाच

यस्मिन्प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ! ॥ ३० ॥
त्वद्वाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशाम्येषां गृहे सदा ।

मार्कण्डेय उवाच

न श्रोत्रिया द्विजा गावो गुरवोऽतिथयः सदा ।
यत्र भर्त्ता च भार्य्या च परस्पर विरोधिनौ ॥ ३१ ॥
सभार्य्यस्त्वं गृहं तस्य विशेथा भयवर्जितः । देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥
विनिन्द्योयत्रभगवान्विशस्व भयवर्जितः । वासुदेवरतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदाशिवः
जपहोमादिकंनास्तिभस्मनास्तिगृहेनृणाम् । पर्वण्यभ्यर्चनंनास्ति चतुर्दश्यांविशेषतः
कृष्णाष्टम्याञ्चरुद्रस्यसन्ध्यायांभस्मवर्जिताः । चतुर्दश्यांमहादेवं न यजन्ति च यत्र वै

विष्णोर्नामविहीना ये सङ्घाश्च दुरात्मभिः । नमःकृष्णाय शर्वाय शिवाय परमेष्ठिने

ब्राह्मणाश्च नरा मूढा न वदन्ति दुरात्मका ।
तत्रैव सततं वत्स ! सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥ ३७ ॥

वेदघोषेन यत्रास्ति गुरुपूजादयो न च । पितृकर्म विहीनास्तुसभार्य्यस्त्वंसमाविश
रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन्कलहो वर्ततेमिथः । अनयासार्धमनिशं विशत्वं भयवर्जितः
लिङ्गार्चनंयस्यनास्तियस्यनास्तिजपादिकम् । रुद्रभक्तिविनिन्दा च तत्रैवविशनिर्भयः

अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोऽपिवा ।
न सन्ति यद्गृहे गावः सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥ ४१ ॥
बालानां प्रेक्षमाणानां यत्रा दत्वा त्वभक्षयन् ।
भक्ष्याणि तत्र संहृष्टः सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥ ४२ ॥

अनभ्यर्च्य महादेवं वासुदेवमथापि वा । अहुत्वा विधिवद्यत्र तत्र नित्यं समाविश
पापकर्मरता मूढा दयाहीनाः परस्परम् । गृहे यस्मिन्समासन्ते देशे वा तत्र सम्विश
प्राकारागारविध्वंसानचैवेड्याकुटुम्बिनी । तद्गृहन्तुसमासाद्य वसनित्यं हि हृष्टधीः
यत्रकण्टकिनोवृक्षायत्रनिष्पाववल्लरी । ब्रह्मवृक्षश्चयत्रास्ति सभार्य्यस्त्वंसमाविश ॥
अगस्त्यार्कादयोवापि बन्धुजीवोगृहेषु वै । करवीरो विशेषेण नन्द्यावर्त्तमथापिवा ॥
मल्लिका वा गृहेयेषांसभार्य्यस्त्वं समाविश । कन्याच यत्रवै वल्ली द्रोहीवाचजटीगृहे
बहुलाकदलीयत्र सभार्यस्त्वं समाविश । तालं तमालं भल्लातं तिन्तिडीखण्डमेव च
कदम्बखदिरं वापि सभार्य्यस्त्वं समाविश । न्यग्रोधं वा गृहेयेषां अश्वत्थंचूतमेववा
उदुम्बरं वा पनसं सभार्य्यस्त्वं समाविश । यस्य काकगृहंनिम्बे आरामेवागृहेऽपिवा

दण्डिनी मुण्डिनी वापि सभार्य्यस्त्वं समाविश ।
एका दासी गृहे यत्र त्रिगवं पञ्चमाहिषम् ॥ ५२ ॥

षडश्वं सप्तमातङ्गं सभार्य्यस्त्वं समाविश । यस्य काली गृहेदेवी प्रेतरूपाच डाकिनी
क्षेत्रपालोऽथ वा यत्र सभार्य्यस्त्वंसमाविश । भिक्षुबिम्बश्चवैयस्य गृहे क्षपणकंतथा
बौद्धं वा बिम्बमासाद्य तत्र पूर्णं समाविश । शयनासनकालेषु भोजनाटनवृत्तिषु ॥

येषां वदति नो वाणीनामानि च हरेः सदा। तद्गृहं ते समाख्यातं सभार्य्यस्थ निवेशितुम्
पाषण्डाचारनिरताः श्रौतस्मार्त्तबहिस्कृताः। विष्णुभक्तिविनिर्मुक्ता महादेवविनिन्दकाः
नास्तिकाश्च शठाः यत्र सभार्य्यस्त्वं समाविश। सर्वस्मादधिकत्वं येन वदन्ति पिनाकिनः
साधारणं स्मरन्त्येनं सभार्य्यस्त्वं समाविश। ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रः सर्वसुरेश्वरः
रुद्रप्रसादजाश्चेति न वदन्ति दुरात्मकाः। ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रश्च सम एव च
वदन्ति मूढाः खद्योतं भानुं वा मूढचेतसः। तेषां गृहे तथा क्षेत्रे आवासे वा सदानया
विश भुंक्ष्व गृहं तेषां अपि पूर्णमनन्यधीः। येऽश्नन्ति केवलं मूढाः पक्वमन्नं विचेतसः
स्नानमङ्गलहीनाश्च तेषां त्वं गृह माविश। या नारी शौचविभ्रष्टा देहसंस्कारवर्जिता

सर्वभक्ष्यरता नित्यं तस्याः स्थाने समाविश।

मलिनास्याः स्वयं मर्त्या मलिनाम्बरधारिणः ॥ ६४ ॥

मलदन्ता गृहस्थाश्च गृहं तेषां समाविश। पादशौचविनिर्मुक्ताः सन्ध्याकाले च शायिनः
सन्ध्यायामश्नुते ये वै गृहं तेषां समाविश। अत्याशनरता मर्त्या अतिपानरता नराः
द्यूतवादक्रिया मूढाः गृहं तेषां समाविश। ब्रह्मस्वहारिणो ये चायोग्यांश्चैव यजन्ति वा
शूद्रान्नभोजिनो वापि गृहं तेषां समाविश। मद्यपानरताः पापा मांसभक्षणतत्पराः॥
परदाररता मर्त्या गृहं तेषां समाविश। पर्वण्यनर्चाभिरता मैथुने वा दिवा रताः॥
सन्ध्यायां मैथुनं येषां गृहं तेषां समाविश। पृष्ठतो मैथुनं येषां श्वानवत्मृगवच्च वा॥
जले वा मैथुनं कुर्यात्सभार्य्यस्त्वं समाविश। रजस्वलां स्त्रियं गच्छेच्चाण्डालीं वानराधमः
कन्यां वा गोगृहे वापि गृहं तेषां समाविश। बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृताः
रुद्रभक्तिविहीना ये गृहं तेषां समाविश। शृङ्गैर्दिव्यौषधैः क्षुद्रैः शेफमालिप्य गच्छति

भगद्रावं करोत्यस्मात् सभार्य्यस्त्वं समाविश।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान् निर्मार्ज्यनयने तदा ॥ ७४ ॥

ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसङ्काशस्तत्रैवान्तरधीयत। दुःसहश्च तथोक्तानि स्थानानि च समेयिवान्
विशेषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निन्दारतात्मनाम्। सभार्य्यो मुनिशार्दूलः सैवाज्येष्ठाइति स्मृता

दुःसहस्ता मुवाचेत्थं तडागाश्रममन्तरे । आस्व त्वमत्र चाहं वै प्रवेक्ष्यामि रसातलम्
आवयोःस्थानमालोक्यनिवासार्थंततःपुनः। आगमिष्यामितेपार्श्वमित्युक्तातमुवाचसा

किमश्नामि महाभाग ! को मे दास्यति वै बलिम् ।

इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह यास्त्रियस्त्वां यजन्ति वै ॥ ७६ ॥

बलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासाञ्च गृहं विश । इत्युक्त्वा त्वाविशत्तत्रपातालंबिलयोगतः
अद्यापि च विनिर्मग्नो मुनिः सजलसंस्तरे । ग्रामपर्वतबाह्येषु नित्यमास्ते शुभा पुनः
प्रसङ्गाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः । लक्ष्म्याद्वष्टस्तयालक्ष्मीः सा तमाह जनार्दनम्

भर्त्ता गतो महाबाहो! विलं त्यक्त्वा स मां प्रभो ! ।

अनाथाऽहं जगन्नाथ ! वृत्तिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ ८३ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तो भगवान्विष्णुः प्रहस्याह जनार्दनः । ज्येष्ठामलक्ष्मीदेवेशो'माधवो मधुसूदनः

श्रीविष्णुरुवाच

ये रुद्रमनघं शर्वं शङ्करं नीललोहितम् । अम्बां हैमवतीं वापि जनित्रीं जगतामपि ॥
मद्भक्तान्निन्दयन्त्यत्र तेषां वित्तं तवैव हि । योऽपिचैवमहादेवं विनिन्द्यैवयजन्तिमाम्
मूढा ह्यभाग्या मद्भक्ता अपि तेषां धनं तव । यस्याज्ञयाह्यहंब्रह्मा प्रसादाद् वर्त्ततेसदा
ये यजन्ति विनिन्द्यैव मम विद्वेषकारकाः । मद्भक्ता नैव ते भक्ता इव वर्त्तन्ति दुर्मदाः

तेषां गृहं धनं क्षेत्रं इष्टापूर्त्तं तवैव हि ।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां परित्यज्य लक्ष्म्या लक्ष्मीं जनार्दनः ॥ ८६ ॥

जजाप भगवान्रुद्रमलक्ष्मीक्षयसिद्धये । तस्मात्प्रदेयं तस्यैव बलिं नित्यं मुनीश्वराः !
विष्णुभक्तैर्न सन्देहः सर्वयत्नेनसर्वदा । अङ्गनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विविधैर्द्विजाः
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वाद्विजोत्तमान् । अलक्ष्मीवृत्तमनघोलक्ष्मीवांल्लभतेगतिम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अलक्ष्मीवृत्तं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

द्वादशाक्षरप्रशंसानामवर्णनम्

ऋषय उचुः

किं जपन्मुच्यते जन्तुःसर्वलोकभयादिभिः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमाङ्गतिम्
ध्यलक्ष्मीं चाथ सन्त्यज्यगमिष्यतिजपेन वै । लक्ष्मीवासोभवेन्मर्त्यःसूत!वक्तुमिहार्हसि

सूत उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं वसिष्ठाय महात्मने !। वक्ष्ये सङ्क्षेपतःसर्वं सर्वलोकहिताय वै ॥
शृण्वन्तु वचनं सर्वे प्रणिपत्य जनार्दनम् । देवदेवमजं विष्णुं कृष्णमच्युतमव्ययम्
सर्वपापहरं शुद्धं मोक्षदं ब्रह्मवादिनाम् । मनसा कर्मणावाचा यो विद्वान्पुण्यकर्मकृत्
नारायणं जपेन्नित्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् । स्वपन्नारायणं देवं गच्छन्नारायणं तथा ॥

भुञ्जन्नारायणं विप्रास्तिष्ठन् जाग्रन् सनातनम् ।
उन्मिषन्निमिषन् वापि नमो नारायणेति वै ॥ ७ ॥

भोज्यं पेयञ्च लेह्यञ्च नमो नारायणेतिच । अभिमन्त्र्यस्पृशन्भुङ्क्तेसयातिपरमाङ्गतिम्
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति च सताङ्गतिम् । अलक्ष्मीत्र्वमयाप्रोक्तापत्नीयादुःसहस्यच
नारायणपदं श्रुत्वा गच्छत्येव न संशयः । या लक्ष्मीर्देवदेवस्य हरेः कृष्णस्य वल्लभा
गृहे क्षेत्रे तथा वासे तत्रैवसतिसुव्रताः !। आलोड्य सर्वशास्त्राणिविचार्य्यचपुनःपुनः
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा । किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैःकितस्य बहुभिर्व्रतैः
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः । तस्मात्सर्वेषु कालेषु नमोनारायणेतिच

जपेत् स याति विप्रेन्द्रा ! विष्णुलोकं सबान्धवः ।
अन्यच्च देवदेवस्य शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ! ॥ १४ ॥

मन्त्रो मया पुराभ्यस्तः सर्ववेदार्थसाधकः । द्वादशाक्षरसंयुक्तो द्वादशात्मा पुरातनः
तस्यैवेहचमाहात्म्यंसङ्क्षेपात्प्रवदामिवः । कश्चिद्विद्विजोमहाप्राज्ञस्तपस्तप्त्वाकथञ्चन

पुत्रमेकं तथोत्पाद्य संस्कारैश्च यथाक्रमम् । योजयित्वा यथाकालं कृतोपनयनं पुनः
अध्यापयामासतदासवनोवाचकिञ्चन । न जिह्वा स्पन्दतेतस्य दुःखितोऽभूद्द्विजोत्तमः
वासुदेवेति नियतमैतरेयो वदत्यसौ । पिता तस्य तथा चान्यां परिणीय यथाविधि
पुत्रानुत्पादयामास तथैव विधिपूर्वकम् । वेदानधीत्य सम्पन्ना बभूवुः सर्वसम्मताः॥
ऐतरेयस्य सा माता दुःखिता शोकमूर्च्छिता । उवाच पुत्राःसम्पन्नावेदवेदाङ्गपारगाः

ब्राह्मणैः पूज्यमाना वै मोदयन्ति च मातरम् ।

मम त्वं भाग्यहीनायाः पुत्रो जातो निराकृतिः ॥ २२ ॥

ममात्र निधनं श्रेयो न कथञ्चन जीवितम् । इत्युक्तः स च निर्गम्य यज्ञवाटं जगामवै
तस्मिन्याते द्विजानान्तुन मन्त्राःप्रतिपेदिरे । ऐतरेयेस्थिते तत्र ब्राह्मणामोहितास्तदा
ततो वाणी समुद्भूता वासुदेवेति कीर्त्तनात् । ऐतरेयस्यतेविप्राः प्रणिपत्ययथातथम्
पूजाञ्चक्रुस्ततो यज्ञं स्वयमेव जगाम वै । ततः समाप्य तं यज्ञमैतरेयो धनादिभिः ॥
सर्ववेदान्सदस्याह षडङ्गान्ससमाहितः । तुष्टुवुश्च तथा विप्रा ब्रह्माद्याश्चतथाद्विजाः!
ससर्जुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः । एवं समाप्यवै यज्ञमैतरे यो द्विजोत्तमाः

मातरं पूजयित्वा तु विष्णोःस्थानं जगाम ह ।

एतद्वै कथितं सर्वं द्वादशाक्षरवैभवम् ॥ २६ ॥

पठतां शृण्वतां नित्यं महापातकनाशनम् । जपन् यः पुरुषोनित्यं द्वादशाक्षरमव्ययम्
स याति दिव्यमतुलं विष्णोस्तत्परमं पदम् । अपि पापसमाचारो द्वादशाक्षरतत्परः
प्राप्नोति परमंस्थानं नात्र कार्य्याविचारणा । किंपुनर्ये स्वधर्मस्था वासुदेवपरायणाः

दिव्यं स्थानं महात्मानः प्राप्नुवन्तीति सुव्रताः ! ॥ ३३ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे द्वादशाक्षरप्रशंसा नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अष्टाक्षरप्रशंसानामवर्णनम्

सूत उवाच

अष्टाक्षरो द्विजश्रेष्ठा ! नमो नारायणेति च । द्वादशाक्षरमन्त्रश्च परमः परमात्मनः॥१
मन्त्रः षडक्षरो विप्राः ! सर्ववेदार्थसञ्चयः । यश्चों नमःशिवायेतिमन्त्रःसर्वार्थसाधकः
तथा शिवतरायेति दिव्यः पञ्चाक्षरःशुभः । मयस्कराय चेत्येवं नमस्ते शङ्कराय च ॥
सप्ताक्षरोऽयं रुद्रस्य प्रधानपुरुषस्य वै । ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वेदेवाः सवासवाः
मन्त्रैरेतैर्द्विजश्रेष्ठा ! मुनयश्च यजन्ति तम् । शङ्करं देवदेवेशं मयस्करमजोद्भवम् ॥ ५ ॥
शिवञ्च शङ्करं रुद्रं देवदेवमुमापतिम् । प्राहुर्नमः शिवायेति नमस्ते शङ्कराय च ॥६ ॥

मयस्कराय रुद्राय तथा शिवतराय च ।
जप्त्वा मुच्येत वै विप्रो ! ब्रह्महत्यादिभिः क्षणात् ॥ ७ ॥

पुरा कश्चिद्द्विजः शक्तो धुन्धुमूकइतिश्रुतः । आसीत्तृतीये त्रेतायामावर्त्तेचमनोःप्रभोः
मेघवाहनकल्पे वै ब्रह्मणः परमात्मनः । मेघो भूत्वा महादेवं कृत्तिवाससमीश्वरम् ॥
बहुमानेन वै रुद्रं देवदेवो जनार्दनः । खिन्नोऽतिभाराद्रुद्रस्यनिश्वासोच्छ्वासवर्जितः
विज्ञाप्य शितिकण्ठाय तपश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः । तपसा परमैश्वर्यं बलञ्चैव तथाद्भुतम् ॥
लब्धवान्परमेशानात् शङ्करात्परमात्मनः । तस्मात्कल्पस्तदा चासीन्मेघवाहनसंज्ञया
तस्मिन्कल्पे मुनेः शापाद् धुन्धुमूकसमुद्भवः । धुन्धुमूकात्मजस्तेन दुरात्माचबभूवसः

धुन्धुमूकः पुरासक्तो भार्य्यया सह मोहितः ।
तस्यां वै स्थापितो गर्भः कामासक्तेन चेतसा ॥ १४ ॥

अमावास्यामहन्येव मुहूर्ते रुद्रदैवते । अन्तर्वत्नी तदा भार्या मुक्ता तेन यथासुखम् ॥
असूतसाच तनयं विशल्याख्या प्रयत्नतः । रुद्रे मुहूर्ते मन्देन वीक्षिते मुनिसत्तमाः ! ॥
मातुःपितुस्तयारिष्टंससञ्जातस्तथात्मनः । ऋषी तमूचतुर्विप्रा ! धुन्धुमूकंमिथस्तदा

मित्रावरुणनामानौदुष्पुत्र इति सत्तमौ । वसिष्ठः प्राह नीचोऽपि प्रभावाद्वै बृहस्पतेः
पुत्रस्तवासौ दुर्बुद्धिरपि मुच्यति किल्बिषात् ।
दुःखितो धुन्धुमूकोऽसौ दृष्ट्वा पुत्रमवस्थितम् ॥ १६ ॥
जातकर्मादिकं कृत्वा विधिवत्स्वयमेवच । अध्यापयामासच तंविधिनैवद्विजोत्तमाः
तेनाधीतं यथान्यायं धौन्धुमूकेन सुव्रताः ! । कृतोद्वाहस्तदा गत्वा गुरुशुश्रूषणेरतः॥
अनेनैव मुनिश्रेष्ठा ! धौन्धुमूकेन दुर्मदात् ।
भुक्त्वान्यां वृषलीं दृष्ट्वा स्वभार्य्यावद्दिवानिशम् ॥ २२ ॥
एकशय्यासनगतो धौन्धुमूकोद्विजाधमः । तथाचचारदुर्बुद्धिस्त्यक्त्वा धर्मगतिपराम्
माध्वीपीता तयासार्धं तेनरागविवृद्धये । केनापिकारणात्तेनतामुद्दिश्य द्विजोत्तमाः !
निहता सा च पापेन वृषली गतमङ्गला । ततस्तस्यास्तदातस्य भ्रातृभिर्निहतः पिता
माताच तस्य दुर्बुद्धेः धौन्धुमूकस्य शोभना ।
भार्य्या च तस्य दुर्बुद्धेः श्यालास्ते चापि सुव्रताः ! ॥ २६ ॥
राक्षाक्षणादहोनष्टंकुलंतस्याश्च तस्य च । गत्वासौ धौन्धुमूकश्च येनकेनापिलीलया
दृष्ट्वा तु तं मुनिश्रेष्ठं रुद्रजाप्यपरायणम् । लब्ध्वा पाशुपतं तद्वै पुरा देवान्महेश्वरात्
लब्ध्वा पञ्चाक्षरञ्चैव षडक्षरमनुत्तमम् । पुनः पञ्चाक्षरञ्चैव जप्त्वा लक्षं पृथक् पृथक्
व्रतं कृत्वा च विधिना दिव्यंद्वादशमासिकम् । कालधर्मंगतःकल्पे पूजितश्च यमेन वै
उद्धताचतथामाता पिता श्यालाश्चसुव्रताः !। पत्नीच सुभगाजातासुस्मिताचपतिव्रता
ताभिर्विमानमारुह्य देवैः सेन्द्रैरभिष्टुतः । गाणपत्यमनुप्राप्य रुद्रस्य दयितोऽभवत्
तस्मादष्टाक्षरान्मन्त्रात्तथावैद्वादशाक्षरात् । भवेत्कोटिगुणंपुण्यंनात्रकार्य्याविचारणा
तस्माज्जपेद्वियोनित्यंप्रागुक्तेनविधानतः । शक्तिबीजसमायुक्तं स याति परमां गतिम्
एतद्वःकथितं सर्वं कथासर्वस्वमुत्तमम् । यःपठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्
स याति ब्रह्मलोकस्तु रुद्रजाप्यमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अष्टाक्षरप्रशंसावर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

देवैः पुराकृतं दिव्यं व्रतंपाशुपतं शुभम् । ब्रह्मणा च स्वयं सूत ! कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा पतितेन च विप्रेण धौन्धुमूकेनवै तथा । कृत्वा जप्त्वा गतिःप्राप्ता कथं पाशुपतंव्रतम् कथं पशुपतिर्देवः शङ्करः परमेश्वरः । वक्तुमर्हसि चास्माकं परं कौतूहलं हि नः ॥३॥

सूत उवाच

पुराशापाद्विनिर्मुक्तो ब्रह्मपुत्रो महायशाः । रुद्रस्य देवदेवस्य मरुद्देशादिहागतः ॥ ४ ॥ त्यक्त्वा प्रसादाद्रुद्रस्य उष्ट्रदेहमजाज्ञया । शिलादपुत्रमालाद्य नमस्कृत्य विधानत ॥ मेरुपृष्ठे मुनिवरः श्रुत्वा धर्ममनुत्तमम् । माहेश्वरं मुनिश्रेष्ठा ! ह्यपृच्छच्च पुनः पुनः ॥ नन्दिनं प्रणिपत्यैनं कथं पशुपतिः प्रभुः । वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्सर्वञ्च तदाह सः॥ तत्सर्वंश्रुतवान्व्यासःकृष्णद्वैपायनः प्रभुः । तस्मादहमुपश्रुत्य युष्माकं प्रवदामि वः ॥

सर्वे शृण्वन्तु वचनं नमस्कृत्वा महेश्वरम् ।

सनत्कुमार उवाच

कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्त्तिताः ।
कैः पाशैस्ते निबध्यन्ते विमुच्यन्ते च ते कथम् ।

शैलादिरुवाच

सनत्कुमार ! वक्ष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् ॥ १० ॥

रुद्रभक्तस्य शान्तस्य तव कल्याणचेतसः । ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्यधीमतः पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्त्तिनः । तेषां पतित्वाद्भगवान्रुद्रः पशुपतिः स्मृतः ॥ अनादिनिधनोधाता भगवान्विष्णुरव्ययः । मायापाशेन बध्नाति पशुवत्परमेश्वरः ॥ स एव मोचकस्तेषां ज्ञानयोगेन सेवितः । अविद्यापाशबद्धानांनान्यो मोचक इष्यते

तमृते परमात्मानं शङ्करं परमेश्वरम् । चतुर्विंशतितत्त्वानि पाशाहि परमेष्ठिनः ॥१५॥

तैः पाशैर्मोचयत्येकः शिवो जीवैरुपासितः ।
निबध्नाति पशूनेकश्चतुर्विंशति पाशकैः ॥ १६ ॥

स एव भगवान्रुद्रो मोचयत्यपि सेवितः । दशेन्द्रियमयैः पाशैः अन्तः करणसम्भवैः
भूत तन्मात्रपाशैश्च पशून्मोचयति प्रभुः । इन्द्रियार्थमयैः पाशैर्बध्वा विषयिणः प्रभुः ॥
आशुभक्ता भवन्त्येव परमेश्वरसेवया । भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्त्तितः ॥१६
तस्मात्सेवाबुधैःप्रोक्ताभक्तिशब्देन भूयसी । ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तंपशून् बध्वा महेश्वरः
त्रिभिर्गुणमयैःपाशैःकार्य्यंकारयतिस्वयम् । दृढेन भक्तियोगेन पशुभिः समुपासितः॥
मोचयत्येवतान्सद्यः शङ्करः परमेश्वरः । भजनं भक्तिरित्युक्ता वाङ्मनः कायकर्मभिः ॥

सर्वं कार्य्येण हेतुत्वात्पाशच्छेदपटीयसी ।
सत्यः सर्वग इत्यादि शिवस्य गुणचिन्तनम् ॥ २३ ॥

रूपोपादनचिन्ता च मानसं भजनं विदुः । वाचिकं भजनं धीराः प्रणवादिजपंविदुः
कायिकं भजनं सद्भिःप्राणायामादिकथ्यते । धर्माधर्ममयैः पाशैर्बन्धनं देहिनामिदम्
मोचकः शिव एवैको भगवान्परमेश्वरः । चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्म गुणा इति ॥
कीर्त्यन्तेविषयाश्चेतिपाशाजीवनिबन्धनात् । तैर्बद्धाः शिवभक्त्यैव मुच्यन्तेसर्वदेहिनः
पञ्चक्लेशमयैःपाशैः पशून् बध्नातिशङ्करः । स एवमोचकस्तेषांभक्त्यासम्यगुपासितः
अविद्यामस्मितांरागंद्वेषञ्चद्विपदांवराः । वदन्त्यभिनिवेशञ्चक्लेशान् पाशत्वमागतान्

तमो मोहो महामोहस्तामिस्र इति पण्डिताः ।
अन्धतामिश्र इत्याहुरविद्यां पञ्चधा स्थिताम् ॥ ३० ॥
तान्जीवान्मुनिशार्दूलाः ! सर्वांश्चैवाप्यविद्यया ।
शिवो मोचयति श्रीमान्नान्यः कश्चिद्विमोचकः ॥ ३१ ॥

अविद्यातम इत्याहुरस्मितां मोह इत्यपि । महामोह इति प्राज्ञा रागं योगपरायणाः॥
द्वेषं तामिस्र इत्याहुरन्धतामिश्र इत्यपि । तथैवाभिनिवेशञ्च मिथ्या ज्ञानं विवेकिनः
तमसोऽष्टविधा भेदा मोहश्चाष्टविधः स्मृतः । महामोहप्रभेदाश्च बुधैर्दश विचिन्तिताः

अष्टादशविधश्चाहुस्तामिलाश्च विचक्षणाः । अन्यतामिस्रभेदाश्च तथाष्टादशधास्मृताः
अविद्ययास्यसम्बन्धोनातीतोनास्यनागतः ! । भवेद्रागेणदेवस्य शम्भोरङ्गनिवासिनः

कालेषु त्रिषु सम्बन्ध तस्य द्वेषेण नो भवेत् ।

भयातीतस्य देवस्य स्थाणोः पशुपतेर्विभोः ॥ ३७ ॥

तथैवाभिनिवेशेन सम्बन्धो न कदाचन । शङ्करस्य शरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः ॥
कुशलाकुशलैस्तस्य सम्बन्धो नैव कर्मभिः । भवेत्कालत्रये शम्भोरविद्या मतिवर्तिनः
विपाकैः कर्मणां वापि न भवेदेव सङ्गमः । कालेषुत्रिषुसर्वस्य शिवस्य शिवदायिनः
सुखदुःखैरसंस्पृश्यः काल त्रितयवर्त्तिभिः । सतैर्विनश्वरैः शम्भुर्बोधानन्दात्मकः परः
आशयैरपरामृष्टः कालत्रितयगोचरैः । धियां पतिः स्वभूरेष महादेवो महेश्वरः॥४२॥

अस्पृश्यः कर्मसंस्कारैः कालत्रितयवर्त्तिभिः ।

तथैव भोगसंस्कारैर्भगवानन्तकान्तकः ॥ ४३ ॥

पुंविशेषपरो देवो भगवान्परमेश्वरः । चेतनाचेतनायुक्त प्रपञ्चादखिलात्परः ॥ ४४ ॥
लोकेसातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यं विलोक्यते । शिवेनातिशयत्वेन शिवं प्राहुर्मनीषिणः॥
प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम् । उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्त्तिनाम
कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः । सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः॥
अनादिरेष सम्बन्धो विज्ञानोत्कर्षयोःपरः । स्थितयो रीदृशःसर्वःपरिशुद्धःस्वभावतः
आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि । प्रयोजनं समस्तानां कार्य्याणां परमेश्वरः ॥
प्रणवोवाचकस्तस्य शिवस्यपरमात्मनः । शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवोऽपि परःस्मृतः
शम्भोःप्रणववाच्यस्यभावनातज्जपादपि । या सिद्धिःस्वपरा प्राप्या भवत्येवनसंशयः

ज्ञानतत्वं प्रयत्नेन योगं पाशुपतं परम् ।

उक्तन्तु देवदेवेन सर्वेषामनुकम्पया ॥ ५२ ॥

सहोवाचैवयाज्ञवल्क्यो यदक्षरं गार्ग्ययोगिनः ।

अभिवदन्ति स्थूलमनन्तं महाश्चर्य्यमदीर्घमलोहितमस्तकमासायमत एवो पुनारसमसङ्गमगन्धमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवाङ्मनो तेजस्कमप्रमाणमनुसुखमनाम-

गोत्र ममरमजरमनामयममृतमों शब्दममृतमसंवृतमपूर्वमनपरमनन्त मथाहां तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति किञ्चन ॥ ५३ ॥

एतत्कालचये ज्ञात्वा परं पाशुपतं प्रभुम् । योगे पाशुपते चास्मिन्यस्यार्थः किलउत्तमे

कृत्वोङ्कारप्रदीपं मृगय गृहपतिं सूक्ष्ममाद्यन्तरस्थं
संयम्य द्वारवासं पवनपटुतरं नायकश्चेन्द्रियाणाम् ।
वाक्जालैः कस्य हेतोर्विभटसि तु भयं दृश्यते नैव किञ्चि-
द्देहस्थं पश्य शम्भुं भ्रमसि किमुपरे शास्त्रजालेऽन्धकारे ॥ ५५ ॥
एवं सम्यक् बुधैर्ज्ञात्वा मुनीनामर्थश्चोक्तं शिवेन ।
असमरसं पञ्चधा कृत्वा भयश्चात्मनि योजयेत् ॥ ५६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पाशुपतव्रतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

उमापतिमहिमावर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूय एव ममाचक्ष्व महिमानमुमापते । भवभक्तमहाप्राज्ञ ! भगवन्नन्दिकेश्वर ! ॥ १ ॥

शैलादि रुवाच

सनत्कुमार ! सङ्क्षेपात्तव वक्ष्याम्यशेषतः । महिमानं महेशस्य भवस्य परमेष्ठिनः ॥
नास्यप्रकृतिबन्धोऽभूद्बुद्धिबन्धोनकश्चन । न चाहङ्कारबन्धश्चमनो बन्धश्चनोऽभवत्
चित्तबन्धो न तस्याभूच्छ्रोत्रबन्धोनचाभवत् । नत्वचाश्चक्षुषांवापिबन्धो यक्षेकदाचन

जिह्वाबन्धो न तस्याभूत् घ्राणबन्धो न कश्चन ।
पादबन्धः पाणिबन्धो वाग्बन्धश्चैव सुव्रत ! ॥ ५ ॥

उपस्थेन्द्रियबन्धश्च भूततन्मात्रबन्धनम् । नित्यशुद्धस्वभावेन नित्यबुद्धो निसर्गतः ॥

नित्यमुक्त इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः । अनादिमध्यनिधनस्य शिवस्यपरमेष्ठिनः
बुद्धिसूतेनियोगेन प्रकृतिः पुरुषस्य च । अहङ्कारं प्रसूतेऽस्या बुद्धिस्तस्य नियोगतः ॥
अन्तर्य्यामीतिदेवेषुप्रसिद्धस्यस्वयम्भुवः । इन्द्रियाणिदशैकञ्चतन्मात्राणिच शासनात्
अहङ्कारोऽति संसूते शिवस्य परमेष्ठिनः । तन्मात्राणिनियोगेन तस्य संसुवते प्रभोः
महाभूतान्यशेषेण महादेवस्य धीमतः । ब्रह्मादीनां तृणान्तं हि देहिनां देहसङ्गतिम् ॥
महाभूतान्यशेषाणिजनयन्तिशिवाज्ञया । अध्यवस्यतिसर्वार्थान्बुद्धिस्तस्याज्ञयाविभोः
अन्तर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयम्भुवः । स्वभावसिद्धमैश्वर्य्यं स्वभावादेव भूतयः
तस्याज्ञया समस्तार्थानहङ्कारोऽतिमन्यते । चित्तञ्चेतयतेचापि मनःसङ्कल्पयत्यपि ॥

श्रोत्रं शृणोति तच्छक्त्या शब्दस्पर्शादिकञ्च यत् ।

शम्भोराज्ञाबलेनैव भवस्य परमेष्ठिनः ॥ १५ ॥

वचनं कुरुते वाक्यं नादानादि कदाचन । शरीराणामशेषाणांतस्य देवस्य शासनात्
करोतिपाणिरादानं न गत्यादि कदाचन । सर्वेषामेव जन्तूनां नियमादेव वेधसः ॥
विहारं कुरुते पादौ नोत्सर्गादिकदाचन । समस्तदेहिवृन्दानां शिवस्यैव नियोगतः॥
उत्सर्गंकुरुते पायुर्न वदेतकदाचन । जन्तोर्जातस्य सर्वस्य परमेश्वरशासनात् ॥१६॥
आनन्दं कुरुते शश्वदुपस्थं वचनाद्विभोः । सर्वेषामेव भूतानामीश्वरस्यैव शासनात् ॥
अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति । आकाशं सर्वदा तस्य परमस्यैव शासनात्
निर्देशेनशिवस्यैव भेदैः प्राणादिभिर्निजैः । बिभर्त्ति सर्वभूतानां शरीराणि प्रभञ्जनः॥
निर्देशाद्देवदेवस्य सप्तस्कन्धगतोमरुत् । लोकयात्रां वहत्येव भेदैः स्वैरावहादिभिः ॥
नागाद्यैः पञ्चभिर्भेदैः शरीरेषु प्रवर्तते । अपदेशेन देवस्य परमस्य सर्माग्णः ॥ २४ ॥
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि । पाकञ्चकुरुते वह्निः शङ्करस्यैव शासनात्
भक्तमाहारजातं यत्पचते देहिनां तथा । उदरस्थः सदा वह्निः विश्वेश्वरनियोगितः ॥

सञ्जीवयन्त्य शेषाणि भूतान्यपिस्तथाज्ञया ।

अविलङ्घ्या हि सर्वेषामाज्ञा तस्य गरीयसी ॥ २७ ॥

चराचराणि भूतानि बिभर्त्यैव तदाज्ञया । आज्ञया तस्य देवस्य देवदेवः पुरन्दरः ॥

जीवतांव्याधिभिःपीडांमृतानांयातनाशतैः। विश्वम्भरःसदाकालंलोकैसर्वैरलङ्घ्यया

देवाम्पात्यसुरान् हन्तित्रैलोक्यमखिलं स्थितः।

अधार्मिकाणां वै नाशं करोति शिवशासनात् ॥ ३० ॥

वरुणः सलिलैर्लोकान् सम्भावयति शासनात्।

मज्जयत्याज्ञया तस्य पाशैर्बध्नाति चासुरान् ॥ ३१ ॥

पुण्यानुरूपंसर्वेषांप्राणिनां सम्प्रयच्छति। वित्तंवित्तेश्वरस्तस्य शासनात्परमेष्ठिनः॥

उदयास्तमयेकुर्वन्कुरुते कालमाज्ञया। आदित्यस्तस्य नित्यस्य सत्यस्यापरमात्मनः

पुष्पाण्यौषधिजातानिप्रह्लादयतिचप्रजाः। अमृतांशुःकलाधारःकालकालस्यशासनात्

आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौमरुतस्तथा। अन्याश्चदेवताःसर्वास्तच्छासनविनिर्मिताः

गन्धर्वादेवसङ्घाश्चसिद्धाःसाध्याश्चचारणाः। यक्षरक्षःपिशाचाश्चस्थिताशास्त्रेबुवेधसः

ग्रहनक्षत्रताराश्च यज्ञावेदास्तपांसि च। ऋषीणाञ्च गणाःसर्वे शासनं तस्य धिष्ठिताः

क्रव्याशिनां गणाः सप्त समुद्रा गिरिसिन्धव।

शासने तस्य वर्तन्ते काननानि सरांसि च ॥ ३८ ॥

कलाःकाष्ठानिमेषाश्चमुहूर्तादिवसाःक्षपाः। ऋत्वब्दपक्षमासाश्चनियोगात्तस्यधिष्ठिताः

युगमन्वन्तराण्यस्यशम्भोस्तिष्ठति शासनात्। पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथापरे

देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चाम्पञ्च जातयः। मनुष्याश्च प्रवर्त्तन्ते देवदेवस्य धीमतः॥

जातानि भूतवृन्दानिचतुर्दशसुयोनिषु। सर्वलोकनिषण्णानि तिष्ठन्त्यस्यैवशासनात्

चतुर्दशसु लोकेषु स्थिता जाताः प्रजाः प्रभोः। सर्वेश्वरस्यतस्यैव नियोगवशवर्त्तिनः

पातालानिसमस्तानिभुवनान्यस्यशासनात्। ब्रह्माण्डानिचशेषाणितथासावरणानिच

वर्तमानानिसर्वाणि ब्रह्माण्डानि तदाज्ञया। वर्तन्ते सर्वभूताद्यैः समेतानि समन्ततः

अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डनितदाज्ञया। प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानिसमन्ततः

ब्रह्माण्डानिभविष्यन्तिसहवस्तुभिरात्मकैः। करिष्यन्तिशिवस्याज्ञांसर्वैरावरणैःसह

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे उमापतेर्महिमावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

शिवविभूतिमहिमावर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

विभूतीः शिवयोर्मह्यमाचक्ष्व त्वं गणाधिप !। परापरविदां श्रेष्ठ ! परमेश्वर भावित !

नन्दिकेश्वर उवाच

हन्तते कथयिष्यामिविभूतीःशिवयोरहम् । सनत्कुमार ! योगीन्द्र ! ब्रह्मणस्तनयोत्तम !
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवासाच प्रकीर्तिता । शिवमेवेश्वरंप्राहुर्मायांगौरींविदुर्बुधाः
पुरुषं शङ्करं प्राहुर्गौरीञ्चप्रकृतिंद्विजाः ! । अर्थःशम्भुःशिवावाणीदिवसोजःशिवानिशा
सततन्तुर्महादेवो रुद्राणि दक्षिणा स्मृता । आकाशं शङ्करो देवः पृथिवी शङ्करप्रिया
समुद्रो भगवान्रुद्रो वेला शैलेन्द्रकन्यका । वृक्षः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रियालता
ब्रह्मा हरोऽपि सावित्री शङ्करार्द्धशरीरिणी । विष्णुर्महेश्वरो लक्ष्मीर्भवानी परमेश्वरी
वज्रपाणिर्महादेवः शची शैलेन्द्रकन्यका । जातवेदाःस्वयंरुद्रः स्वाहा शर्वार्द्धकायिनी
यमस्त्रियम्बकोदेवस्तत्प्रियागिरिकन्यका । वरुणोभगवान्रुद्रो गौरी सर्वार्थदायिनी

बालेन्दु शेखरो वायुः शिवा शिवमनोरमा ।
चन्द्रार्द्ध मौलिर्यक्षेन्द्रः स्वयमृद्धिः शिवा स्मृता ॥ १० ॥

चन्द्रार्द्धशेखरश्चन्द्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा । सप्तसप्तिः शिवः कान्ता उमादेवी सुवर्चला
षण्मुखस्त्रिपुरध्वंसी देवसेना हरप्रिया । उमा प्रसूतिर्विज्ञेया दक्षो देवो महेश्वरः ॥
पुरुषाख्यो मनुः शम्भुः शतरूपा शिवप्रिया । विदुर्भवानीमाकूतिं रुचिञ्च परमेश्वरम्
भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रिया । मरीचिर्भगवान्रुद्र सम्भूतिर्वल्लभा विभोः

विदुर्भवानीं रुचिरां कविञ्च परमेश्वरम् ।
गङ्गाधरोऽङ्गिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता ॥ १५ ॥

पुलस्त्यःशशभृन्मौलिःप्रीतिःकान्तापिनाकिनः । पुलहस्त्रिपुरध्वंसीदयाकालरिपुप्रिया

क्रतुर्दक्षक्रतुध्वंसी सन्नतिर्दयिता विभोः। त्रिनेत्रो त्रिरुमा साक्षादनुसूयास्मृताबुधैः
ऊर्जामाहुरुमां वृद्धां वसिष्ठञ्च महेश्वरम्। शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी
पुंलिङ्गशब्दवाच्यायेतेचरुद्राःप्रकीर्त्तिताः। स्त्रीलिङ्गशब्दवाच्यायासर्वागौर्य्याविभूतयः
सर्वे स्त्रीपुरुषाः प्रोक्तास्तयोरेव विभूतयः। पदार्थशक्तयो या यास्तागौरीतिविदुर्बुधाः
सावा विश्वेश्वरी देवी सच सर्वो महेश्वरः। शक्तिमन्तः पदार्था ये सवसर्वोमहेश्वरः
अष्टौ प्रकृतयो देव्या मूर्त्तयः परिकीर्त्तिताः। तथा विकृतयस्तस्या देहवद्धविभूतयः

विस्फुलिङ्गा यथा तावदग्नौ च बहुधा स्मृताः।
जीवाः सर्वे तथा शर्वो द्वन्द्वसत्त्वमुपागतः॥ २३॥

गौरीरूपाणिसर्वाणिशरीराणिशरीरिणाम्। शरीरिणस्तथासर्वेशङ्कराशाव्यवस्थिताः
श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता देवो महेश्वरः। विषयित्वं विभुर्धत्ते विषयात्मकतामुमा
स्रष्टव्यं वस्तुजातन्तु धत्ते शङ्करवल्लभा। स्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचन्द्रार्द्धशेखरः
दृश्यवस्तुप्रजारूपं विभर्त्ति भुवनेश्वरी। द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखण्डशिखामणिः
रसजातमुमारूपं ग्रेयजातञ्च सर्वशः। देवो रसयिता शम्भुः घ्राता च भुवनेश्वरः॥
मन्तव्यवस्तुतां धत्ते महादेवी महेश्वरी। मन्ता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः
बोद्धव्यं वस्तुरूपञ्च विभर्त्ति भववल्लभा। देवः स एव भगवान् बोद्धा बालेन्दु शेखरः
पीठाकृतिरुमा देवी लिङ्गरूपश्च शङ्करः। प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेनपूजयन्ति सुरासुराः॥

ये ये पदार्था लिङ्गाङ्कास्ते ते सर्वविभूतयः।
अर्था भगाङ्किता ये ये ते ते गौर्य्या विभूतयः॥ ३२॥

स्वर्गपाताललोकान्तब्रह्माण्डावरणाष्टकम्। ज्ञेयं सर्वमुमारूपं ज्ञाता देवो महेश्वरः॥
विभर्त्ति क्षेत्रतां देवीत्रिपुरान्तकवल्लभा। क्षेत्रज्ञत्वमथो धत्ते भगवानन्धकान्तकः॥
शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजन्ते चान्य देवताः। स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्
शिवभक्तो न यो राजाभक्तोऽन्येषुसुरेषु यः। स्वपतियुवतिस्त्यक्त्वायथाजारेषुराजते
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः। मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति व
विष्णुना रावणंहत्वाससैन्यंब्रह्मणःसुतम्। स्थापितं विधिवद्भक्त्यालिङ्गंतीरेनदीपते

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा । भावात्समाश्रितो रुद्रंमुच्यतेनात्रसंशयः
सर्वे लिङ्गमया लोकाः सर्वे लिङ्गे प्रतिष्ठिता ।
तस्मादभ्यर्चयेल्लिङ्गं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम् ॥ ४० ॥
सर्वाकारोस्थितावेतौनरैःश्रेयोऽर्थिभिःशिवौ। पूजनीयौनमस्कार्यौचिन्तनीयौचसर्वदा
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवविभूतिमहिमावर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

शिवविश्वरूपवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

मूर्तयोऽष्टौममाचक्ष्व शङ्करस्य महात्मनः । विश्वरूपस्य देवस्य गणेश्वर ! महामते !

नन्दिकेश्वर उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि महिमानमुमापतेः । विश्वरूपस्य देवस्य सरोजभवसम्भव ! ॥
भूरापोऽग्निमरुद्व्योमभास्करोदीक्षित शशी । भवस्यमूर्त्तयःप्रोक्ताःशिवस्यपरमेष्ठिनः
स्वात्मेन्दुवह्निसूर्य्याम्भोधरापवन इत्यपि । तस्याष्टमूर्त्तयःप्रोक्ता देवदेवस्य धीमतः ॥
अग्निहोत्रेऽर्पिते तेन सूर्य्यात्मनि महात्मनि । तद्विभूतीस्तथासर्वेदेवास्तृप्यन्तिसर्वदा
वृक्षस्य मूलमेकेन यथा शाखोपशाखिकाः । तथातस्यार्चयादेवास्तथास्युस्तद्विभूतयः
तस्य द्वादशधा भिन्नं रूपंसूर्य्यात्मकं प्रभोः । सर्वदेवात्मकं याज्यंयजन्तिमुनिपुङ्गवाः
अमृताख्याकलातस्यसर्वस्यादित्यरूपिणः ।भूतसञ्जीवनीचेष्टालोकेऽस्मिन् पिवतेसदा
चन्द्राख्यकिरणास्तस्य धूर्जटेर्भास्करात्मनः । ओषधोनांविवृद्ध्यर्थंहिमवृष्टिंवितन्यते
शुक्लाख्या रश्मयस्तस्य शम्भोर्मार्त्तण्डरूपिणः ।
धर्मं वितन्यते लोके शस्यपाकादिकारणम् ॥ १० ॥
दिवाकरात्मनस्तस्य हरिकेशाह्वयः करः । नक्षत्रपोषकश्चैव प्रसिद्धः परमेष्ठिनः ॥११॥

विश्वकर्माह्वयस्तस्य किरणो बुधपोषकः । सर्वेश्वरस्य देवस्य सततसितःस्वरूपिणः ॥
विश्वव्यच इतिख्यातः किरणस्तस्य शूलिनः । शुक्रपोषोकभावेन प्रतीतःसूर्यरूपिणः
संयद्वसुरिति ख्यातोयस्यरश्मिस्त्रिशूलिनः । लोहिताङ्गंप्रपुष्णातिसहस्रकिरणात्मनः
अर्वा वसुरितिख्यातो रश्मिस्तस्यपिनाकिनः । बृहस्पतिंप्रपुष्णातिसर्वदातपनात्मनः

स्वराडिति समाख्यातः शिवस्यांशुः शनैश्चरम् ।

हरिदश्वात्मनस्तस्य प्रपुष्णाति दिवानिशम् ॥ १६ ॥

सूर्यात्मकस्यदेवस्यविश्वयोनेरुमापतेः । सुषुम्नाख्यःसदारश्मिःपुष्णातिशिशिरद्युतिम्
सौम्यानां वसुजातानां प्रकृतित्वमुपागता । तस्यसोमाह्वयामूर्त्तिःशङ्करस्यजगद्गुरोः
तस्य सोमात्मकं रूपं शुक्रत्वेनव्यवस्थितम् । शरीरभाजांसर्वेषांदेवस्यान्तकशासिनः
शरीरिणामशेषाणांमनस्येवव्यवस्थितम् । वपुःसोमात्मकंशम्भोस्तस्यसर्वजगद्गुरोः
शम्भोः षोडशधाभिन्ना स्थितामृतकलात्मनः । सर्वभूतशरीरेषुसोमाख्या मूर्त्तिरुत्तमा
देवान्पितॄंश्च पुष्णाति सुधयामृतया सदा । मूर्त्तिःसोमाह्वयातस्यदेवदेवस्यशासितुः
पुष्णात्यौषधिजातानिदेहिनामात्मशुद्धये । सोमाह्वयातनुस्तस्यभवानीमितिनिर्दिशेत्
यज्ञानां पतिभावेनजीवानां तपसामपि । प्रसिद्धरूपमेतद्धि सोमात्मकमुमापतेः ॥२४॥

जलानामौषधीनाञ्च पतिभावेन विश्रुतम् ।

सोमात्मकं वपुस्तस्य शम्भोर्भगवतः प्रभोः ॥ २५ ॥

देवो हिरण्मयो सृष्टः परस्परविवेकिनः । करणानाम शेषाणां देवतानां निराकृतिः
जीवत्वेनस्थितेतस्मिन्शिवे सोमात्मके प्रभौ । मधुराविलयंयातिसर्वलोकैकरक्षिणौ
यजमानाह्वया मूर्त्तिः शैवो हव्यैरहर्निशम् । पुष्णाति देवताः सर्वाःकव्यैःपितृगणानपि
यजमानाह्वया या सा तनुश्चाहुतिजातया । वृष्ट्या भावयतिस्पष्टं सर्वमेव परापरम्

अन्तःस्थञ्च बहिस्थञ्च ब्रह्माण्डानां स्थितं जलम् ।

भूतानाञ्च शरीरस्थं शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी ॥ ३० ॥

नदीनाममृतं साक्षान्नादानामपि सर्वदा । समुद्राणाञ्च सर्वत्र व्यापी सर्वमुमापतिः॥
सञ्जीवनी समस्तानां भूतानामेव पावनी । अम्बिका प्राणसंस्थायामूर्तिरम्बुमयीपरा

अन्तःस्थश्च बहिस्थश्च ब्रह्माण्डानां विभावसुः । यजमानाश्च शरीरस्थः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी
शरीरस्था च भूतानां श्रेयसी मूर्तिरीश्वरी । मूर्तिः पावकसंस्थाया शम्भोरत्यन्तपूजिता
भेदा एकोनपञ्चाशद्वेदविद्भिरुदाहृताः । हव्यं वहति देवानां शम्भोर्यह्यात्मकं वपुः ॥
कव्यं पितृगणानाञ्च हूयमानं द्विजातिभिः । सर्वदेवमयं शम्भोः श्रेष्ठमग्न्यात्मकं वपुः

वदन्ति वेदशास्त्रज्ञा यजन्ति च यथाविधि ।

अन्तस्थो जगदण्डानां बहिस्थश्च समीरणः ॥ ३७ ॥

शरीरस्थश्च भूतानां शैवी मूर्ति पटीयसी । प्रणाद्यानामकुर्माद्याश्चावहाद्याश्चवायवः
ईशानमूर्त्तेरेकस्य भेदाः सर्वे प्रकीर्त्तिताः । अन्तःस्थजगदण्डानांबहिस्थश्चवियद्विभोः
शरीरस्थश्चभूतानां शम्भोर्मूर्त्तिर्गरीयसी । शम्भोर्विश्वम्भरा मूर्त्तिः सर्वब्रह्माधिदेवता
चराचराणां भूतानां सर्वेषां धारणे मता । चराचराणां भूतानां शरीराणिविदुर्बुधाः
पञ्चकेनेशमूर्त्तीनां समारब्धानि सर्वथा । पञ्चभूतानिचन्द्रार्कावात्मेति मुनिपुङ्गवाः ॥
मूर्त्तयोऽष्टौशिवस्याहुर्देवदेवस्य धीमतः । आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिर्यजमानाह्वया परा
चराचरशरीरेषु सर्वेष्वेव स्थिता तदा । दीक्षितं ब्राह्मनं प्राहुरात्मानञ्च मुनीश्वराः ॥
यजमानाह्वया मूर्त्तिः शिवस्यशिवदायिनः । मूर्त्तयोऽष्टौशिवस्यैतावन्दनीयाःप्रयत्नतः

श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥ ४६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवविश्वरूपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

शिवाऽष्टमूर्त्तिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयोऽपि वद मे नन्दिन् ! महिमानमुमापतेः । अष्टमूर्त्तेर्महेशस्य शिवस्य परमेष्ठिनः

नन्दिकेश्वर उवाच

वक्ष्यामि ते महेशस्य महिमानमुमापतेः । अष्टमूर्त्तेर्जगद्व्याप्य स्थितस्य परमेष्ठिनः

चराचराणां भूतानां धाता विश्वम्भरात्मकः । शर्वइत्युच्यतेदेवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः
विश्वम्भरात्मनस्तस्य शर्वस्य परमेष्ठिनः । विकेशी कथ्यते पत्नीतनयोऽङ्गारकःस्मृतः
भव इत्युच्यते देवो भगवान्वेदवादिभिः । सञ्जीवनस्य लोकानां भवस्य परमात्मनः
उमासंकीर्त्तिता देवी सुतः शुक्रश्चसूरिभिः । समस्तलोकाण्डकव्यापीसर्वलोकैकरक्षिता
वह्न्यात्माभगवान्देव स्मृतःपशुपतिर्बुधैः । स्वाहापत्न्यात्मनस्तस्यप्रोक्तापशुपतेःप्रिया
षण्मुखो भगवान्देवो बुधैःपुत्र उदाहृतः ।
समस्तभुवनव्यापीभर्त्ता सर्वशरीरिणाम् ॥ ८ ॥
पवनात्माबुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते । ईशानस्य जगत्कर्त्तुर्देवस्य पवनात्मनः ॥६॥
शिवा देवी बुधैरुक्ता पुत्रश्चास्य मनोजवः । चराचराणां भूतानां सर्वेषां सर्वकामदः
व्योमात्मा भगवान्देवो भीम इत्युच्यतेबुधैः । महामहिम्नोदेवस्यभीमस्यगगनात्मनः
दिशोदशस्मृतादेव्यःसुतः सर्गश्च सूरिभिः । सूर्यात्मा भगवान्देव सर्वेषाञ्चविभूतिदः
रुद्र इत्युच्यते देवैर्भगवान्भुक्तिमुक्तिदः । सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भक्तिदायिनः
सुवर्चला स्मृता देवी सुतश्चास्य शनैश्चरः । समस्तसौम्यवस्तूनांप्रकृतित्वेन विश्रुतः
सोमात्मको बुधैर्देवो महादेवइतिस्मृतः । सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभिः
दयिता रोहिणी प्रोक्ता बुधश्चैवशरीरजः । हव्यकव्यस्थितिं कुर्वन् हव्यकव्याशिनांतदा
यजमानात्मको देवो महादेवो बुधैः प्रभुः । उग्र इत्युच्यते सद्भिरीशानश्चेति चापरैः॥
उग्राह्वयस्य देवस्य यजमानात्मनः प्रभोः ।
दीक्षापत्नी बुधैरुक्ता सन्तानाख्यः सुतस्तथा ॥ १८ ॥
शरीरिणां शरीरेषु कठिनं कोङ्कणादिवत् । पार्थिवं तद्वपुर्ज्ञेयं शर्वतत्त्वं बुभुत्सुभिः ॥
देहे देहे तु देवेशो देहभाजां यदव्ययम् । वस्तुद्रव्यात्मकं तस्य भवस्य परमात्मनः ॥
ज्ञेयश्च तत्त्वविद्भिर्वै सर्ववेदार्थपारगैः । आग्नेयः परिणामो यो विग्रहेषु शरीरिणाम्
मूर्त्तिः पशुपतिर्ज्ञेयासा तत्त्वंवेत्तुमिच्छुभिः । वायव्यःपरिणामोयःशरीरेषुशरीरिणाम्
बुधैरीशेति सा तस्य तनुर्ज्ञेया न संशयः । सुषिरं यच्छरीरस्थमशेषाणां शरीरिणाम्
भीमस्य सा तनुर्ज्ञेया तत्त्वविज्ञानकाङ्क्षिभिः ।

चक्षुरादिगतं तेजो यच्छरीरस्थमङ्गिनाम् ॥ २४ ॥
रुद्रस्यापि तनुर्ज्ञेया परमार्थं बुभुत्सुभिः । सर्वभूतशरीरेषु मनश्चन्द्रात्मकं हि यत् ॥
महादेवस्य सा मूर्त्तिर्बोद्धव्या तत्त्वचिन्तकैः । आत्माख्योयजमानाख्यःसर्वभूतशरीरगः
मूर्त्तिरुग्रस्य सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः । जातानां सर्वभूतानां चतुर्दशसु योनिषु॥
अष्टमूर्त्तेरनन्यत्वं वदन्ति परमर्षयः । सप्तमूर्त्तिमयान्याहुरीशस्याङ्गानि देहिनाम् ॥२८
आत्मा तस्याष्टमी मूर्त्तिः सर्वभूतशरीरगा । अष्टमूर्त्तिममुं देवं सर्वलोकात्मकं विभुम्
भजस्व सर्वभावेन श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छसि । प्राणिनो यस्य कस्यापिक्रियतेयद्यनुग्रहः
अष्टमूर्त्तेर्महेशस्य कृतमाराधनं भवेत् । निग्रहश्चेत्कृतो लोके देहिनो यस्य कस्यचित्
अष्टमूर्त्तेर्महेशस्य स एव विहितो भवेत् । यद्यवज्ञा कृता लोके यस्य कस्यचिदङ्गिनः
अष्टमूर्त्तेर्महेशस्य विहिता सा भवेद्विभोः ।
अभयं यत् प्रदत्तं स्यादङ्गिनो यस्य कस्यचित् ॥ ३३ ॥
आराधनं कृतं तस्मादष्टमूर्त्तेर्न संशयः । सर्वोपकारकरणं प्रदानमभयस्य च ॥ ३४ ॥
आराधनन्तु देवस्य अष्टमूर्त्तेर्न संशयः । सर्वोपकारकरणं सर्वानुग्रह एव च ॥ ३५ ॥
तदर्चनं परं प्राहुरष्टमूर्त्तेर्मुनीश्वराः । अनुग्रहणमन्येषां विधातव्यं त्वयाङ्गिनाम् ॥३६॥
सर्वाभयप्रदानञ्च शिवाराधनमिच्छता ॥ ३७ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवाष्टमूर्त्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

पञ्चब्रह्मकथनवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पञ्चब्रह्माणि मे नन्दिन्नाचक्ष्व गणसत्तम !। श्रेयःकरणभूतानि पवित्राणिशरीरिणाम्

नन्दिकेश्वर उवाच

शिवस्यैव स्वरूपाणि पञ्चब्रह्माह्वयानि ते । कथयामियथातत्त्वं पद्मयोनेः सुतोत्तम !
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वलोकैकरक्षिता । सर्वलोकैकनिर्माता पञ्चब्रह्मात्मकः शिवः ॥
सर्वेषामेव लोकानां यदुपादानकारणम् । निमित्तकारणञ्चाहुः स शिवःपञ्चधास्मृतः
मूर्तयः पञ्च विख्याताः पञ्चब्रह्माह्वयाः पराः । सर्वलोकशरण्यस्य शिवस्यपरमात्मनः
क्षेत्रज्ञः प्रथमा मूर्तिश्शिवस्य परमेष्ठिनः । भोक्ता प्रकृतिवर्गस्य भोग्यस्येशानसंज्ञितः

स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या च द्वितीया मूर्तिरुच्यते ।
प्रकृतिः सा हि विज्ञेया परमात्मगुहात्मिका ॥ ७ ॥

अघोराख्या तृतीयाच शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी । बुद्धेःसामूर्तिरित्युक्ता धर्माद्यष्टाङ्गसंयुता
चतुर्थी वामदेवाख्यामूर्तिःशम्भोर्गरीयसी । अहङ्कारात्मकत्वेनव्याप्यसर्वंव्यवस्थिता
सद्योजाताह्वया शम्भोः पञ्चमीमूर्तिरुच्यते । मनस्तत्त्वात्मकत्वेन स्थितासर्वशरीरिषु
ईशानः परमो देवः परमेष्ठी सनातनः । श्रोत्रेन्द्रियात्मकत्वेन सर्वभूतेष्ववस्थितः ॥
स्थितस्तत्पुरुषो देवः शरीरेषु शरीरिणाम् । त्वगिन्द्रियात्मकत्वेनतत्त्वविद्भिरुदाहृतः
अघोरोऽपि महादेवश्चक्षुरात्मतया बुधैः । कीर्त्तितः सर्वभूतानां शरीरेषु व्यवस्थितः॥
जिह्वेन्द्रियात्मकत्वेन वामदेवोऽपि विश्रुतः । अङ्गभाजामशेषाणामङ्गेषु परिधिष्ठितः

घ्राणेन्द्रियात्मकत्वेन सद्योजातः स्मृतो बुधैः ।
प्राणभाजां समस्तानां विग्रहेषु व्यवस्थितः ॥ १५ ॥

सर्वेष्वेव शरीरेषु प्राणभाजां प्रतिष्ठितः । वागिन्द्रियात्मकत्वेन बुधैरीशान उच्यते॥
पाणीन्द्रियात्मकत्वेन स्थितस्तत्पुरुषोबुधैः । उच्यतेविग्रहेष्वेव सर्वविग्रहधारिणाम्
सर्वविग्रहिणांदेहेअघोरोऽपिव्यवस्थितः । पादेन्द्रियात्मकत्वेनकीर्त्तितस्तत्त्ववेदिभिः
पाय्विन्द्रियात्मकत्वेनवामदेवोव्यवस्थितः । सर्वभूतनिकायानांकायेषुमुनिभिःस्मृतः
उपस्थात्मतया देवः सद्योजात स्थितः प्रभुः । इष्यते वेदशास्त्रज्ञैर्देहेषु प्राणधारिणाम्
ईशानं प्राणिनां देवं शब्दतन्मात्ररूपिणम् । आकाशजनकं प्राहुर्मुनिवृन्दारकप्रजाः ॥
प्राहुस्तत्पुरुषं देवं स्पर्शतन्मात्रकात्मकम् । समीरजनकं प्राहुर्भगवन्तं मुनीश्वराः ॥

रूपतन्मात्रकं देवमघोरमपि घोरकम् । प्राहुर्वेदविदो मुख्या जनकं जातवेदसः॥२३॥
रसतन्मात्ररूपत्वात्प्रथितं तत्त्ववेदिनः । वामदेवमपां प्राहुर्जनकत्वेन संस्थितम् ॥
सद्योजातं महादेवं गन्धतन्मात्ररूपिणम् । भूम्यात्मानं प्रशंसन्ति सर्वतत्त्वार्थवेदिनः

आकाशात्मानमीशानं आदिदेवं मुनीश्वराः ।
परमेण महत्वेन सम्भूतं प्राहुरद्भुतम् ॥ २६ ॥

प्रभुं तत्पुरुषं देवं पवनं पवनात्मकम् । समस्तलोकव्यापित्वात्प्रथितं सूरयो विदुः ॥
अर्थार्चिततया ख्यातमघोरं दहनात्मकम् । कथयन्ति महात्मानं वेदवाक्यार्थवेदिनः
तोयात्मकं महादेवं वामदेवं मनोरमम् । जगत्सञ्जीवनत्वेन कथितं मुनयो विदुः ॥
विश्वम्भरात्मकं देवं सद्योजातं जगद्गुरुम् । चराचरैकभर्त्तारं परं कविवरा विदुः ॥
पञ्चब्रह्मात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । शिवानन्दं तदित्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥
पञ्चविंशतितत्त्वात्मा प्रपञ्चे यः प्रदृश्यते । पञ्चब्रह्मात्मकत्वेन स शिवो नान्यतां गतः
पञ्चविंशतितत्त्वात्मा पञ्चब्रह्मात्मकःशिवः । श्रेयोऽर्थिभिरतोनित्यं चिन्तनीयःप्रयत्नतः

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पञ्च ब्रह्मकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

शङ्करस्य त्रिगुणरूपवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयोऽपि शिवमाहात्म्यं समाचक्ष्वमहामते !। सर्वज्ञोह्यसिभूतानामधिनाथ!महागुण!

शैलादिरुवाच

शिवमाहात्म्यमेकाग्रः शृणुवक्ष्यामितेमुने! । बहुभिर्बहुधा शब्दैः कीर्त्तितं मुनिसत्तमैः
सदसद्रूपमित्याहुः सदसत्पतिरित्यपि । तं शिवं मुनयः केचित्प्रवदन्ति च सूरयः ॥

भूतभावविकारेण द्वितीयेन स उच्यते । व्यक्तं तेन विहीनत्वादव्यक्तमसदित्यपि ॥
उभे ते शिवरूपे हि शिवादन्यं न विद्यते । तयोः पतित्वाच्च शिवः सदसत्पतिरुच्यते
क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं तथा । शिवं महेश्वरं केचिन्मुनयस्तत्त्वचिन्तकाः ॥
उक्तमक्षरमव्यक्तं व्यक्तं क्षरमुदाहृतम् । रूपे ते शङ्करस्यैव तस्मान्न पर उच्यते ॥ ७ ॥
तयोः परः शिवः शान्तः क्षराक्षरपरो बुधैः । उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वरः ॥

समस्तव्यक्तरूपन्तु ततः स्मृत्वा स मुच्यते ।

समष्टिव्यष्टिरूपन्तु समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥ ६ ॥

वदन्ति केचिदाचार्याः शिवं परमकारणम् । समष्टिविदुरव्यक्तं व्यष्टिव्यक्तंमुनीश्वराः
रूपे ते गदिते शम्भोर्नास्त्यन्यद्वस्तुसम्भवम् । तयोःकारणभावेनशिवो हि परमेश्वरः
उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपी च शिवः कैश्चिदुदाहृतः॥
परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान् परमेश्वरः । चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः ॥
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथा । क्षेत्रक्षेत्रविदावेते रूपे तस्य स्वयम्भुवः ॥
न किञ्चिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः । अपरब्रह्मरूपं तं परं ब्रह्मात्मकं शिवम् ॥
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं प्रभुम् । भूतेन्द्रियान्तःकरणप्रधानविषयात्मकम् ॥१६॥
अपरब्रह्मनिर्दिष्टं परं ब्रह्मचिदात्मकम् । ब्रह्मनि ते महेशस्य शिवस्यास्य स्वयम्भुवः॥
शङ्करस्य परस्यैव शिवादन्यन्न विद्यते । विद्याविद्यास्वरूपी च शङ्करः कैश्चिदुच्यते ॥

धाता विधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ।

विद्येति च तमेवाहुरविद्येति मुनीश्वराः ॥ १६ ॥

प्रपञ्चजातमखिलं ते स्वरूपे स्वयम्भुवः । भ्रान्तिर्विद्यापरञ्चेति शिवरूपमनुत्तमम् ॥२०
अवापुर्मुनयो योगात्केचिदागमवेदिनः । अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञानं भ्रान्तिरुच्यते ॥२१
आत्माकारेण सम्वित्तिर्बुधैर्विद्येति कीर्त्यते । विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते
तृतीयरूपमीशस्य नान्यत्किञ्चन सर्वतः । व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपीति शिवः कैश्चिन्निगद्यते
विधाता सर्वलोकानां धाता च परमेश्वरः । त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तशब्देन सूरयः
वदन्त्यव्यक्तशब्देन प्रकृतिञ्च परां तथा । कथयन्तिज्ञशब्देन पुरुषं गुणभोगिनम् ॥२५

तस्मयं शाङ्करं रूपं नान्यत् किञ्चिदशाङ्करम् ॥ २६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शङ्करस्य त्रिगुणरूपवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

शिवतत्त्वमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पुनरेव महाबुद्धे! श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। बहुभिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः॥

शैलादिरुवाच

पुनः पुनः प्रवक्ष्यामि शिवरूपाणि ते मुने!। बहुभिर्बहुधाशब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्व्यक्तं कालात्मेति मुनीश्वरैः। उच्यते कैश्चिदाचार्यैरागमार्णवपारगैः
क्षेत्रज्ञं पुरुषं प्राहुः प्रधानं प्रकृतिं बुधाः। विकारजातं निःशेषं प्रकृतेर्व्यक्तमित्यपि॥
प्रधानव्यक्तयोः कालः परिणामैककारणम्। तच्चतुष्टयमीशस्य रूपाणां हि चतुष्टयम्॥
हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानं व्यक्तरूपिणम्। कथयन्तिशिवं केचिदाचार्याः परमेश्वरम्

हिरण्यगर्भः कर्त्तास्य भोक्ता विश्वस्य पूरुषः।
विकारजातं व्यक्ताख्यं प्रधानं कारणं परम्॥ ७॥

तेषां चतुष्ट्यं बुद्धेः शिवरूपचतुष्टयम्। प्रोच्यते शङ्करादन्यदस्ति वस्तु न किञ्चन॥

पिण्डजातिस्वरूपी तु कथ्यते कैश्चिदीश्वरः।
चराचरशरीराणि पिण्डाख्यान्यखिलान्यपि॥ ६॥

सामान्यानिसमस्तानि महासामान्यमेवच। कथ्यन्ते जातिशब्देनतानिरूपाणिधीमतः

विराट्हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशोनिगद्यते।
हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्लोकात्मको विराट्॥ ११॥

सूत्रा व्याकृतरूपं तं शिवं संशन्ति केचन। अव्याकृतं प्रधानं हि तद्रूपं परमेष्ठिनः॥

लोका येनैव तिष्ठन्ति सूत्रेमणिगणा इव । तत्सूत्रमिति विज्ञेयं रूपमद्भुतविक्रमम् ॥
अन्तर्यामीपरःकैश्चित्कैश्चिदीशःप्रकीर्त्यते । स्वयंज्योतिःस्वयंवेद्यःशिवःशम्भुर्महेश्वरः
सर्वेषामेव भूतानामन्तर्यामी शिवःस्मृतः । सर्वेषामेव भूतानां परत्वात् पर उच्यते ॥
परमात्मा शिवः शम्भुः शङ्करः परमेश्वरः । प्राज्ञतैजसविश्वाख्यं तस्यरूपत्रयं विदुः ॥
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रन्तमवस्थात्रयमेव तत् । विराट् हिरण्यगर्भाख्यमव्याकृतपदद्वयम् ॥
तुरीयस्य शिवस्यास्य अवस्थात्रयगामिनः । हिरण्यगर्भः पुरुषः कालइत्येव कीर्त्तितः ॥
तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः । भवविष्णुविरिञ्चाख्यमवस्थात्रयमीशितुः

आराध्य भक्त्या मुक्तिञ्च प्राप्नुवन्तिशरीरिणः ।
कर्त्ता क्रिया च कार्य्यञ्च करणञ्चेति सूरिभिः ॥ २० ॥

शम्भोश्चत्वारि रूपाणि कीर्त्यन्ते परमेष्ठिनः । प्रमाताच प्रमाणञ्च प्रमेयंप्रमितिस्तथा
चत्वार्य्येतानिरूपाणिशिवस्यैवनसंशयः । ईश्वराव्याकृतप्राणविराट् भूतेन्द्रियात्मकम्
शिवस्यैव विकारोऽयं समुद्रस्येव वीचयः । ईश्वरं जगतामाहुर्निमित्तंकारणं तथा ॥
अव्याकृतंप्रधानंहितदुक्तंवेदवादिभिः । हिरण्यगर्भःप्राणाख्योविराट्लोकात्मकःस्मृतः
महाभूतानिभूतानिकार्य्याणिइन्द्रियाणिच । शिवस्यैतानिरूपाणिशंसन्तिमुनिसत्तमाः
परमात्माशिवादन्योनास्तीतिकवयोविदुः । शिवजातानितत्त्वानिपञ्चविंशन्मनीषिभिः
उक्तानि न तदन्यानि सलिलादूर्म्मिबृन्दवत् । पञ्चविंशत्पदार्थेभ्यःशिवतत्त्वं परं विदुः
तानि तस्मादनन्यानि सुवर्णकटकादिवत् । सदाशिवेश्वराद्यानि तत्त्वानिशिवतत्त्वतः

जातानि न तदन्यानि मृद्द्रव्यं कुम्भभेदवत् ।
मायाविद्या क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियामयी ॥ २१ ॥

जाता शिवान्न सन्देहः किरणा इव सूर्य्यतः । सर्वात्मकंशिवंदेवंसर्वाश्रयविधायिनम्
भजस्व सर्वभावेन श्रेयश्चेत्प्राप्तु मिच्छसि ॥ ३१ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवतत्त्वमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

शिवमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयो देवगणश्रेष्ठ! शिवमहात्म्यमुत्तमम् । शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिस्त्वद्वाक्यमृतपानतः ॥
कथं शरीरी भगवान्कस्माद्रुद्रः प्रतापवान् । सर्वात्मा च कथं शम्भुः कथं पाशुपतं व्रतम्
कथं वा देव मुख्यैश्च श्रुतो दृष्टश्च शङ्करः ।

शैलादिरुवाच

अव्यक्तादभवत्स्थाणुः शिवः परमकारणम् ॥ ३ ॥
यः सर्वकारणोपेत ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः । देवानां प्रथमं देवं जायमानं मुखाम्बुजात्
ददर्श चाग्रे ब्रह्माणाञ्चाज्ञया तमवैक्षत । दृष्टो रुद्रेण देवेशः ससर्ज सकलञ्च सः ॥ ५ ॥
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च स्थापयामास वै विराट् । सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमादिदमजायत
चरुश्च वह्निर्यज्ञश्च वज्रपाणिः शचीपतिः । विष्णुर्नारायणः श्रीमान्सर्वं सोममयं जगत्
रुद्राध्यायेन ते देवा रुद्रं तुष्टुवुरीश्वरम् । प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानां मध्यतः प्रभुः ॥
अपहृत्य च विज्ञानमेषामेव महेश्वरः । देवा ह्यपृच्छंस्तं देवं को भवानिति शङ्करम् ॥
अब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यमेकः पुरातनः । आसं प्रथम एवाहं वर्त्तामि च सुरोत्तमाः ॥
भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्यः कुतश्चन ।
व्यतिरिक्तं न मत्तोऽस्ति नान्यत्किञ्चित्सुरोत्तमाः ! ॥ ११ ॥
नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्माहं ब्रह्मणस्पतिः । दिशश्च विदिशश्चाहं प्रकृतिश्च पुमानहम्
त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्छन्दोऽहं तन्मयः शिवः । सत्योऽहं सर्वगः शान्तस्त्रेताग्निर्गौरवं गुरुः
गौरहं गह्वरश्चाहं नित्यं गहनगोचरः । ज्येष्ठोऽहं सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोऽहमपां पतिः ॥
आपोऽहं भगवानीशस्तेजोऽहं वेदिरप्यहम् ।
ऋग्वेदोऽहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः ॥ १५ ॥

अथर्वणोऽहंमन्त्रोऽहंतथाचाङ्गिरसांवरः । इतिहासपुराणानि कल्पोहं कल्पनाप्यहम्
अक्षरश्च क्षरश्चाहं क्षान्तिःशान्तिरहंक्षमा । गुह्योऽहं सर्ववेदेषु वरेण्योऽहमजोऽप्यहम्
पुष्करश्च पवित्रश्च मध्यश्चाहं ततः परम् । बहिश्चाहं तथा चान्तः पुरस्तादहमव्ययः॥
ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्माविष्णुर्महेश्वर । बुद्धिश्चाहंमहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणिच
एवं सर्वञ्च मामेव यो वेद सुरसत्तमाः ! । स एव सर्ववित्सर्वं सर्वात्मा परमेश्वरः ॥

गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वान् ब्राह्मण्येन हवींषि च ।

आयुषायुस्तथा सत्यं सत्येन सुरसत्तमाः ! ॥ २१ ॥

धर्मं धर्मेण सर्वांश्च तर्पयामि स्वतेजसा । इत्यादौ भगवानुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥
नापश्यन्त ततो देवं रुद्रं परमकारणम् । ते देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायन्तिशङ्करम्
स नारायणका देवाः सेन्द्राश्चमुनयस्तथा । तथोर्ध्ववाहवो देवा रुद्रं तन्वन्तिशङ्करम्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

देवा ऊचुः

स एव भगवान्रुद्रो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । स्कन्दश्चापि तथा चेन्द्रो भुवनानि चतुर्दश

अश्विनौग्रहताराश्च नक्षत्राणि च खं दिशः ॥ १ ॥

भूतानिचयथा सूर्य सोमश्चाष्टौ ग्रहास्तथा । प्राणःकालो यमो मृत्यु रमृतःपरमेश्वर
भूतं भव्यं भविष्यञ्च वर्त्तमानं महेश्वरः । विश्वंकृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मैनमोनमः
त्वमादौच तथाभूतो भूर्भुवःस्वस्तथैवच । अन्ते त्वं विश्वरूपोऽसिशीर्षन्तुजगतःसदा
ब्रह्मैकस्त्वंद्वित्रिधार्थमधश्चत्वं सुरेश्वरः । शान्तिश्चत्वंतथापुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यकृतं हुतम्
विश्वंश्चैव तथा विश्वं दत्तं चादत्तमीश्वरम् । कृतञ्चाप्यकृतं देवं परमप्यपरं ध्रुवम् ॥

परायणं सताञ्चैव असतामपि शङ्करम् ॥ ६ ॥
अपाम सोमममृता अभूमागन्मज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्त्तिरमृतः मर्त्यस्य ॥ ७ ॥
एतज्जगद्धितं दिव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ॥ ८ ॥

प्राजापत्यं पवित्रञ्च सौम्यमग्राह्यमव्ययम् । अग्राह्येणापिवाग्राह्यंवायव्येन समीरणः॥ सौम्येन सौम्यं ग्रसतितेजसा स्वेनलीलया । तस्मै नमोपसंहर्त्रे महाग्रासायशूलिने ॥ हृदिस्थादेवताःसर्वाहृदिप्राणेप्रतिष्ठिताः । हृदित्वमसियोनित्यं तिस्रोमात्राःपरस्तुसः शिरश्चोत्तरतश्चैव पादौदक्षिणतस्तथा । यो वै चोत्तरतःसाक्षात्सओङ्कारः सनातनः ओङ्कारो यः स एवेह प्रणवो व्याप्यतिष्ठति । अनन्तस्तारसूक्ष्मञ्च शुक्लं वैद्युतमेव च परं ब्रह्म स ईशान एको रुद्रः स एव च । भवान्महेश्वरःसाक्षान्महादेवो न संशयः ॥

ऊर्द्ध्वमुन्नामयत्येव स ओङ्कारः प्रकीर्त्तितः ।
प्राणानवति यस्तस्मात्प्रणवः परिकीर्त्तितः ॥ १५ ॥

सर्वव्याप्नोतियस्तस्मात्सर्वव्यापीसनातनः । ब्रह्माहरिश्चभगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् तथान्ये च ततोऽनन्तो रुद्रः परमकारणम् । यस्तारयन्ति संसारात्तार इत्यभिधीयते सूक्ष्मोभूत्वाशरीराणिसर्वदाह्यधितिष्ठति ।तस्मात्सूक्ष्मसमाख्यातोभगवान्नीललोहितः नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् । स्कन्दतेऽस्य यतः शुक्रं तथा शुक्रमपैतिच विद्योतयति यस्तस्माद्वैद्युतः परिगीयते । बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च बृहते च परापरे ॥२०

तस्माद्बृंहति यस्माद्धि परं ब्रह्मेति कीर्त्तितम् ।
अद्वितीयोऽथ भगवान्तुरीयः परमेश्वरः ॥ २१ ॥

ईशानस्य जगतः स्वर्दृशाश्चक्षुरीश्वरम् । ईशानमिन्द्रसूरयः सर्वेषामपि सर्वदा ॥२२॥ ईशानः सर्व विद्यानां यत्तदीशानउच्यते । यदीक्षतेच भगवान्निरीक्ष्यमिति चाज्ञया ॥ आत्मज्ञानं महादेवो योगं गमयतिस्वयम् । भगवांश्चोच्यते देवो देवदेवो महेश्वरः ॥ सर्वांल्लोकान्क्रमेणैष यो गृह्णाति महेश्वरः । विसृज्यत्येष देवेशो वासयत्यापिलीलया॥

एषोहि देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो हि जातः स उगर्भे अन्तः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ २६ ॥
उपासितव्यं यत्नेन तदेतत्सद्भिरव्ययम् । यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥
तद्ग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यत्नतः । अपरञ्च परं वेति परायणमिति स्वयम् ॥ २८ ॥
वदन्ति वाचः सर्वज्ञं शङ्करं नीललोहितम् । एषासर्वो नमस्तस्मै पुरुषः पिङ्गलः शिवः
स एव स महारुद्रो विश्वम्भूतं भविष्यति ! भुवनं बहुधा जातं जायमानमितस्ततः ॥
हिरण्यबाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः । अम्बिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वज ॥३१
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वसृग्विश्ववाहनः । ब्रह्माणंविदधे योऽसौ पुत्रमग्रेसनातनम् ॥
प्रहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानमात्म प्रकाशकम् । तमेकं पुरुषं रुद्रं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥
बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्येविश्वं देवं वह्निरूपं वरेण्यम् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥३४॥
महतो यो महीयांश्च अणोरप्यणुरव्ययः । गुहायां निहितश्चात्मा जन्तोरस्य महेश्वरः
वेस्मभूतोऽस्य विश्वस्य कमलस्थो हृदि स्वयम् ।
गह्वरं गहनं तत्स्थं तस्यान्तश्चोर्द्धतः स्थितम् ॥ ३६ ॥
तत्रापि दहं गगनमोङ्कारं परमेश्वरम् । बालाग्रमात्रं तन्मध्ये ऋतं परमकारणम् ॥३७
सत्यं ब्रह्म महादेवं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । ऊर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमजोद्भवम् ॥
अधितिष्ठति योनिर्यो योनिं वा चैकईश्वरः । देहं पञ्चविधंयेन तमीशानं पुरातनम् ॥
प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्यस्मिन् क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च ।
तृष्णां छित्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्या चिन्त्यं स्थापयित्वा च रुद्रे ॥
एकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम् । परात्परतरं चापि परात्परतरं ध्रुवम् ॥ ४१ ॥
ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदाशिवम् ।
ध्यात्वाग्निना च शोध्याङ्गं विशोध्य च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥
पञ्चभूतानि संयम्य मात्राविधिगुणक्रमात् । मात्राःपञ्चचतस्रश्च त्रिमात्राद्विस्ततःपरम्
एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्ते व्यवस्थितम् ।
स्थित्वा स्थाप्यामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतञ्चरेत् ॥ ४४ ॥

एतद्व्रतं पाशुपतं चरिष्यामि समासतः । अग्निमाधाय विधिवदृग्यजुःसामसम्भवैः॥
उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरःस्वयम् । शुक्लयज्ञोपवीतीच शुक्लमाल्यानुलेपनः॥
जुहुयाद्विरजो विद्वान्विरजाश्च भविष्यति । वायवःपञ्चशुद्ध्यन्तां वाङ्मनश्चरणादयः॥
श्रोत्रजिह्वा ततःप्राणं ततोबुद्धिस्तथैवच । शिरःपाणिस्तथापार्श्वं पृष्ठोदरमनन्तरम् ॥
जङ्घे शिश्नमुपस्थञ्च पायुमेढ्रं तथैव च । त्वक्चमांसञ्चरुधिरं मेदोस्थीनि तथैव च ॥
शब्दस्पर्शञ्चरूपञ्च रसो गन्धस्तथैवच । भूतानिचैव शुद्ध्यन्तां देहे मेदादयस्तथा ॥

अन्नप्राणं मनो ज्ञानं शुद्ध्यन्तां वै शिवेच्छया ।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥

उपसंहृत्यरुद्राग्निंगृहीत्वाभस्मयत्नतः । अग्निरित्यादिनाधीमान्विमृज्याङ्गानिसंस्पृशेत्
एतत्पाशुपतं दिव्यं व्रतं पाशविमोचनम् । ब्राह्मणानां हितं प्रोतं क्षत्रियाणां तथैवच
वैश्यानामपियोग्यानांयतीनान्तुविशेषतः । वानप्रस्थाश्रमस्थानांगृहस्थानांसतामपि
विमुक्तिर्विधिनानेनदृष्टावैब्रह्मचारिणाम् । अग्निरित्यादिनाभस्मगृहीत्वाह्यग्निहोत्रजम्

सोऽपि पाशुपतोविप्रो विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ।
भस्मच्छन्नोद्विजोविद्वान्महापातकसम्भवैः ॥ ५६ ॥

पापैर्विमुच्यतेसद्यो मुच्यते न च संशयः । वीर्य्यमग्नेर्य्यतो भस्मवीर्य्यवान्भस्मसंयुत
भस्मस्नानरतोविप्रोभस्मशायीजितेन्द्रियः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूत्यङ्गं पूजयेद्बुधः । रैरेकारोनकर्त्तव्यस्तुन्तुङ्कारस्तथैव च ॥५६
न तत्क्षमति देवेशो ब्रह्मा वा यदि केशवः । ममपुत्रो भस्मधारीगणेशश्च वरानने ! ॥
तेषांविरुद्धंयस्याऽयंसयातिनरकार्णवन् । गृहस्थोब्रह्महीनोऽपि त्रिपुण्ड्रं योनकारयेत्
पूजाकर्मक्रियातस्य दानं स्नानं तथैव च । निष्फलं जायतेसर्वं यथा भस्मनिवै हुतम्
तस्माच्चसर्वकार्य्येषुत्रिपुण्ड्रं धारयेद्बुधः । इत्युक्त्वाभगवान्ब्रह्मा स्तुत्वादेवैःसमंप्रभुः
भस्मच्छन्नैःस्वयं छन्नो विरराम विशाम्पते । अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनाम्पतिरीश्वरः
सगणश्चाम्बया सार्धं सानिध्यमकरोत्प्रभुः । अथ सन्निहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुङ्गवम्
रुद्राध्यायेन सर्वेशं देवदेवमुमापतिम् । देवोऽपि देवनालोक्य घृण्या वृषभध्वजः॥६६

तुष्टोस्मीत्याह देवेभ्यो वरं दातुं सुरारिहा ॥ ६७ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

शिवपूजाविधिवर्णनम्

शैलादिरुवाच

तं प्रभुं प्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम् । अपृच्छन्मुनयोर्देवाः प्रीतिकण्टकितत्वचः॥

देवा ऊचुः

भगवन् ! केनमार्गेण पूजनीयो द्विजातिभिः । कुत्र वा केन रूपेण वक्तुमर्हसिशङ्कर !॥
कस्याधिकारःपूजायांब्राह्मणस्यकथंप्रभो !। क्षत्रियाणांकथंदेव ! वैश्यानांवृषभध्वज !
स्त्रीशूद्राणांकथं वापि कुण्डगोलादिनान्तु वा ।
हिताय जगतां सर्वमस्माकं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

सूत उवाच

तेषांभावं समालोक्य मुनीनांनीललोहितः । प्राहगम्भीरयावाचामण्डलस्यसदाशिवः
मण्डले चाग्रतो पश्यन्देवदेवं सहोमया । देवाश्च मुनयः सर्वे विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रं द्वादशाक्षं महाभुजम् । अर्द्धनारीश्वरं देवं जटामुकुटधारिणम् ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् । रक्ताम्बरधरं सृष्टिस्थितिसंहारकारकम् ॥८॥
तस्यपूर्वमुखंपीतं प्रसन्नं पुरुषात्मकम् । अघोरं दक्षिणं वक्त्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं ज्वालामालसमावृतम् । रक्तश्मश्रुं जटायुक्तं उत्तरैर्विद्रुमप्रभम् ॥
प्रसन्नं वामदेवाख्यं वरदं विश्वरूपिणम् । पश्चिमं वदनं तस्य गोक्षीरधवलं शुभम् ॥
मुक्ताफलमयैर्हारैर्भूषितं तिलकोज्ज्वलम् । सद्योजातमुखंदिव्यंभास्करस्य स्मरारिणः
आदित्यमग्रतो पश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् । भास्करं पुरतो देवं चतुर्वक्त्रञ्च पूर्ववत् ॥१३

भानुं दक्षिणतो देवं चतुर्वक्त्रञ्च पूर्ववत् । रविमुत्तरतो पश्यन् पूर्ववच्चतुराननम् ॥१४

चिस्तारांमण्डले पूर्वे उत्तरां दक्षिणेस्थिताम् ।

बोधनीं पश्चिमे भागे मण्डलस्य प्रजापतेः ॥ १५ ॥

अध्यायनीञ्च कौबेर्य्यामेकवक्त्राञ्चतुर्भुजाम् । सर्वाभरणसम्पन्नाःशक्तयः सर्वसम्मताः

ब्रह्माणं दक्षिणेभागे विष्णुंवामे जनार्दनम् । ऋग्यजुःसाममार्गेण मूर्त्तित्रयमयं शिवम्

ईशानं वरदं देवमीशानं परमेश्वरम् । ब्रह्मासनस्थं वरदं धर्मज्ञानासनोपरि ॥ १८ ॥

वैराग्यैश्वर्य्यसंयुक्ते प्रभूते विमले तथा । सारे सर्वेश्वरं देवमाराध्ये परमे सुखे ॥१६॥

सितपङ्कजमध्यस्थं दीप्ताद्यैरभिसंवृतम् । दीप्तांदिप्तशिखाकारांसूक्ष्मांविद्युत्प्रभांशुभाम्

जयामग्निशिखाकारां प्रभां कनकसप्रभाम् ।

विभूतिं विद्रुमप्रख्यां विमलां पद्मसन्निभाम् ॥ २१ ॥

अमोघांकर्णिकाकारांविद्युतंविश्ववर्णिनीम् । चतुर्वक्त्रां चतुर्वर्णांदेवींवैसर्वतोमुखीम्

सोममङ्गारकंदेवं बुधं बुद्धिमतां वरम् । वृहस्पतिंवृहद्बुद्धिंभार्गवं तेजसां निधिम् ॥

मन्दंमन्दगतिञ्चैवसमन्तात्तस्यते सदा । सूर्य्यःशिवोजगन्नाथःसोमःसाक्षादुमास्वयम्

पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयञ्च चराचरम् । दृष्ट्वैव मुनयः सर्वे देवदेवमुमापतिम् ॥२५

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे मुनयो देवतास्तथा । अस्तुवन्वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं नीललोहितम्

ऋषय ऊचुः

नमः शिवाय रुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे । मीढुष्टमाय शर्वाय शिपिविष्टाय रंहसे ॥२७॥

प्रभूते विमलेसारे आधारे परमे सुखे । नवशक्त्यावृतं देवं पद्मस्थं भास्करं प्रभुम् ॥

आदित्यं भास्करंभानुं रविंदेवंदिवाकरम् । उमांप्रभांतथाप्रज्ञांसन्ध्यांसावित्रीमेव च

विस्तारामुत्तरां देवीं बोधनीं प्रणमाम्यहम् । आप्यायनीञ्चवरदां ब्रह्माणं केशवंहरम्

सोमादिवृन्दञ्च यथाक्रमेण सम्पूज्य मन्त्रैर्विहितक्रमेण ।

स्मरामि देवं रविमण्डलस्थं सदाशिवं शङ्करमादिदेवम् ॥ ३१ ॥

इन्द्रादिदेवांश्च तथेश्वरांश्च नारायणं पद्मजमादिदेवम् ।

प्रागाद्यधोर्द्ध्वञ्च यथाक्रमेण वज्रादिपद्मञ्च तथा स्मरामि ॥ ३२ ॥

सिन्दूरवर्णाय समण्डलाय सुवर्णवज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सपङ्कजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥ ३३ ॥
रथञ्च सप्ताश्वमनूरुवारं गणं तथा सप्तविधंक्रमेण ।
ऋतुप्रवाहेण च बालखिल्यान् स्मरामि मन्देह गणक्षयञ्च ॥ ३४ ॥
हुत्वा तिलाद्यैर्विविधैस्तथाग्नौ पुनः समाप्यैव तथैव सर्वम् ।
उद्वास्य हृत्पङ्कजमध्यसंस्थं स्मरामि बिम्बं तव देव देव ! ॥ ३५ ॥
स्मरामि बिम्बानि यथाक्रमेण रक्तानि पद्मामललोचनानि ।
पद्मञ्च सव्ये वरदञ्च वामे करे तथाभूषितभूषनानि ॥ ३६ ॥
दंष्ट्राकरालं तव दिव्यवक्त्रं विद्युत्प्रभं दैत्यभयङ्करञ्च ।
स्मरामि रक्षाभिरतं द्विजानां मन्देह रक्षोगणभर्त्सनञ्च ॥ ३७ ॥
सोमं सितं भूमिजमग्निवर्णञ्चामीकराभं बुधमिन्दुसूनुम् ।
बृहस्पतिं काञ्चनसन्निकाशं शुक्रं सितं कृष्णतरञ्चमन्दम् ॥ ३८ ॥
स्मरामि सव्यमभयं वाममूरुगतं करम् । सर्वेषां मन्दपर्य्यन्तं महादेवञ्च भास्करम् ॥
पूर्णेन्दुवर्णेन च पुष्पगन्धप्रस्थेन तोयेन शुभेन पूर्णम् ।
पात्रं दृढं ताम्रमयं प्रकल्प्य दास्येतवार्घ्यं भगवन् प्रसीद ॥ ४० ॥
नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने । रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणेसूर्य्यमूर्त्तये ॥

सूत उवाच

यः शिवं मण्डले देवं सम्पूज्यैवं समाहितः । प्रातर्मध्याह्नसायाह्नेपठेत् स्तवमनुत्तमम्
इत्थं शिवेन सायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥ ४३ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवपूजनवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

शिवपूजनोपायवर्णनम्

सूत उवाच

अथ रुद्रो महादेवो मण्डलस्थः पितामहः । पूज्योवैब्राह्मणानाञ्चक्षत्रियाणांविशेषतः
वैश्यानां नैव शूद्राणांशुश्रुषापूजकस्य च । स्त्रीणांनैवाधिकारोऽस्तिपूजादिषुनसंशयः
स्त्रीशूद्राणां द्विजेन्द्रैश्च पूजया तत्फलं भवेत् । नृपाणामुपकारार्थं ब्राह्मणाद्यैर्विशेषतः
एवं सम्पूजयेयुर्वै ब्राह्मणाद्याः सदाशिवम् । इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत
ते देवा मुनयः सर्वे शिवमुद्दिश्य शङ्करम् । प्रणेमुश्चमहात्मानो रुद्रध्यानेनविह्वलाः ॥
जग्मुर्यथागतं देवा मुनयश्च तपोधनाः । तस्मादभ्यर्चयेन्नित्यमादित्यं शिवरूपिणम् ॥
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा ।

ऋषय ऊचुः

रोम हर्षण ! सर्वज्ञ ! सर्वशास्त्रभृतां वर ! ॥ ७ ॥
व्यासशिष्य ! महाभाग ! वाह्येयंवद साम्प्रतम् । शिवेनदेवदेवेन भक्तानांहितकाम्यया
वेदात्षडङ्गादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च सर्वतः । तपश्च विपुलं तप्त्वा देवदानवदुश्चरम्
अर्थदेशादिसंयुक्तं गूढमज्ञाननिन्दितम् । वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित् समम् ॥
शिवेन कथितं शास्त्रं धर्मकामार्थमुक्तये । शतकोटिप्रमाणेन तत्रपूजा कथं विभोः ॥
स्नान योगादयो वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः ।

सूत उवाच

पुरासनत्कुमारेण मेरुपृष्टेसुशोभने ॥ १२ ॥
पृष्टोनन्दीश्वरो देवः शैलादिः शिवसम्मतः । पृष्टोऽयंप्रणिपत्यैवं मुनिमुख्यैश्च सर्वतः
तस्मै सनत्कुमाराय नन्दिना कुलनन्दिना । कथितंयच्छिवज्ञानं श्रृण्वन्तुमुनिपुङ्गवाः
शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेनपरिभाषितम् । स्तुतिनिन्दादिरहितं सद्यःप्रत्ययकारकम्

गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम् ।

सनत्कुमार उवाच

भगवन् ! सर्व भूतेश ! नन्दीश्वर ! महेश्वर ! ॥ १६ ॥

कथं पूजादयः शम्भोर्धर्मकामार्थमुक्तये । वक्तुमर्हसि शैलादे विनयेनागतायमे ॥ १७ ॥

सूत उवाच

सप्रेक्ष्य भगवान् नन्दी निशम्यवचनं पुनः । कालवेलाधिकाराद्य मवदद्वदताम्वरः ॥

शैलादिरुवाच

गुरुतः शास्त्रतश्चैव मधिकारं ब्रवीम्यहम् । गौरवादेव संक्षेपाशिवाचार्य्यस्य नान्यथा

स्वयमाचरते यस्तु आचारे स्थापयत्यपि ।

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्य्यस्तेन चोच्यते ॥ २० ॥

तस्माद्वेदार्थतत्त्वज्ञमाचार्य्यंभस्मशायिनम् । गुरुमन्वेषयेद् भक्तः सुभगं प्रियदर्शनम् ॥
प्रतिपन्नं जनानन्दं श्रुतिस्मृतिपथानुगम् । विद्याभयदातारं लौल्यचापल्यवर्जितम् ॥
आचार पालकं धीरं समयेषु कृतास्पदम् । तं दृष्ट्वा सर्वभावेन पूजयेच्छिववद्गुरुम्
आत्मना च धनेनैवश्रद्धावित्तानुसारतः । तावदाराधयेच्छिष्यःप्रसन्नोऽसौयथाभवेत्
सुप्रसन्ने महाभागे सद्यः पाशक्षयो भवेत् । गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेवसदाशिवः
संवत्सरत्रयं वाथ शिष्यान् विप्रानपरीक्षयेत् । प्राणद्रव्यप्रदानेन आदेशैश्च इतस्ततः
उत्तमश्चाधमे योज्यो नीच उत्तमवस्तुषु । आक्रुष्टास्ताडितावापि येविषादंनयान्तिवै
ते योग्याः शिवधर्मिष्ठाःशिवधर्मपरायणाः । संयताधर्मसम्पन्नाःश्रुतिस्मृतिपथानुगाः
सर्वद्वन्द्वसहाधीरा नित्यमुद्युक्तचेतसः । परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणेरताः ॥ २९ ॥

आर्जवा मार्दवाः स्वस्था अनुकूलाः प्रियंवदाः ।

अमानिनो बुद्धिमन्तस्त्यक्तस्पर्द्धा गतस्पृहाः ॥ ३१ ॥

शौचाचारगुणोपेतादम्भमात्सर्य्यवर्जिताः । योग्याएवंद्विजाःसर्वेशिवभक्तिपरायणाः
एवंवृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः । सोध्या एवंविधाश्चैव तत्त्वानाञ्च विशुद्धये
शुद्धो विनयसम्पन्नो मिथ्याकटुकवर्जितः । गुर्वाज्ञापालकश्चैव शिष्योऽनुग्रहमर्हति ॥

गुरुश्च शास्त्रवित् प्राज्ञस्तपस्वीजनवत्सलः । लोकाचाररतोह्येवंतत्त्वविन्मोक्षदःस्मृतः
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वोपायविधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलम् ॥
स्वसंवेद्येपरे तत्त्वे निश्चयोयस्यनात्मनि । आत्मनोऽनुग्रहोनास्तिपरस्यानुग्रहःकथम्
प्रबुद्धस्तु द्विजोयस्तु स शुद्धः साधयत्यपि । तत्त्वहीने कुतोबोधःकुतोह्यात्मपरिग्रहः
परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्वे पशवोदिताः । पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे ते पशवःस्मृताः ॥
तस्मात्तत्त्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयन्त्यपि । संवित्तिजननं तत्त्वं परानन्दसमुद्भवम्
तत्त्वन्तु विदितं येन स एवानन्ददर्शकः । न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः ॥

अन्योन्यं तारयेन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम् ।
येषांतन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥ ४१ ॥

योगिनां दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि । सद्यः संजायते चाज्ञापाशोपक्षयकारिणी
अथवा योग मार्गेण शिष्यदेहं प्रविश्य च । बोधयेदेव योगेन सर्वतत्त्वानि शोध्य च
षडर्द्धशुद्धिर्विहिता ज्ञानयोगेन योगिनाम् । शिष्यं परीक्ष्य धर्मज्ञं धार्मिकंवेदपारगम्
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं बहुदोषविवर्जितम् । ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य कर्णात् कर्णागतेनतु
दीपाद्दीपो यथा चान्यः सञ्चरेद्विधिवद् गुरुः । भौवनञ्चपदञ्चैव वर्णाख्यंमात्रमुत्तमम्
कालाध्वरंमहाभाग! तत्त्वाख्यंसर्वसम्मतम् । भिद्यतेयस्यसामर्थ्यादाज्ञामात्रेणसर्वतः
तस्य सिद्धिश्चमुक्तिश्चगुरुकारुण्यसम्भवा । पृथिव्यादीनिभूतानिआविशन्तिचभौवने
शब्दस्पर्शस्तथा रूपं रसोगन्धश्चभावतः । पदं वर्णाख्यकंविप्र! बुद्धीन्द्रियविकल्पनम्
कर्मेन्द्रियाणि मात्रंहिमनो बुद्धिरतः परम् । अहङ्कारमथाव्यक्तंकालाध्वरमितिस्मृतम्
पुरुषादिविरिञ्चयन्तमुन्मनत्वं परात्परम् । तथेशत्वमिति प्रोक्तं सर्वतत्त्वार्थबोधकम्

अयोगी नैव जानाति तत्त्वशुद्धिं शिवात्मिकाम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवपूजनोपायवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशतितमोऽध्यायः

दीक्षाविधिवर्णनम्

सूत उवाच

परीक्ष्यभूमिं विधिवद्गन्धवर्णरसादिभिः । अलङ्कृत्यवितानाद्यैरीश्वराबाहनक्षमाम्
एकहस्तप्रमाणेन मण्डलं परिकल्पयेत् । आलिखेत् कमलं मध्ये पञ्चरत्नसमन्वितम्
चूर्णैरष्टदलं वृत्तं सितं वा रक्तमेव च । परिवारेण संयुक्तं बहुशोभासमन्वितम् ॥
आवाह्य कर्णिकायान्तु शिवं परमकारणम् । अर्चयेत्सर्वयत्नेन यथाविभव विस्तरम्
दलेषु सिद्धयः प्रोक्ताः कर्णिकायां महामुने ! । वैराग्यज्ञाननालञ्चधर्मकन्दं मनोरमम्
वामा ज्येष्ठा चरौद्री च कालीविकरणी तथा । बलविकरणीचैवबलप्रमथिनी क्रमात्
सर्वभूतस्य दमनी केसरेषु च शक्तयः । मनोन्मनी महामाया कर्णिकायां शिवासने ॥
वामदेवादिभिः सार्द्धं द्वन्द्वन्यायेन विन्यसेत् । मनोन्मनंमहादेवंमनोन्मन्याथमध्यतः

सूर्य्य सोमाग्निसम्बन्धात् प्रणवाख्यं शिवात्मकम् ।
पुरुषं विन्यसेद्वक्त्रं पूर्वे पत्रे रविप्रभम् ॥ ६ ॥

अघोरं दक्षिणे पत्रेनीलाञ्जनचयोपमम् । उत्तरे वामदेवाख्यं जवाकुसुमसन्निभम् ॥
सद्यः पश्चिमपत्रे तु गोक्षीरधवलंन्यसेत् । ईशानंकर्णिकायान्तुशुद्धस्फटिकसन्निभम्
चन्द्रमण्डलसङ्काशं हृदयायेति मन्त्रतः । वाह्नेयेरुद्रदिग् भागे शिरसे धूम्रवर्चसे ॥
शिखायैव नमश्चेति रक्ताभे नैर्ऋते दले । कवचायाञ्जनाभाय इति वायुदले न्यसेत्

अस्त्रायाग्निशिखाभाय इति दिक्षु प्रविन्यसेत् ।
नेत्रेभ्यश्चेति चैशान्यां पिङ्गलेभ्यः प्रविन्यसेत् ॥ १४ ॥

शिवं सदाशिवं देवं महेश्वरमतः परम् । रुद्रं विष्णुं विरिञ्चिञ्च सृष्टिन्यायेनभावयेत्
शिवाय रुद्ररूपाय शान्त्यतीताय शम्भवे । शान्ताय शान्तदैत्याय नमश्चन्द्रमसे तथा
विद्याय विद्याधाराय बह्नयेबह्निवर्चसे । कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायान्तकाय च ॥

निवृत्त्यै घनदेवाय धारायै धारणाय च । मन्त्रैरेतैर्महाभूत विग्रहञ्च सदाशिवम् ॥
ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् । अघोरहृदयं हृष्टं वामगुह्यं महेश्वरम् ॥ १६ ॥
सद्यमूर्ति स्मरेद्देवं सदसद्व्यक्ति कारणम् । पञ्चवक्त्रं दशभुजमष्टत्रिंशत्कलामयम् ॥
सद्यमष्टप्रकारेण प्रभिद्य च कलामयम् । वामं त्रयोदशविधैर्विभिद्य विततं प्रभुम् ॥
अघोरमष्टधा कृत्वा कलारूपेण संस्थितम् । पुरुषञ्च चतुर्धावै विभज्य च कलामयम्
ईशानं पञ्चधा कृत्वा पञ्चमूर्त्या व्यवस्थितम् ।
हंस हंसेति मन्त्रेण शिवभक्त्यासमन्वितम् ॥ २३ ॥
ओङ्कारमात्रमोङ्कारंअकारं समरूपिणम् । आ ई उ ए तथाअम्बानुक्रमेणात्मरूपिणम्
प्रधानसहितं देवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् । अणोरणीयांसमजं महतोऽपि महत्तमम् ॥
ऊद्र्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमुपापतिम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्राक्षं सनातनम् ॥
सहस्रहस्तचरणं नादान्तं नाद विग्रहम् । खद्योतसदृशाकारं चन्द्ररेखाकृतिं प्रभुम् ॥
द्वादशान्ते भ्रुवोर्मध्ये तालुमध्ये गले क्रमात् । हृद्देशेऽवस्थितंदेवंस्वानन्दममृतंशिवम्
विद्युद्वलय सङ्काशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् । श्यामं रक्तं कलाकारं शक्तित्रयकृतासनम्
सदाशिवं स्मरेद्देवं तत्त्वत्रयसमन्वितम् । विद्यामूर्तिमयं देवं पूजयेच्च यथाक्रमात् ॥
लोकपालांस्तथास्त्रेण पूर्वाद्यान् पूजयेत् पृथक् ।
चरुञ्च विधिनासाद्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ३१ ॥
अर्द्धं शिवाय दत्त्वैव शेषार्द्धेन तु होमयेत् । अघोरेणाथशिष्याय दापयेद्भोक्तुमुत्तमम्
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा पुरुषं विधिना यजेत् । पञ्चगव्यंततःप्राश्यईशानेनाभिमन्त्रितम्
वामदेवेन भस्माङ्गी भस्मनोद्धूलयेत् क्रमात् ।कर्णयोश्च जपेद्देवीं गायत्रीं रुद्रदेवताम्
ससूत्रं सपिधानञ्च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् । तत्पूर्वं हेमरत्नौघैर्वासितं वै हिरण्मयम् ॥
कलशान् विन्यसेत्पञ्चपञ्चभिर्ब्राह्मणैस्ततः । होमञ्चचरुणाकुर्य्याद्यथाविभवविस्तरम्
शिष्यञ्च वासयेद्भक्तं दक्षिणे मण्डलस्य तु । दर्भशय्यासमारूढं शिवध्यानपरायणम्
अघोरेण यथा न्यायमष्टोत्तरशतं पुनः । घृतेन हुत्वा दुःस्वप्नं प्रभाते शोधयेन्मलम्
एवञ्चोपोषितं शिष्यं स्नातं भूषितविग्रहम् ।

नववस्त्रोत्तरीयञ्च सोर्ष्णीषकृतमङ्गलम् ॥ ३६ ॥
दुकूलाद्येन वस्त्रेण नेत्रम्बध्वा प्रवेशयेत् । सुवर्णपुष्पसम्मिश्रं यथा विभवविस्तरम् ॥
ईशानेन च मन्त्रेण कुर्य्यात्पुष्पाञ्जलिंप्रभोः । प्रदक्षिणत्रयंकृत्वा रुद्राध्यायेन वा पुनः
केवलं प्रणवेनाथ शिवध्यानपरायणः । ध्यात्वा तु देवदेवेशमीशाने संक्षिपेत्स्वयम्
यस्मिन् मन्त्रे पतेत्पुष्पं तन्मन्त्रस्तस्य सिद्ध्यति ।
शिवाम्भसा तु संस्पृश्य अघोरेण च भस्मना ॥ ४३ ॥
शिष्यमूर्द्धनिविन्यस्य गन्धाद्यैःशिष्यमर्चयेत् । वारुणंपरमंश्रेष्ठं द्वारं वै सर्ववर्णिनाम्
क्षत्रियाणां विशेषेण द्वारं वै पश्चिमं स्मृतम् । नेत्रावरणमुन्मुच्य मण्डलं दर्शयेत्ततः
कुशासने तु संस्थाप्य दक्षिणामूर्तिमास्थितः । तत्त्वशुद्धिंततःकुर्य्यात्पञ्चतत्त्वप्रकारतः
निवृत्त्या रुद्रपर्य्यन्तमण्डमण्डोद्भवात्मज ! । प्रतिष्ठया तदूर्द्धञ्च यावदव्यक्तगोचरम् ॥
विश्वेश्वरान्तं वै विद्याकलामात्रेणसुव्रत !। तदूर्ध्वमार्गसंशोध्यशिवभक्त्याशिवंनयेत्
समर्चनाय तत्त्वस्य तस्य भोगेश्वरस्य वै । तत्त्वत्रयप्रभेदेन चतुर्भिरुत वा तथा॥४६॥
होमयेदङ्गमन्त्रेण शान्त्यतीतं सदाशिवम् ।
सद्यादिभिस्तु शान्त्यं तं चतुर्भिः कलया पृथक् ॥ ५० ॥
शान्त्यतीतं मुनिश्रेष्ठ ! ईशानेनाथवा पुनः । प्रत्येकमष्टोत्तरशतंदिशा होमन्तु कारयेत्
ईशान्यां पञ्चमेनाथ प्रधानं परिगीयते । समिधाज्यचरूनलाजान्सर्षपांश्चयवांस्तिलान्
द्रव्याणि सप्तहोतव्यं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् । तेषां पूर्णाहुतिर्विप्र!ईशानेन विधीयते
सहंसेन यथान्यायं प्रणवाद्येन सुव्रत !। अघोरेण च मन्त्रेण प्रायश्चित्तं विधीयते ॥
जयादिस्विष्टपर्य्यन्तमग्निकार्यं क्रमेण तु । गुणसंख्याप्रकारेण प्रधानेन च योजयेत् ॥
भूतानि ब्रह्मनिर्वापि मौनीबीजादिभिस्तथा । अथ प्रधानमात्रेण प्राणापानौनियम्यच
षष्ठेन भेदयेदात्मप्रणवान्तं कुलाकुलम् । अन्योऽन्यमुपसंहृत्य ब्रह्माणं केशवं हरम् ॥
रुद्रे रुद्रं तमीशाने शिवे देवं महेश्वरम् । तस्मात्सृष्टिप्रकारेण भावयेद् भवनाशनम् ॥
स्थाप्यात्मानममुं जीवं ताडनं द्वारदर्शनम् । दीपनं ग्रहणञ्चैव बन्धनं पूजया सह ॥
अमृतीकरणञ्चैव कारयेद्विधिपूर्वकम् । षष्ठान्तं सद्यसंयुक्तं तृतीयेन समन्वितम् ॥६०

षडन्तं संहृतिः प्रोक्ता पञ्चभूतप्रकारतः । सद्याद्य षष्ठसहितं शिखान्तं सफडन्तकम् ॥
ताडनं कथितं द्वारं तत्त्वानामपि योगिनः ।
प्रधानं सम्पुटीकृत्य तृतीयेन च दीपनम् ॥ ६२ ॥
आद्येन सम्पुटीकृत्य प्रधानं ग्रहणं स्मृतम् । प्रधानं प्रथमेनैव सम्पुटीकृत्य पूर्ववत ॥
बन्धनं परिपूर्णेन प्लावनञ्चामृतेन च । शान्त्यतीता ततः शान्तिर्विद्यानाम कलामला॥
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च कलासंक्रमणं स्मृता । तत्त्ववर्णकलायुक्तं भुवनेन यथाक्रमम् ॥
मन्त्रैः पादैः स्तवं कुर्याद्विशोध्य च यथाविधि ।
आद्येन योनिर्बीजेन कल्पयित्वा च पूर्ववत् ॥ ६६ ॥
पूजासम्प्रोक्षणं विद्धि ताडनं हरणं तथा । संहृतस्य च संयोगं विक्षेपञ्च यथाक्रमम्
अर्चना च तथा गर्भधारणं जननं पुनः । अधिकारो भवेद्भानोर्लयश्चैव विशेषतः ॥६८
उत्तमाद्यं तथान्त्येन योनिबीजेन सुव्रत !। उद्धारे प्रोक्षणे चैव ताडने च महामुने ! ॥
अघोरेण फडन्तेन संसृतिश्च न संशयः । प्रतितत्त्वं क्रमो ह्येष योगमार्गेण सुव्रत ! ॥
मुष्टिना चैव यावच्च तावत्कालं नयेत्क्रमात् ।
विषुवेण तु योगेन निवृत्यादिशिवान्तिकम् ॥ ७१ ॥
एकत्र समतां याति नान्यथातु पृथक्पृथक् । नासाग्रेद्वादशान्तेनषष्ठेनसहयोगिनाम्
क्षन्तव्यमिति विप्रेन्द्र ! देवदेवस्य शासनम् । हेमराजतताम्राद्यैर्विधिना कल्पितेन च॥
सकूर्चेन सवस्त्रेण तन्तुना वेष्टितेन च । तीर्थाम्बुपूरितेनैव रत्नगर्भेण सुव्रत !॥ ७४ ॥
संहितामन्त्रितेनैव रुद्राध्यायस्तु तेन च । सेचयेच्च ततः शिष्यं शिवभक्तञ्चधार्मिकम्
सोऽपि शिष्यः शिवस्याग्रे गुरोरग्रेच सादरः । बद्धेश्चदीक्षांकुर्वीतदीक्षितश्चतथाचरेत्
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपिवा । नत्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयाद्भगवन्तं सदाशिवम्
एवं दीक्षा प्रकर्तव्या पूजा चैव यथाक्रमम् । त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्परमेश्वरम्
अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । शिवलिङ्गार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः
सदा यजति यज्ञेन सदा दानंप्रयच्छति । सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेत्शिवम्
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा ।

येऽर्चयन्ति महादेवं ते रुद्रा नाऽत्र संशयः ॥ ८१ ॥
नारुद्रस्तु स्पृशेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत् । नारुद्रः कीर्त्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात् ॥
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तो ह्यधिकारिविधिक्रमः । शिवार्चनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्रदः
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे दीक्षाविधिवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

तत्त्वशुद्धिवर्णनम्

शैलादिरुवाच

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वावैभास्करस्यच । शिवस्नानंततःकुर्याद्भस्मस्नानंशिवार्चनम्
षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम् । द्वितीयेनतथाभ्युक्ष्य तृतीयेनचशोधयेत्
चतुर्थेनैव विभजेत्मलमेकेन शोधयेत् । स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषं मृदं हस्तगतां पुनः ॥
त्रिधा विभज्य सर्वाङ्ग चतुर्भिर्मध्यमं पुनः । षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्
दशवारञ्च षष्ठेन दिशां बन्धः प्रकीर्त्तितः ॥ ४ ॥
वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्यच । स्नात्वा सर्वैःस्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत्
शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा । सौरैरेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः ॥
सौराणि च प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानिसुव्रत !। अङ्गानिसर्ववेदेषु सारभूतानि सर्वतः
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ ऋतं ॐ ब्रह्म ।
नवाक्षरमयं मन्त्रं बाष्कलं परिकीर्त्तितम् । न क्षरन्तीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते॥
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम् ॥ ८ ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ॐ
नमः सूर्याय खखोल्काय नमः ॥ ६ ॥
मूलमन्त्रमिमं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः । नवाक्षरेणदीप्तास्यंमूलमन्त्रेण भास्करम्

पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि यथाक्रमम् । वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम् ॥
ॐ भूः ब्रह्महृदयाय ॐ भुवः विष्णुशिरसे ॐ स्वः रुद्रःशिखायै ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनी शिखाय ॐ महः महेश्वराय कवचाय ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट् ॥

मन्त्राणि कथितान्याद्यं सौराणि विविधानि च ।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत् ॥ १२ ॥

ताम्रकुम्भेनवाविप्रः क्षत्रियोवैश्यएव च । सकुशेन सपुष्पेण मन्त्रैः सर्वैः समाहितः ॥
रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचामेद्विधिपूर्वकम् । सूर्य्यश्चेतिदिवारात्रौचाग्निश्चेतिद्विजोत्तम !
आपःपुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमुच्यते । षष्ठेन शुद्धिं कृत्वैवं जपेदाद्यमनुत्तमम् ॥
वौषडन्तं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम् । करशाखांतथाङ्गुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत् ॥
तले च तर्जन्यङ्गुष्ठं मुष्टिभागानि विन्यसेत् । नवाक्षरमयं देवं कृत्वाङ्गैरपि पावितम्
सूर्य्योऽहमितिसञ्चिन्त्यमन्त्रैरेतैर्य्यथाक्रमम् । वामहस्तगतैरद्भिर्गन्धसिद्धार्थकान्वितैः
कुशपुञ्जेनवाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरष्टधास्थितैः । आपोहिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्रायवैजलम्
वामनासापुटेनैव देहे सम्भावयेच्छिवम् । अर्घमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च ॥
कृष्णवर्णेन वाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम् । तर्पयेत्सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः ॥

भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यञ्च दापयेत् ।
व्यापिनीञ्च परांज्योत्स्नां सन्ध्यां सम्यगुपासयेत् ॥ २२ ॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यञ्चैव निवेदयेत् । रक्तचन्दनतोयेन हस्तमात्रेण मण्डलम् ॥
सुवृत्तांकल्पयेत्भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमाः । प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रञ्च सगन्धंप्रस्थपूरितम्
पूरयेद्गन्धतोयेन रक्तचन्दनकेन च । रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षत समन्वितैः ॥ २५ ॥
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च । जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च ॥२६

कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत् ।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्त्तितम् ॥ २७ ॥

तत्फलंलभतेदत्वासौरार्घ्यंसर्वसम्मतम् । दत्वैवार्घ्यं यजेद्भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम्

अथवाभास्करश्चेष्ट्वा आग्येयं स्नानमाचरेत् । पूर्ववद्वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम्
दन्तधावनपूर्वञ्च स्नानं सौरञ्च शाङ्करम् । विघ्नेशं वरुणञ्चैव गुरुं तीर्थे समर्चयेत् ॥
बध्वापद्मासनंतीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत् । तीर्थं सङ्गृह्यविधिनापूजास्थानंप्रविश्यच
मार्गेणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम् । पूर्ववत्करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत्

अर्घ्यस्य सादनञ्चैव समासात्परिकीर्तितम् ।
बध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ३३ ॥

रक्तपुष्पाणिसंगृह्यकमलाद्यानिभावयेत् । आत्मनो दक्षिणेस्थाप्यजलभाण्डञ्च वामतः
ताम्रपात्राणिसौराणिसर्वकामार्थसिद्धये । अर्घ्यपात्रं समादायप्रक्षाल्यच यथाविधि
पूर्वोक्तेनाम्बुना सार्द्धं जलभाण्डे तथैवच । अस्त्रोदकेन चैवार्घ्यं अर्घ्यद्रव्यसमन्वितम्
संहिता मन्त्रितं कृत्वा संपूज्य प्रथमेन च । तुरीयेणावगुण्ठ्यैव स्थापयेदात्मनोहरि

पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्प समन्वितम् ।
अम्भसा सोधिते पात्रे स्थापयेत्पूर्ववत्पृथक् ॥
संहिताञ्चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च ॥ ३८ ॥

अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणिच विशेषतः । आदित्यञ्जपेद्देवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥
आदित्यो वै तञ्चऊर्जोबलं यशो विवर्द्धति । इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनंप्रभोः
प्रभूतंविमलंसारमाराध्यंपरमंसुखम् । आग्नेय्यादिषुकोणेषु मध्यमान्तंहृदान्यसेत ॥
अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजमङ्कुरमेव च । नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकण्टकसंयुतम् ॥४२॥
दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च । कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम् ॥
दीप्तासूक्ष्माजयाभद्राविभूतिर्विमला क्रमात् । अघोराविकृताचैव दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः
भास्कराभिमुखाःसर्वाःकृताञ्जलिपुटाःशुभाः । अथवापद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत्सर्वतो मुखीम् । आवाहयेत्ततोदेवीं भास्करं परमेश्वरम्

नवाक्षरेण मन्त्रेण बाष्कलोक्तेन भास्करम् ।
आवाहनञ्च सान्निध्यमनेनैव विधीयते ॥ ४७ ॥

मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्यमहात्मनः । मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात्पाद्यमाचमनंपृथक्

पुनरर्घ्यं प्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि । रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च ॥४६
दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च । ताम्बूलवर्त्तिदीपाद्यं बाष्कलेन विधीयते ॥५०॥

आग्नेय्याञ्च तथेशान्यां नैर्ऋत्यां वायुगोचरे ।
पूर्वश्यां पश्चिमे चैव षट्प्रकारं विधीयते ॥ ५१ ॥

नेत्रान्तंविधिनास्यचर्यंप्रणवादिनमोऽन्तकम् । कर्णिकायांप्रचिन्त्यस्यरूपकध्यानमाचरेत्
सर्वेविद्युत्प्रभाःशान्तारौद्रमस्त्रं प्रकीर्त्तितम् । दंष्ट्राकरालवदनं ह्यग्रमूर्त्ति भयङ्करम् ॥
वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम् । सर्वाभरण सम्पन्ना रक्तस्रगनुलेपनाः॥५४॥
रक्ताम्बरधराः सर्वा मूर्त्तयस्तस्य संस्थिताः । समण्डलोमहादेवः सिन्दूरारुणविग्रहः
पद्महस्तो मृतास्यश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः । रक्ताभरण संयुक्तो रक्तस्रगनुलेपनः ॥५६॥
इत्थं रूपधरं ध्यायेद् भास्करं भुवनेश्वरम् । पद्मवाह्ये शुभश्चात्र मण्डलेषु समन्ततः ॥
सोममङ्गारकश्चैव बुधं बुद्धिमतां वरम् । वृहस्पतिं महद्बुद्धिं रुद्रपुत्रञ्च भार्गवम् ॥५६
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्त्तितम् । सर्वे द्विनेत्राद्विभुजाराहुश्चोर्द्ध्वशरीरधृक्
विवृत्तास्योऽञ्जलिकृत्वाभ्रकुटीकुटिलेक्षणः । शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभय हस्तधृक्

स्वैः स्वैर्भावैः स्वनाम्ना च प्रणवादिनमोऽन्तकम् ।
पूजनीया प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ६१ ॥

सप्त सप्त गणांश्चैव वहिर्देवस्य पूजयेत् । ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥
ग्रामण्योयातुधानाश्च तथा यज्ञाश्चमुख्यतः । सप्ताश्वान्पूजयेदग्रेसप्तछन्दोमयान्विभोः
बालखिल्यगणश्चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः । पूजयेदासनं मूर्त्तेर्देवतामति पूजयेत् ॥६४
अर्घ्यञ्च दापयेत्तेषां पृथगेव विधानतः । आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा॥६५
सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा । बाष्कलञ्च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत् ॥
कुण्डञ्च पश्चिमे कुर्य्याद्वर्तुलञ्चैव मेखलम् । चतुरङ्गुलमानेन चोत्सेधाद् विस्तरादपि
एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा । कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिकुण्डेदशाङ्गुलम्

तदर्द्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम् ।
गलमेकाङ्गुलञ्चैव शेषं द्विगुणविस्तरम् ॥ ६६ ॥

तत्प्रमाणेनकुण्डस्य त्यक्त्वाकुर्वीतमेखलाम् । यत्नेनसाधयित्वैवपश्चाद्धोमञ्च कारयेत्
षष्ठेनोल्लेखनं कुर्य्यात्प्रोक्षयेद्वारिणापुनः । आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥
प्रभावतींततःशक्तिमाद्येनैवतुविन्यसेत् । बाष्कलेनैवसम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिःक्रमात्
वाष्कलेनैवमन्त्रेण क्रियांप्रति यजेत्पृथक् ।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात्पूर्णाहुतिर्भवेत् ॥ ७३ ॥
क्रमादेवं विधानेन सूर्य्याग्निर्जनितोभवेत् । पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्
मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद्भास्करंप्रभुम् । दशैवाहुतयोदेया बाष्कलेन महामुने ! ॥
अङ्गानाञ्चतथैकैकं संहिताभिः पृथक् पुनः । जयादिस्विष्टपर्य्यन्तमर्घ्यप्रक्षेपमेव च ॥
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्य्यं क्रमेण च । निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने ॥
पूजाहोमादिकंसर्वंदत्वार्घ्यञ्च प्रदक्षिणम् । अङ्गैःसम्पूज्यसङ्क्षिप्यहृद्युद्वास्यनमस्यच
शिवपूजां ततः कुर्य्याद्धर्मकामार्थसिद्धये । एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च
यः सकृद्वायजेद्देवं देवदेवं जगद्गुरुम् । भास्करं परमात्मानं स याति परमांगतिम् ॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तः सर्वपाप विवर्जितः । सर्वैश्वर्य्य समोपेतस्तेजसाप्रतिमश्च सः ॥
पुत्रपौत्रादिभिर्मित्रैश्च बान्धवैश्चसमन्ततः । भुक्त्वैव विपुलान्भोगानिहैव धनधान्यवान्
यानवाहनसम्पन्नो भूषणैर्विविधैरपि । कालंगतोऽपि सूर्य्येण मोदते कालमक्षयम् ॥
पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः । वेदवेदाङ्गसम्पन्नो ब्राह्मणोवात्र जायते
पुनः प्राग्वासनायोगद्धार्मिकोवेदपारगः । सूर्य्यमेवसमभ्यर्च्य सूर्य्यसायुज्यमाप्नुयात्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे तत्त्वशुद्धिवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

शिवार्चनविधिवर्णनम्

शैलादिरुवाच

अथतेसम्प्रवक्ष्यामि शिवार्च्चनमनुत्तमम् । त्रिसन्ध्यमर्च्चयेदीशमग्निकार्य्यञ्चशक्तितः

शिवस्नानंपुराकृत्वा तत्त्वशुद्धिञ्चपूर्ववत् । पुष्पहस्तः प्रविश्याथ पूजास्थानंसमाहितः
प्राणायामत्रयं कृत्वा दहनाप्लावनानिच । गन्धादिवासितकरोमहामुद्रां प्रविन्यसेत्
विज्ञानेन तनुं कृत्वा ब्रह्माग्ने रपियत्नतः । अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रसम्भवांतनुम् ॥
शिवामृतेनसम्पूतंशिवस्यचयथातथम् । अधोनिष्ट्यावितस्त्यान्तुनाभ्यामुपरितिष्ठति
हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनंमहत् । हृत्पद्मकर्णिकायान्तुदेवं साक्षात्सदाशिवम्
पञ्चवक्त्रं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् । प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रञ्च शशाङ्ककृतशेखरम् ॥७॥
बद्धपद्मासनासीनं शुद्धस्फटिक सन्निभम् ।
ऊर्ध्वं वक्त्रं सितं ध्यायेत्पूर्वंकुङ्कुमसन्निभम् ॥ ८ ॥
नीलाभंदक्षिणं वक्त्रमतिरक्तं तथोत्तरम् । गोक्षीरधवलं दिव्यं पश्चिमं परमेष्ठिनः ॥
शूलं परशुखड्गञ्च वज्रंशक्तिञ्च दक्षिणे । वामे पाशाङ्कुशं घण्टां नागं नाराचमुत्तमम्
वरदाभयहस्तं वा शेषं पूर्ववदेव तु । सर्वाभरणसंयुक्तं चित्राम्बरधरं शिवम् ॥११॥
ब्रह्माङ्गविग्रहं देवं सर्वदेवोत्तमोत्तमम् । पूजयेत्सर्वभावेन ब्रह्माङ्गैर्ब्रह्मणः पतिम् ॥१२॥
उक्तानि पञ्चब्रह्माणि शिवाङ्गानि शृणुष्वमे । शक्तिभूतानिचतथाहृदयादीनि सुव्रत ! ॥
ॐ ईशानः सर्वविद्यानां हृदयाय शक्तिबीजाय नमः ।
ॐ ईश्वरः सर्वभूतानाम् अमृताय शिरसे नमः ॥ १४ ॥
ॐ ब्रह्माधिपतये कालाग्निरूपाय शिखायै नमः ।
ॐ ब्रह्मणोऽधिपतये कालचण्डमारुताय कवचाय नमः ॥ १५ ॥
ॐ ब्रह्मणे बृंहणाय ज्ञानमूर्त्तये नेत्राय नमः ।
ॐ शिवाय सदाशिवाय पाशुपतास्त्राय अप्रतिहताय फट् फट् ॥ १६ ॥
ॐ सद्योजाताय भवेनानिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय शिवमूर्त्तये नमः ।
ॐ हंसशिखाय विद्यादेहाय आत्मस्वरूपाय परापराय शिवाय शिवतमाय नमः ।
कथितानि शिवाङ्गानि मूर्त्तिविद्याच तस्यवै । ब्रह्माङ्गमूर्त्तिविद्याङ्गसहितां शिवशासने
सौराणिच प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानि सुव्रत !। अङ्गानिसर्ववेदेषुसारभूतानि सुव्रत! ॥
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ ऋतं ॐ ब्रह्मः ॥

नवाक्षरमयं मन्त्रं बाष्कलं परिकीर्त्तितम् । नक्षरतीति लोकेऽस्मिन्ततोह्यक्षरमुच्यते
सत्य मक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम् ॥ २० ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॐ ॥
नमः सूर्य्याय खखोल्काय नमः ॥ २१ ॥

मूलमन्त्रमितिप्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः । नवाक्षरेण दीप्ताद्या मूलमन्त्रेणभास्करम्
पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि समासतः । वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन तु मध्यमम् ॥

ॐ भूः ब्रह्मणे हृदयाय नमः । ॐ भुवः विष्णवे शिरसे नमः । ॐ स्वः रुद्राय शिखायै नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिन्यै देवाय नमः । ॐ महः महेश्वराय कवचाय नमः । ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यो नमः । ॐ तपस्तापनाय अस्त्राय नमः ॥

एवं प्रसङ्गाद्देवेह सौराणि कथितानि ह । शैवानि च समासेन न्यासयोगेन सुव्रत!॥
इत्थं मन्त्रमयं देवं पूजयेद् हृदयाम्बुजे । नाभौहोमन्तु कर्त्तव्यं जनयित्वा यथाक्रमम्
मनसासर्वकार्य्याणिशिवाग्नौ देवमीश्वरम् । पञ्चब्रह्माङ्गसम्भूतं शिवमूर्त्ति सदाशिवम्
रक्तपद्मासनासीनं सकलीकृत्य यत्नतः ।
मूलेन मूर्त्ति मन्त्रेण ब्रह्माङ्गाद्यैस्तु सुव्रत ! ॥ २७ ॥
समिधाज्याहुतीर्हुत्वा मनसा चन्द्रमण्डलात् ।
चन्द्रस्थानात्समुत्पन्नां पूर्णधारामनुस्मरेत् ॥ २८ ॥

पूर्णाहुति विधानेन ज्ञानिनां शिवशासने । शिवंवक्त्रगतं ध्यायेत्तेजोमात्रञ्च शाङ्करम्
ललाटेदेवदेवेशं भ्रमध्ये वा स्मरेत पुनः । यद्य हृत्कमले सर्वं समाप्य विधिविस्तरम्
शुद्धदीपशिखाकारं भावयेद्भवनाशनम् । लिङ्गेच पूजयेद्देवं स्थण्डिलेवा सदाशिवम्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवार्चनविधिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

शिवपूजाविधानवर्णनम्

शैलादिरुवाच

व्याख्यां पूजाविधानस्यप्रवदामिसमासतः। शिवशास्त्रोक्तमार्गेण शिवेन कथितंपुरा

अथोभौ चन्दनचर्चितौ हस्तौ चौषडन्ते नाचाञ्जलिं कृत्वा मूर्त्तिविद्याशिवादीनि जप्त्वा अङ्गुष्ठादिकनिष्ठिकान्त ईशानाद्यं कनिष्ठिकादिमध्यमान्तं हृदयादितृतीयान्त तुरीयमङ्गुष्ठेनानामिकया पञ्चमं तलद्वयेन षष्ठं तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां नाराचास्त्रप्रयोगेण पुनरपि मूलं जप्त्वा तुरीयेणावगुण्ठ्य शिवहस्तामित्युच्यते॥२॥

शिवार्चना तेन हस्तेन कार्य्या ॥ ३ ॥

तत्त्वगतमात्मानं व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्ववत् ॥ ४ ॥

क्ष्मां भोऽग्निवायुव्योमान्तं पञ्चचतुःशुद्धकोट्यन्ते।

धारासहितेन व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्वं कुर्यात् ॥ ५ ॥

तत्त्वशुद्धिः षष्ठेन सद्येन तृतीयेन फडन्ताद्धरा शुद्धिः ॥ ६ ॥

षष्ठसहितेन सद्येन तृतीयेन फडन्तेन वारितत्त्वशुद्धिः ॥ ७ ॥

वाह्नेयतृतीयेन फडन्तेनाग्निशुद्धिः ॥ ८ ॥

वायव्यचतुर्थेन षष्ठसहितेन फडन्तेन वायुशुद्धिः ॥ ९ ॥

षष्ठेन ससद्येन तृतीयेन फडन्तेनाकाशशुद्धिः ॥ १० ॥

उपसंहृत्यैवं सद्यःषष्ठेन तृतीयेन मूलेन फडन्तेन ताडनं तृतीयेन सम्पुटीकृत्वा ग्रहणं मूलमेव योनिबीजेन संपुटीकृत्वा बन्धनं बन्धः ॥ ११ ॥

एवं क्षान्तातीतादिनिवृत्तिपर्य्यन्तं पूर्ववत् कृत्वा प्रणवेन तत्त्वत्रयकमनुध्यात्वा आत्मानं दीपशिखाकारं पुर्य्यष्टकसहितं त्रयातीतं शक्तिक्षोभेणामृतधारां सुषुम्नायां ध्यात्वा ॥ १२ ॥

शान्त्यतीतादिनिवृत्तिपर्य्यन्तानां चान्तर्नादबिन्द अकार उकार मकारान्तं शिवं सदाशिवं रुद्र विष्णुब्रह्मान्तं सृष्टिक्रमेणामृतीकरणं ब्रह्मन्यासं कृत्वा पञ्चवक्त्रेषु पञ्चदश नयनं विन्यस्य मूलेन पादादिकेशान्तं महामुद्रामपि बद्ध्वाशिवोऽहमिति ध्यात्वा शक्त्यादीनि विन्यस्य हृदि शक्त्या बीजाङ्कुरानन्तरात् ससुषिरसूत्रकण्टकपत्रकेसर धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्य्यसूर्य्य सोमाग्निवामा ज्येष्ठा रौद्रीकालीकलविकरणी बलविकरणी बलप्रमथनी सर्वभूतदमनी केसरेषु कर्णिकायां मनोन्मनीमपि ध्यात्वा ॥ १३ ॥

आसनं परिकल्प्यैवं सर्वोपचारसहितं बहिर्योगोपचारेणान्तःकरणं कृत्वा नाभौ वह्निकुण्डे पूर्ववदासनं परिकल्प्य सदाशिवं ध्यात्वा बिन्दुतोऽमृतधारां शिवमण्डले निपतितां ध्यात्वा ललाटे महेश्वरं दीपशिखाकारं ध्यात्वा आत्मशुद्धिरित्थं प्राणापानौ संयम्य सुषुम्नया वायुं व्यवस्थाप्य षष्ठेन तालुमुद्रां कृत्वा दिग्बन्धं कृत्वा षष्ठेन स्थानशुद्धिर्वस्त्रादिपूतान्तरर्घ्यपात्रादिषु प्रणवेन तत्त्वत्रयं विन्यस्य तदुपरि बिन्दुं ध्यात्वा त्वम्भसा विपूर्य्य द्रव्याणि च विधाय अमृतप्लावनं कृत्वा पाद्यपात्रादिषु तेषामर्घ्यवदासनं परिकल्प्य संहितयाभिमन्त्र्याद्येनाभ्यर्च्य द्वितीयेनामृतीकृत्वा तृतीयेन विशोध्य चतुर्थेनावगुण्ठ्य पञ्चमेनावलोक्य षष्ठेन रक्षां विधाय चतुर्थेन कुशपुञ्जेनार्घ्याम्भसाभ्युक्ष्य आत्मानमपि द्रव्याणि पुनरर्घ्याम्भसाभ्युक्ष्य सपुष्पेण सर्वं द्रव्याणि पृथक् पृथक् शोधयेत् ॥ १४ ॥

सद्येन गन्धं वामेन वस्त्रं अघोरेण आभरणं पुरुषेण नैवेद्यं ईशानेन पुष्पाणि अथाभ्यमन्त्रयेत् ॥ १५ ॥

शिवगायत्र्या शेषं प्रोक्षयेत् ॥ १६ ॥

पञ्चामृतपञ्चगव्यादीनि । ब्रह्माङ्गमूलाद्यैरभिमन्त्रयेत् ॥ १७ ॥

पृथक् पृथक् मूलेनार्घ्यं धूपं दत्त्वाचमनीयञ्च तेषामपि धेनुमुद्राञ्च दर्शयित्वा कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रेण रक्षाञ्च विधाय द्रव्यशुद्धिं कुर्य्यात् ॥ १८ ॥

अर्घ्योदकमग्रे हृदा गन्धमादायास्त्रेण विशोध्य पूजाप्रभृतिकरणं रक्षान्तं

कृत्वैवं द्रव्यशुद्धिं पूजासमर्पणान्तं मौनमास्थाय पुष्पाञ्जलिं दत्वा सर्वमन्त्राणि प्रणवादिनमोऽन्तं जप्त्वा पुष्पाञ्जलिं त्यजेत् मन्त्रशुद्धिः इत्थम् ॥ १६ ॥

अग्रे सामान्यार्घ्यपात्रं पयसाऽऽपूर्य्य गन्धपुष्पादिना संहितयाऽभिमन्त्र्य धेनुमुद्रां दत्वा कवचेनाऽवगुण्ठ्याऽस्त्रेण रक्षयेत्पूजां पर्य्युषितां गायत्र्या समभ्यर्च्य सामान्यार्घ्यं दत्वा गन्धपुष्पधूपाचमनीयं स्वधान्तं नमोऽन्तं वा दत्वा ब्रह्मभिः पृथक् पृथक् पुष्पाञ्जलिं दत्वा फडन्तास्त्रेण निर्माल्यं व्यपोह्य ईशान्यां चण्डमभ्यर्च्यासनमूर्त्तिश्चण्डं सामान्यास्त्रेण लिङ्गपीठं शिवं पाशुपतास्त्रेण विशोध्य मूर्ध्नि पुष्पं निधाय पूजयेल्लिङ्गशुद्धिः ॥ २० ॥

आसनं कूर्मशिलायां बीजाङ्कुरं तदुपरि ब्रह्मशिलायामनन्तनालसुषिरे सूत्रपत्रकण्टककर्णिकाकेसरधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्य्यसूर्य्यसोमाग्निकेसरशक्ति मनोन्मनीं कर्णिकायां मनोन्मनेनानन्तासनायेति समासेनाऽऽसनं परिकल्प्य तदुपरि निवृत्त्यादि कलामयं षड्विधसहितं कर्मकलाङ्गदेहं सदाशिवं भावयेत् ॥ २१ ॥

उभाभ्यां सुपुष्पाभ्यां हस्ताभ्याम् अङ्गुष्ठेन पुष्पमापीड्य आवाहनमुद्रया शनैः शनैः हृदयाद्भिमस्तकान्तमारोप्य हृदा सह मूलं प्लुतमुच्चार्य्य सद्येन बिन्दुस्थानादभ्यधिकं दीपशिखाकारं सर्वतो मुखहस्तं व्याप्य व्यापकमावाह्य स्थापयेत्

पूर्वहृदा शिवशक्तिसमवायेन परमीकरणममृतीकरणं हृदयादिमूलेन सद्येनावाहनं हृदा मूलोपरि वामेन स्थापनं हृदा मूलोपरि अघोरेण सन्निरोधं हृदा मूलोपरि पुरुषेण सान्निध्यं हृदा मूलेन ईशानेन पूजयेदिति उपदेशः ॥ २३ ॥

पञ्चमन्त्रसहितेन यथापूर्वमात्मनो देहनिर्माणं तथा देवस्यापि वह्नेश्चैव मुपदेशः ॥ २४ ॥

रूपकध्यानं कृत्वा मूलेन नमस्कारान्तमापाद्य स्वधान्तमाचमनीयं सर्वं नमस्कारान्तं वा स्वाहाकारान्तमर्घ्यं मूलेन पुष्पाञ्जलिं वौषडन्तेन सर्वं नमस्कारान्तं हृदा वा ईशानेन वा रुद्रगायत्र्या ॐ नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ॥ २५ ॥

पुष्पाञ्जलिं दत्वा पुनर्धूपाचमनीयं षष्ठेन पुष्पावसरणं विसर्जनं मन्त्रोदकेन

मूलेन स्नाप्य सर्वं द्रव्याभिषेकमीशानेन प्रति द्रव्यमष्टपुष्पं दत्वैवमर्घ्यंश्च गन्धपुष्प धूपाचमनीयं फडन्तास्त्रेण पूजापसरणं शुद्धोदकेन मूलेन स्नाप्य पिष्टामलकादिभिः॥

उष्णोदकेन हरिद्रायेन लिङ्गमूर्त्ति पीठसहितां विशोध्य गन्धोदकहिरण्योदकमन्त्रोदकेन रुद्राध्यायं पठमानः नील रुद्रत्वरितरुद्रपञ्चब्रह्मादिभिः नमः शिवायेति स्नापयेत् ॥ २७ ॥

मूर्ध्नि पुष्पं निधायैवं न शून्यं लिङ्गमस्तकं कुर्य्यादत्र श्लोकः ॥ २८ ॥

यस्य राष्ट्रे तु लिङ्गस्य मस्तकं शून्यलक्षणम् ।

तस्यालक्ष्मीर्महारोगो दुर्भिक्षं वाहनक्षयः ॥ २६ ॥

तस्मात्परिहरेद्राजा धर्मकामार्थमुक्तये । शून्ये लिङ्गे स्वयं राजा राष्ट्रञ्चैव प्रणश्यति ॥

एवंस्नाप्याऽर्घ्यंश्च दत्वा संमृज्य वस्त्रेण गन्धपुष्पवस्त्रालङ्कारादींश्च मूलेन दद्यात् ॥ ३१ ॥

धूपाचमनीयदीपनैवेद्यादींश्च मूलेन ।

प्रधानेनोपरि पूजनं पवित्रीकरणमित्युक्तम् ॥ ३२ ॥

आरात्तिदीपादींश्चैव धेनुमुद्रामुद्रितानि कवचेनाऽवगुण्ठितानि षष्ठेन रक्षितानि लिङ्गोपरि लिङ्गे च लिङ्गस्याधः साधारणञ्च दर्शयेत् ॥ ३३ ॥

मूलेन नमस्कारं विज्ञाप्यावाहनस्थापनसन्निरोधसान्निध्यपाद्याचमनीयार्घ्यं गन्धपुष्पधूपनैवेद्याचमनीयहस्तोद्वर्त्तनमुखवासाद्युपचारयुक्तं ब्रह्माङ्गभोगमार्गेण पूजयेत् ॥ ३४ ॥

सकलध्यानं निष्कलस्मरणं परावरध्यानं मूलमन्त्रजपः दशांशं ब्रह्माङ्गजपसमर्पणमात्मनिवेदनस्तुतिनमस्कारादयश्च गुरुपूजा च पूर्वतो दक्षिणे विनायकस्य आदौ चान्ते च सम्पूज्योविघ्नेशो जगदीश्वरः । दैवतैश्चद्विजैश्चैवसर्वकामार्थसिद्धये यः शिवं पूजयेद्देवंलिङ्गेवास्थण्डिलेऽपि वा । स यातिशिवसायुज्यंवर्षमात्रेणकर्मणा

लिङ्गार्चकश्च षण्मासान्नात्रकार्य्या विचारणा ।

सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा दण्डवत् प्रणमेद् बुधः ॥ ३८ ॥

प्रदक्षिणक्रमपादेन अश्वमेधफलं शतम् । तस्मात् संपूजयेन्नित्यं सर्वकामार्थसिद्धये

भोगार्थी भोगमाप्नोति राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ।
पुत्रार्थी तनयं श्रेष्ठं रोगी रोगात् प्रमुच्यते ॥ ४० ॥
यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति मानवः ॥ ४१ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे लिङ्गार्चनविधानं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

शिवपरिभाषित शिवाग्निकार्यवर्णनम्

शैलादिरुवाच

शिवाग्निकार्य्यं वक्ष्यामिशिवेनपरिभाषितम् । जनयित्वाऽग्रतःप्राचींशुभेदेशेसुसंस्कृते
पूर्वाग्रमुत्तराग्रञ्च कुर्य्यात् सूत्रत्रयं शुभम् । चतुरश्रीकृते क्षेत्रेकुर्य्यात् कुण्डानियत्नतः
नित्यहोमाग्निकुण्डञ्च त्रिमेखलसमायुतम् । चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलायामा मेखलाहस्तमात्रतः
हस्तमात्रं भवेत् कुण्डं योनिः प्रादेशमात्रतः । अश्वत्थपत्रवद्योनिं मेखलोपरिकल्पयेत्
कुण्डमध्येतु नाभिः स्यादष्टपत्रंसकर्णिकम् । प्रादेशमात्रं विधिनाकारयेद्ब्रह्मणःसुतः
षण्ठेनोल्लेखनंप्रोक्तं प्रोक्षणंवर्मणास्मृतम् । नेत्रेणालोक्यवैकुण्डंपङ्रेखाःकारयेद्बुधः
प्रागायतेनविप्रेन्द्र ! ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । उत्तराग्राः शिवा रेखा प्रोक्षयेद्वर्मणा पुनः
शमी पिप्पलसम्भूता मरणीं षोडशाङ्गुलाम् । मथित्वा वह्निबीजेनशक्तिन्यासंहृदैवतु
प्रक्षिपेद्विधिना वह्निमन्वाधायथाविधि । तूर्ष्णींप्रादेशमात्रैस्तुयाज्ञिकैःशकलैः शुभैः
परिसम्मोहनं कुर्य्याज्जलेनाष्टसुदिक्षु वै । परिस्तीर्य विधानेन प्रागाद्येवमनुक्रमात् ॥
उत्तराग्रं पुरस्ताद्धि प्रागग्रं दक्षिणे पुनः । पश्चिमेचोत्तराग्रन्तु सौम्ये पूर्वाग्रमेव तु ॥
ऐन्द्रेचैन्द्राग्नमावाह्ययाम्य एवं विधीयते । सौम्यस्योपरिचान्द्राग्नं वारुणाग्नमधस्ततः
द्वन्द्वरूपेण पात्राणि बर्हिष्वासाद्य सुव्रत ! । अधोमुखानि सर्वाणिद्रव्याणिचतथोत्तरे

तस्योपरिन्यसेद्दर्भान् शिवं दक्षिणतो न्यसेत् । पूजयेन्मूलमन्त्रेणपश्चाद्धोमंसमाचरेत्
प्रोक्षणीपात्रमादाय पूरयेदम्बुना पुनः । प्रादेशमात्रौ तु कुशौ स्थापयेदुदकोपरि ॥

प्लावयेच्च कुशाग्रन्तु वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः ।
विकीर्य्य सर्वपात्राणि सुसम्प्रोक्ष्य विधानतः ॥ १६ ॥

प्रणीतापात्रमादाय पूरयेदम्बुना पुनः । अन्योदककुशाग्रैस्तुसम्यगाच्छाद्य सुव्रत !

हस्ताभ्यां नासिकं पात्रमैशान्यां दिशि विन्यसेत् ।
आज्याधिश्रयणं कुर्य्यात् पश्चिमोत्तरतः शुभम् ॥ १८ ॥

भस्ममिश्रांस्तथाऽङ्गारान् ग्राहयेच्छकलेनवै । पश्चिमोत्तरतोनीत्वातत्रवाज्यंप्रतापयेत्

कुशानग्नौ तु प्रज्वाल्य पर्य्यग्निं त्रिभिराचरेत् ।
तान् सर्वांस्तत्र निक्षिप्य चाग्ने चाज्यं निधापयेत् ॥ २० ॥

अङ्गुष्ठमात्रौ तु कुशौ प्रक्षाल्य विधिनैव तु । पर्य्यग्निश्च ततःकुर्य्यात्तैरेव नवभिः पुनः
पर्य्यग्निश्च पुनःकुर्य्यात्तदाज्यमवरोपयेत् । अथापकर्षयेत् पात्रं क्रमेणोत्तरपश्चिमे ॥

संयुज्य चाग्निं काष्ठेन प्रक्षाल्यारोप्य पश्चिमे ।
आज्यस्योत्पवनं कुर्य्यात् पवित्राभ्यां सहैव तु ॥ २३ ॥

पृथगादायहस्ताभ्यांप्रवाहेणयथाक्रमम् । अङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यान्तुउभाभ्यांमूलविद्यया
अभ्युक्ष्य दापयेदग्नौ पवित्रे घृतपङ्क्तिते । सौवर्णंस्रुक्स्रुवंकुर्य्याद्रत्निमात्रेण सुव्रत ! ॥
राजतं वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम् । अथवायाज्ञिकैर्वृक्षैः कर्तव्यौस्रुक्स्रुवावुभौ

अरत्निमात्रमायामं तत् पोत्रे तु विलं भवेत् ।
षडङ्गुलपरीणाहं दण्डमूलं महामुने ! ॥ २७ ॥

तदर्धं कण्ठनालं स्यात्पुष्करं मूलवद्भवेत् । गोबालसदृशंदण्डं स्रुवाग्रंनासिकासमम्
पुटद्वयसमायुक्तं मुक्ताद्येन प्रपूरितम् । षट्त्रिंशदङ्गुलायाममष्टाङ्गुलसविस्तरम् ॥ २९॥
उत्सेधस्तु तदर्द्धंस्यात्सूत्रेण समितं ततः । सप्ताङ्गुलं भवेदास्यं विस्तरायामतः पुनः
त्रिभागैकं भवेदग्रं कृत्वा शेषंपरित्यजेत् । कण्ठश्च द्व्यङ्गुलायामं विस्तारश्चतुरङ्गुलम्
वेदिरष्टाङ्गुलायामा विस्तारस्तत्प्रमाणतः । तस्य मध्ये बिलं कुर्य्याच्चतुरङ्गुलमानतः

बिलं सुवर्सितं कुर्य्यादष्ट पत्रं सुकर्णिकम् । परितो बिलबाह्येतु पट्टिकाऽर्धाङ्गुलेन तु
तद्बाह्ये च विनिम्नन्तु पद्मपत्रविचित्रितम् । यवद्वयप्रमाणेन तद्बाह्ये पट्टिका भवेत् ॥३४
वेदिकामध्यतोरन्ध्रङ्कनिष्ठाङ्गुलमानतः । खातंयावन्मुखान्तःस्याद्बिलमानन्तु निम्नगम्
दण्डं षडङ्गुलं नालं दण्डाऽग्रे दण्डिकात्रयम् ।
अर्धाङ्गुलविवृध्या तु कर्त्तव्यश्चतुरङ्गुलम् ॥ ३६ ॥
त्रयोदशाङ्गुलायामन्दण्डमूले घटंभवेत् । द्व्यङ्गुलन्तुभवेत्कुम्भं नाभिर्विद्यादृशाङ्गुलम्
वेदिमध्येतथा कृत्वा पादंकुर्य्याच्च द्व्यङ्गुलम् । पद्मपृष्ठसमाकारं पादंवैकर्णिकाकृतिम्
गजोष्ठसदृशाकारं तस्य पृष्ठाकृतिर्भवेत् । अभिचारादिकार्य्येषु कुर्य्यात्कृष्णायसेन तु
पञ्चविंशत्कुशेनैव स्रुक्स्रुवौ मार्जयेत्पुनः । अग्रमग्रेण संशोध्य मध्यं मध्येन सुव्रत! ॥
मूलं मूलेन विधिना अग्नौ ताप्यहृदापुनः । आज्यस्थालीप्रणीताचप्रोक्षणीतित्रयंवच
सौवर्णी राजती वापि ताम्रीवा मृण्मयीतुवा । अन्यथानैवकर्त्तव्यंशान्तिकेपौष्टिकेशुभे
आयसी त्वभिचारे तु शान्तिकेमृण्मयीतुवा । षडङ्गुलंसुविस्तीर्णंपात्राणांमुखमुच्यते
प्रोक्षणी द्व्यङ्गुलीत्सेधा प्रणीता द्व्यङ्गुलाधिका ।
आज्यस्थाली ततस्तस्या उत्सेधाद् द्व्यङ्गुलाधिका ॥ ४४ ॥
यैः समिद्भिर्हुतं प्रोक्तंतैरेव परिधिर्भवेत् । मध्याङ्गुलपरीणाहा अवक्रानिर्व्रणाःसमाः
द्वात्रिंशदङ्गुलायामास्तिस्रः परिधयः स्मृताः । द्वात्रिंशदङ्गुलायामैस्त्रिशद्भैःपरिस्तरेत्
चतुरङ्गुलमध्येतु ग्रथितन्तु प्रदक्षिणम् । अभिचारादिकार्य्येषु शिवाग्न्याधानवर्जितम्
अकोमलाः स्थिरा विप्र संग्राह्यास्त्वाऽऽभिचारिके ।
समग्राः सुसमाः स्थूलाः कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः ॥ ४८ ॥
अवक्रानिर्व्रणाःस्निग्धाद्वादशाङ्गुलसम्मिताः । समिधस्थंप्रमाणंहिसर्वकार्य्येषुसुव्रत!
गव्यं घृतं ततः श्रेष्ठङ्कापिलन्तु ततोऽधिकम् । आहुतीनां प्रमाणन्तुस्रुवंपूर्णंयथाभवेत्
अन्नमक्षप्रमाणं स्यात् शुक्तिमात्रेण वै तिलम् ।
यवानाञ्च तदर्द्धं स्यात् फलानां स्वप्रमाणतः ॥ ५१ ॥
क्षीरस्य मधुनो दध्नः प्रमाणं घृतवद् भवेत् । चतुःस्रुवप्रमाणेन स्रुचा पूर्णाहुतिर्भवेत्

तदर्द्धं स्विष्टकृत्प्रोक्तं शेषंसर्वमथापि वा । शान्तिकंपौष्टिकञ्चैव शिवाग्नौजुहुयात्सदा
लौकिकाग्नौ महाभाग मोहनोच्चाटनादयः । शिवाग्निं जनयित्वातु सर्वकर्मणिसुव्रत!

सप्तजिह्वाः प्रकल्प्यैव सर्वकार्य्याणि कारयेत् ।
अथवा सर्वकार्य्याणि जिह्वामात्रेण सिध्यति ॥ ५५ ॥
शिवाग्निरिति विप्रेन्द्रा ! जिह्वामात्रेण साधकः ॥ ५६ ॥

ॐ बहुरूपायै मध्यजिह्वायै अनेकवर्णायै दक्षिणोत्तरमध्यगायै शान्तिकपौष्टिकमोक्षादिफलप्रदायै स्वाहा ॥ ५७ ॥

ॐ हिरण्यायै चामीकराभायै ईशानजिह्वायै ज्ञानप्रदायै स्वाहा ॥ ५८ ॥

ॐ कनकायै कनकनिभायै रम्यायै ऐन्द्रजिह्वायै स्वाहा ॥ ५९ ॥

ॐ रक्तायै रक्तवर्णायै आग्नेयजिह्वायै अनेकवर्णायै विद्वेषणमोहनायै स्वाहा

ॐ कृष्णायै नैर्ऋतजिह्वायै मारणायै स्वाहा । ॥ ६१ ॥

ॐ सुप्रभायै पश्चिमजिह्वायै मुक्ताफलायै शान्तिकायै पौष्टिकायै स्वाहा ॥

ॐ अभिव्यक्तायै वायव्यजिह्वायै शत्रूच्चाटनायै स्वाहा ॥ ६३ ॥

ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा ॥ ६४ ॥

एतावद्वह्निसंस्कारमथवा वह्निकर्मसु । नैमित्तिके च विधिना शिवाग्निं कारयेत् पुनः

निरीक्षणं प्रोक्षणं ताडनञ्च षष्ठेन फडन्तेन अभ्युक्षणञ्चतुर्थेन खननोत्किरणं षष्ठेन पूरणं समीकरणमाद्येन सेचनं वौषडन्तेन कुट्टनं षष्ठेन सम्मार्जनोपलेपनं तुरीयेण कुण्डपरिकल्पनं निवृत्यात्रिभिरेव कुण्डपरिधानञ्चतुर्थेन कुण्डार्चनमाद्येन रेखाचतुष्टयसम्पादनं षष्ठेन फडन्तेन वज्रीकरणञ्चतुष्पदापादनमाद्येन एवं कुण्डसंस्कारमष्टादशविधम् ॥ ६६ ॥

कुण्डसंस्कारानन्तरं अक्षपाटनं षष्ठेन विष्टरन्यासमाद्येन वज्रासने वागीश्वर्य्यावाहनम् ॥ ६७ ॥

ॐ ह्रीं वागीश्वरीं श्यामवर्णांविशालाक्षीं यौवनोन्मत्तविग्रहां ऋतुमतीं वागीश्वरशक्तिमावाहयामि ॥ ६८ ॥

वागीश्वरीं पूजयामि ॥ ६६ ॥

पुनर्वागीश्वरावाहनम् ॥ ७० ॥

एकवक्त्रश्चतुर्भुजं शुद्धस्फुटिकाभं वरदाभयहस्तं परशुमृगधरं जटामुकुटमण्डितं सर्वाभरणभूषितं आवाहयामि ॥ ७१ ॥

ॐ ईं वागीश्वराय नमः आवाहनस्थापनसन्निधानसन्निरोधपूजान्तं वागीश्वरीं सम्भाव्य गर्भाधानवह्निसंस्कारम् ॥ ७२ ॥

अरणीजनितं कान्तोद्भवं वा अग्निहोत्रजं वा ताम्रपात्रे शरावे वा आनीय निरीक्षणताडनाभ्युक्षणप्रक्षालनमाद्येन क्रव्यादा शिवपरित्यागोऽपि प्रथमेन वह्नेस्त्रैकारणं जठरभ्रमध्यादावाह्याऽग्निं वैकारणमूर्त्तावाग्नेयेन उद्दीपनं आद्येन पुरुषेण संहितया धारणा धेनुमुद्रातुरीयेणाऽवगुण्ठ्य जानुभ्यामवनिं गत्वा शरावोत्थापनं कुण्डोपरिनिधाय प्रदक्षिणमावर्त्य तुरीयेणाऽऽत्मसम्मुखां वागीश्वरीं गर्भनाड्यां गर्भाधानान्तुरीयेण कमलप्रदानमाद्येन वौषडन्तेन कुशार्घ्यं दत्वा इन्धनप्रदानमाद्येन प्रज्वालनं गर्भाधानञ्च सद्येनाद्येन पूजनं पुंसवनं वामेन पूजनं द्वितीयेन सीमन्तोन्नयनमघोरेण तृतीयेन पूजनम् ॥ ७३ ॥

अवयवव्याप्तिर्वक्त्रोद्‌घाटनं वक्त्रनिष्कृतिरिति तृतीयेन गर्भजातकर्मपुरुषेण पूजनन्तुरीयेण षष्ठेन प्रोक्षणं सूत्रकशुद्धये चाग्निसूनुरक्षा कुशास्त्रेण वक्त्रेणाऽग्निमूलमीशाग्रं नैर्ऋतिमूलं वायव्याग्रं वायव्यमूलमीशाग्रमिति कुशास्तरणमिति पूर्वोक्तं इध्ममग्रमूलघृताक्तं लालापनोदाय षष्ठेन जुहुयात् ॥ ७४ ॥

पञ्चपूर्वातिक्रमेण परिधिविष्टरन्यासोऽपि आद्येन विष्टरोपरि हिरण्यगर्भहरनारायणानपि पूजयेत् ॥ ७५ ॥

इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेत् ॥ ७६ ॥

वज्रावर्तपर्य्यन्तानपि पूजयेत् ॥ ७७ ॥

वागीश्वरवागीश्वरीपूजाद्येनमुद्वास्य हुतं विसर्जयेत् ॥ ७८ ॥

स्रुवस्रुवसंस्कारमथो निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनिपूर्ववत् स्रुवस्रुवञ्च

हस्तद्वये गृहीत्वा संस्थापनमाद्येन ताडनमपि स्रुक्स्रुवोपरि दर्भानुलेखनमूलमध्य-मग्रेण त्रित्वेन स्रुक्शक्ति स्रुवमपि शम्भुदक्षिणपार्श्वे कुशोपरि शक्तये नमःशम्भवे नमः

ततो ह्यन्तिसूत्रेण स्रुक्स्रुवौ । तुरीयेण वेष्टयेदर्चयेच्च ॥८० ॥

धेनुमुद्रां प्रदर्शयित्वातुरीयेणाऽवगुण्ठ्यषष्ठेन रक्षां विधाय स्रुक्स्रुवसंस्कारः पूर्वमेवोक्तः ॥ ८१ ॥

पुनराज्यसंस्कारः पूर्वमेवोक्तः निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत् ॥ ८२ ॥

आज्यप्रतापनमैशान्यां वा षष्ठेन वेद्यपरि विन्यस्य घृतपात्रं वितस्तिमात्रं कुशापवित्रं वामहस्ताङ्गुष्ठानामिकाग्रं गृहीत्वा दक्षिणाङ्गुष्ठानामिकामूलं गृहीत्वाऽग्नि-ज्वालोत्पवनं स्वाहान्तेन तुरीयेण पुनः षट् दर्भान् गृहीत्वा पूर्ववत् स्वात्मसंप्लवनं स्वाहान्तेनाऽऽद्येन कुशाद्वयपवित्रबन्धनञ्चाद्येन घृते न्यसेदिति पवित्रीकरणम् ॥८३॥

दर्भद्वयं गृह्याग्निप्रज्वालनं घृतं त्रिधा वर्तयेत् । सम्प्रोक्ष्याग्नौ निधापयेदिति नीराजनम् ॥ ८४ ॥

पुनर्दर्भान् गृहीत्वा कीटकादिनिरीक्ष्याऽर्घ्येण संप्रोक्ष्य दर्भानग्नौ निधाय इत्यवद्योतनम् ॥ ८५ ॥

दर्भद्वयं गृहीत्वाऽग्निज्वालया घृतं निरीक्षयेत् ॥ ८६ ॥

दर्भेण गृहीत्वा तेनाग्रद्वयेन शुक्लपक्षद्वयेनाद्येनेति कृष्णपक्षसम्पातनं घृतं त्रिभागेन विभज्य स्रुवेणैकभागेनाज्येनाग्नये स्वाहा द्वितीयेनाऽऽज्येन सोमाय स्वाहा आज्येन ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा आज्येनाग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ ८७ ॥

पुनः कुशेन गृहीत्वा संहिताभिमन्त्रेण नमोऽन्तेनाऽभिमन्त्रयेत् ॥ ८८ ॥

अभिमन्त्र्य धेनुमुद्राप्रदर्शनकवचावगुण्ठनास्त्रेण रक्षा अथ संस्कृते निधापयेत् आज्यसंस्कारः ॥ ८९ ॥

आज्येन स्रुग्वदनेन चक्राभिधारणं शक्तिबीजादीशानमूर्त्तये स्वाहा पूर्ववत् पुरुषवक्त्राय स्वाहा अघोरहृदयाय स्वाहा वामदेवाय गुह्याय स्वाहा सद्योजात-मूर्त्तये स्वाहा इति वक्त्रोद्घाटनम् ॥ ९० ॥

ईशानमूर्त्तये तत् पुरुषवक्त्राय स्वाहा तत् पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय स्वाहा अघोरहृदयाय वामगुह्याय सद्योजातमूर्त्तये स्वाहा इति वक्त्रसन्धानम् ॥

ईशानमूर्त्ते तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवाय गुह्याय सद्योजाताय स्वाहा इति वक्त्रैक्यकरणम् ॥ ६२ ॥

शिवाऽग्निं जनयित्वैवंसर्वकर्माणिकारयेत् । केवलंजिह्वयावापिशान्तिकाद्यानिसर्वदा
गर्भाधानादिकार्य्येषु वह्नेः प्रत्येकमव्यय !। दश वाऽऽहुतयो देया योनिबीजेन पञ्चधा
शिवाग्नौ कल्पयेद्दिव्यं पूर्ववत् परमासनम् । आवाहनं तथा न्यासंयथादेवे तथार्चनम्
मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा देवदेवं नमस्य च । प्राणायामत्रयं कृत्वा सगर्भं सर्वसम्मतम्
परिषेचनपूर्वञ्च तदिध्ममभिघार्य्य च । जुहुयादग्निमध्ये तु ज्वलितेऽथ महामुने ! ॥
आधारावपि चाधाय चाज्येनैव तु षण्मुखे । आज्यभागौ तु जुहुयाद्विधिनैवघृतेन च
चक्षुषी चाऽऽज्यभागौतुचाग्नयेचतथोत्तरे । आत्मनोदक्षिणेचैवसोमायेतिद्विजोत्तम !
प्रत्यङ्मुखस्य देवस्य शिवाग्नेर्ब्रह्मणः सुत ! । अक्षि वै दक्षिणञ्चैव चोत्तरञ्चोत्तरंतथा
दक्षिणन्तु महाभाग ! भवत्येव न संशयः । आज्येनाहुतयस्तत्र मूलेनैव दशैव तु ॥
चरुणा च यथा वह्नि समिद्भिश्च तथा स्मृतम् । पूर्णाहुतिंततोदद्यान्मूलमन्त्रेणसुव्रत!
सर्वावरणदेवानां पञ्चपञ्चैव पूर्ववत् । ईशानादिक्रमेणैव शक्तिबीजक्रमेण च ॥१०३॥
प्रायश्चित्तमघोरेणस्वेष्टान्तंपूर्ववत् स्मृतम् । त्रिप्रकारंमयाप्रोक्तमग्निकार्य्यंसुशोभनम्

यथावसरमेवं हि कुर्य्यान्नित्यं महामुने ! ।

जीवितान्ते लभेत् स्वर्गं लभते अग्निदीपनम् ॥ १०५ ॥

नरकञ्चैव नाप्नोति यस्य कस्यापिकर्मणः । अहिंसकश्चरेद्धोमंसाधकोमुक्तिकाङ्क्षकः
हृदिस्थं चिन्तयेदग्निं ध्यानयज्ञेन होमयेत् । देहस्थं सर्वभूतानां शिवं सर्वजगत्पतिम्
तं ज्ञात्वा होमयेद्भक्त्या प्राणायामेन नित्यशः । बाह्यहोमप्रदाता तु पाषाणेदर्दुरोभवेत्

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे शिवाग्निकार्यवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५ ॥

षड्विंशतितमोऽध्यायः

अघोरार्चनविधिवर्णनम्

शैलादिरुवाच

अथवा देवमीशानं लिङ्गे सम्पूजयेच्छिवम् । ब्राह्मणः शिवभक्तश्च शिवध्यानपरायणः
अग्निरित्यादिनाभस्मगृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् । उद्धूलयेद्धिसर्वाङ्गमापादतलमस्तकम्
आचामेद् ब्रह्मतीर्थेन ब्रह्मसूत्री ह्युदङ्मुखः । अथोन्नमःशिवायेतितनुंकृत्वाऽऽत्मनःपुनः
देवञ्चतेन मन्त्रेण पूजयेत् प्रणवेन च । सर्वस्मादधिका पूजा अघोरेशस्य शूलिनः ॥
सामान्यं यजनं सर्वमग्निकार्यञ्च सुव्रत !। मन्त्रभेदः प्रभोस्तस्य अघोरध्यानमेव च ॥

मन्त्रः अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ६ ॥

अघोरेभ्यः प्रशान्तहृदयाय नमः अथ घोरेभ्यः सर्वात्मब्रह्मशिरसे स्वाहा घोरघोरतरेभ्यः ज्वालामालिनी शिखायै वषट् सर्वेभ्यः पिङ्गलकवचाय हुं नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रत्रयाय वौषट् सहस्राक्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हुं फट् ।

स्नात्वाऽऽचम्य तनुं कृत्वा समभ्युक्ष्याऽघमर्षणम् ।
तर्पणं विधिना चाऽर्घ्यं भानवे भानुपूजनम् ॥ ७ ॥

समञ्चाघोरपूजायां मन्त्रमात्रेण भेदितम् । मार्गशुद्धिस्तथाद्वारिपूजांवास्त्वधिपस्यच
कृत्वाकरंविशोध्याग्रेसशुभासनमास्थितः । नासाग्रकमलेस्थाप्यजग्धाक्षःक्षुभिकाग्निना
वायुनाप्रेर्य्य तद् भस्म विशोध्यच शुभाम्भसा । शक्त्यामृतमयेब्रह्मकलांतत्रप्रकल्पयेत्
अघोरं पञ्चधा कृत्वा पञ्चाङ्गसहितं पुनः । इत्थं ज्ञानक्रियामेवं विन्यस्यचविधानतः

न्यासस्त्रिनेत्रसहितो हृदि ध्यात्वा वरासने !।
नाभौ वह्निगतं स्मृत्वा भ्रूमध्ये दीपवत् प्रभुम् ॥ १२ ॥

शान्त्या बीजाङ्कुरानन्तधर्माद्यैरपि संयुते । सोमसूर्य्याग्निसम्पन्ने मूर्त्तित्रयसमन्विते

वामादिभिश्चसहितेमनोन्मन्याप्यधिष्ठिते । शिवासनेत्मम्मूर्त्तिस्थमक्षयाकाररूपिणम्
अष्टत्रिंशत् कलादेहं त्रितत्त्वसहितं शिवम् । अष्टादशभुजं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् ॥
सिंहाजिनाम्बरधरमघोरं परमेश्वरम् । द्वात्रिंशाक्षररूपेण द्वात्रिंशत् शक्तिभिर्वृतम् ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् । कपालमालाभरणं सर्पवृश्चिकभूषणम् ॥१७ ॥
पूर्णेन्दुवदनं सौम्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् । चन्द्ररेखाधरं शक्त्या सहितं नीलरूपिणम्

हस्ते खड्गं खेटकं पाशमेके रत्नैश्चित्रञ्चाङ्कुशं नागकक्षाम् ।
शरासनं पाशुपतं तथाऽस्त्रं दण्डञ्च खट्वाङ्गमथापरे च ॥ १६ ॥
तन्त्रीञ्च घण्टां विपुलञ्च शूलं तथापरे डामरुकञ्च दिव्यम् ।
वज्रं गदां टङ्कमेकञ्च दीप्तं समुद्गरं हस्तमथाऽस्य शम्भोः ॥ २० ॥

वरदाभयहस्तञ्च वरेण्यं परमेश्वरम् । भावयेत् पूजयेच्चापि वह्नौ होमञ्च कारयेत् ॥
होमश्च पूर्ववत् सर्वो मन्त्रभेदश्च कीर्त्तितः । अष्टपुष्पादिगन्धादिपूजास्तुतिनिवेदनम्
अन्तर्बलिञ्च कुण्डञ्च वाह्येन विधानतः । मण्डलं विधिना कृत्वा मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्

रुद्रेभ्यो मातृगणेभ्यो यक्षेभ्योऽसुरेभ्यो ग्रहेभ्यो राक्षसेभ्यो नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यो विश्वगणेभ्य.क्षेत्रपालेभ्यः अथ वायुवरुणदिग्भागे क्षेत्रपालबलिं क्षिपेत् ।
अर्घ्यं गन्धञ्च पुष्पञ्च धूपदीपञ्च सुव्रताः ! नैवेद्यं मुखवासादि निवेद्यं वै यथाविधि
विज्ञाप्यैवं विसृज्याथ अष्टपुष्पैश्च पूजनम् । सर्वसामान्यमेतद्धि पूजायां मुनिपुङ्गवाः
एवं संक्षेपतःप्रोक्तमघोरार्चादिसुव्रताः ! । अघोरार्चाविधानञ्चलिङ्गेवास्थण्डिलेऽपिवा
स्थण्डिलात्कोटिगुणितं लिङ्गार्चनमनुत्तमम् । लिङ्गार्चनरतोविप्रो महापातकसम्भवैः
पापैरपि न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा । लिङ्गस्य दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं वरम्
अर्चनादधिकं नास्ति ब्रह्मपुत्र ! न संशयः । एवं संक्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चनमुत्तमम् ।
वर्षकोटिशतेनाऽपि विस्तरेण न शक्यते ॥ ३० ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे अघोरार्चनवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

जयाभिषेकवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

प्रभावोनन्दिनश्चैव लिङ्गपूजाफलं श्रुतम् । श्रुतिभिःसम्मितं सर्वं रोमहर्षण सुव्रत ! ॥
जयाभिषेकमीशेन कथितं मनवे पुरा । हिताय मेरुशिखरे क्षत्रियाणां त्रिशूलिना ॥
तत् कथं षोडशविधंमहादानञ्च शोभनम् । वक्तुमर्हसि चाऽस्माकं सूत!बुद्धिमतांवर!

सूत उवाच

जीवच्छ्राद्धं पुरा कृत्वा मनुःस्वायम्भुवः प्रभुः । मेरुमासाद्यदेवेशमस्तुवन्नीललोहितम्
तपसा च विनीताय प्रहृष्टः प्रददौ भवः । दिव्यं दर्शनमीशानस्तेनापश्यत्तमव्ययम् ॥
नत्वा सम्पूज्य विधिना कृताञ्जलिपुटः स्थितः । हर्षगद्गदया वाचाप्रोवाचवचनामच
देवदेव ! जगन्नाथ ! नमस्ते भुवनेश्वर ! । जीवच्छ्राद्धं महादेवप्रसादेन विनिर्मितम् ॥
पूजितश्च ततो देवो दृष्टश्चैव मयाऽधुना । शक्राय कथितं पूर्वं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥
जयाभिषेकं देवेश ! वक्तुमर्हसि मे प्रभो ! ।

सूत उवाच

तस्मै देवो महादेवो भगवान्नीललोहितः ॥ ६ ॥
जयाभिषेकमखिलमवदत् परमेश्वरः ।

श्रीभगवानुवाच

जयाभिषेकं वक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया ॥ १० ॥
अपमृत्युजयार्थञ्च सर्वशत्रुजयाय च । युद्धकाले तु सम्प्राप्ते कृत्वैवमभिषेचनम् ॥
स्वपतिश्चाभिषिच्यैव गच्छेद्योद्धुं रणाजिरे । विधिना मण्डपंकृत्वाप्रपांवाकूटमेववा
नवधा स्थापयेद्वह्नि ब्राह्मणो वेदपारगः । ततः सर्वाभिषेकार्थं सूत्रपातञ्च कारयेत् ॥
प्रागाद्यं वर्णसूत्रञ्च दक्षिणाद्यं तथा पुनः । सहस्राणां द्वयन्तत्र शतानाञ्च चतुष्टयम्

शेषमेव शुभं कोष्ठं तेषु कोष्ठन्तु संहरेत् । बाह्ये वीथ्यां पदञ्चैकं समन्तादुपसंहरेत्
अङ्गसूत्राणि संगृह्य विधिना पृथगेव तु । प्रागाद्यं वर्णसूत्रञ्च दक्षिणाद्यं तथा पुनः ॥

प्रागाद्यं दक्षिणाद्यञ्च षट्त्रिंशत् संहरेत् क्रमात् ।
प्रागाद्याः पंक्तयः सप्त दक्षिणाद्यास्तथा पुनः ॥ १७ ॥

तस्मादेकोनपञ्चाशत् पंक्तयः परिकीर्त्तिताः । नवपंक्तार्हरेन्मध्ये गन्धगोमयवारिणा
कमलञ्चालिखेत्तत्र हस्तमात्रेण शोभनम् । अष्टपत्रं सितं वृत्तं कर्णिकाकेसरान्वितम्
अष्टाङ्गुलप्रमाणेन कर्णिकाहेमसन्निभा । चतुरङ्गुलमानेन केसरस्थानमुच्यते ॥ २० ॥
धर्मो ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यञ्च यथाक्रमम् । आग्नेयादिषुकोणेषु स्थापयेत्प्रणवेन तु
अव्यक्तादीनिवै दिक्षुगात्राकारेणवैन्यसेत् । अव्यक्तंनियतःकालःकालींचेतिचतुष्टयम्
सितरक्तहिरण्याभकृष्णाधर्मादयः क्रमात् । हंसाकारेण वै गात्रं हेमाभासेन सुव्रताः
आधारशक्तिमध्ये तु कमलं सृष्टिकारणम् । बिन्दुमात्रं कलामध्ये नादाकारमतःपरम्
नादोपरि शिवं ध्यायेदोङ्काराख्यंजगद्गुरुम् । मनोन्मनीञ्चपद्माभं महादेवञ्चभावयेत्
वामादयः क्रमेणैव प्रागाद्याः केसरेषु वै । वामाज्येष्ठा तथा रौद्रीकालीविकरणीतथा
बला प्रमथिनी देवी दमनी च यथाक्रमम् । वामदेवादिभिः सार्द्धं प्रणवेनैवविन्यसेत्

नमोऽस्तु वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय शूलिने ॥ २८ ॥

रुद्राय कालरूपाय कलविकरणाय च । बलाय च तथा सर्वभूतस्य दमनाय च ॥
मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यै नमो नमः । मन्त्रैरेतैर्यथा न्यायं पूजयेत् परिमण्डलम्
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु । द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु ॥
तृतीयावरणे चैव चतुर्विंशदनुक्रमात् । पिशाचवीथिर्वैमध्ये नाभिवीथिः समन्ततः ॥
मन्त्रैरेतैर्य्यथा न्यायं पिशाचानां प्रकीर्त्तिताः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु पदमष्टारसंयुतम्
तेषु तेषुपृथक्त्वेन पदेषु कमलं क्रमात् । कल्पयेत् शालिनीवारगोधूमैश्च यथादिभिः
तण्डुलैश्च तिलैर्वाऽथ गौरसर्षपसंयुतैः । अथवा कल्पयेदेतैर्यथाकालं विधानतः ॥

अष्टपत्रं लिखेत्तेषु कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
शालीनामाढकं प्रोक्तं कमलानां पृथक् पृथक् ॥ ३६ ॥

तण्डुलानां तदर्द्धं स्यात्तदर्धञ्चयवादयः। द्रोणं प्रधानकुम्भस्य तदर्द्धं तण्डुलाःस्मृताः
तिलानामाढकं मध्ये यवानाञ्च तदर्धकम्। अथाऽम्भसा समभ्युक्ष्य कमलं प्रणवेनतु
तेषु सर्वेषु विधिना प्रणवंविन्यसेत् क्रमात्। एवंसमाप्यचाभ्युक्ष्यपदसाहस्रमुत्तमम्
कलशानां सहस्राणि हैमानि च शुभानि च। उक्तलक्षणयुक्तानि कारयेद्राजतानिवा
ताम्रजानि यथा न्यायं प्रणवेनाऽर्घ्यवारिणा। द्वादशाङ्गुलविस्तारमुदरे समुदाहृतम्
वर्त्तितन्तु तदर्धेननाभिस्तस्यविधीयते। कण्ठन्तु द्व्यङ्गुलोत्सेधं विस्तारश्चतुरङ्गुलम्

ओष्ठञ्च द्व्यङ्गुलोत्सेधं निर्गमं द्व्यङ्गुलं स्मृतम्।
तत्तद्धे द्विगुणं दिव्यं शिवकुम्भे प्रकीर्त्तितम्॥ ४३॥

यवमात्रान्तरं सम्यक् तन्तुनावेष्टयेद्धि वै। अवगुण्ठ्यं तथाभ्युक्ष्यकुशोपरियथाविधि
पूर्ववत् प्रणवेनैव पूरयेद् गन्धवारिणा। स्थापयेत् शिवकुम्भाद्यं वर्धनीचविधानतः
मध्यपद्मस्य मध्ये तु सकूर्चं साक्षतं क्रमात्। आवेष्ट्यवस्त्रयुग्मेन प्रच्छाद्य कमलेनतु
हैमेन चित्ररत्नेन सहस्रकलशं पृथक्। शिवकुम्भे शिवं स्थाप्य गायत्र्या प्रणवेन च
विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ ४८॥

मन्त्रेणाऽनेन रुद्रस्य सान्निध्यं सर्वदा स्मृतम्।
वर्द्धन्यां देवि गायत्र्या देवीं संस्थाप्य पूजयेत्॥ ४६॥

गणाम्बिकायै विद्महे महातपायै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥ ५०॥
प्रथमावरणे चैव वामाद्याः परिकीर्त्तिताः। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥
शक्तयः षोडशैवाऽत्र पूर्वाद्यन्तेषु सुव्रत !। ऐन्द्रव्यूहस्य मध्ये तु सुभद्रांस्थाप्यपूजयेत्

भद्रामाग्नेयचक्रे तु याम्ये तु कनकाण्डजाम्।
अम्बिकां नैर्ऋते व्यूहे मध्यकुम्भे तु पूजयेत्॥ ५३॥

श्रीदेवीं वारुणेभागे वागीशां वायुगोचरे। गोमुखींसौम्यभागेतुमध्यकुम्भेतु पूजयेत्
रुद्रव्यूहस्य मध्येतु भद्रकर्णां समर्चयेत्। ऐन्द्राग्निविदिशोर्मध्येपूजयेद्दक्षिमांशुभाम्
याम्यपावकयोर्मध्ये लघिमां कमलेन्यसेत्। राक्षसान्तकयोर्मध्येमहिमांमध्यतोयजेत्
वरुणासुरयोर्मध्ये प्राप्तिं वै मध्यतो यजेत्। वरुणानिलयोर्मध्येप्राकाम्यंकमलेन्यसेत्

वित्तेशानिलयोर्मध्येईशित्वंस्थाप्यपूजयेत् । वित्तेशेशानयोर्मध्येवशित्वंस्थाप्यपूजयेत्
ऐन्द्रेशेशानयोर्मध्ये यजेत्कामावसायकम् । द्वितीयावरणंप्रोक्तं तृतीयावरणं शृणु ॥
शक्तयस्तु चतुर्विंशत्प्रधानकमलेषु च । पूजयेद्व्यूहमध्ये तु पूर्ववद्विधिपूर्वकम् ॥६०॥

दीक्षां दीक्षायिकाञ्चैव चण्डां चण्डांशुनायिकाम् ।
सुमतीं सुमत्यायीञ्च गोपां गोपायिकां तथा ॥ ६१ ॥

अथ नन्दञ्च नन्दायीं पितामहमतः परम् । पितामहायीं पूर्वाद्यंविधिनास्थाप्यपूजयेत्
एवं सम्पूज्य विधिना तृतीयावरणंशुभम् । सौभद्रं व्यूहमासाद्य प्रथमावरणेक्रमात्
प्रागाद्यं स्थाप्य विधिना शक्त्यष्टकमनुक्रमात् । द्वितीयावरणेचैव प्रागाद्यंशृणुशक्तयः
षोडशैवतु अभ्यर्च्य पद्ममुद्रान्तुदर्शयेत् । बिन्दुका बिन्दुगर्भाच नादिनीनादगर्भजा ॥
शक्तिका शक्तिगर्भाच पराचैव परापरा । प्रथमावरणेऽष्टौ च शक्तयः परिकीर्त्तिताः ॥
चण्डाचण्डमुखीचैवचण्डवेगामनोजवा । चण्डाक्षीचण्डनिर्घोषाभृकुटीचण्डनायिका

मनोत्सेधा मनोध्यक्षा मानसी माननायिका ।
मनोहरी मनोह्लादी मनः प्रीतिर्महेश्वरी ॥ ६८ ॥

द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्त्तिता । सौभद्रं कथितं व्यूहं भद्रंव्यूहं शृणुष्व मे ॥
ऐन्द्री हौताशनीयाम्या नैर्ऋतीवारुणीतथा । वायव्याचैवकौवेरीऐशानीचाष्टशक्तयः
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु । हरिणी च सुवर्णा च काञ्चनी हाटकी तथा

रुक्मिणी सत्यभामा च सुभगा जम्बुनायिका ।
वाग्भवा वाक्पथा वाणी भीमा चित्ररथा सुधीः ॥ ७२ ॥

वेदमाता हिरण्याक्षीद्वितीयावरणेस्मृताः । भद्राख्यंकथितं व्यूहं कनकाख्यंशृणुष्वमे
वज्रं शक्तिञ्च दण्डञ्च खड्गं पाशं ध्वजं तथा । गदांत्रिशूलंक्रमशः प्रथमावरणेस्मृताः
युद्धाप्रबुद्धाचण्डा च मुण्डा चैवकपालिनी । मृत्युहन्त्रीविरूपाक्षी कपर्दीकमलासना

दंष्ट्रिणी रङ्गिणी चैव लम्बाक्षी कङ्कभूषणी ।
सम्भावा भाविनी चैव षोडशैव प्रकीर्त्तिताः ॥ ७६ ॥

कथितं कनकव्यूहमम्बिकाख्यं शृणुष्वमे । खेचरीचात्मनासाच भवानी वह्निरूपिणी

वह्निनी वह्निनाभा च महिमा मृतलालसा । प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयःसर्वसम्मताः ॥
क्षमाचशिखरादेवी ऋतुरत्नशिला तथा । च्छायाभूतपतीधन्या इन्द्रमाता च वैष्णवी
तृष्णारागवतीमोहा कामकोपामहोत्कटा । इन्द्राच बधिरादेवीषोडशैताः प्रकीर्त्तिता
कथितंचाम्बिकाव्यूहंश्रीव्यूहं शृणुसुव्रत !। स्पर्शास्पर्शवतीसन्धाप्राणापानासमानका
उदानाव्याननामाच प्रथमावरणेस्मृताः । तमोहता प्रभा मोघा तेजनी दहनी तथा ॥
भीमास्याजालनीचोषाशोषणीरुद्रनायिका । वीरभद्रागणाध्यक्षा चन्द्रहासाच गह्वरा
गणमाताऽम्बिकाचैव शक्तयः सर्वसम्मताः । द्वितीयावरणेप्रोक्ताः षोडशैवयथाक्रमात्

श्रीव्यूहं कथितं भद्रं वागीशं शृणु सुव्रत ! ।

धारा वारिधरा चैव वह्निकी नाशकी तथा ॥ ८५ ॥

मर्त्यातीतामहामाया वज्रिणी कामधेनुका । प्रथमावरणेप्येवं शक्तयोऽष्टौप्रकीर्त्तिताः
पयोष्णीवारुणी शान्ता जयन्तीचवरप्रदा । प्लावनी जलमाताच पयोमातामहाम्बिका

रक्ता कराली चण्डाली महोच्छुष्मा पयस्विनी ।

माया विद्येश्वरी काली कालिका च यथाक्रमम् ॥ ८८ ॥

षोडशैवचसमाख्याताः शक्तयः सर्वसम्मताः । व्यूहंवागीश्वरंप्रोक्तंगोमुखंव्यूहमुच्यते
शङ्खिनीहलिनीचैवलङ्कावर्णाचकल्किनी । यक्षिणीमालिनीचैव वमनी च रसात्मनी॥
प्रथमावरणेचैव शक्तयोऽष्टौप्रकीर्त्तिताः । चण्डाघण्टामहानादासुमुखीदुर्मुखी बला ॥
रेवती प्रथमा घोरा सैन्यालीना महाबला । जयाच विजयाचैव अपरा चापरा जिता
द्वितीया वरणेचैव शक्तयःषोडशैव तु । कथितं गोमुखीव्यूहं भद्रकर्णीं शृणुष्व मे ॥
महाजया विरूपाक्षी शुक्लामाकाशमातृका । संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती
प्रथमावरणेचाऽष्टौ शक्तयः परिकीर्त्तिताः । पिपीलिका पुण्यहारी अशनीसर्वहारिणी
भद्रहा विश्वहारीच हिमायोगेश्वरी तथा । छिद्राभानुमती छिद्रासैंहिकी सुरभीसमा
सर्वभव्याच वेगाख्या शक्तयः षोडशैव तु । महाव्यूहाष्टकं प्रोक्तमुपव्यूहाष्टकं शृणु ॥
अणिमा व्यूहमावेष्ट्य प्रथमावरणेक्रमात् । ऐन्द्रा तु चित्रभानुश्च वारुणीदण्डिरेवच
प्राणरूपीतथा हंसः स्वात्मशक्तिः पितामहः । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु

केशवो भगवान् रुश्चन्द्रमा भास्करस्तथा ।
महात्मा च तथा ह्यात्मा ह्यन्तरात्मा महेश्वरः ॥ १०० ॥

परमात्मा ह्यणुर्जीवः पिङ्गलः पुरुषः पशुः । भोक्ताभूतपतिर्भीमो द्वितीयावरणेस्मृताः
कथितश्चाणिमाव्यूहंलघिमाख्यंवदामिते । श्रीकण्ठोन्तश्चसूक्ष्मश्चत्रिमूर्त्तिःशशकस्तथा
अमरेशःस्थितीशश्चदारतश्चतथाऽष्टमः । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ॥१०३॥
स्थाणुर्हरश्च दण्डेशो भौक्तीशः सुरपुङ्गवः । सद्योजातोऽनुग्रहेशः क्रूरसेनः सुरेश्वरः ॥
क्रोधीशश्च तथा चण्डः प्रचण्डः शिव एव च । एकरुद्रस्तथा कूर्मश्चैकनेत्रश्चतुर्मुखः॥
द्वितीयावरणे रुद्राः षोडशैव प्रकीर्त्तिताः । कथितं लघिमाव्यूहं महिमां श्रृणुसुव्रत॥

अजेशः क्षेमरुद्रश्च सोमोऽशो लाङ्गली तथा ।
दण्डारुश्चार्धनारी च एकान्तश्चान्त एव च ॥ १०७ ॥

पाली भुजङ्गनामाच पिनाकी खड्गिरेवच । कामईशस्तथा श्वेतो भृगुःषोडशवैस्मृताः
कथितं महिमा व्यूहं प्राप्तिव्यूहं श्रृणुष्व मे । संवर्त्तोलकुलीशश्च वाड़वो हस्तिरेव च
चण्डयक्षो गणपतिर्महात्मा भृगुजोऽष्टमः । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु
त्रिविक्रमो महाजिह्वो ऋक्षः श्रीभद्र एव च । महादेवो दधीचश्च कुमारश्च परावरः ॥
महादंष्ट्रः करालश्च सूचकश्च सुवर्द्धनः । महाध्वाङ्क्षोमहानन्दोदण्डीगोपालकस्तथा
प्राप्तिव्यूहंसमाख्यातंप्राकाम्यं श्रृणुसुव्रत ।। पुष्पदन्तो महानागो विपुलानन्दकारकः
शुक्लो विशालः कमलो बिल्वश्चारुण एव च । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु
रतिप्रियः सुरेशानश्चित्राङ्गश्च सुदुर्जयः । विनायकः क्षेत्रपालोमहामोहश्च जङ्गलः ॥
वत्सपुत्रो महापुत्रो ग्रामदेशाधिपस्तथा । सर्वावस्थाधिपोदेवो मेघनादः प्रचण्डकः

कालदूतश्च कथितो द्वितीयावरणं स्मृतम् ।
प्राकाम्यं कथितं व्यूहमैश्वर्य्यं कथयामि ते ॥ ११७ ॥

मङ्गला चर्चिका चैव योगेशा हरदायिका । भासुरासुरमाताच सुन्दरी मातृकाष्टमी
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे श्रृणु । गणाधिपश्च मन्त्रज्ञो वरदेवः षडाननः ॥
विदग्धश्च विचित्रश्च अमोघो मोघ एव च । अश्वीरुद्रश्च सोमेशश्चोत्तमोदुम्बरस्तथा

नारसिंहश्च विजयस्तथा इन्द्रगुहः प्रभुः । अपां पतिश्च विश्चिना द्वितीयावरणंस्मृतम्
ऐश्वर्यं कथितं व्यूहं वशित्वं पुनरुच्यते । गगनो भवनश्चैव विजयो ह्यजयस्तथा ॥
महाजयस्तथाङ्गारो व्यङ्गारश्च महायशाः । प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु ॥
सुन्दरश्च प्रचण्डेशो महावर्णो महासुरः । महारोमा महागर्भः प्रथमः कनकस्तथा ॥

खरजो गरुडश्चैव मेघनादोऽथ गर्जकः ।
गजश्च छेदको बाहुस्त्रिशिखो मारिरेव च ॥ १२५ ॥

वशित्वं कथितंव्यूहंशृणुकामावसायिकम् । विनादोविकटश्चैव वसन्तो मय एव च
विद्युन्महाबलश्चैव कमलो दमनस्तथा । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥१२७
धर्मश्चातिबलः सर्पो महाकायो महाहनुः । सबलश्चैव भस्माङ्गी दुर्जयो दुरतिक्रमः ॥
वेतालो रौरवश्चैव दुर्द्धरो भोग एव च । वज्रकालाग्निरुद्रश्च सद्यो नादो महागुहः ॥
द्वितीयावरणं प्रोक्तं व्यूहश्चैवावसायिकम् । कथितं षोडशव्यूहं द्वितीयावरणंशृणु ॥
द्वितीयावरणे चैव दक्षव्यूहे च शक्तयः । प्रथमावरणे चाऽष्टौ बाह्ये षोडश एव च ॥

मनोहरा महानादा चित्रा चित्ररथा तथा ।
रोहिणी चैव चित्राङ्गी चित्ररेखा विचित्रिका ॥ १३२ ॥

प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणं शृणु । चित्रा विचित्ररूपाच शुभदा कामदा शुभा

क्रूरा च पिङ्गला देवी खड्गिका लम्बिका सती ।
दंष्ट्राली राक्षसी ध्वंसी लोलुपा लोहिता मुखी ॥ १३४ ॥

द्वितीयावरणेप्रोक्ताः षोडशैव समासतः । दक्षव्यूहं समाख्यातं दाक्षव्यूहं शृणुष्व मे
सर्वासतीविश्वरूपालम्पटाचाऽऽमिषप्रिया । दीर्घदंष्ट्राचवज्राच लम्बोष्ठीप्राणहारिणी
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु । गजकर्णाऽश्वकर्णा च महाकाली सुभीषणा
वातवेगरवा घोरा घनाघनरवा तथा । वरघोषा महावर्णा सुघण्टा घण्टिका तथा

घण्टेश्वरी महाघोरा घोरा चैवाऽतिघोरिका ।
द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्त्तिताः ॥ १३६ ॥

दाक्षव्यूहं समाख्यातं चण्डव्यूहंशृणुष्वमे । अतिघण्टाचाऽतिघोराकरालाकरभातथा

विभूतिर्भोगदाकान्तिःशङ्खिनीचाऽष्टमीस्मृता । प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणेश्रृणु
पत्रिणीचैवगान्धारीयोगमातासुपीवरा । रक्तामालांशुका वीरा संहारीमांसहारिणी
फलहारी जीवहारी स्वेच्छाहारीचतुण्डिका । रेवतीरङ्गिणी सङ्गा द्वितीये षोडशैवतु

चण्डव्यूहं समाख्यातं चण्डाव्यूहमथोच्यते ।
चण्डी चण्डमुखी चण्डा चण्डवेगा महारवा ॥ १४४ ॥

भ्रुकुटी चण्डभूश्चैव चण्डरूपाऽष्टमी स्मृता । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु
चन्द्रघ्राणा बलाचैव बलजिह्वा बलेश्वरी । बलवेगा महाकाया महाकोपाच विद्युता
कङ्कालीकलशीचैवविद्युताचण्डघोषिका । महाघोषा महारावाचण्डभानऽङ्गचण्डिका
चण्डायाःकथितं व्यूहंहरव्यूहंश्रृणुष्वमे । चण्डाक्षी कामदा देवी सूकराकुक्कुटानना

गान्धारी दुन्दुभी दुर्गा सौमित्रा चाऽष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ॥ १४६ ॥

मृतोद्भवा महालक्ष्मीर्वर्णदा जीवरक्षिणी । हरिणीक्षीणजीवाच दण्डवक्त्राचतुर्भुजा
व्योमचारीव्योमरूपाव्योमव्यापीशुभोदया । गृहचारीसुचारीचविषाहारीविषार्तिहा
हरव्यूहं समाख्यातं हरायाव्यूहमुच्यते । जम्भाच्युताचकङ्कारीदेविकादुर्द्धरा वहा ॥
चण्डिकाचपलाचेतिप्रथमावरणेस्मृताः । चण्डिकाचामरीचैव भण्डिकाच शुभानना

पिण्डिका मुण्डिनी मुण्डा शाकिनी शाङ्करी तथा ।
कर्त्तरी भर्त्तरी चैव भागिनी यज्ञदायिनी ॥ १५४ ॥

यमदंष्ट्रा महादंष्ट्रा कराला चेति शक्तयः । हरायाःकथितं व्यूहं शौण्डव्यूहं श्रृणुष्वमे
विकरालीकरालीचकालजङ्घा यशस्विनी । वेगा वेगवतीयज्ञा वेदाङ्गाचाष्टमी स्मृता
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु । वज्रा शङ्खाऽतिशङ्खा वा बलाचैवाऽबलातथा
अञ्जनीमोहबीमायाविकटाङ्गीनली तथा । गण्डकीदण्डकीघोणाशोणासत्यवती तथा

कल्लोला चेति क्रमशः षोडशैव यथाविधि ।
शौण्डव्यूहं समाख्यातं शौण्डाया व्यूहमुच्यते ॥ १५६ ॥

दन्तुरा रौद्रभागाचअमृता सकुलाशुभा । चलजिह्वाऽऽर्य्यनेत्राच रूपिणीदारिकातथा

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु । खादका रूपनामा च संहारीच क्षमान्तका

कण्डिनी पेषिणी चैव महात्रासा कृतान्तिका ।

दण्डिनी किङ्करी बिम्बा वर्णिनी चाऽमलाङ्गिनी ॥ १६२ ॥

द्रविणी द्राविणीचैव शक्तयःषोडशैवतु । कथितं हि मनोरम्यं शौण्डायाव्यूहमुत्तमम्

प्रथमाख्यं प्रवक्ष्यामि व्यूहं परमशोभनम् । प्लवनीप्लावनीशोभामन्दाचैवमदोत्कटा

मन्दाऽक्षेपा महादेवी प्रथमा वरणे स्मृता । कामसन्दीपनी देवी अतिरूपा मनोहरा

महावशा मदग्राहा विह्वला मदविह्वला । अरुणा शोषणा दिव्या रेवतीभाण्डनायिका

स्तम्भिनी घोररक्ताक्षी स्मररूपा सुघोषणा ।

व्यूहं प्रथममाख्यातं स्वायम्भुव ! यथा तथा ॥ १६७ ॥

कथितं प्रथमाव्यूहं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वमे । घोरा घोरतरा घोरा अतिघोराघनायिका

धावनी क्रोष्टुका मुण्डा चाऽष्टमीपरिकीर्त्तिता । प्रथमावरणंप्रोक्तं द्वितीयावरणंशृणु

भीमा भीमतरा भीमा शस्ताचैव सुवर्त्तुला । स्तम्भिनीरोदिनीरौद्रारुद्रवत्यचलाचला

महाबलामहाशान्तिःशालाशान्ताशिवाशिवा । बृहत्कक्षामहानासाषोडशैवप्रकीर्त्तिता

प्रथमायाः समाख्यातं मन्मथव्यूहमुच्यते ।

तालकर्णी च बाला च कल्याणी कपिला शिवा ॥ १७२ ॥

इष्टिस्तुष्टिः प्रतिज्ञाच प्रथमावरणे स्मृताः । ख्यातिःपुष्टिकरीतुष्टिर्जलाचैव श्रुतिर्धृतिः

कामदा शुभदा सौम्या तेजनीकामतन्त्रिका । धर्माधर्मवशा शीला पापहाधर्मवर्द्धिनी

मन्मथं कथितं व्यूहं मन्मथायाः शृणुष्व मे । धर्मरक्षा विधानाच धर्माधर्मवती तथा

सुमतिर्दुर्मतिर्मेधा विमला चाऽष्टमी स्मृता । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥

शुद्धिर्बुद्धिर्द्युतिः कान्तिर्वर्त्तुलामोहवर्धनी । बलाचाऽतिबलाभीमाप्राणवृद्धिकरीतथा॥

निर्लज्जा निर्घृणा मन्दा सर्वपापक्षयङ्करी ।

कपिला चाऽतिविधुरा षोडशैताः प्रकीर्त्तिताः ॥ १७८ ॥

मन्मथायिकमुक्तं ते भीमव्यूहं वदामि ते । रक्ताचैव विरक्ताच उद्वेगा शोकवर्द्धिनी॥

कामातृष्णा क्षुधामोहा चाष्टमीपरिकीर्त्तिता । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणंशृणु

जयानिद्राभयालस्याजलतृष्णोदरीदरा । कृष्णाकृष्णाङ्गिनीवृद्धाशुद्धोच्छिष्टाशनीवृषा
कामनाशोभनीदग्धा दुःखदासुखदावली । भीमव्यूहं समाख्यातं भीमार्याव्यूहमुच्यते
आनन्दाच सुनन्दाच महानन्दा शुभङ्करी । वीतरागा महोत्साहा जितरागा मनोरथा
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु । मनोन्मनी मनक्षोभा मदोन्मत्ता मदाकुला ॥

मन्दगर्भा महाभासा कामानन्दा सुविह्वला ।

महावेगा सुवेगा च महाभोगा क्षयावहा ॥ १८५ ॥

क्रमणी क्रामणी वका द्वितीयावरणेस्मृताः । कथितं तव भीमार्याव्यूहं परमशोभनम्
शाकुनंकथयाम्यद्यस्वायम्भुव ! मनोत्सुकम् । योगावेगासुवेगाचअतिवेगासुवासिनी
देवीमनोरयावेगा जलावर्त्ता च धीमती । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥

रोधनी क्षोभनी बाला विप्रा शेषा सुशोषणी ।

विद्युताभासिनी देवी मनोवेगा च चापला ॥ १८६ ॥

विद्युज्जिह्वामहाजिह्वाभृकुटीकुटिलानना।फुल्लज्वालामहाज्वालासुज्वालाचक्षयान्तिका
शाकुनंकथितंव्यूहंशाकुनायाःशृणुष्वमे । ज्वालिनीचैव भस्माङ्गीतथाभस्मान्तगातथा
भाविनीचप्रजाविद्या ख्यातिश्चैवाऽप्रमास्मृता । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणंशृणु

उल्लेखा च पताका च भोगा भोगवती खगा ।

भोगभोगव्रता योगा भोगाख्या योगपारगा ॥ १६३ ॥

ऋद्धिर्बुद्धिर्धृतिः कान्तिः स्मृतिः साक्षाच्छ्रुतिर्धरा ।

शाकुनाया महाव्यूहं कथितं कामदायकम् ॥ १६४ ॥

स्वायम्भुव ! शृणु व्यूहं सुमत्याख्यं सुशोभनम् । परैष्टाचपराद्दृष्टाह्यमृता फलनाशिनी
हिरण्याक्षी सुवर्णाक्षीदेवी साक्षात्कपिङ्गला । कामरेखा च कथितं प्रथमावरणंशृणु

रत्नद्वीपा च सुद्वीपा रत्नदा रत्नमालिनी ।

रत्नशोभा सुशोभा च महाशोभा महाद्युतिः ॥ १६७ ॥

शाम्बरी बन्धुरा ग्रन्थिः पादकर्णा करानना । हयग्रीवाच जिह्वाचसर्वभासेतिशक्तयः
कथितं सुमतिव्यूहं सुमत्या व्यूहमुच्यते । सर्वाशी च महाभक्षा महादंष्ट्राऽतिरौरवा

विस्फुलिङ्गा विलिङ्गाच कृतान्ता भास्करानना । प्रथमावरणंप्रोक्तं द्वितीयावरणंशृणु
रागारङ्गवती श्रेष्ठा महाक्रोधा च रौरवा । क्रोधनी वसनी चैव कलहा च महाबला
कलन्तिका चतुर्भेदा दुर्गा वै दुर्गमानिनी । नाली सुनालीसौम्याचइत्येवंकथितंमया

गोपव्यूहं वदाम्यत्र शृणु स्वायम्भुवाखिलम् ।
पाटली पाटवी चैव पाटी विटिपिटा तथा ॥ २०३ ॥

कङ्कटा सुपटा चैव प्रघटा च घटोद्भवा । प्रथमावरणश्चाऽत्र भाषया कथितं मया ॥
नादाक्षी नादरूपा च सर्वकारीगमाऽगमा । अनुचारीसुचारीच चण्डनाडीसुवाहिनी
सुयोगा च वियोगाचहंसाख्याचविलासिनी । सर्वगासुविचाराचवञ्चनीचेतिशक्तयः
गोपव्यूहं समाख्यातं गोपाथीव्यूहमुच्यते । भेदिनी छेदिनीचैव सर्वकारीक्षुधाशनी
उच्छुष्मा चैव गान्धारी भस्माशी वडवानला । प्रथमावरणञ्चैव द्वितीयावरणं शृणु

अन्धा बाह्यासिनी बाला दीपा क्षमा तथैव च ।
अक्षा त्र्यक्षा च ह्रल्लेखा हृद्गता मायिका परा ॥ २०६ ॥

आमया सादिनी भिल्ली सह्यासह्या सरस्वती । रुद्रशक्तिर्महाशक्तिर्महामोहाच गोनदी
गोपायीकथितं व्यूहं नन्दव्यूहं वदामि ते । नन्दिनीचनिवृत्तिश्चप्रतिष्ठाच यथाक्रमम्
विद्यानासा स्वप्रसिनी चामुण्डा प्रियदर्शिनी । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणंशृणु
गुह्यानारायणी मोहा प्रजा देवीचचक्रिणी । कङ्कटाच तथाकालीशिवाघीषाततःपरम्
विरामाया च वागीशी वाहिनी भीषणीतथा । सुगमाचैवनिर्दिष्टाद्वितीयावरणेस्मृता
नन्दव्यूहं मयाख्यातं नन्दाया व्यूहमुच्यते । विनायकी पूर्णिमाचरङ्कारीकुण्डलीतथा
इच्छा कपालिनी चैव द्वीपिनीच जयन्तिका । प्रथमावरणे चाष्टौशक्तयःपरिकीर्त्तिताः
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु । पावनी चाम्बिका चैव सर्वात्मा पूतना तथा
छगली मोदिनी साक्षाद्देवी लम्बोदरीतथा । संहारीकालिनी चैवकुसुमाचयथाक्रमम्

शुक्रा तारा तथा ज्ञाना क्रिया गायत्रिका तथा ।
सावित्री चेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् ॥ २१६ ॥

नन्दायाः कथितं व्यूहं पैतामहमतः परम् । नन्दिनीचैवफेत्कारी क्रोधाहंसाषडङ्गुला

आनन्दा वसुदुर्गा च संहारा ह्यमृताष्टमी । प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥
कुलान्तिका नला चैव प्रचण्डा मर्दिनी तथा । सर्वभूता भयाचैव दया च वडवामुखी
लम्पटा पन्नगा देवी कुसुमा विपुलान्तका । केदारा च तथा कूर्मा दुरितामन्दरोदरी
खड्गचक्रेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् । व्यूहेपैतामहं प्रोक्तं धर्मकामार्थमुक्तिदम्
पितामहाया व्यूहश्च कथयामि शृणुष्वमे । वज्रा च नन्दनाशा वा रविकारिपुभेदिनी
रूपा चतुर्था योगा च प्रथमावरणे स्मृताः । भूतानादा महाबाला खर्परा च तथापरा

भस्मा कान्ता तथा वृष्टिर्द्विभुजा ब्रह्मरूपिणी ।
सैहा वैकारिका जाता कर्ममोटी तथा परा ॥ २२७ ॥

महामोहा महामाया गान्धारी पुष्पमालिनी । शब्दापीचमहाघोषाषोडशैवतथान्तिमे
सर्वाश्च द्विभुजा देव्यो बालभास्करसन्निभाः । पद्मशङ्खधराःशान्तारक्तस्रग्वस्त्रभूषणाः
सर्वाभरणसम्पूर्णा मुकुटाद्यैरलङ्कृताः । मुक्ताफलमयैर्दिव्यै रत्नचित्रैर्मनोरमैः ॥२३०॥
विभूषिता गौरवर्णा ध्येया देव्यः पृथक् पृथक् । एवंसहस्रकलशं ताम्रजंमृण्मयन्तुवा
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तं रुद्रक्षेत्रे प्रतिष्ठितम् । मयाद्यैर्विष्णुनाप्रोक्तैर्नाम्नाश्चैव सहस्रकैः ॥
सम्पूज्य विन्यसेदग्रेसेचयेद्बाणविग्रहम् । अभिषिच्यचविज्ञाप्यसेचयेत्पृथिवीपतिम्
एवं सहस्रकलशं सर्वसिद्धिफलप्रदम् । चत्वारिंशन्महाव्यूहं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥
सर्वेषां कलशं प्रोक्तं पूर्ववद्धेमनिर्मितम् । सर्वे गन्धाम्बुसम्पूर्णपञ्चरत्नसमन्विताः ॥
तथा कनकसंयुक्ता देवस्य घृतपूरिताः । क्षीरेण वाऽथ दध्ना वा पञ्चगव्येन वा पुनः
ब्रह्मकूर्चेन वा मेध्यमभिषेको विधीयते । रुद्राध्यायेन रुद्रस्य नृपतेः शृणु सत्तम !॥
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यःसर्वशर्वेभ्योनमस्तेअस्तुरुद्ररूपेभ्यः
मन्त्रेणाऽनेन राजानं सेचयेदभिषेचितम् । होमञ्च मन्त्रेणाऽनेन अघोरेणाघहारिणा

प्रागाद्यं देवकुण्डे वा स्थण्डिले वा घृतादिभिः ।
समिदाज्य चरुं लाजशालिनीवारतण्डुलैः ॥ २४० ॥

अष्टोत्तरशतं हुत्वा राजानमधिवासयेत् । पुण्याहं स्वस्तिरुद्रायकौतुकं हेमनिर्मितम्
भसितञ्च मृणालेन बन्धयेद्दक्षिणे करे । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ॥

उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।
मन्त्रेणाऽनेन राजानं सेचयेद्वाऽथ होमयेत् ॥ २४३ ॥
सर्वद्रव्याभिषेकञ्च होमद्रव्यैर्यथाक्रमम् । प्रागाद्यं ब्रह्मभिः प्रोक्तंसर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम्
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ २४५ ॥
स्वाहान्तं पुरुषेणैवं प्राक्कुण्डे होमयेद् द्विजः ।
अघोरेण च याम्ये च होमयेत् कृष्णवाससा ॥ २४६ ॥
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः । इत्याद्युक्तक्रमेणैव जुहुयात्पश्चिमे नरः ॥ २४७ ॥
सद्येन पश्चिमे होमः सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम् । सद्योजातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमः
भवे भवेनाऽतिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ।
स्वाहान्तं जुहुयादग्नौ मन्त्रेणाऽनेन बुद्धिमान् ॥ २४९ ॥
आग्नेय्याञ्च विधानेन ऋचा रौद्रेण होमयेत् ।
जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि ।
नैर्ऋते पूर्ववद् द्रव्यैः सर्वैर्होमो विधीयते ॥ २५० ॥
मन्त्रेणाऽनेन दिव्येन सर्वसिद्धिकरेणच । निमिनिशिदिशस्वाहाखड्ग!राक्षसभेदनम्
रुधिराज्यार्द्रनैर्ऋत्यै स्वाहानमःस्वधानमः । यथेष्टं विधिनाद्रव्यैर्मन्त्रेणानेनहोमयेत्
यस्यां हि विविधैर्द्रव्यैरीशानेनद्विजोत्तमाः । ईशान्यामथ पूर्वोक्तैर्द्रव्यैर्होममथाचरेत् ॥
ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यम्बकाय शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ २५४ ॥
प्रधानं पूर्ववद् द्रव्यैरीशानेनद्विजोत्तमाः !। प्रतिद्रव्यं सहस्रेण जुहुयान्नृपसन्निधौ ॥
स्वयं वा जुहुयादग्नौ भूपतिः शिववत्सलः ।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिव ओम् ॥ २५६ ॥
प्रायश्चित्तमघोरेण शेषंसामान्यमाचरेत् । कृताधिवासं राजानं शङ्खभेर्यादिनिस्वनैः
जयशब्दरवैर्दिव्यैर्वेदघोषैः सुशोभनैः । सेचयेत् कुर्वतोयेन प्रोक्षयेद्वा नृपोत्तमम् ॥

रुद्राध्यायेन विधिना रुद्रमस्माङ्कधारिणम् । शङ्खचामरभेर्य्याद्यं छत्रं चन्द्रसमप्रभम् ॥
शिबिकां वैजयन्तीञ्च साधयेन्नृपतेःशुभाम् । राज्याभिषेकयुक्ताय क्षत्रियायेश्वराय वा
नृपचिह्नानि नाऽन्येषां क्षत्रियाणां विधीयते । प्रमाणञ्चैव सर्वेषां द्वादशाङ्गुलमुच्यते
पलाशोदुम्बरोऽश्वत्थवटाः पूर्वादितः क्रमात् । तोरणाद्यानिवै तत्रपट्टमात्रेणपट्टिकाः
अष्टमाङ्गुलसंयुक्तदर्भमालासमावृतम् । दिग्ध्वजाष्टकसंयुक्तं द्वारकुम्भैःसुशोभनम्
हेमतोरणकुम्भैश्च भूषितं स्नापयेन्नृपम् । सर्वोपरि समासीनं शिवकुम्भेन सेचयेत् ॥
तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि । तन्नः शिवः प्रचोदयात् ॥ २६५ ॥
मन्त्रेणाऽनेन विधिना वर्धन्यागौरिगीतया । रुद्राध्यायेनवा सर्वमघोरेणाऽथवापुनः
दिव्यैराभरणैः शुक्लैर्मुकुटाद्यैः सुकल्पितैः । क्षौमवस्त्रैश्च राजानं तोषयेन्नियतं शनैः
अष्टषष्टिपलेनैव हेम्ना कृत्वा सुदर्शनम् । नवरत्नैरलङ्कृत्य दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः ॥
दशधेनु सवत्सञ्च दद्यात् क्षेत्रं सुशोभनम् । शतद्रोणतिलञ्चैव शतद्रोणञ्च तण्डुलान्
शयनं वाहनं शय्यां सोपधानां प्रदापयेत् ।
योगिनाञ्चैव सर्वेषां त्रिंशत् पलमुदाहृतम् ॥ २७० ॥
अशेषांश्च तदर्द्धेन शिवभक्तांस्तदर्द्धतः । महापूजां ततः कुर्य्यान्महादेवस्य वै नृपः ॥
एवं समासतः प्रोक्तं जयसेचनमुत्तमम् । एवंपुराऽभिषिक्तस्तु शक्रः शक्रत्वमागतः ॥
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः ।
अम्बिका चाम्बिकात्वञ्च सौभाग्यमतुलं तथा ॥ ७३ ॥
सावित्रीच तथालक्ष्मीर्देवीकात्यायनीतथा । नन्दिनाऽथपुरामृत्यू रुद्राध्यायेनवैजितः
अषिक्तोऽसुरः पूर्वं तारकाख्यो महाबलः ।
विद्युन्माली हिरण्याक्षो विष्णुना वै विनिर्जितः ॥ २७५ ॥
नृसिंहेन पुरादैत्यो हिरण्यकशिपुर्हतः । स्कन्देन तारकाद्याश्चकौशिक्याच पुराऽम्बया
सुन्दोपसुन्दतनयौ जितौ दैत्येन्द्रपूजितौ । वसुदेवसुदेवौ तु निहतौ कृतकृत्यया ॥
ज्ञानयोगेन विधिना ब्रह्मणा निर्मितेन तु । देवासुरे दितिसुता जिता देवैरनिन्दिताः
स्नाप्यैवसर्वभूपैश्चतथाऽन्यैरपिभूसुरैः । प्राप्ताश्चसिद्धयोदिव्यानाऽत्रकार्य्याविचारणा

अहोऽभिषेकमाहात्म्यमहो शुद्धसुभाषितम् । येनैवमभिषिक्तेनसिद्धैर्मृत्युर्जितस्त्विति
कल्पकोटिशतेनापि यत्पापं समुपार्जितम् । स्नात्वैवं मुच्यते राजा सर्वपापैर्नसंशयः

व्याधितो मुच्यते राजा क्षयकुष्ठादिभिः पुनः ।
स नित्यं विजयी भूत्वा पुत्रपौत्रादिभिर्युतः ॥ २८२ ॥

जनानुरागसम्पन्नो देवराज इवापरः । मोदते पापहीनश्च प्रियया धर्मनिष्ठया ॥२८३॥
उद्देशमात्रं कथितं फलं परमशोभनम् । नृपाणामुपकाराय स्वायम्भुवमनो मया ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे जयाभिषेकविधिर्नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

तुलापुरुषारोहणादिदानविधिवर्णनम्

सूत उवाच

स्नात्वा देवं नमस्कृत्य देवदेवमुमापतिम् । दिव्येन चक्षुषा रुद्रं नीललोहितमीश्वरम्
दृष्ट्वा तुष्टाव वरदं रुद्राध्यायेन शङ्करम् । देवोऽपि तुष्ट्यानिर्वाणं राज्यान्तेकर्मणैवतु
तवास्तीति सकृच्चोक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत । स्वायम्भुवो मनुर्देवं नमस्कृत्यवृषध्वजम्
आरुरोह महामेरुं महावृषमिवेश्वरः । तत्रदेवं हिरण्याभं योगैश्वर्य्यसमन्वितम् ॥
सनत्कुमारं वरदमपश्यद् ब्रह्मणः सुतम् । नमश्चकार वरदं ब्रह्मण्यं ब्रह्मरूपिणम् ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टावचमहाद्युतिः । सोऽपि दृष्ट्वा मनुं देवो हृष्टरोमाऽभवन्मुनिः

सनत्कुमारः प्राहेदं घृणया च घृणानिधे ! ।

सनत्कुमार उवाच

दृष्ट्वा सर्वेश्वराच्छान्ताच्छङ्करान्नीललोहितात् ॥ ७ ॥

लब्ध्वाऽभिषेकं सम्प्राप्तो विवक्षुर्वद यद्यपि । तस्य तद्वचनं श्रुत्वाप्रणिपत्यकृताञ्जलिः
विज्ञापयामास कथं कर्मणा निर्वृतिर्विभो । वक्तुमर्हसि चाऽस्माकं कर्मणाकेवलेनच

ज्ञानेन निर्वृतिः सिद्धा विभो ! मिश्रेण वा क्वचित् ।
अथ तस्य वचः श्रुत्वा श्रुतिसारविदां निधिः ॥ १० ॥

सनत्कुमारो भगवान् कर्मणानिर्वृतिःक्रमात् । मिश्रेणच क्रमादेवक्षणाज्ज्ञानेनवैमुने!
पुरा मानेनचोष्ट्रत्वमगमं नन्दिनः प्रभो !। शापात्पुनः प्रसादाद्धिशिवमभ्यर्च्यशङ्करम्
प्रसादान्नन्दिनस्तस्य कर्मणैव सुतोह्यहम् । श्रुत्वोत्तमांगतिदिव्यामवस्थांप्राप्तवानहम्
शिवार्चनप्रकारेण शिवधर्मेण नान्यथा । राज्ञां षोडशदानानि नन्दिनाकथितानिच
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं कर्मणैव महात्मना । तुलादिरोहणाद्यानि शृणु तानि यथातथम्
ग्रहणादिषु कालेषु शुभदेशेषु शोभनम् । विशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव च ॥
यथाऽष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः । कृत्वा वेदिं तथा मध्ये नवहस्तप्रमाणतः ॥

अष्टहस्तेन वा कार्य्या सप्तहस्तेन वा पुनः ।
द्विहस्ता सार्द्धहस्ता वा वेदिका चातिशोभना ॥ १८ ॥

द्वादशस्तम्भसंयुक्ता साधुरम्या भ्रमन्तिका । परितोनवकुण्डानिचतुरस्राणिकारयेत्
ऐन्द्र ईशानयोर्मध्ये प्रधानं ब्रह्मणः सुत !। अथवा चतुरश्रञ्च योन्याकारमतः परम् ॥

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्रा ! योन्याकाराणि कारयेत् ।
अर्द्धचन्द्रं त्रिकोणञ्च वर्त्तुलं कुण्डमेव च ॥ २१ ॥

षडश्रं सर्वतो वापि त्रिकोणं पद्मसन्निभम् । अष्टाश्रं सर्वमानेतु स्थण्डिलंकेवलन्तुवा
चतुर्द्वारसमोपेतं चतुस्तोरणभूषितम् । दिग्गजाष्टकसंयुक्तं दर्भमालासमावृतम् ॥
अष्टमङ्गलसंयुक्तं वितानोपरिशोभितम् । तुलास्तम्भद्रुमाश्चात्रबिल्वादीनि विशेषतः
बिल्वाश्वत्थपलाशाद्याः केवलं खादिरन्तु वा । येन स्तम्भःकृतःपूर्वंतेनसर्वन्तुकारयेत्
अथवा मिश्रमार्गेण वेणुना वा प्रकल्पयेत् । अष्टहस्तप्रमाणन्तु हस्तद्वयसमायुतम् ॥

तुला स्तम्भस्य विष्कम्भोऽनाहतस्त्रिगुणो मतः ।
द्व्यङ्गुलेन विहीनन्तु सुवृत्तं निर्व्रणं तथा ॥ २७ ॥

उभयोरन्तरञ्चैव षड्ढस्तं नृपतेःस्मृतम् । द्वयोश्चतुर्हस्तकृतमन्तरं स्तम्भयोरपि ॥२८॥
षड्ढस्तमन्तरंज्ञेयंस्तम्भयोरुपरिस्थितम् ।वितस्तिमात्रंविस्तारोविष्कम्भस्तावदुत्तरम्

स्तम्भयोस्तुप्रमाणेनउत्तरद्वारसम्मितम् । षट्त्रिंशन्मात्रसंयुक्तंव्यायामन्तुतुलात्मकम्
विष्कम्भमष्टमात्रन्तु यवपञ्चकसंयुतम् । षट्त्रिंशन्मात्रनाभंस्यान्निर्माणाद्वर्तुलं शुभम्
अग्रे मूले च मध्ये च हेमपट्टेन बन्धयेत् । पट्टमध्ये प्रकर्त्तव्यमवलम्बनकत्रयम् ॥३२॥
ताम्रेण च प्रकर्त्तव्यमवलम्बनकत्रयम् । आरेण वा प्रकर्त्तव्यमायसं नैव कारयेत् ॥
मध्ये चोर्ध्वमुखं कार्यमवलम्बंसुशोभनम् । रश्मिभिस्तोरणाग्रे वा बन्धयेच्चविधानतः
जिह्वामेकां तुलामध्ये तोरणन्तु विधीयते । उत्तरस्य च मध्येच शङ्कुं दृढमनुत्तमम् ॥

वितानेनोपरिच्छाद्य दृढं सम्यक् प्रयोजयेत् ।
शङ्कोः सुषिरसम्पन्नं वलयं कारयेन्मुने ! ॥ ३६ ॥

तुलामध्ये वितानेन तुलया लम्बके तथा । वलयेन प्रयोक्तव्यं कुण्डलं वाऽवलम्बनम्
सुदृढञ्च तुलामध्ये नवमाङ्गुलमानतः । पट्टस्यैव तु विस्तारं पञ्चमात्रप्रमाणतः ॥३८
अपरौ सुदृढौपिण्डौशुभद्रव्येणकारयेत् । शिक्याधस्तात्प्रकर्त्तव्योपञ्चप्रादेशविस्तरौ

सहस्रेण तु कर्त्तव्यौ पलानां धारकावुभौ ॥ ३६ ॥

शताष्टकेन वा कुर्यात्पलैः षट्शतमेव वा । चतुस्तालञ्च कर्त्तव्यं विस्तारंमध्यमंतथा
सार्द्धत्रितालविस्तारं कलशस्य विधीयते । बध्नीयात्पञ्चपात्रन्तुत्रिमात्रंषट्कमुच्यते
चतुर्द्वारसमोपेतं द्वारमङ्गुलमात्रकम् । कुण्डलैश्च समोपेतैः शुक्रशुद्धसमन्वितैः ॥४२
कुण्डले कुण्डले कार्यं शृङ्खला परिमण्डलम् । शृङ्खलाधारवलयमवलम्बेन योजयेत्
आदेशं वा चतुर्मात्रंभूमेस्त्यक्त्वाऽवलम्बयेत् । घटौ पुरुषमात्रौतुकर्त्तव्यौ शोभनावुभौ
तौ वालुकाभिः सम्पूर्य शिवंतत्रविनिक्षिपेत् । द्विहस्तमात्रमवटेस्थापनीयौप्रयत्नतः
निःशेषं पूरयेद्विद्वान्वालुकाभिः समन्ततः । येन निश्चलतांगच्छेत्तेनमार्गेण कारयेत्
श्रूयतां परमं गुह्यं वेदिकोपरि मण्डलम् । अष्टमाङ्गुलसंयुक्तं मङ्गलाङ्कुरशोभितम् ॥
फलपुष्पसमाकीर्णं धूपदीपसमन्वितम् । वेदिमध्ये प्रकर्त्तव्यं दर्पणोदरसन्निभम् ॥
आलिखेन्मण्डलंपूर्वं चतुर्द्वारसमन्वितम् । शोभोपशोभासम्पन्नंकर्णिकाकेसरान्वितम्
वर्णजातिसमोपेतं पञ्चवर्णन्तुकारयेत् । वज्रं प्रागन्तरेभागे आग्नेय्यांशक्तिमुज्ज्वलाम्

आलिखेद्दक्षिणे दण्डं नैर्ऋत्यां खड्गमालिखेत् ।

पाशञ्च वारुणे लेख्यं ध्वजं वै वायुगोचरे ॥ ५१ ॥

कौवेर्यान्तु गदालेख्या ऐशान्यां शूलमालिखेत् । शूलस्यवामदेशेनचक्रं पद्मन्तु दक्षिणे
एवं लिखित्वा पश्चाच्च होमकर्म समाचरेत् । प्रधानहोमञ्चायत्र्या स्वाहाशक्राय वह्नये
यमाय राक्षसेशाय वरुणाय च वायवे । कुबेरायेश्वरायाऽथ विष्णवे ब्रह्मणे पुनः ॥
स्वाहान्तं प्रणवेनैव होतव्यं विधिपूर्वकम् । स्वशाखाग्निमुखेनैवजयादिप्रति संयुतम्
स्विष्टान्तंसर्वकार्य्याणि कारयेद्विधिवत्तदा । सर्वहोमाग्रहोमेषुसमित्पालाशमुच्यते

एकविंशतिसंख्यातं मन्त्रेणाऽनेन होमयेत् ॥ ५६ ॥

अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्धवर्द्धय चाऽस्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे नाऽन्नाद्येन स मेधय स्वाहा । भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वस्तथैव च समिद्धोमश्च चरुणा घृतस्य च यथाक्रमं शुक्लान्नपायसञ्चैव मुद्गान्नञ्चरवः स्मृताः ॥ ५७ ॥

सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा ॥ ५८ ॥

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः आरे बाधस्व दुच्छुनां अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तमीमहे महागयं अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्य्यं दधद्रयिं मयि पोषं प्रजापते नत्वदेतान्यन्योविश्वा जातानि परिता बभूव यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयोरयीणाम् ।

गायत्र्या च प्रधानस्य समिद्धोमस्तथैवच । चरुणाच तथाज्यस्यशक्रादीनाञ्चहोमयेत्
वज्रादीनाञ्च होतव्यं सहस्रार्धं ततःक्रमात् । ब्रह्मयज्ञेति मन्त्रेण ब्रह्मणे विष्णवे पुनः॥

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥

अयं विशेषः कथितो होममार्गः सुशोभनः । दूर्वया क्षीरयुक्तेन पञ्चविंशत्पृथक्पृथक्

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ६२ ॥

दूर्वाहोमः प्रशस्तोऽयं वास्तुहोमश्च सर्वथा । प्रायश्चित्तमघोरेण सर्पिषा च शतंशतम्
ब्रह्माणं दक्षिणे वामेविष्णुंविश्वगुरुं शिवम् । मध्ये देव्यासमंज्ञेयमिन्द्रादिगणसंवृतम्

आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम् ।
उषां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रिमेव च ॥ ६५ ॥

पञ्चप्राकारविधिना खखोल्काय महात्मने । विष्टरां सुभगाञ्चैव वर्द्धनीञ्च प्रदक्षिणाम्
आप्यायनीञ्च सम्पूज्य देवीं पद्मासने रविम् । प्रभूतं वाऽथकर्त्तव्यं विमलंदक्षिणेतथा
सारं पश्चिमभागे च आराध्यञ्चोत्तरे यजेत् । मध्ये सुखंविजानीयात्केसरेषुयथाक्रमम्

दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां विभूतिं विमलां क्रमात् ।
अमोघां विद्युताञ्चैव मध्यतः सर्वतोमुखीम् ॥ ६६ ॥

सोममङ्गारकञ्चैव बुधं गुरुमनुक्रमात् । भार्गवञ्च तथा मन्दं राहुं केतुं तथैव च ॥
पूजयेद्धोमयेदेवं दापयेच्च विशेषतः । योगिनोभोजतेत्तत्र शिवतत्त्वैकपारगान् ॥७१ ॥
दिव्याध्ययनसम्पन्नान् कृत्वैवंविधिविस्तरम् । होमेप्रवर्त्तमानेचपूर्वदिक्स्थानमध्यमे
आरोहयेद्विधानेन रुद्राध्यायेन वै नृपम् । धारयेत्तत्र भूपालं घटिकैकां विधानतः ॥
यजमानोजपेन्मन्त्रं रुद्रगायत्रिसंज्ञकम् । घटिकार्द्धं तदर्द्धं वा तत्रैवाऽऽसनमारभेत् ॥
आलोक्य वारुणं धीमान्कूर्चहस्तःसमाहितः । नृपश्च भूषणैर्युक्तः खड्गखेटकधारकः ॥
स्वस्तिरित्यादिभिश्चादावन्तेचैव विशेषतः । पुण्याहंब्राह्मणैःकार्य्यं वेदवेदाङ्गपारगैः
जयमङ्गलशब्दादिब्रह्मघोषैः सुशोभनैः । नृत्यवाद्यादिभिर्गीतैः सर्वशोभासमन्वितैः ॥

स्वमेवं चन्द्रदिग्भागे सुवर्णं तत्र विक्षिपेत् ।
तुलाधारौ समौ वृत्तौ तुलाभारः सदा भवेत् ॥ ७८ ॥

शतनिष्काधिकंश्रेष्ठंतदर्द्धंमध्यमंस्मृतम् । तस्यार्द्धञ्चकनिष्ठंस्यात्त्रिविधंतत्रकल्पितम्
वस्त्रयुग्ममथोष्णीषं कुण्डलं कण्ठशोभनम् । अङ्गुलीभूषणञ्चैव मणिबन्धस्य भूषणम्
एतानिचैव सर्वाणि प्रारम्भे धर्मकर्म्मणि । पाशुपतव्रतायाऽथ भस्माङ्गाय प्रदापयेत्
पूर्वोक्तभूषणं सर्वं सोष्णीषं वस्त्रसंयुतम् । दद्यादेतत् प्रयोक्तृभ्य आच्छादनपटंबुधः
दक्षिणाञ्चशतं सार्द्धन्तदर्द्धं वा प्रदापयेत् । योगिनाञ्चैव सर्वेषांपृथक्निष्कंप्रदापयेत्
यागोपकरणं दिव्यमाचार्य्याय प्रदापयेत् । इतरेषांयतीनान्तु पृथक् निष्कं प्रदापयेत्
तुलारोहसुवर्णञ्च शिवाय विनिवेदयेत् । प्रासादं मण्डपञ्चैव प्राकारं भूषणं तथा ॥

सुवर्णपुष्पं पटहं खड्गं वै कोशमेव च ।
हुत्वा दत्त्वा शिवायाऽथ किञ्चिच्छेषञ्च बुद्धिमान् ॥ ८६ ॥
आचार्येभ्यःप्रदातव्यंभस्माङ्गेभ्योविशेषतः। वन्दीकृतान्विसर्ज्याथकारागृहनिवासिनः
सहस्रकलशैस्तत्र सेचयेत्परमेश्वरम् । घृतेन केवलेनाऽपि देवदेवमुमापतिम् ॥ ८८ ॥
पयसा वाऽथ दध्ना वा सर्वद्रव्यैरथाऽपिवा । ब्रह्मकूर्चेन वा देवं पञ्चगव्येन वा पुनः
गायत्र्याचैवगोमूत्रंगोमयं प्रणवेनवा । आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णोतिवैदधि
तेजोऽसीत्याज्यमीशानमन्त्रेणैवाभिषेचयेत् ।
देवस्य त्वेति देवेशं कुशाम्बुकलशेन वै ॥ ९१ ॥
रुद्राध्यायेन वा सर्वं स्नापयेत्परमेश्वरम् । सहस्रकलशं शम्भोर्नाम्नाञ्चैव सहस्रकैः ॥
विष्णुना कथितैर्वापि तण्डिना कथितैस्तु वा । दक्षेणमुनिमुख्येनकीर्त्तितैरथवा पुनः
महापूजा प्रकर्त्तव्या महादेवस्य भक्तितः । शिवार्चकायदातव्या दक्षिणास्वगुरोःसदा
देहार्णवञ्च सर्वेषां दक्षिणाञ्च यथाक्रमम् । दीनान्धकृपणानाञ्च बालवृद्धकृशातुरान् !
भोजयेच्च विधानेन दक्षिणामपि दापयेत् ॥ ९६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे तुलापुरुषदानविधिर्नामाऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनविंशतितमोऽध्यायः

हिरण्यगर्भदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

तुला ते कथिता ह्येषा आद्या सामान्यरूपिणी ।
हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि द्वितीयं सर्वसिद्धिदम् ॥ १ ॥
अधःपात्रं सहस्रेण हिरण्येन विधीयते । ऊर्ध्वपात्रं तदर्द्धेन मुखं संवेशमात्रकम् ॥
हैममेवं शुभं कुर्य्यात्सर्वालङ्कारसंयुतम् । अधः पात्रे स्मरेद्देवीं गुणत्रयसमन्विताम्

चतुर्विंशतिकांदेवींब्रह्मविष्ण्वग्निरूपिणीम्। ऊर्ध्वपात्रेगुणातीतंषड्विंशकमुमापतिम्
आत्मानं पुरुषं ध्यायेत्पञ्चविंशकमग्रजम्। पूर्वोक्तस्थानमध्येऽथ वेदिकोपरिमण्डले॥
शालिमध्ये क्षिपेन्नीत्वा नववस्त्रैश्चवेष्टयेत्। माषकल्पेनचालिप्यपञ्चद्रव्येणपूजयेत्॥
ईशानाद्यैर्यथा न्यायं पञ्चभिः परिपूजयेत्। पूर्ववच्छिवपूजा च होमश्चैव यथाक्रमम्

देवीं गायत्रिकां जप्त्वा प्रविशेत्प्राङ्मुखः स्वयम्।
विधिनैव तु सम्पाद्य गर्भाधानादिकां क्रियाम्॥ ८॥

कृत्वाषोडशमार्गेण विधिना ब्राह्मणोत्तमः। दूर्वाङ्कुरैस्तु कर्त्तव्या सेचना दक्षिणे पुटे
औदुम्बरफलैःसार्द्धमेकविंशत्कुशोदकम्। ईशान्यां तावदेवात्र कुर्यात्सीमन्तकर्मणि
उद्वहेत्कन्यकांकृत्वात्रिंशन्निष्केणशोभनाम्। अलङ्कृत्यतथाहुत्वाशिवायविनिवेदयेत्

अन्नप्राशनके विद्वान्भोजयेत्पायसादिभिः।
एवं विश्वजितान्ता वै गर्भाधानादिका क्रिया॥ १२॥

शक्तिबीजेन कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। शेषं सर्वञ्च विधिवत्तुलाहेमवदाचरेत्॥१३॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे हिरण्यगर्भदानविधिर्नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २९॥

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

तिलपर्वतदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि तिलपर्वतमुत्तमम्। पूर्वोक्तस्थानकाले तु कृत्वा सम्पूज्य यत्नतः
सुसमे भूतले रम्ये वेदिनाच विवर्जिते। दशतालप्रमाणेन दण्डं संस्थाप्य वै मुने!॥

अद्भिः सम्प्रोक्ष्य पश्चाद्धि तिलांस्तस्मिन्विनिक्षिपेत्।
पञ्चगव्येन तं देशं प्रोक्षयेद् ब्राह्मणोत्तमः॥ ३॥

मण्डलंकल्पयेद्विद्वान्पूर्ववत्सुसमन्ततः। नववस्त्रैश्च संस्थाप्य रम्यपुष्पैर्विकीर्य्य च

तस्मिन्सञ्चयनंकार्य्यं तिलभारैर्विशेषतः । दण्डप्रादेशमुत्सेधमुत्तमं परिकीर्त्तितम् ॥
चतुरङ्गुलहीनन्तु मध्यमंमुनिपुङ्गवाः । दण्डतुल्यं कनिष्ठं स्याद्दण्डहीनं न कारयेत् ॥
वेष्टयित्वा नवैर्वस्त्रैः परितःपूजयेत्क्रमात् । सद्यादीनि प्रविन्यस्य पूजयेद्विधिपूर्वकम्
अष्टदिक्षुच कर्त्तव्या पूर्वोक्ता मूर्त्तयःक्रमात् । त्रिनिष्केण सुवर्णेनप्रत्येकंकारयेत्क्रमात्
दक्षिणाविधिना कार्या तुलाभारवदेव तु । होमश्चपूर्ववत्प्रोक्तो यथावन्मुनिसत्तमाः॥
अर्चयेद्देवदेवेशं लोकपालसमावृतम् । तिलपर्वतमध्यस्थं तिलपर्वतरूपिणम् ॥ १० ॥
शिवार्चना च कर्त्तव्या सहस्रकलशादिभिः । दर्शयेत्तिलमध्यस्थं देवदेवमुमापतिम् ॥
पूजयित्वा विधानेन क्रमेण च विसर्जयेत् । श्रोत्रियायदरिद्राय दापयेत्तिलपर्वतम् ॥
एवं तिलनगः प्रोक्तः सर्वस्मादधिकः परः ॥ १३ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे तिलपर्वतदानं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सूक्ष्मपर्वतदानविधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथाऽन्यं पर्वतं सूक्ष्ममल्पद्रव्यं महाफलम् । द्रव्यमात्रोपसंयुक्ते काले मेध्यंविधीयते
गोमयालिप्तभूमौ तु ह्यम्बराणि प्रकीर्य्यच । तन्मध्येनिक्षिपेद्धीमान्तिलभारत्रयंशुभम्
पद्ममष्टदलंकुर्य्यात्कर्णिकाकेसरान्वितम् । दशनिष्केणतत्कार्य्यं तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥
तिलमध्ये न्यसेत्पद्मं पद्ममध्ये महेश्वरम् ।
आराध्य विधिवद्देवं वामादीनि प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥
शक्तिरूपंसुवर्णेनत्रिनिष्केण तु कारयेत् । न्यासन्तुपरितःकुर्य्याद्विघ्नेशान्परिभागतः
पूर्वोक्तहेममानेन विघ्नेशानपिकारयेत् । तानभ्यर्च्यविधानेन गन्धपुष्पादिभिःक्रमात्
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सूक्ष्मपर्वतदानविधानवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुवर्णमेदिनीदानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

जपहोमाऽर्चना दानाभिषेकाद्यञ्च पूर्ववत् । सुवर्णमेदिनीदानं प्रवक्ष्यामि समासतः ॥
पूर्वोक्तदेशकाले तु कारयेन्मुनिभिःसह । लक्षणेन यथापूर्वं कुण्डे वा मण्डलेऽथवा ॥
मेदिनीं कारयेद्दिव्यां सहस्रेणाऽपि वा पुनः । एकहस्तं प्रकर्त्तव्या चतुरश्रा सुशोभना
सप्तद्वीपसमुद्राद्यैः पर्वतैरभिसंवृता । सर्वतीर्थसमोपेता मध्ये मेरुसमन्विता ॥ ४ ॥
अथवा मध्यतो द्वीपं नवखण्डं प्रकल्पयेत् । पूर्ववन्निखिलं कृत्वा मण्डले वेदिमध्यतः
सप्तभागैकभागेन सहस्राद्विधिपूर्वकम् । शिवभक्ते प्रदातव्या दक्षिणा पूर्वचोदिता ॥
सहस्रकलशाद्यैश्च शङ्करं पूजयेच्छिवम् । सुवर्णमेदिनीप्रोक्तं लिङ्गेऽस्मिन्दानमुत्तमम् ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सुवर्णमेदिनीदानं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

कल्पपादपदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि कल्पपादपमुत्तमम् । शतनिष्केणकृत्वैवं सर्वशाखासमन्वितम्
शाखानां विविधं कृत्वा मुक्तादामावलम्बनम् ।
दिव्यैर्मारकतैश्चैव चाङ्कुराग्रं प्रविन्यसेत् ॥ २ ॥
प्रवालंकारयेद्विद्वान् प्रवालेन द्रुमस्यतु । फलानि पद्मरागैश्च परितोऽस्य सुशोभयेत्
मूलञ्च नीलरत्नेन वज्रेण स्कन्धमुत्तमम् । वैदूर्य्येणद्रुमाग्रञ्च पुष्परागेण मस्तकम् ॥

गोमेदकेन वै कन्दं सूर्यकान्तेन सुव्रत !। चन्द्रकान्तेनवा वेदिं द्रुमस्य स्फटिकेन वा
वितस्तिमात्रमायामंवृक्षस्यपरिकीर्त्तितम् ।शाखाष्टकस्यमानञ्चविस्तारञ्चोर्ध्वतस्तथा
तन्मूले स्थापयेल्लिङ्गं लोकपालैः समावृतम् । पूर्वोक्तवेदिमध्येतुमण्डलेस्थाप्यपादपम्
पूजयेद्देवमीशानं लोकपालांश्च यत्नतः । पूर्ववज्जपहोमाद्यं तुलाभारवदाचरेत् ॥ ८ ॥
निवेदयेद् द्रुमं शम्भोर्योगिनां वाऽथवा नृप ! ।
भस्माङ्गिभ्योऽथ वा राजा सार्वभौमो भविष्यति ॥ ९ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे कल्पपादपदानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

विश्वेश्वरदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

गणेशेशं प्रवक्ष्यामि दानं पूर्वोक्तमण्डपे । सम्पूज्य देवदेवेशं लोकपालसमावृतम् ॥
विश्वेश्वरान् यथाशास्त्रं सर्वाभरणसंयुतान् । दशनिष्केणवैकृत्वासम्पूज्यचविधानतः
अष्टदिक्ष्वष्टकुण्डेषु पूर्ववद्धोममाचरेत् । पञ्चावरणमार्गेण पारम्पर्यक्रमेण च ॥ ३ ॥
सप्तविप्रान्समभ्यर्च्यकन्यामेकांतथोत्तरे । दापयेत्सर्वमन्त्राणिस्वैःस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्
दत्त्वैवं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ५ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे विश्वेश्वरदानविधिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुवर्णधेनुदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि हेमधेनुविधिक्रमम् । सर्वपापप्रशमनं ग्रहदुर्भिक्षनाशनम् ॥ १ ॥

उपसर्गप्रशमनं सर्वव्याधिनिवारणम् । निष्काणाञ्च सहस्रेण सुवर्णेन तु कारयेत् ॥
तदर्द्धेनापि वा सम्यक् तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः । शतेन वा प्रकर्त्तव्या सर्वरूपगुणान्विता
गोरूपं सुखुरं दिव्यं सर्वलक्षणसंयुतम् । खुराग्रे विन्यसेद्वज्रं शृङ्गे वै पद्मरागकम्

भ्रुवोर्मध्ये न्यसेद्दिव्यं मौक्तिकं मुनिसत्तमाः ! ।
वैदूर्य्येण स्तनाः कार्य्या लाङ्गूलंनीलतः शुभम् ॥ ५ ॥
दन्तस्थाने प्रकर्त्तव्यः पुष्पराग: सुशोभनः ।
पशुवत् कारयित्वा तु वत्सं कुर्य्यात् सुशोभनम् ॥ ६ ॥

सुवर्णदशनिष्केण सर्वरत्नसुशोभितम् । पूर्वोक्तवेदिकामध्ये मण्डलं परिकल्प्य तु
तन्मध्ये सुरभिं स्थाप्य सवत्सां सर्वतत्त्ववित् । सवत्सांसुरभितत्रवस्त्रयुग्मेनवेष्टयेत्
सम्पूजयेद्गाङ्गायत्र्या सवत्सांसुरभिं पुनः । अथैकाग्निविधानेन होमं कुर्य्याद्यथाविधि
समिदाज्यविधानेन पूर्ववच्छेषमाचरेत् । शिवपूजा प्रकर्त्तव्या लिङ्गंस्नाप्यघृतादिभिः

गामालभ्य च गायत्र्या शिवाया दापयेच्छुभाम् ।
दक्षिणा च प्रकर्त्तव्या त्रिशन्निष्का महामते ! ॥ ११ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सुवर्णधेनुदानविधिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

लक्ष्मीदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

लक्ष्मीदानं प्रवक्ष्यामि महदैश्वर्यवर्द्धनम् । पूर्वोक्तमण्डपे कार्य्य वेदिकोपरिमण्डले ॥
श्रीदेवीमतुलां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि । सहस्रेण तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥
अष्टोत्तरशतेनापि सर्वलक्षणसंयुताम् । मण्डले विन्यसेल्लक्ष्मीं सर्वालङ्कारसंयुताम्
तस्यास्तुदक्षिणेभागेस्थण्डिलेविष्णुमर्चयेत् । अर्चयित्वाविधानेनश्रीसूक्तेनसुरेश्वरीम्

अर्चयेद्विष्णुगायत्र्या विष्णुं विश्वगुरुं हरिम् । आराध्य विधिनादेवीं पूर्ववद्धोममाचरेत्
समिद्धुत्वा विधानेन आज्याहुतिमथाचरेत् । पृथगष्टोत्तरशतं होमयेद् ब्राह्मणोत्तमैः
आहूय यजमानन्तु तस्याः पूर्वदिशि स्थले ।
तस्मै तां दर्शयेद्देवीं दण्डवत् प्रणमेत् क्षितौ ॥ ७ ॥
प्रणम्य विष्णुंतत्रस्थं शिवंपूर्ववदर्चयेत् । तस्या विंशतिभागन्तु दक्षिणापरिकीर्त्तिता
तदर्द्धांशन्तु दातव्यमितरेषां यथार्हतः । ततस्तु होमयेच्छम्भुं भक्तो योगी विशेषतः
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे लक्ष्मीदानविधिवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

तिलधेनुदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथाऽतःसम्प्रवक्ष्यामितिलधेनुविधिक्रमम् । पूर्वोक्तमण्डपेकुर्याच्छिवपूजान्तुपश्चिमे
तस्याग्रे मध्यतो भूमौ पद्ममालिख्य शोभनम् ।
वस्त्रैराच्छादितं पद्मं तन्मध्ये विन्यसेच्छुभम् ॥ २ ॥
तिलपुष्पन्तु कृत्वाऽथ हेमपद्मंविनिक्षिपेत् । त्रिंशन्निष्केणकर्त्तव्यं तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः
पञ्चनिष्केण कर्त्तव्यं तदर्द्धार्द्धेनवापुनः । तमाराध्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिःक्रमात्
पद्मस्योत्तरदिग्भागे विप्रानेकादशान् न्यसेत् ।
तानभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ५ ॥
आच्छादनोत्तरासङ्गंविप्रेभ्योदापयेत् क्रमात् । उष्णीषञ्चप्रदातव्यं कुण्डलेचविभूषिते
हेमाङ्गुलीयकं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो विधानतः । एकादशानि वस्त्राणितेषामग्रे प्रकीर्य्यच
तेषु वस्त्रेषुनिक्षिप्यतिलाद्यानिपृथक् पृथक् । कांस्यपात्रंशतपलं विभिद्यैकादशांशकम्
इक्षुदण्डञ्च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । गोशृङ्गेतु हिरण्येन द्विनिष्केणतु कारयेत्

रजतेन ते कर्त्तव्याः खुरानिष्कद्वयेन तु । एवंपृथक् पृथक् दत्त्वातत्तिलेषुविनिक्षिपेत्
रुद्रैकादशमन्त्रैस्तु रुद्रेभ्यो दापयेत्तदा । पश्चस्य पूर्वदिग्भागे विप्रान् द्वादशपूजितान् ·
एतेनैव तु मार्गेण तेषु श्रद्धासमन्वितः । द्वादशादित्यमन्त्रैश्च दापयेदेवमेव च ॥१२॥

पूर्ववद्दक्षिणे भागे विप्रान् षोडश संस्थितान् ।
मूर्त्ति विघ्नेशमन्त्रैश्च दापयेत् पूर्ववत् पुनः ॥ १३ ॥

यजमानेन कर्त्तव्यं सर्वमेतद् यथाक्रमम् । केवलं रुद्रदानं वा आदित्येभ्योऽथवा पुनः
मूर्त्यादीनाञ्चवा देयं यथाविभवविस्तरम् । पर्यविन्यस्यराजाऽसौ शेषंवाकारयेन्नृपः

दक्षिणा च प्रदातव्या पञ्चनिष्केण भूषणम् ॥ १६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे तिलधेनुदानंनाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

गोसहस्रप्रदानविधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

गोसहस्रप्रदानञ्च वदामि शृणु सुव्रत !। गवां सहस्रमादाय सवत्सं सगुणं शुभम् ॥

तास्त्वभ्यर्च्य यथाशास्त्रमष्टौ सम्यक् प्रयत्नतः ।
तासां शृङ्गाणि हेम्नाऽथ प्रतिनिष्केण बन्धयेत् ॥ २ ॥

खुरांश्च रजतेनैव बन्धयेत् कण्ठदेशतः । प्रतिनिष्केण कर्त्तव्यं कर्णे वस्त्रञ्च शोभनम्

शिवाय दद्याद् विप्रेभ्यो दक्षिणाञ्च पृथक् पृथक् ।
दशनिष्कं तदर्द्धं वा तस्यार्द्धार्द्धमथाऽपि वा ॥ ४ ॥

यथाविभवविस्तारं निष्कमात्रमथापि वा । वस्त्रयुग्मञ्च दातव्यं पृथग्विप्रेषुशोभनम्
गावश्चाराध्य यत्नेन दातव्याः सुमनोरमाः । एवं दत्त्वाविधानेनशिवमभ्यर्च्यशङ्करम्
जपेदग्रे यथान्यायं गवांस्तवमनुत्तमम् । गावोममाग्रतो नित्यं गावो नः पृष्ठतस्तथा

हृदयेमेसदागावोगवांमध्येवसाम्यहम् । इतिकृत्वाद्विजाग्रेभ्यो दत्त्वागत्वाप्रदक्षिणम्
तद्रोमवर्षसंख्यानि स्वर्गलोके महीयते ॥ ६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे गोसहस्रप्रदानं नामाऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

हिरण्याश्वप्रदानविधिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

हिरण्याश्वप्रदानञ्च वदामि विजयावहम् । अश्वमेधात् पुनः श्रेष्ठं वदामिश्रृणुसुव्रत!
अष्टोत्तरसहस्रेण अष्टोत्तरशतेन वा । कृत्वाऽश्वं लक्षणैर्युक्तं सर्वालङ्कारसंयुतम् ॥२ ॥
पञ्चकल्याणसम्पन्नं दिव्याकारन्तु कारयेत् । सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाङ्गैश्च समन्वितम्
सर्वायुधसमोपेतमिन्द्रवाहनमुत्तमम् । तन्मध्यदेशे संस्थाप्य तुरङ्गं स्वगुणान्वितम्
उच्चैःश्रवसकं मत्वा भक्त्या चैव समर्चयेत् । तस्यपूर्वदिशाभागे ब्राह्मणंवेदपारगम्
सुरेन्द्रबुद्ध्या सम्पूज्य पञ्चनिष्कं प्रदापयेत् । तमश्वं शिवभक्ताय दातव्यंविधिनैवतु
सुवर्णाश्वं प्रदत्त्वा तु आचार्य्यमपि पूजयेत् । यथाविभवविस्तारंपञ्चनिष्कमथापिवा
दीनान्धकृपणानाथबालवृद्धकृशातुरान् । तोषयेदन्नदानेन ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥८॥
एतद् यः कुरुते भक्त्या दानमश्वस्य मानवः ।
ऐन्द्रान् भोगांश्चिरं भुक्त्वा रुचिरैश्वर्य्यवान् भवेत् ॥ ९ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे हिरण्याश्वदानं नामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

कन्यादानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

कन्यादानं प्रवक्ष्यामिसर्वदानोत्तमोत्तमम् । कन्यां लक्षणसम्पन्नांसवदोषविवर्जिताम्
मातापित्रोस्तु संवादं कृत्वा दत्त्वा धनं महत् ।
आत्मीकृत्याऽथ संस्नाप्य वस्त्रं दत्त्वा शुभं नवम् ॥ २ ॥
भूषणैर्भूषयित्वाथगन्धमाल्यैरथार्चयेत् । निमित्तानिसमीक्ष्याथगोत्रनक्षत्रकादिकान्
उभयोश्चित्तमालोक्य उभौसम्पूज्य यत्नतः । दातव्या श्रोत्रियायैवब्राह्मणायतपस्विने
साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे । दासदासीधनाढ्यञ्च भूषणानि विशेषतः
क्षेत्राणिचधनंधान्यं वासांसिचप्रदापयेत् । यावन्तिदेहेरोमाणिकन्यायाःसन्ततौपुनः
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ७ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे कन्यादानंनाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सुवर्णवृषदानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

हिरण्यवृषदानञ्च कथयामि समासतः । वृषरूपं हिरण्येन सहस्रेणाऽथ कारयेत् ॥१॥
तदर्द्धार्द्धेन वा धीमान् तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः । अष्टोत्तरशतेनापि वृषभं धर्मरूपिणम् ॥
ललाटे कारयेत्पुण्ड्रमर्द्धचन्द्रकलाकृतिम् । स्फटिकेन तु कर्त्तव्यं खुरन्तु रजतेन वै ॥
ग्रीवान्तु पद्मरागेण ककुद्गोमेदकेन च । ग्रीवायां घाण्टवलयं रत्नचित्रन्तु कारयेत् ॥

वृषाङ्कं कारयेत्तत्र किङ्किणीवलयावृतम्। पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरि मण्डले ॥
वृषेन्द्रं स्थापयेत्तत्र पश्चिमामुखमग्रतः। ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या वृषारूढं वृषध्वजम् ॥ ६ ॥
वृषेन्द्रं पूज्य गायत्र्या नमस्कृत्य समाहितः।
तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि तन्नो वृषः प्रचोदयात् ॥ ७ ॥
मन्त्रेणाऽनेन सम्पूज्य वृषं धर्मविवृद्धये। होमयेच्च घृताद्यैर्यथा विभवविस्तरम् ॥
वृषभः पूज्यदातव्यो ब्राह्मणेभ्यःशिवाय वा। दक्षिणाचैवदातव्यायथावित्तानुसारतः
एतद् यः कुरुतेभक्त्या वृषदानमनुत्तमम्। शिवस्याऽनुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सुवर्णवृषदानं नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गजदानविधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

गजदानं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः। द्विजाय वा शिवायाऽथ दातव्यः पूज्यपूर्ववत्
गजं सुलक्षणोपेतं हैमं वा राजतन्तु वा। सहस्रनिष्कमात्रेण तदर्द्धेनाऽपि कारयेत् ॥
तदर्द्धार्द्धेन वा कुर्यात् सर्वलक्षणभूषितम्। पूर्वोक्तदेशकालेच देवाय विनिवेदयेत् ॥
अष्टम्यां वा प्रदातव्यं शिवाय परमेष्ठिने। ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाऽऽहिताग्नये
शिवमुद्दिश्य दातव्यं शिवं सम्पूज्य पूर्ववत्। एतद्यः कुरुते दानं शिवभक्तिसमाहितम्
स्थित्वा स(स्व)र्गे चिरं कालं राजा गजपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥
इति श्रीलैङ्गे महापुराणे गजदानविधानवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

लोकपालाष्टकदानविधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

लोकपालाष्टकं दिव्यं साक्षात् परमदुर्लभम्। सर्वसम्पत्करं गुह्यं परचक्रविनाशनम्
स्वदेशरक्षणं दिव्यगजवाजिविवर्द्धनम्। पुत्रवृद्धिकरं पुण्यं गोब्राह्मणहितावहम्॥
पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमण्डले। मध्येशिवंसमभ्यर्च्य यथान्यायं यथाक्रमम्॥

दिग्विदिक्षु प्रकर्त्तव्यं स्थण्डिलं वालुकामयम्।
अष्टौ विप्रान् समभ्यर्च्य वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ४॥
जितेन्द्रियान् कुलोद्भूतान् सर्वलक्षणसंयुतान्।
शिवाभिमुखमासीनाऽनाहतेष्वम्बरेषु च॥ ५॥

वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्लोकपालकमन्त्रकैः। गन्धपुष्पैः सुधूपैश्च ब्राह्मणानर्चयेत् क्रमात्॥
पूर्वतो होमयेदग्नौ लोकपालकमन्त्रकैः। समिद्घृताभ्यां होतव्यमग्निकार्यं क्रमेण वा
एवं हुत्वा विधानेन आचार्यः शिववत्सलः। यजमानं समाहूय सर्वाभरणभूषितान्

तेन तान् पूजयित्वाऽथ द्विजेभ्यो दापयेद्धनम्।
पृथक् पृथक् तन्मन्त्रैश्च दशनिष्कञ्च भूषणम्॥ ६॥

दशनिष्केण कर्त्तव्यमासनं केवलं पृथक्। स्नपनं तत्र कर्त्तव्यं शिवस्य विधिपूर्वकम्
दक्षिणा च प्रदातव्या यथा विभवविस्तरम्। एवं यः कुरुतेदानंलोकेशानान्तुभक्तितः

लोकेशानाश्चिरं स्थित्वा सार्वभौमो भवेद् बुधः॥ ११॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे लोकपालाष्टकदानविधानवर्णनं नाम
त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सर्वोत्तमविष्णुदानविधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथाऽन्यत्सम्प्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमम् । पूर्वोक्तदेशकालेव मण्डपेवविधानतः
प्रणयात्कुण्डमध्येचस्थण्डिलेशिवसन्निधौ । पूर्वं विष्णुंसमासाद्यपद्मयोनिमतःपरम्
मन्त्राभ्यां विधिनोक्ताभ्यां प्रणवादिसमन्त्रकम् ।
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
ब्रह्म ब्रह्मणवृद्धाय ब्रह्मणे विश्ववेधसे । शिवायहरये स्वाहा स्वधावौषट् वषट् तथा
पूजयित्वा विधानेन पश्चाद्धोमं समाचरेत् । सर्वंद्रव्याणिहोतव्यंद्वाभ्यांकुण्डविधनतः
ऋत्विजौ द्वौ प्रकर्त्तव्यौ गुरुणावेदपारगौ । तानुद्दिश्ययथान्यायंविप्रेभ्योदापयेद्धनम्
शतमष्टोत्तरं तेभ्यः पृथक् पृथगनुत्तमम् । वस्त्राभरणसंयुक्तं सर्वालङ्कारसंयुतम् ॥७॥
गुरुरेकोहि वै श्रीमान् ब्रह्माविष्णुर्महेश्वरः । तेषांपृथक् पृथग्देयं भोजयेद्ब्राह्मणानपि
शिवार्चना च कर्त्तव्या स्नपनादि यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

इति श्रीलैङ्गे महापुराणे सर्वोत्तमविष्णुदानविधानवर्णनं नाम
चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

जीवच्छ्राद्धविधानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

एवंषोडशदानानिकथितानिशुभानिच । जीवच्छ्राद्धकमोऽस्माकंवक्तुमर्हसिसाम्प्रतम्

सूत उवाच

जीवच्छ्राद्धविधिं वक्ष्ये समासात्सर्वसम्मतम् । मनवे देवदेवेन कथितं ब्रह्मणा पुरा॥
वसिष्ठाय च शिष्टाय भृगवे भार्गवाय च । शृण्वन्तु सर्वभावेन सर्वसिद्धिकरं परम्

श्राद्धमार्गक्रमं साक्षात् श्राद्धार्हाणामपि क्रमम् ।
विशेषमपि वक्ष्यामि जीवच्छ्राद्धस्य सुव्रताः ! ॥ ४ ॥

पर्वते वा नदीतीरे वने वाऽऽयतनेऽपि वा । जीवच्छ्राद्धं प्रकर्त्तव्यं मृतकाले प्रयत्नतः
जीवच्छ्राद्धे कृते जीवो जीवन्नेवविमुच्यते । कर्मकुर्वन्नकुर्वन् वाऽज्ञानी वा ज्ञानवानपि

श्रोत्रियोऽश्रोत्रियो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ।
वैश्यो वा नाऽत्र सन्देहो योगमार्गगतो यथा ॥ ७ ॥

परीक्ष्यभूमिं विधिवद्गन्धवर्णरसादिभिः । शल्यमुद्धृत्ययत्नेन स्थण्डिलंसैकतंभुवि
मध्यतो हस्तमात्रेण कुण्डञ्चैवायतं शुभम् । स्थण्डिलंवाप्रकर्त्तव्यमिषुमात्रं पुनःपुनः
उपलिप्य विधानेन चालिप्याग्निं विधायच । अन्वाधाययथाशास्त्रं परिगृह्यच सर्वतः
परिस्तीर्य्य स्वशाखोक्तं पारम्पर्य्यक्रमागतम् । समाप्याग्निमुखंसर्वंमन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्
सम्पूज्यस्थण्डिलेवह्नौहोमयेत्समिदादिभिः ।आर्द्रीकृत्वासमिद्धोमंचरुणाचपृथक्पृथक्
घृतेन च पृथक् पात्रे शोभितेन पृथक्पृथक् । जुहुयादात्मनोद्धृत्य तत्त्वभूतानिसर्वतः

ॐ भूः ब्रह्मणे नमः ॥ १४ ॥ ॐ भूः ब्रह्मणे स्वाहा ॥ १५ ॥
ॐ भुवः विष्णवे नमः ॥ १६ ॥ ॐ भुवः विष्णवे स्वाहा ॥ १७ ॥
ॐ स्वः रुद्राय नमः ॥ १८ ॥ ॐ स्वः रुद्राय स्वाहा ॥ १९ ॥
ॐ महः ईश्वराय नमः ॥ २० ॥ ॐ महः ईश्वराय स्वाहा ॥ २१ ॥
ॐ जनः प्रकृतये नमः ॥ २२ ॥ ॐ जनः प्रकृत्यै स्वाहा ॥ २३ ॥
ॐ तपः मुद्गलाय नमः ॥ २४ ॥ ॐ तपः मुद्गलाय स्वाहा ॥ २५ ॥
ॐ ऋतं पुरुषाय नमः ॥ २६ ॥ ॐ ऋतं पुरुषाय स्वाहा ॥ २७ ॥
ॐ सत्यं शिवाय नमः ॥ २८ ॥ ॐ सत्यं शिवाय स्वाहा ॥ २९ ॥

ॐ शर्व ! धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वाय देवाय भूर्नमः ॥ ३० ॥
ॐ शर्व ! धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वाय भूः स्वाहा ॥ ३१ ॥
ॐ शर्व ! धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वस्य देवस्य पत्न्यै भूर्नमः ॥ ३२ ॥
ॐ शर्व ! धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वपत्न्यै भूः स्वाहा ॥ ३३ ॥

ॐ भव ! जलं मे गोपाय जिह्वायां रसम्भवाय देवाय भुवो नमः ॥ ३४ ॥
ॐ भव ! जलं मे गोपाय जिह्वायां रसम्भवाय देवाय भुवः स्वाहा ॥ ३५ ॥
ॐ भव ! जलं मे गोपाय जिह्वायां रसम्भवस्य देवस्य पत्न्यै भुवो नमः ॥
ॐ भव ! जलं मे गोपाय जिह्वायां रसम्भवस्य पत्न्यै भुवः स्वाहा ॥ ३७ ॥
ॐ रुद्राग्नि मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय स्वरों नमः ॥ ३८ ॥
ॐ रुद्राग्नि मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वः स्वाहा ॥ ३९ ॥
ॐ रुद्राग्नि मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य देवस्य पत्न्यै स्वरों नमः ॥ ४० ॥
ॐ रुद्राग्नि मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य देवस्य पत्न्यै स्वः स्वाहा ॥ ४१ ॥
ॐ उग्र ! वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शम् उग्राय देवाय महर्नमः ॥ ४२ ॥
ॐ उग्र ! वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शम् उग्राय देवाय महः स्वाहा ॥ ४३ ॥
ॐ उग्र ! वायु मे गोपाय त्वचि स्पर्शम् उग्रस्य देवस्य पत्न्यै महरों नमः ॥४४॥
ॐ उग्र ! वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शम् उग्रस्य देवस्य पत्न्यै महः स्वाहा॥४५॥
ॐ भीम ! सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनो नमः ॥ ४६ ॥
ॐ भीम ! सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनः स्वाहा ॥ ४७ ॥
ॐ भीम ! सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य देवस्य पत्न्यै जनो नमः॥४८॥
ॐ भीम ! सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य देवस्य पत्न्यै जनः स्वाहा॥४९
ॐ ईश ! रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णाम् ईशाय देवाय तपो नमः ॥ ५० ॥
ॐ ईश ! रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपः स्वाहा ॥ ५१ ॥
ॐ ईश ! रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपो नमः ॥ ५२ ॥
ॐ ईश ! रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपः स्वाहा ॥ ५३ ॥
ॐ महादेव ! सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं नमः ॥ ५४ ॥
ॐ महादेव ! सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं स्वाहा ॥ ५५ ॥
ॐ महादेव ! सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं नमः ॥ ५६ ॥
ॐ महादेव ! सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं स्वाहा ॥५७॥

ॐ पशुपते ! पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवाय सत्यं नमः ॥
ॐ पशुपते ! पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवस्य सत्यं स्वाहा ॥
ॐ पशुपते ! पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यं नमः॥
ॐ पशुपते ! पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यंस्वाहा
ॐ शिवाय नमः ॥ ६२ ॥ ॐ शिवाय सत्यं स्वाहा ॥ ६३ ॥

एवं शिवायहोतव्यंविरिञ्च्याद्यञ्चपूर्ववत् । विरिञ्च्याद्यञ्चपूर्वो(?)सृष्टिमार्गेषुसुव्रताः
पुनः पशुपतेः पत्नी तथा पशुपतिं क्रमात् । सम्पूज्य पूर्ववन्मन्त्रैर्होतव्यञ्च क्रमेण वै ॥
चर्वन्तमाज्यपूर्वञ्च समिधान्तं समाहितः ॥ ६६ ॥

ॐ शर्व ! धरां मे छिन्धि घ्राणे गन्धं छिन्धि मेद्यं जहि भू स्वाहा ॥ ६७ ॥
भुवः स्वाहा ॥ ६८ ॥ स्वः स्वाहा ॥ ६९ ॥ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ७० ॥

एवं पृथक्पृथक् हुत्वा केवलेन घृतेन वा । सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥
विरजा च घृतेनैव शतमष्टोत्तरं पृथक । प्राणादिभिश्च जुहुयाद् घृतेनैव तु केवलम् ॥

ॐ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो मा विशा प्रदाहाय प्राणाय स्वाहा ॥ ७३ ॥
प्राणाधिपतये रुद्राय वृषान्तकाय स्वाहा ॥ ७४ ॥
ॐ भूः स्वाहा ॥ ७५ ॥ ॐ भुवः स्वाहा ॥ ७६ ॥ ॐ स्वः स्वाहा ॥ ७७ ॥
भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ७८ ॥

एवंक्रमेणजुहुयाच्छ्राद्धोक्तञ्चयथाक्रमम् । सप्तमेऽहनि योगीन्द्राञ्छ्राद्धार्हानपिभोजयेत्
शर्वादीनाञ्च विप्राणां वस्त्राभरणकम्बलान् । वाहनं शयनंयानंकांस्यताम्रादिभाजनम्
हैमञ्च राजतं धेनुं तिलान्क्षेत्रञ्च वैभवम् । दासीदासगणञ्चैव दातव्यं दक्षिणामपि ॥
पिण्डञ्च पूर्ववद्द्यात्पृथगष्टप्रकारतः । ब्राह्मणानां सहस्रञ्च भोजयेच्च सदक्षिणम् ॥
एकं वा योगनिरतं भस्मनिष्ठं जितेन्द्रियम् । त्र्यहञ्चैव तु रुद्रस्य महाचरुनिवेदनम्
विशेष एव कथितः अशेषश्राद्धचोदितः । मृते कुर्यान्न कुर्याद्वाजीवन्मुक्तोयतः स्वयम्
नित्यनैमित्तिकादीनि कुर्य्याद्वा संत्यजेत्तु वा ।
बान्धवेऽपि मृते तस्य शौचाशौचं न विद्यते ॥ ८० ॥